

GOVERNMENT OF INDIA

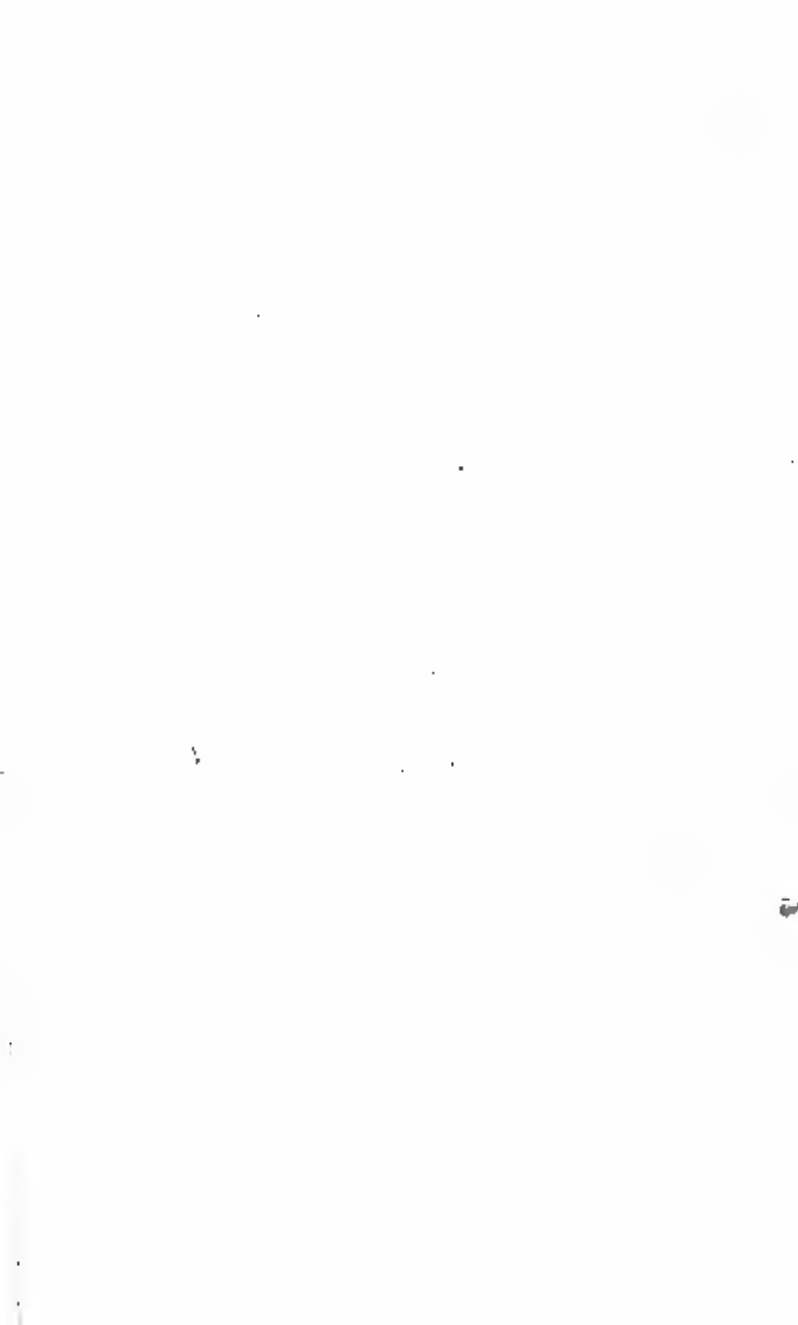
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY

**CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY**

GALL No. 891.43109 / San

D.G.A. 79.





हिंदी काव्य-धारा

[हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपना नाता सिर्फ संस्कृतके कवियोंसे जोड़े रक्खा जिससे हिंदी साहित्यके ऐतिहासिक विकासकी यह महत्त्वपूर्ण कड़ी काव्य-परंपरामेंसे टूटकर अलग जा पड़ी बीचकी पाँच सदियोंके अपभ्रंश-काव्योंका थोड़ा-सा भी अनुशीलन हमें लाभ है पहुँचायेगा यह न केवल हिंदीकी ही, बल्कि बंगला-गुजराती-मराठी-सिंधी-उड़िया-पंजाबी-राजस्थानी-मगही-मैथिली-भोजपुरी आदि भाषाओंकी संमिलित निधि है, सिद्ध-सामंत-युगीन जन-रहित्यकी अवहेलना हमारे लिए परम हानिकर होगी ।]

राहुल सांकृत्यायन



89.4.3109

From 4394/5

किताब महल

इलाहाबाद

प्रकाशक
किताब महल
इलाहाबाद

CENTRAL ARCH. & ZOOLOGICAL
LIBRARY
No. 567
Date 6.11.52
Call No. 891.43109

प्रथम संस्करण, १९४५

CENTRAL ARCH. & ZOOLOGICAL
LIBRARY

No. 8818
Date 29.4.57
Call No. 891.43109
San

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लाॅ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

अवतरणिका

इस संग्रहमें कवियोंकी अधिकसे अधिक कविताओंके देनेका निश्चय किया गया; ऐसी अवस्थामें एक-एक कविकी अलग-अलग आलोचना संभव नहीं। इसीलिए हमने एक-एक काव्य-युगके समझनेके लिये उसकी पृष्ठभूमि दे देने पर ही सन्तोष किया है।

सबसे पहले सवाल आता है इस युग—सिद्ध-सामन्त-युग—के कवियोंकी भाषाके बारेमें।

१. कवियोंकी भाषा

हमारे इस युग (७६०-१३०० ई०)की भाषा और आजकी भाषामें काफी अन्तर है, यह हम मानते हैं; तो भी हम बतलायेंगे, कि मूलतः वह भाषा और आजकी भाषा एक है। इस युगमें भी सरहपा (७६० ई०) और राजशेखर-सूरि (१३०० ई०)के बीचकी पाँच सदियोंमें भाषा अचल नहीं बनी रही। वस्तुतः दुनियामें कोई चीज अचल रह ही नहीं सकती। वहाँ यदि कोई अचल है, तो यही परिवर्तनका नियम। पीढ़ीके बाद पीढ़ी आती गई और भाषा भी उसके साथ बदलती गई। यदि हम सत्तर बरसकी दादीकी भाषाको ही देखें, तो उससे पोतीकी भाषामें परिवर्तन साफ़ दीख पड़ेगा। बोल-चालकी भाषाको तो छोड़िये, लेखबख़ भाषा—जिसे छप जानेसे हम बाज़ वक्त अचल समझनेकी शलती करते हैं—में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है; इसे हम भारतेन्दु और राजा लक्ष्मणसिंहकी भाषासे १९४४ की भाषाकी तुलना करके आसानीसे देख सकते हैं। यदि आधी शताब्दीमें इतना अन्तर हो सकता है, तो सरहपा और राजशेखरके बीचकी पाँच शताब्दियोंने भाषामें काफ़ी अन्तर डाला है, यह आश्चर्यकी बात नहीं है।

पाँच शताब्दियोंमें कितना अन्तर हुआ, इसे हम आसानीसे समझ सकते; यदि कवियोंके हाथके लिखे या उनके समकालीन ग्रन्थ हमारे पास होते। मुश्किल यह है, कि हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियाँ पहुँची हैं, वह कई-कई शताब्दियों बाद लिखी गई थीं। यह भाषा संस्कृतकी तरह व्याकरण द्वारा दृढ़बद्ध कोई मृत-भाषा नहीं थी। इन हस्तलिखित प्रतियोंके लिखनेवाले काव्योंके समझने

और रसास्वादनके लिये लिखते-लिखवाते थे; और जब किसी शब्दके पुराने रूपको कुछ अपरिचित-सा हुआ देखते, तो उसे नवीन रूपमें लिख डालते । इस तरह हस्तलिखित प्रतियोंमें कवि-कालीन भाषासे परिवर्तन हो गया । फिर वे प्रतिष्ठा यदि किसी "नीम-हकीम छतरा-जान" सम्पादकके हाथमें पड़ गई, तो क्या गति बनी, इसे मुनि जिनविजय जीके शब्दोंमें कहें तो—“जो कोई एबी जूनी कृति परिमाणमां बधारे लोक-प्रिय बनी होय, तेवी भाषा रचनामां जुदा जुदा जमानाना अनेक जातनां रूपो अने पाठ-भेदो उमेराई ते बधारे अनवस्थित रूप धारण करे छे । अने साथे कोई भाषा-तत्त्वानभिज्ञ संशोधक साक्षरने हाथे जो तेना जीर्ण-देहनू कायाकल्प भई जाय, तो तछन नूतन रूप प्राप्त करी ले वे ।”

“आबी जूनी कृतिओंनू मूल-स्वरूप मेलबदा माटे अधिक संख्यामां अने जेम बने तेम बधारे जूनी लखेली प्रतिष्ठों मेलबदी जोइये, अने तेमना सूक्ष्म अव-लोकन अने पृथक्करणता आधारे पाठ-विचारणा बवी जोइये । आ पद्धतिए कार्य करवाथीज आबी प्राचीन कृतिओंनों आदर्शभूत पाठोद्वार भई शके, अने कर्त्तानी शुद्ध-भाषानो परिचय मली सके ।”

यह तो हस्त-लिखित प्रतियोंके संपादनमें कितनी सावधानीकी जरूरत है, यह बात हुई ।

इस संग्रहमें इन पुराने कवियोंकी कविताओंके जो नमूने दिये गये हैं, उनको एक बार देखते ही पाठक समझनेमें असमर्थ हो कह पड़ेंगे, कि यह तो हिन्दी-भाषा है ही नहीं । इसीलिए यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता है, कि वह उससे भी कहीं अधिक हिन्दी-भाषा है, जितनी कि आजकी मालवी, मारवाड़ी, भल्ली (भोजपुरी) और मैथिली । आपको जो दिक्कत हो रही है, वह दादी (पाली) की इस प्रतिज्ञा हीके कारण, कि उनके पास कोई शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्द फटक नहीं सकता ।

दादीकी इस प्रतिज्ञाको चाहे बुझस कह लीजिए, उनके यहाँ गजको गय बोला जायगा; लेकिन गजेन्द्रकी जगह गयंद तो अब भी आप सुनते हैं; मृगांक (चंद्र)के स्थान पर मयंक अब भी प्रयुक्त होता है । इस भाषाके सम-

भनेमें जो दिक्कत होती है, वह इसी संस्कृत-रूपके पूरे बायकाट और एकमात्र तद्भव—अपभ्रंश—रूपके प्रचार हीके कारण ।

आप जैसे ही तद्भव “मयंक” को तत्सम (मृगांक) रूप देनेकी कुंजी पा जायेंगे, वैसे ही यह भाषा आपके लिए उसनी ही आसान हो जायेगी जितनी सूर और तुलसीकी । आपके लिए यह काम हमने आमने-सामनेके पृष्ठोंपर तद्भव (मूल)-भाषा और तत्सम-भाषा (छाया) देकर कर दिया है । आप अपने किसी भित्रको सामनेका पृष्ठ पढ़नेके लिए कह कर यदि मूलभाषाकी पंक्तियोंको देखते जायें तो खुद समझने लग जायेंगे कि यह भाषा संस्कृत-प्राकृत नहीं, हिन्दी है ।

आपने सुन रक्खा होगा, कि इस भाषाको अपभ्रंश कहते हैं, शायद इससे आप समझने लगे होंगे, कि तब, तो यह हिन्दीसे जरूर अलग भाषा होगी । लेकिन नाम पर न जाइये, इसका दूसरा नाम “देशी” भाषा भी है । अपभ्रंश इसे इसलिए कहते हैं, कि इसमें संस्कृत शब्दोंके रूप भ्रष्ट नहीं, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—हैं, इसलिए संस्कृत-पंडितोंको ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होंगे । लेकिन शब्दोंका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना—अपभ्रष्ट होना—दूषण नहीं भूषण है; इससे शब्दोंके उच्चारणमें ही नहीं अर्थमें भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता आती है । “माता” संस्कृत शब्द है, उसका “मातु”, “माई”, और “मावो” तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिए था । खेद है यहाँ भी कितने ही “नीम-हकीमों” ने शुद्ध संस्कृत “माता” को ही नहीं लिया, बल्कि उसमें “जी” लगाकर “माताजी” बना उसके ऐतिहासिक माधुर्यको ही नष्ट कर डाला । अस्तु, यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नहीं भूषण था ।

कवियोंकी भाषा पर विचार करते हुए हम तत्कालीन साधारण बोलचालकी भाषापर चले गए, लेकिन हमें फिर सिर्फ साहित्यिक भाषापर विचार करना है । पाँच सदियोंके जिन कवियोंकी कृतियोंका हमने यहाँ संग्रह किया है, वह दो चार जिलेके बराबर किसी छोटेसे प्रदेशके रहनेवाले नहीं थे । जहाँ सर-हृपा और शबरपा बिहार-बंगालके निवासी थे, वहाँ अब्दुर्रहमानका जन्म मुल्तानमें हुआ था । स्वयंभू और कमकामर शायद अवधी और बुन्देली, क्षेत्र—मुक्त

प्रान्त—के थे, तो हेमचंद्र और सोमप्रभ गुजरातके । और रसिक तथा आश्रयदाता होनेके कारण मान्यखेट (मालखेट) (निजाम हैदराबाद) का भी इस साहित्यके सृजनमें हाथ रहा है ।

इस प्रकार हिमालयसे गोदावरी और सिंधसे ब्रह्मपुत्र तकने इस साहित्य-के निर्माणमें हाथ बँटाया है । यह भाषा संस्कृतकी तरह ही मृतभाषा नहीं थी, यह हम कह आये हैं । साहित्यकी भाषा भी कोई मूल बोलचालवाली भाषा होनी चाहिए, और वह भाषा जरूर एक परिमित क्षेत्रकी मातृभाषा हो सकती है । स्वयंभूकी भाषाकी क्रियाओं और कितने ही कुंजीके शब्दोंको देखनेसे वह श्रवणके सबसे नजदीक मालूम होती है । यद्यपि ऐसा कहनेसे बहुत दिनोंसे चली आई इस धारणाके हम खिलाफ जा रहे हैं, कि अपभ्रंश साहित्य सौरसेनी और महाराष्ट्री अपभ्रंशों हीमें लिखा गया । लेकिन, जो सामग्री हमारे सामने मौजूद है, वह हमें वही कहनेके लिए मजबूर करती है । हाँ, इसका यह मतलब नहीं कि और भाषाओंके विशेष शब्द उसमें नहीं हैं । 'चंगा' ('अच्छा') शब्द का बहुत अधिक प्रचार अब पंजाबी और मराठीमें ही रह गया है, लेकिन हमारे सामने जो भाषा है, उसमें इसका खूब प्रयोग हुआ है । 'थाक' (रहना) जिस अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है, वह अब बंगलामें ही मिलता है । 'मेल्ही' (छोड़ना) अब राजपूतानामें ही बोली जाती है । 'दूक' (देखना) अब सिर्फ बुन्देली और व्रजभाषामें देखनेको मिलता है, और 'एवड़ा' (इतना) 'तेवड़ा' गढ़वाली और मराठीमें । अछे (हैं) 'छे' के रूपमें बंगला, मैथिली, गोरखा, मेवाड़ी और गुजरातीमें सुननेको मिलता है । इसलिए हम स्वयंभू जैसे कवियोंकी भाषाको जब पुरानी श्रवण या कोसली कहते हैं, तो उसका यह मतलब नहीं, कि दूसरी प्रान्तीय भाषाओंसे उसका कोई संबंध नहीं था । वस्तुतः उस वक्त उत्तर-भारत की सारी भाषायें एक दूसरेके बहुत नजदीक थीं । प्रान्तीय भाषायें उस वक्त काफी थीं । "प्राकृत-चंद्रिका"में उनकी एक मोटीसी गणनाकी गई है, जो इस प्रकार है—

आचडी

कैकेयी

लाटी

गौडी

वैदर्भी	गौड़ी (उड़िया)
नागरी	संहली
वर्जरी	गुर्जरी
आवन्ती (मालवी)	आभीरी
पांचाली	मध्यप्रदेशी, आदि
टक्की	

मार्कण्डेयने "प्राकृत सर्वस्व"में जिन अपभ्रंशोंको गिनाया है, उनमेंसे कुछ हैं—

पांचाली (कभीज-वरेली)	संहली
वैदर्भी (वरारी)	आभीरी
लाटी (दक्षिण-गुजराती)	मध्यदेशीया
गौड़ी	गुर्जरी
कैकेयी	पाश्चात्या (पछैयाँ)
गौड़ी	

"कुवलय-माला"ने भी कितने ही नाम दिये हैं—

गोल्ती (गौड़ी)	लाटी
मध्यदेशीया	मालवी
मागधी	कोसली
अन्तर्वेदी	महाराष्ट्री
कीरी	
टक्की	
सिंधी	
मरुदेशी	
गुर्जरी	

इस प्रकार हिमालय-गोदावरी और सिन्ध-ब्रह्मपुत्रके बीच यद्यपि बहुतसी बोल-चालकी भाषायें थीं, मगर उनके साथ सबकी एक सम्मिलित भाषा भी थी ।

बोलचालकी भाषाओंमें लिखित साहित्य था या नहीं, इसके बारेमें अभी

कुछ कहा नहीं जा सकता । सम्भव है, इन कविताओंको जिस रूपमें हम पेश कर रहे हैं, उसमें बहुत कुछ वाताब्दियोंके लेखकों, पाठकोंका हाथ हो ।

मूल-रूप में कितने ही कवियों—खास कर सिद्धों—ने अपनी कवितायें अपनी ही मातृभाषामें की होंगी ।

ऊपरके कथनसे मालूम होता है, कि हमारे यहाँ सांस्कृतिक और साहित्यिक, राजनीतिक और व्यापारिक प्रयोजनके लिए एक भाषाकी आवश्यकताको बहुत पहिलेसे माना जाता रहा है । इसीलिए आज हिन्दीके राष्ट्रभाषाका सवाल कोई नई चीज नहीं है ।

फिर भी सवाल दुहराया जायेगा, कि हमारे इन कवियोंकी भाषा हिन्दी नहीं, बल्कि संस्कृत-प्राकृतकी तरह कोई विल्कुल ही अलग भाषा है । “अपभ्रंश” नाम सुनते-सुनते इस गलत धारणाके शिकार हम जरूर हो चुके हैं; मगर बात ऐसी नहीं है । संस्कृत (छन्दस्), पाली और प्राकृत जितनी एक दूसरेके नजदीक है, अपभ्रंश उसनी नहीं है । पुरानी संस्कृत या छन्दस् (वैदिक)-भाषा १५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक थोड़ा बदलते हुए बोली जानेवाली जीवित भाषा थी ।

५०० ई० पू०में बुद्धके समय उसने मूल-पालीका रूप धारण कर लिया और आगे हल्केसे परिवर्तनके साथ वह पाँच शताब्दियों तक जारी रही । फिर इसवी सनके साथ प्राकृतका आरंभ हुआ और वह छठीं सदी तक चलती रही । इन बीस सदियोंमें छन्दस्, पाली, प्राकृतके जो तीन छोटे-मोटे भाषा-स्वरूप हमें मिलते हैं, उनमें परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है । असमानता यही है कि संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको आसान, (बालभाषा) बनाकर पालीने तद्भव शब्दोंकी रचना शुरू की । संस्कृतके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम करके उसने द्विवचन और कुछ प्रयोगोंके भ्रंशसे बोलनेवालोंको बचाया—बोलने-वालोंने खुद अपनेको बचाया, यही कहना अधिक उचित होगा । कितना बचाया यह इसीसे मालूम होगा कि जहाँ शुद्ध संस्कृत बोलनेके लिए छ हजारसे ऊपर सूत्र-वार्तिकोंको याद रखनेकी जरूरत है, वहाँ पालीमें वह काम आठ-नीस सूत्रोंसे ही हो जाता है ।

प्राकृतने शायद व्याकरणके नियमोंकी संस्थाको और कम नहीं किया, लेकिन तद्भव या उच्चारणके सरलीकरणके कामको उसने और जोर-शोरसे किया। उस युगमें स्वर ही नहीं व्यंजनोंकी भी खैर नहीं थी, यदि वह शब्दके आरंभमें न रहे। तद्भव करनेमें पाली और प्राकृत एक-सी रही।

लेकिन, इतना होते हुए भी सुबन्त, तिङना या शब्द-रूप और धातु-रूपकी शैलीमें दोनों हीने संस्कृतका अनुसरण नहीं छोड़ा, इसीलिए पाली और प्राकृत-को संस्कृत रूप देनेमें बहुत थोड़े अमकी जरूरत होती है—तद्भवको तत्सम कर दीजिए, आवश्यकता होनेपर द्विवचन और आत्मनेपद कर दीजिए, वस उसी पुराने ढाँचेमें ही संस्कृत रूप तैयार हो गया।

और अपभ्रंश ? यहाँ आकर भाषामें असाधारण परिवर्तन हो गया। उसका ढाँचा ही बिल्कुल बदल गया, उसने नये सुबन्तों, तिङन्तोंकी सृष्टि की, और ऐसी सृष्टि की है, जिससे वह हिन्दीसे अभिन्न हो गई है, और संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न।

‘कहेउ’, ‘गयउ’, ‘गउ’, ‘कहिज्जइ’ ये शब्द बतलाते हैं कि अपभ्रंशका स्थान हिन्दीके पास होना चाहिए या संस्कृत-पाली-प्राकृतके पास। वस्तुतः संस्कृतसे पाली और प्राकृत तक भाषा-विकास क्रमिक या अविच्छिन्न-प्रवाह-युक्त हुआ, भगर आगे वह क्रमिक विकास नहीं, बल्कि विच्छिन्न-प्रवाह-युक्त विकास—जाति-परिवर्तन—हो गया। आज अपभ्रंशकी यह अवस्था है कि संस्कृत-प्राकृत-पाली जाननेवाले मद्रास, सिंहाल, और कर्नाटकके पंडित इस जाति-परिवर्तनके कारण अपभ्रंशसे बात तक नहीं करना चाहते। यह ठीक भी है, क्योंकि उन्हें इसके लिए हिन्दीकी विभक्तियोंको सीखना पड़ेगा। वहाँ संस्कृत-ज्ञानके बल पर काम नहीं चलेगा। लेकिन दूसरी तरफ हिन्दी-भाषियोंका अपभ्रंशके प्रति क्या कर्तव्य है, इसे आप अपने दिलसे पूछ सकते हैं। “जिसके लिये किया वही कहे चोर” वाली कहावत है, बेचारी अपभ्रंश हमारे लिए मारी गई।

भगर तर्क कर देनेसे काम नहीं चलेगा, आखिर पढ़ने-समझनेमें आपकी दिक्कतका ख्याल करना ही होगा। लेकिन दिक्कत है सिर्फ तद्भव और तत्समके भगड़े की। संस्कृत (छान्दस्)की औरस पुत्री पालीने तत्सम (शुद्ध संस्कृत)

शब्दोंका बायकाट शुरू किया, प्राकृतने दादीकी जगह मौका साथ दिया। वेचारी प्राचीनतम हिन्दी (अपभ्रंश)ने दादी और मक़ि पल्लेको पकड़े रक्खा, लेकिन आगे चलकर उसके बोलनेवालोंने वास्तविक भाषा (क्रिया, विभक्ति)को तो रक्खा, मगर परदादी—संस्कृत—के शब्दोंके शुद्ध रूप (तत्सम)को खूब तत्परतासे उधार लेना शुरू किया। लोग जितनी भाषामें तत्सम शब्दोंसे अधिक और अधिक परिचित होते गये, उसी भाषामें तद्भव रूपोंको भूलते गये, जिसका परिणाम है, यह आजकी दिक्कत।

तत्सम या शुद्ध संस्कृत-शब्दोंका प्रयोग क्यों फिरसे होने लगा? अवतरणिका-का कलेवर इसके विवरणके लिए पर्याप्त तो नहीं हो सकता। अस्तु, हम देखते हैं, कि चौदहवीं सदीसे तत्सम शब्दोंका प्रयोग बढ़ने लगता है। ब्रजभाषा तब भी इस बारेमें कुछ संयमसे काम लेती है, लेकिन तुलसी-बाबाको तो हम अपनी अवधीमें लुटिया ही डवानेके लिये तैयार दीखते हैं। शायद, बाबाको अपने "मानस"पर विश्वनाथकी मुहर लगवानी थी। अच्छा, तत्समका प्रचार कहाँ क्यों? तेरहवीं सदीके आरम्भमें इस्लाम-धर्मो तुर्कोंका झंडा उत्तरी भारत-में गड़ गया था। कहा जा सकता है, कि उनके एक सदीके प्रभुत्वकी प्रतिक्रिया भाषा-क्षेत्रमें तत्समके रूपमें आई। लेकिन यही पर्याप्त कारण नहीं मालूम होता। लंकामें तो तुर्कों या इस्लामकी ध्वजा कभी नहीं गड़ी, लेकिन वहाँ भी तत्समकी यह प्रवृत्ति गढ़—भाषामें क्यों हुई? सिंहली-पक्षमें १६३२ तक तत्समका प्रवेश निषिद्ध था। एक और बात भी—इस्लाम शासनकी प्रतिक्रिया-में ही यदि पंडितोंने संस्कृत शब्द-रूपोंको जोड़ना शुरू किया, तो उसका प्रभाव साहित्य और पठित जनता तक ही सीमित होना चाहिए था, लेकिन तत्सम-शब्दोंका प्रचार निरक्षर साधारण जनतामें बहुत दूर तक कैसे घुसा? गाँवका अपठित किसान भी अपने लड़केका नाम 'माहव' नहीं रखता, बल्कि तत्सम-रूप 'माधव'को ही स्वीकार करता है। 'कृष्ण' आदि नामोंको भी वह तद्भवके 'धरम', 'करम' नहीं संस्कृतके तजदीकसे उच्चारण करना चाहता है; 'धम्म', 'कम्म'की जगह कहता है। इसलिए तत्समकी प्रवृत्ति चन्द शिक्षित दिमागोंकी उपज-मात्र नहीं कहੀ जा सकती। तत्सम या परदादीकी पुनः प्राण-प्रतिष्ठा—एक परिमित क्षेत्र

में—के बहुतसे कारण हैं, जिनमें एक कारण यह भी है—समाजके विकासके साथ-साथ उसके लिए शब्दोंकी आवश्यकता भी बढ़ती है। नये शब्द पुरानी धातुओंसे गढ़े जा सकते हैं, या विदेशसे उधार लिये जा सकते हैं। साथ ही कभी-कभी इतिहास-प्रवाहमें छूट गये शब्दोंको भी नया अर्थ दिया जा सकता है। ये छोटे शब्द तद्भव-रूपमें भी हो सकते हैं, और तत्सम-रूपमें भी। जान पड़ता है, जिस वक्त शब्दोंकी माँग बहुत बढ़ गई थी, उस वक्त कुछ तत्सम (संस्कृत)-शब्दोंको भी चलाया जाने लगा। नये अर्थोंमें नये शब्दोंका प्रयोग करनेके लिए साधारण लोग भी मजबूर थे और वह जैसे-तैसे संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणपर अधिकार प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे। जब इस तरह अनिवार्य कारणोंसे लोग कितने ही तत्सम शब्दोंको अपना चुके और उन्होंने उसके उच्चारण पर भी कुछ अधिकार प्राप्त किया, तो फिर पण्डितोंकी जन आई और उन्होंने संस्कृत-तत्सम-शब्दोंको खूब ठूसना शुरू किया। हमने कहा था कि अपभ्रंश और आजकी हिन्दी (खड़ी, अवधी—ब्रज लेते)में अन्तर इतना ही है, कि एकमें शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्दोंका प्रयोग बिल्कुल वर्जित है, जब कि आजकी साहित्यिक भाषामें मुश्किलसे किसी तद्भव-शब्दका प्रयोग होता है। अपभ्रंशमें 'होई', 'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ', आदि तुलसी-रामायण-वाली भाषाके क्रियापदोंका प्रयोग होनेपर भी जब तद्भव-शब्दोंके कारण लोगोंकी उसका समझना मुश्किल हो गया, तो स्वयंभू आदि महान् कवियोंकी कृतियोंका पठन-पाठन छूटने लगा, और धीरे-धीरे वह बिल्कुल विस्मृत हो गयीं। संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अलग होने तथा हमारी अपनी भाषा होनेपर भी हमने एक तरह इन कवियोंको मार डालना चाहा। शायद, पहले-पहल इन कवियोंका जैन और बौद्ध होना भी इस उपेक्षाका कारण रहा हो, किन्तु आज शेक्सपियर और उमर सैय्यामकी दिल खोलकर दाद देनेवाले हम लोगोंसे तो ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

यहाँ एक बातको हम और साफ़ कर देना चाहते हैं। हम जब इन पुराने कवियोंकी भाषाको हिन्दी कहते हैं, तो इसपर मराठी, उड़िया, बँगला, आसामी, गोरखा, पंजाबी, गुजराती-भाषा-भाषियोंको आपत्ति हो सकती है। लेकिन

हमारा यह अभिप्राय हरगिज़ नहीं है, कि यह पुरानी भाषा मराठी आदिकी अपनी साहित्यिक भाषा नहीं है। उन्हें भी उसे अपना कहनेका उसना ही अधिकार है, जितना हिन्दी-भाषा-भाषियोंको। वस्तुतः ये सारी आधुनिक भाषायें बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीमें अपभ्रंशसे अलग होती दीख पड़ती हैं। जिस समय (आठवीं सदीमें) अपभ्रंशका साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक्त बंगला आदि उससे अलग अस्तित्व नहीं रखती थीं। उनके आजके क्षेत्रमें सायद मराठी और उड़ियाकी भूमिमें आखिरी लड़ाई खतम हो चुकी थी, और यह दोनों भाषायें अपने यहाँ पहलेसे चली आई किसी द्राविड़ी भाषाकी शिता-शान्त करनेमें लगी थी। गुजरातने तो हमें कई कवि दिये हैं, उनकी कविता-भोंका आस्वादन आप इस संग्रहमें करेंगे। वस्तुतः, यह सिद्ध-सामंत-युगीन कवियोंकी उपरोक्त सारी भाषाओंकी सम्मिलित निधि है।

सम्मिलित निधि है, अर्थात् बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक द्राविड़-भाषा-भाषी आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्णाटकको छोड़कर भारतके सभी प्रान्तोंकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। यहाँ कोई-कोई प्रखण्ड हिन्दी-वादी या एक भाषा-वादी पाठक कह उठे—तब तो अब भी क्यों न अ-द्राविड़ीय प्रान्तोंकी एक भाषा कर दी जाये। लेकिन, यह करना वैसा ही होगा, जैसे वयस्क स्वतन्त्र पोते-भोतियोंको फिर दादीके गर्भमें पहुँचानेकी कोशिश करना। गुजरात यद्यपि तेरहवीं शताब्दी तक आजके हिन्दी-क्षेत्रका अभिन्न अंग रहा है, आज भी होली-दिवाली, नाच-गाने और दूसरी सैकड़ों बातोंमें गुजरात हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंसे एकता रखता है, लेकिन आज उसके साहित्य और कितनी ही दूसरी सांस्कृतिक बातोंने गुजरातको एक स्वतन्त्र राष्ट्रका रूप दिया है, फिर हम क्या उससे वैसी अश्वङ्गता-की माँग कर सकते हैं।

अपभ्रंशके कवियोंको विस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दी-काव्य-धाराके प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और वाणकी सिर्फ जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र-की तरह हमारे काव्य-क्षेत्रमें नया सृजन किया है; नये श्रमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयंभू आदिकी कविताओंसे अच्छी तरहसे मालूम हो जायेगा।

नये-नये छन्दोंकी सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये-नये छन्दोंकी उन्होंने सृष्टि की, जिन्हें हिन्दी कवियोंने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नहीं। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं। उन्हें छोड़ देनेसे बीचके कालमें हमारी बहुत हाथि हुई और आज भी उसकी संभावना है।

हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपभ्रंशके कवियोंको भुला दिया और वह प्रेरणा लेने लगे सिर्फ़ संस्कृतके कवियोंसे। स्वयंभू आदि कवि अपनी पाँच शताब्दियोंमें सिर्फ़ घास नहीं छीतते रहे, उन्होंने काव्य-निधिको और समृद्ध, भाषाको और परिपुष्ट करनेका जो महान् काम किया है, हमारे साहित्यको उनकी जो ऐतिहासिक देन है, उसे भुला कर, कड़ीको छोड़कर सीधे संस्कृतके कवियोंसे सम्बन्ध स्थापित करना हमारे साहित्य और हिन्दी-भाषा दोनोंके लिए हानिकर सिद्ध हुआ है। हम संस्कृत कवियोंसे सम्बन्ध जोड़नेके विरोधी नहीं हैं, लेकिन हमें इस बीचकी कड़ी—जो हमारी अपनी ही कड़ी है—को लेते संस्कृतके प्राचीन कवियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा; तभी हम ऐतिहासिक विकाससे पूरा लाभ उठा सकेंगे।

२. आर्थिक और सामाजिक अवस्था

१—सम्पत्ति और उसके भोक्ता

सिद्ध-सामान्त-युगकी कविताओंकी सृष्टि आकाशमें नहीं हुई। वे हमारे देशकी ठोस धरतीकी उपज हैं। कवियोंने जो खास-खास शैली-भावको लेकर कवितायें कीं, वह देशकी तत्कालीन परिस्थितिके कारण ही। यह बात तब तक साफ़ नहीं होगी, जब तक तत्कालीन भारतकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अवस्थाओंकी पृष्ठ-भूमिमें हम उसे नहीं देखते। पहले हम उस काल—अथवा आठवींसे बारहवीं सदीकी पाँच सदियों—की आर्थिक अवस्थापर विचार करते हैं। उस समय भारत बहुत सम्पन्न था। अकेला रोम अपने यहूति हर साल ढाई लाख तोला सोना या साढ़े पाँच लाख सेस्सं

(पीने दो करोड़ रुपये) कपड़े और दूसरी चीज़ोंको खरीदनेके लिए भारत भेजा करता था। प्लीनी (२३-७६ ई०) ने बड़े ओमसे लिखा था—“हमें अपनी विलासिता और अपनी स्त्रियोंके लिए कितनी कीमत चुकानी पड़ती है।” सन्नीसवीं-सदीके आरम्भके अंग्रेज़ भी प्लीनीकी तरह भारतीय कपड़ों और मसालोंके लिए देशसे धन खिंचते देख चिन्तित थे; यद्यपि वह दूसरी ओर भारतको दूह भी रहे थे। भारत उन पाँच शताब्दियोंमें शिल्प-व्यवसाय और वाणिज्यमें दुनियाका सबसे समृद्ध देश था। अरब, पश्चिमी-एशिया, उत्तरी अफ्रीका और यूरोपसे अपार धन-राशि खिंच-खिंचकर हमारे देशमें चली आ रही थी। शिल्प और व्यापार ही नहीं, कृषि भी उन पाँच शताब्दियोंमें हमारे देशमें बहुत उन्नत-अवस्थामें थी। नदियों और जलाशयों द्वारा सिंचाईके प्रबन्धकी प्रथम जिम्मेदारी राज्यके ऊपर थी, इसे पाश्चात्य लेखकोंने भी माना है। इसका यह मतलब नहीं कि हमारी कृषि साइन्स-युगकी कृषिके समान उन्नत थी। उस वक़्त दुनियाको आधुनिक भौतिक साइन्सका पता ही नहीं था और जो कुछ कृषि-विज्ञान सभ्य-संसारको ज्ञात था, भारत भी उसमें किसीसे पीछे नहीं था।

उस समयकी भारतीय समृद्धिकी बात सुनकर आप शायद सतयुगका स्वप्न देखने लगेंगे, और कह उठेंगे—“वह वस्तुतः राम-राज्य था।” लेकिन यह कहना बहुत ग़लत होगा। चीन, जावा, अफ्रीका, यूरोपसे जो भाया भारतमें आ रही थी उसकी भोगनेवाली सारी भारतीय जनता नहीं थी। कौन भोगने-वाले थे, माइये इसे देखें।

{१} राजा-सामन्त—इस सम्पत्तिके सबसे अधिक भागको सामन्त-राजा अपनी मौज और आरामके लिए कितना खर्च किया करते थे, इसकी वहाँ कोई सीमा नहीं थी। आजकी कितनी ही देशी रियासतोंकी तरह सारा राजकोष ही उनका वैयक्तिक कोष नहीं था, बल्कि व्यापारियों और सेठोंके खजानोंमें भी जो कुछ था, उसे खर्च कर डालनेमें उनका हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं था। जिन्होंने हालके बाजिदग़ली शाह तथा दूसरे विलासी शासकोंके भोग-विलासके बारेमें पढ़ा है, वह आसानीसे समझ सकते हैं कि उस कालके क़बीज़, मान्य-

खेट और पटनाके राजमहलोंमें विलासी भोजन, शौकीनीके वस्त्र, मुगंधित द्रव्य-पर कितना खर्च होता रहा होगा। प्रजाकी मेहनतकी कमाईसे उर्पाजित यह महार्घ वस्तुएँ चार-पाँच दिनमें ही खतम हो जानेवाली थीं। इनके अतिरिक्त भी सामन्तोंके भारी खर्च थे।—नये-नये महल, क्रीड़ा-उपवन, सिंहासन, राज-पलंग, मोरछल, चमर और लाखोंके हीरा-मोती-महार्घ-रत्नोंके आभूषण, राज-महलोंकी सजावट, चित्र-कला, क्रीड़ाभूग, सोनेके पींजड़ोंमें बन्द शुक-सारिका, सोहेंके पींजड़ोंमें बन्द केसरी। दूर-दूर देशोंसे लाई कितनी ही दुर्लभ महार्घ-वस्तुओंके संचयमें भी देशकी सम्पत्तिका भारी भाग खर्च होता था।

फिर सामन्त या राजा अकेले ही उस सम्पत्तिको स्वाहा नहीं करते थे। उस समयके राजाओंके आदर्श थे—कृष्ण और दशरथ तथा उनकी सोलह-सोलह हजार रानियाँ। ये रानियाँ मोटा-भौंटा कपड़ा पहन, रुखा-सूखा खाकर दिन काटनेके लिए रनिवासमें नहीं रखी जाती थीं। इन हजारों रानियों और उसीके अनुसार उनके पुत्रों-पुत्रियों, बहुओं-दामादोंका खर्च भी देशकी उसी सम्पत्तिके मत्थे था। राजवंशके अतिरिक्त कितने ही राज-च्युत भगोड़े राजवंशी भी प्रजाकी गाड़ी कमाईमें भाग लगानेके अधिकारी थे। उस वक्त राजवंशोंका उच्छेद अक्सर होता रहता था, फिर वे अपने सम्बन्धियोंके पास क़र्ज्राजसे सिंहल तकका चक्कर काटते रहते थे।

इनके अतिरिक्त राज-दरबारोंमें कलाकार, कवि, संगीतज्ञ, चित्रकार, मूर्तिकार ही नहीं, बहुत काफ़ी संख्या विद्वज्जनों, चापलूसों, भसखरों आदिकी भी होती थी।

इन अमीरोंकी सेवाका काम सिर्फ़ वेतन-भोगी चाकर-चाकरानियोंसे नहीं चलता था, उनकी सेवाके लिए काफ़ी संख्या दास-दासियोंकी होती थी। इसके बाद शिकार या किसी दूसरे मनोविनोदके लिए जिधर भी उनकी सवारी जाती, उधरके किसान, कमकर और कारीगर अपने धन-उत्पादनके कामको छोड़ बेगारमें पकड़े जानेके लिए मजबूर होते।

(२) पुरोहित, महंथ—राजा अपने और अपने लगू-भगुओंपर कितनी सम्पत्ति स्वाहा करते थे, इसका थोड़ा-सा अन्दाज़ा ऊपरके वर्णनसे लग गया

होगा ! लेकिन समृद्ध भारतकी सम्पत्तिके अपव्ययका लेखा इतने हीसे समाप्त नहीं होता । पुरोहित और महंश लोगोंका भी खर्च राजसी ठाठके साथ होता था । उनके पास भी महल, दास, कमकर थे और उसीके अनुकूल उनका खर्च भी था । उस समय धार्मिक मठों और मन्दिरोंमें देशकी सम्पत्तिको खर्च करनेमें बहुत उदारता दिखाई जाती थी ।

सातवीं सदीमें नालन्दाके तारके सोना, रतन, जवाहिरसे भरे जिस मन्दिरका जिक्र विदेशी तीर्थ-यात्रियोंने किया है, उसमें बारहवीं सदीके अंत तक बराबर वृद्धि ही होती गई और मुहम्मद बिन-बख्तियारको जितना धन वहाँसे मिला उतना किसी राजमहलसे भी नहीं मिला होगा । राजवंशोंका हर सौ-दो सौ सालमें उच्छेद भी हो जाया करता था, लेकिन ये मंदिर तो चिरकाल तक सुरक्षित निधि बने रहते थे । महमूद राजपूतानेके रेगिस्तानोंकी खाक छानते सोमनाथमें पत्थर तोड़ने नहीं गया था । यह निश्चित है कि देशकी सम्पत्तिका काफ़ी भाग ब्राह्मण, जैन, बौद्ध मठों-मन्दिरोंमें जाता था ।

(३) सेठ—इसके बाद देशकी सम्पत्तिके भारी हिस्सेके मालिक थे, वह श्रेष्ठी-सार्यवाह (कारवाँ-अध्यक्ष) जिनकी कोठियोंका जाल देशके भीतर ही नहीं, विदेशों तकमें बिछा हुआ था, और जिनके जहाज उस समयकी सभ्य दुनियामें सभी जगह पहुँचते थे । इन महासेठों, नगरसेठोंके पास कितनी सम्पत्ति थी, इसका कुछ अनुमान देलवाड़ा (आबू)के संगमरमरके मन्दिर और उसके बहुमूल्य शिल्पकार्यको देखकर आप आसानीसे लगा सकते हैं ।

वस्तुतः तत्कालीन भारतकी अपार सम्पत्तिके मुख्य भोगनेवाले थे, यही सामन्त, पुरोहित और सेठ तथा उनके दरबारी-खुशामदी ।

(४) युद्धका अपव्यय—ग्रमीर लोग, संगीत साहित्य काम-कलापर ही देशकी सम्पत्तिको स्वाहा नहीं करते थे, बल्कि उनकी फ़जूलखर्चीका एक और भी बहुत भारी खर्च था, वह था युद्ध, दिग्विजय । किसी सामन्त (राजा)के लिए बड़े शर्मकी बात होती यदि वह छोटा-मोटा दिग्विजय न करता या कमसे कम किसी पड़ोसी राजाकी कुमारीको न पकड़ लाता । यह सामन्तयुगके यौवनका समय था । सामन्तों और उनके योद्धाओंके हाथोंमें लड़नेके लिए खुजली

पैदा होती रहती थी। उस समयका सामन्त मृत्युकी विल्कुल ही पर्वाह नहीं करता था। उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा उसे यही सिखलाती थी कि मौतसे डरना—कायरता—उसके लिए चिल्लू भर पानीमें डूब मरनेकी चीज है। आज जिस महायुद्धसे हम गुजर रहे हैं, उसने हमें साफ़ दिखला दिया है कि युद्धमें कितना अधिक अपव्यय होता है—आदमीकी गाड़ी कमाईमें कितनी बेदरदीसि और कितने भारी परिमाणमें आग लगाई जाती है। सत्तर सैकड़ा किसान, कम्मी, कारीगर जनताके श्रमसे उपाजित धनका बहुत भारी ध्वंस ये सामन्त अपने दिग्विजयों और आये दिनकी आपसी लड़ाइयोंमें किया करते थे।

साधारण जनता—लेकिन सम्पत्ति पैदा कौन करता था ? ये तीनों नहीं, बल्कि वह थे, किसान, कमकर और कारीगर। मिट्टीका सोना बनाना उन्हींके श्रमका चमत्कार था। चाहे सुनहले गेहूँ और सुगंधित दासमतीको खीजिए, चाहे कमखाव और टुकूलको, अथवा गोलकुण्डासे निकलनेवाले कोहनूरको; ये सभी चीजें किसानों, कमकरों और कारीगरोंके दारौरीक खूनको सुखानेसे पैदा होती थीं। जिस तरह आजके राजाओं, नवाबों और करोड़पति सेठोंके वैभव-को देखकर सारा देश सुखी और समृद्ध नहीं कहा जा सकता, उसी तरह उस समयके राजा-पुरोहित-सेठ-वर्गके हृदयहीन अपव्ययके कारण सारे भारतको स्वयं नहीं कहा जा सकता। उस समय शायद सारी जनताका दस सैकड़ेसे अधिक भाग नहीं रहा होगा, जिसके जीवनको भोज-मस्ती और आरामका जीवन कहा जा सकता।

(१) दास-दासी—फिर वह भारत दासप्रथाका भारत था। यदि दस सैकड़ा भोजवाले लोगोंके लिए व्यक्ति पीछे दो-दो दास-दासी रखे जाते थे, तो भारतकी कुल जन-संख्याका बीस सैकड़ा या हर पाँच आदमीमें एक आदमी दास था। दास आदमी नहीं थे, यद्यपि उनकी शकल-सूरत आदमीकी तरह होती थी। वह डोरोंकी तरह अपने मालिककी जंगम सम्पत्ति थे, जिन्हें मालिक जब चाहें बँच-खरीद सकते थे। उनका जीवन बिल्कुल अपने मालिककी दयापर निर्भर था। अमी अंग्रेजोंके राज्य स्थापित हो जानेपर अठारहवीं सदीके बाद तक यह दास-प्रथा भारतमें बनी रही थी। अभी भी दरभंगा जिलेमें दासोंकी

बिक्रीके कितने ही ताल-पत्र आप देख सकते हैं। और नेपालके स्वतंत्र "हिन्दू-राज्य"में तो १९२५ ई० तक बाकायदा दास-प्रथा जारी रही। यह ठीक है, दास-प्रथाके लिए हम सिर्फ भारत हीको दोषी नहीं ठहरा सकते, उस समय दुनियाके सभी मुल्कोंमें दास-प्रथा मौजूद थी और बाजारोंमें गोरे, भूरे, काले सभी रंगोंके ये मानव-पशु मिलते थे।

(२) किसान, कम्मी, कारीगर—जनताके बीस सैकड़े भारतीय दास तत्कालीन भारतीय समृद्धिके भोगनेके अधिकारी नहीं थे। बाकी सत्तर सैकड़े लोग किसान, कम्मी (श्रद्धादास) और कारीगर थे।—दस सैकड़ा कम्मी, पचास सैकड़ा किसान और दस सैकड़ा कारीगर मौजकी जिन्दगी नहीं बिता रहे थे। स्वयंभू और पुष्पदन्तके खेत अगोरनेवालियोंके मोटे गन्ने और द्राक्षा-लताओंको देखकर आप यह समझनेकी शलती न करें, कि वह उन्हीं अगोरनेवालियोंके उपभोगके लिए थे। वहाँ सारा शिल्प, सारा व्यवसाय, सारी कृषि मुट्ठीभर आदमियोंके भोगके लिए होती थी। दूसरोंको तो मुश्किलसे सिर्फ जीने और ब्याने भरका अधिकार था।

(क) जनताका आत्म-सम्मान—बीस सैकड़ा दासोंपर तो, नर-पशु होनेकी वजहसे विचार करनेकी जरूरत ही नहीं, लेकिन सत्तर सैकड़ा किसान-कम्मी-कारिगरकी अवस्था ? आत्म-सम्मान ? ऊपरी वर्गके सामने बिल्कुल शून्य "परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज"के सामने सम्मान-प्रदर्शन करनेके लिए जब दूसरे राजाओं और सामन्तोंको अपने भुकुट उनके चरणोंपर रखने पड़ते थे, तो साधारण जनताको किस तरह जुहार करनी पड़ती होगी, इसे आप खुद समझ सकते हैं। और दूसरी देवसियाँ ? सत्तर सैकड़ा जनताको क्षीरसे मजबूत अपने तरुण पुत्रोंको सामन्तोंके युद्धके लिए भेंट करना पड़ता था—हाँ, यदि उनकी जाति छोटी नहीं समझी जाती हो, छोटी जातिके तरुणको बड़ी जातिके साथ एक पंक्तिमें लड़कर मरनेका भी अधिकार नहीं था। सत्तर सैकड़ा जनताको अपनी सुन्दर लड़कियोंको वैध या अवैध रूपसे रनिवासमें भेजनेके लिए भी तैयार रहना पड़ता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिता-की प्रथम रात भी सामन्तके लिए रिजर्व थी, चाहे वह हाथसे छूकर ही छुट्टी

दे दे । उस वक्त साधारण जनताके आत्म-सम्मानकी बात करना ही कठिन है ।

(ख) अकाल आदिमें यातना—उस वक्त इस आर्थिक हीनताके साथ कुछ सुनीते जरूर थे । उस समय भारतकी आबादी आजसे चौथाई या (दस करोड़)से कम ही रही होगी, जिसका मतलब है—लोगोंके पास अधिक खेत, खेत बनानेके लिए अधिक जंगल, जंगलोंमें जरूरतके लिए अधिक शिकार । उस समय जैनोके तीर्थकरों और देवताओंको छोड़ बाकी सभी देवी-देवता—ब्राह्मण बौद्ध दोनों—घास-खोर नहीं थे । यह भी अच्छा था कि अमीरोंकी शौकीनीकी प्रायः सारी चीजें देशके भीतर तैयार होती थीं । सम्भव है कुछ रेशम और वारीक दुशाले या कालीन बाहरसे आते हों । अतएव इनके लिए देशका धन बाहर नहीं जाता था । लेकिन इतना होने पर भी अकाल, बाढ़, युद्ध और महामारीमें साधारण जनताको कीड़े-भकोड़ेकी तरह मरनेसे बचाया नहीं जा सकता था । फसल अच्छी हुई, शिल्पकी वस्तुओंकी माँग रही, तो सत्तर सैकड़ा जनताकी साल-की खर्ची-ठीकसे चलती रही । उस वक्तके साधारण किसानोंसे आशा नहीं रखी जा सकती थी कि वे पचासों बैध-अवैध करों, राजकर्मचारियों, पुरोहितों और महाजनोंकी लूट-खसोटके बाद भी एक सालकी उपजको दो साल तक खला लेंगे । जब तक साल दो साल आगे तकके खानेका सामान घरमें नहीं है, तब तक किसान, कम्मी, कारीगर अकाल आदिके जंगलमें पड़कर बुरी मीत मरनेसे कैसे बचाए जा सकते ? जहाँगीरके वक्त (१६३० ई०) सत्तासिया अकालने दक्षिणी भारत और गुजरातमें क्या ग़ज़ब ठाया, लोगोंपर क्या-क्या बीती, यह समय सुन्दर कविके आँख देखे वर्णनसे मालूम होगा । इस अकालमें मनुष्यकी साधारण मानवता ही नहीं खो गई थी, बल्कि आदमी माँ, बहिन, बेटा, भाई, बाप सबके सम्बन्धको सबके सम्मानको ताकमें रखकर केवल अपने शरीरको बचानेकी कोशिश करता था । मरते इतने थे कि मुर्दोंका हटाना मुश्किल था । १६४२में बरमासे मणिपुरके रास्ते जो भारतीय भाग कर आए, उनकी अवस्थाको हमारे एक मित्रकी आतृ-बधू बतला रही थीं—“बलनेमें असमर्थ या बीमार पड़ जानेपर लोग अपने भाइयों और पुत्रोंको भी वहीं जंगलमें छोड़कर चल देते थे, हाँ उनके पास एक अच्छी दलील थी—यहाँ रहकर खुद भी

मर जानेके सिवा हम अपने बंधुकी कोई सहायता नहीं कर सकते । भूख-प्यासे अपने शरीरको ले चलनेमें असमर्थ लोग अपने दुध-मुँहे बच्चोंको रास्तेके जंगली पेड़ोंपर टाँगकर चल देते थे । ऐसे बच्चे एक दो नहीं, सैकड़ों हमने अपनी आँखों देखे ।” उस पुरातन कालके युद्धोंमें भी जब भगदड़ होती होगी, तो लोगोंकी अवस्था इससे बेहतर नहीं रहती होगी । सत्तर फीसदी जनताकी आर्थिक-अवस्था निश्चय ही इतनी हीन थी, कि किसी अकाल, बाढ़ या दूसरी आप्रत आने पर लाखोंकी संख्यामें मरनेके सिवा उनके लिए कोई चारा नहीं था ।

हमने उस समयके बहुसंख्यक समाजका यहाँ अतिरिजित चित्र नहीं खींचा है, वस्तुतः उस समयके जीवनकी जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सामग्री जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हमें प्राप्त है, उससे हम यह छोड़ दूसरे निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते ।

(३) कवि जनताकी यातनापर चुप क्यों ?—हमारे इन कवियोंके सामने वे पशु-मुख्य दास-दासी और उनके ऊपर होते पाशविक अत्याचार मौजूद थे । पद-पदपर अपमानित, तस्त, पीड़ित, किसान, कम्मी, कारीगर जनता भी उनके सामने मौजूद थी । अकाल महाभारी, युद्ध और बाढ़की दारुण-यातना हृदय-द्रावक दृश्य भी उन्होंने आँखोंसे देखे होंगे, फिर भी इन कवियोंकी कृतियोंमें उनके बारेमें इतनी चुप्पी क्यों ? सोचें होंगे, अकाल, बाढ़, युद्ध, महाभारी सब भगवान्‌के भेजे हुए हैं—लोगोंके पुर्विले कर्मका यह फल है; इसलिए क्राँच-मिथुन-मेंसे एकके बचसे तड़प उठनेवाली कविकी आत्माको उधर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं । शायद ऐसा सोचकर इन कवियोंके बारेमें आप कोई कठोर निर्णय सुनाने लगें; लेकिन यह उचित नहीं होगा । जिस परिस्थितिके कारण कवियोंको यह मौन धारण करना पड़ा, उस परिस्थितिपर भी आपको ध्यान देना होगा । यदि कमाऊ जनताकी सारी यातनाओंके असली कारणको वह चाहे न भी बतलाते और सिर्फ लोगोंकी इन यातनाओंका नग्न चित्र खींच देते तो उससे रेशम और रतनसे ढँका अमीरोंका भोगमय-जीवन नान हो उठता; दोनोंकी तुलना होने लगती और फिर जनताके कितने ही लोग वैसे समाजसे क्षुब्ध हो उठते; जिसका परिणाम अवश्य अमीरोंके लिए अच्छा नहीं होता । इसलिए

आपको समझना होगा कि कौच-मिथुनमेंसे एकके बचके लिए कविका आत्मा ब्रह्मा जितना आसान था, उतना उस कालके बहुसंख्यक समाजकी विपदाओंका वर्णन करना आसान नहीं था। यदि कोई आदमी तत्कालीन भोगी समाजके विरुद्ध लिखनेके लिए अपनी कवि-प्रतिभाका कुछ भी दुरुपयोग करता, तो वह केवल पुरोहितोंके धर्म-दण्डका ही भागी नहीं होता, बल्कि उसके सरपर पड़ता क्रूर राज-दण्ड—छिपकर हत्या, भयंकर शारीरिक यातना, सीधे शूली, देश और समाजसे निष्कासन और अपमान। इन दण्डोंको सामने रखकर जब आप इन कवियोंकी चुप्पीको देखेंगे, तो भालूम होगा कि उनके वैसा करनेके लिए प्रबल कारण मौजूद थे। उस वक्त अखबार नहीं थे और न देश-देशान्तरोंके उदार-मना पुरुषोंमें सहानुभूति पैदा करनेका वैसा कोई साधन था कि गोकुलके कठोर दंडके लिए सारी दुनियामें सहूलका मचने लगता। यही नहीं, कवियोंने अपनी काव्य-प्रतिभाकी जो करामात दिखलाई है, उसका बचा-बचा अंश भी शायद राजा-पुरोहित-सेठकी कोपान्निसे न बच पाता। कवि अपने स्थूल शरीर और कीर्ति-शरीर दोनों हीसे नष्ट होनेका भय सोच यदि मौन रहा, तो उसके विरुद्ध किसी कठोर फौजलेके देनेका हमें अधिकार नहीं है।

३. राजनीतिक अवस्था

हर देशकी राजनीतिक अवस्था उसकी आर्थिक अवस्थाके अनुसार ही होती है; बल्कि राजनीति कहते ही हैं आर्थिक ढाँचे—आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षाके लिए तैयार किये गये फौलादी शिकंजे—को। उन पाँच शताब्दियोंमें साम्प्रदायिक जनताकी आर्थिक अवस्था कैसी थी, उसके ऊपर कितने अत्याचार और उत्पीड़न होते थे, इसे हम बतला आए हैं। हम देख चुके हैं कि जनता किस तरहसे भूक और निरीह बनी हुई थी। राजा सर्वशक्तिमान “परमेश्वर” बन गया था और उसकी निरंकुशताके रोकनेका कोई उपाय बहुसंख्यक जनताके पास नहीं था। लेकिन भारतीय जनता सदासे ही ऐसी नहीं थी। बुद्ध के समय (ई० पू० पाँचवीं सदी-में) भारतके कितने ही भू-भागोंपर लिच्छिवियोंकी तरहके शक्तिशाली प्रजा-तंत्र थे। मुनानियों और शकोंके कालमें भी यौघेयों जैसे प्रजातंत्रोंने अपने

अस्तित्वको ही नहीं बनाये रखा, बल्कि विदेशियोंके शासनको तष्टकर देनेमें इन्हीं का सबसे पहिला और सबसे अधिक हाथ था। चौथी शताब्दीके अंतमें गुप्तोंकी विजय तो एक तरहसे खून लगाकर शहीद बननी थी। इन प्रजातंत्रोंमें जन-स्वतंत्रता थी, हाँ उतनी ही जितनी धनी-गरीब वर्गवाले समाजमें संभव हो सकती है। इन गणों (प्रजातंत्रों)की जन-स्वतंत्रताको देखकर राजाओंकी भी अपने राज्यमें "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" बननेकी हिम्मत नहीं होती थी। ४०० ई०के आस-पास चंद्रगुप्त विक्रमादित्यने यौधेय-नाणके उच्छेदके साथ भारतसे विरकालके लिए जन-तंत्रताका उच्छेद कर दिया। इसमें शक नहीं कि गणोंके विनाशमें उनके भीतरकी आर्थिक विषमता, अल्पशक्ति भी कारण थी। तो भी जनताके इस स्वतंत्र शासनके उच्छेद करनेवाले चंद्रगुप्त विक्रमादित्यको क्षमा नहीं किया जा सकता। इस उच्छेदने भारतपर क्या प्रभाव डाला यह इसीसे समझमें आ सकता है, कि वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें जब इतिहासवेत्ताओं और पुरातत्त्वज्ञोंने भारतके पुराने प्रजातंत्रोंके संबंधमें साहित्यिक और मुद्रा-संबंधी प्रमाण ढूँढ़ निकाले; तो उसकी ओर एक बार हमारे शिक्षित भी आँख मलकर आश्चर्यसे देखने लगे। उनको विश्वास नहीं होता था। कहाँ भारत और फिर वहाँ एयेन्स जैसा प्रजातंत्र—यह ही ही नहीं सकता। यदि बौद्धोंके कुछ पुराने ग्रन्थों तक ही प्रमाण सीमित होते, तो शायद उनको झेंपक और बाहरी प्रभाव कहकर टाल दिया जाता, मगर ईसाके पहिलेकी शताब्दियोंसे लेकर ईसवी चौथी सदी तकके ठोस सिक्कोंसे कैसे इनकार कर दिया जाये? तो भी यह ध्यान रखनेकी बात है कि इन प्रजातंत्रोंके प्रति सारे पुराणकारों, धर्मशास्त्ररचयिताओं और पीछेके कवियोंकी चुप्पी खास कारणोंसे थी। वह अपने प्रयत्नमें कितने सफल हुए, यह तो प्रजातंत्रोंके बारेमें सदाके लिए हमारा अनभिज्ञ बन जाना ही साबित करता है। पिछली शताब्दियोंकी बात छोड़िये, आज भी जब कि हमारे शिक्षित जनतंत्रताका नाम लेकर विदेशी शासनके हटानेकी बात कर रहे हैं; तब भी किसी लिच्छिवि या यौधेय प्रजातंत्रके स्मरण-महोत्सव या कीर्ति-स्तंभकी बात नहीं की जाती। यदि क्रियात्मक प्रस्ताव आता है, तो सर्वगण-उच्छेत्ता चंद्रगुप्त विक्रमादित्यके लिए कीर्ति-स्तंभ स्थापित

करनेका । हम समझते हैं, यह प्रयत्न किसी भोलेपनके कारण नहीं है, बल्कि उसके भीतर बहुत गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है ।

हमारे कुछ भाई कह उठेंगे, कि भारतकी जनतंत्रता कभी खतम नहीं हुई । वह तो गाँवोंकी पंचायतोंके रूपमें मौजूद रही और इन पंचायतोंको अंग्रेजी शासनने नष्ट किया । लेकिन विक्रमरदित्योंने हमारे गाँवोंकी जनतंत्रताको जनताकी आजादीके लिए नहीं छोड़ा था । वह जानते थे कि सात लाख गाँव, एक दूसरेसे असंबद्ध सर्वथा स्वतंत्र प्रजातंत्र, किसी निरंकुश शक्तिका मुकाबिला नहीं कर सकते । इसीलिए उन्होंने रस्सीके रेखोंको बिखेर दिया, धाराको बूंदोंमें बाँट दिया और इस प्रकार ये ग्राम-प्रजातंत्र निरंकुश शासकोंके बड़े कामकी चीज बन गए । जनताकी इस बिखरी शक्तिकी बेवसीने सदियोंके कड़ुवे तजवोंके बाद तुलसीदाससे कहलवाया "कोउ नृप होइ हमें का हानी ; बेरी छाँड़ि ना होउब रानी ।"

अब राजा "परम स्वतंत्र न सिर पर कोऊ" बन गए । उनके ऊपर असली अभिदाताओंका कोई अंकुश न रहा । उनकी निरंकुशतापर यदि कभी कोई दबाव पड़ता था, तो सामन्तोंकी सदा बनी रहती आपसी खटपट का । सरहपा जिस वक्ता अपने दोहोंको बना रहा था, उसीके आस-पास बिहारमें वह आखिरी घटना घटी, जिसमें प्रचाने एक गुप्तनाम-वंशके बहादुर व्यक्ति गोपालको अपना शासक चुना । इसके बाद फिर भारतीय इतिहासमें ऐसी कोई घटना देखनेमें नहीं आती । हाँ, तो सामन्तोंके ऊपर एक अंकुश आपसी खटपट थी और दूसरा या बाहरी आक्रमण । हमारे इस कालके आरंभ हीमें अरब, सिंध (७१२ ई०) और मुल्तान (७१३) पर अधिकार जमा लेते हैं और वह भू-भाग हिन्दुस्तानसे बिल्कुल अलग कर लिया जाता है । पीछे ग्यारहवीं सदीके आरंभके साथ ही महमूद गज़नवी (९९७-१०३० ई०) के हमले होने लगते हैं । शायद इन अरब और तुर्क हमलोंने भारतीय नरेशोंको संयमका कुछ पाठ अस्तर पढ़ाया होगा । वर्मको भी राजाओंपर भारी अंकुश बतलाया जाता है; लेकिन राजाओंके दुकड़खोर पुरोहित और महंथ उनपर कितना अंकुश रख सकते हैं, यह आसानीसे समझा जा सकता है; खासकर अब कि उनके पीछे साधारण जनता जैसी कोई

शक्ति सहायता देनेके लिए मौजूद नहीं हो। जन-शक्तिको तो बल्कि पूरी तरह कुचलनेमें राजाके बाद पुरोहितों और महंयोंका ही सबसे अधिक हाथ रहा है। उन्होंने भगवान् और ऋषियों-मुनियोंके नामपर धर्मकी नयी व्यवस्थाएँ गढ़कर जन-शक्ति और जन-चेतनाको बिल्कुल खतम कर दिया। अब उनका राजा पृथ्वीपर विष्णुका अंश था और सारे विलास तथा उत्पीड़न पहले जन्मके कर्मके सुफल थे। धर्माचार्य यदि कुछ अंकुश रख सकते थे, तो शायद भक्ष्या-भक्ष्यपर।

बाहरका खतरा दिखलाई देनेपर जरूर देशके हर्ता-कर्ता लोग कुछ करनेके लिए मजबूर होते थे, लेकिन छठीं सदीमें हूणोंको परास्तकर भारत कुछ दिनोंके लिए निश्चिन्त हो गया था। ७१२ ई०में अरबोंकी सिन्ध-विजयने फिर खतरेकी घंटी बजाई। इसके लिए जरूरी था, कि देशका अधिकसे अधिक भाग एक शासन-सूत्रमें आ अपनी सैनिक-शक्तिको खूब मजबूत करे। इसके लिए आठवीं सदीसे लेकर अगली सदियोंमें जो प्रयत्न हुए, वह हमारे सामने कन्नौज, मान्यखेट और कभी-कभी पारसोंकी प्रभुता या चक्रवर्तीत्वके रूपमें आये।

(१) कन्नौज—कन्नौजने मौखरियों, हर्षवर्धन और उसके सेनापति भंडीके वंशके प्रबल और विशाल राज्योंका प्रायः तीन सौ सालों (५५०-८१५) तक राजधानी रहनेके कारण उसी तरह एक अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था, जिस तरह मुस्लिम-कालमें दिल्लीने जिस वक्त सिंध और पंजाबपर काले बादल मँडला रहे थे, उस वक्त कन्नौजका भंडी-वंश निर्बल और निकम्मा हो रहा था। कन्नौजके पीछे एक समृद्ध देशकी भाषा और प्राचीन वैभव था, वह घास-घासके सामन्तोंको आकृष्ट कर रहा था। हर्षवर्धनके साम्राज्यके टुकड़े-टुकड़े होनेपर जो अलग-अलग राज्य कायम हुए थे, उनमें बिहार-बंगालके पाल और गुजरात-मालवाके प्रतिहार मुख्य थे। दोनों ही कन्नौजके मालिक बनना चाहते थे। वह कन्नौजके शासक इन्द्रायुध और चक्रायुधसे एकको गुड़िया बनाकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। प्रतिहार वत्सराज (७८३) और गौड़ेश्वर धर्मपाल (७७०-८०६) इसके लिए अपनी सेनाओंके साथ कन्नौज तक बढ़े। वह आपसमें लड़कर किसी स्थायी फ़ैसलेपर पहुँचना ही चाहते थे कि

सुदूर-दक्षिणसे राष्ट्रकूट ध्रुव (७५०-९४) आ बमका और उसीका पलड़ा भारी रहा। इसीलिए ध्रुवरायकी आत्माका एक सुफल हमारे महान् कवि स्वयंभू मालूम होते हैं। वह जो ध्रुवरायके किसी आभात्य रयडा धनंजयके साथ दक्षिण गए और वहीं उन्होंने अपनी अद्भुत अन्मोल कृतियाँ रचीं। पाल, राष्ट्र-कूट और प्रतिहार तीनों कन्नौजपर दाँत लगाये थे। कन्नौजकी शक्ति ही बाहरी शत्रुओंसे उत्तरी भारत—अतएव सारे भारत—की रक्षा कर सकती थी। सौभाग्य समझिए कि अरब-तलवार सिंधकी धारमें पहुँचकर ठंडी पड़ गई, नहीं तो आठवीं सदीमें उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था उसके लिए बड़ी अनुकूल थी।

कन्नौज नगरी एक ऐसी स्वयंवर-कन्या थी, जिसे राष्ट्रकूट, प्रतिहार और पाल तीनों व्याह्ता चाहते थे; लेकिन स्वयंवर-कन्या सौत बनकर नहीं रहना चाहती थी। अब तीनों उम्मेदवारोंकी फ़ैसला करना था—कौन अपना देश छोड़ कान्य-कुब्ज जानेके लिए तैयार है। प्रतिहार नागभट्टने फ़ैसला किया, वह कन्नौजका स्वामी बन गया, बाक़ी दोनों मुँह ताकते रह गए। तबसे करीब-करीब महमूदके हमले तक कन्नौज उत्तरी भारत और सारे भारतके लिए जबदस्त ढाल बना रहा।

(२) राष्ट्रकूट—हर्षवर्धनको दक्षिणी भारतकी दिग्विजयसे खाली हाथ लौटानेके लिए मजबूर करनेवाले पुलकेशीके चालुक्य-वंशको खतमकर राष्ट्र-कूटोंने अपनी जबदस्त सत्ता उसी समय (७५३) स्थापित की, जब कि पूरबमें गोपाल पाल-वंशकी नींव रख रहा था। ७५३ ई०से ९७३ ई०की प्रायः दो सदियों तक राष्ट्रकूट-वंशी वल्लभराज भारतके सबसे बलवान् राजा रहे। नर्मदासे कृष्णा और कभी-कभी कांची तक उनका विशाल राज्य फैला हुआ था और सुदूर-दक्षिण रामेश्वर ही नहीं, कभी-कभी तो सिंहल भी उनकी आज्ञा-को मानता था। कितनी ही बार उनके घोड़ोंकी टाप यमुना और गंगाके द्वाबे (अंतर्वेद)में प्रतिध्वनित हुई थी। कितनी ही बार उनके सैनिक युक्त-प्रान्तके दुर्गोंमें भालिक बनकर बैठते थे।

(३) पाल—गोपाल और धर्मपालका जिक्र अभी कर चुके हैं। धर्मपाल बंगाल-बिहारसे संतुष्ट न रह कन्नौज तक हाथ फैला रहा था, इसे हम बतला

चुके हैं। धर्मपाल असफल रहा। उसका पुत्र देवपाल (८१५-३४) भी उत्तर-का चक्रवर्ती बनना चाहता, मगर अन्तमें जयमाला नागभट्टके गलेमें पड़ी, यह बातला चुके हैं। नवीं-दसवीं सदीमें यही तीनों भारतकी प्रधान शक्तियाँ थीं। देशमें और भी कितने ही राज-वंश थे, लेकिन वह इन्हीं तीनोंमेंसे किसी एकके आधीन रहते थे। गौड़ चक्रवर्ती-क्षेत्रने हमें ८४ सिद्धोंके रूपमें पुरानी हिन्दी (अपभ्रंश) के कवि दिए। पाल-वंश बौद्धधर्मानुयायी था, इसलिए लोक-भाषासे उसे थोड़ा-बहुत अनुराग था और वहाँ संस्कृत देश-भाषाके साहित्यका गला घोटनेकी क्षमता नहीं रखती थी।

राष्ट्रकूट चक्रवर्ती-क्षेत्रने भी प्राकृतके कितने ही कवियों तथा स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे हमारी भाषाके सर्वोच्च कवियोंको यदि पैदा न किया हो, तो कमसे कम उन्हें आश्रय जरूर दिया। जैन होनेसे राष्ट्रकूट-राजा देश-भाषाके प्रति अधिक उदार विचार रखते थे।

कान्यकुब्ज चक्रवर्ती-क्षेत्र यद्यपि वह क्षेत्र था, जिसके ही भीतर अपभ्रंश-का अपना मूल-क्षेत्र था : किन्तु वहाँ हम सदा (तुलसीदास तक) संस्कृतको ही सर्वेसर्वा रहते देखते हैं। शायद इसमें ब्राह्मणों और ब्राह्मण-धर्मकी प्रधानता कारण थी, वह नहीं चाहते थे कि संस्कृतसे दस-पाँच हाथ नीचे भी किसी दूसरी भाषाको स्थान मिले। बहुत संभव है, स्वयंभू अवधी भाषा-क्षेत्रके थे और पुष्प-दन्त यौधेय (हरियाणा, दिल्ली)-क्षेत्रके; इस प्रकार दोनों ही कान्यकुब्ज चक्रवर्ती-क्षेत्रके थे, लेकिन उनकी पूछ अपने दरबारमें नहीं बल्कि दूर जाकर दक्षिणापथमें हुई। अपने दरबारमें तो राजशेखर और श्रीहर्ष जैसे संस्कृतके महाकवियोंकी ही एकमात्र पूछ थी।

नवीं शताब्दीसे प्रायः दो शताब्दियोंके लिए राष्ट्रकूट और प्रतिहार दो जबर्दस्त शक्तियाँ तैयार हो गई हैं, जो पश्चिमी खतरेको रोकनेकी काफ़ी क्षमता रखती थीं। बल्कि राष्ट्रकूटोंको इसमें कुछ अधिक सुभीता था। उनकी तीन तरफ़ समुद्रकी खाई थी, डर था तो सिर्फ़ उत्तर-पश्चिममें गुजरातकी ओर से। अरबोंने एकाध मर्तबे कोशिश भी की, लेकिन बीकानेरका रेगिस्तान और अरब समुद्र आसानी रास्ते नहीं थे। ऊपरसे राष्ट्रकूटोंका सैनिक-बल बहुत मजबूत था।

प्रतिहारोंपर उत्तरी भारतकी रक्षाका सबसे अधिक भार था। जब तक उन्होंने इस कर्तव्यको पूरा किया, तब तक वह अचल रहे, लेकिन जैसे ही राज्यपाल (१०१८)ने महमूदके सामने सर झुकाया, वैसे ही प्रतिहार-वंशका सितारा डूबने लगा, और उसके आधीनके चन्देल (कालिंजर) कलचुरी (त्रिपुरी) तथा चौहान (सांभर, अजमेर) स्वतंत्र होने लगे। प्रतिहार फिर कुछ दिनों तक मुर्दा अगोरते रहे, क्योंकि उनके प्रबल सामन्त आपसी झगड़के कारण कन्नौजके द्वारमें कोई फौजला नहीं कर सकते थे। लेकिन, इस ऊँचाडोल अवस्थामें कन्नौज सदाके लिए नहीं रह सकता था।

१०८० में गहड़वार चंद्रदेवने कन्नौजपर हाथ साफ किया। यद्यपि गहड़वार वंशको गंगा-यमुनाके बीचका बहुत ही गुजान और उर्वर प्रदेश मिला और इस प्रकार वह औरोंकी अपेक्षा अधिक बलवान रहा, तो भी उसे प्रतिहार-वंश जैसा बल नहीं प्राप्त हो सका। चौहान, चंदेल, और कलचुरी अपने बलको कन्नौजसे मिलाकर बाहरी शक्तिसे मुकाबला करनेके लिए तैयार नहीं थे। तो भी चंद्र देवके पौत्र गोविन्दचंद्रके (१०६३-११३४) समय गहड़वार-वंश उत्तरी भारतका सबसे अधिक बलशाली राज्य था। गोविन्दचंद्रके पौत्र जयचंद्र (११७०-६३) के वक्त गहड़वार शक्ति निर्बल हो चुकी थी। उस वक्त चंदेल परमर्दी (११६७-१२०२) काफी शक्तिशाली था। लेकिन कलचुरी, चौहान या चंदेलोंकी कितनी भी प्रबल शक्ति हो, उनमें किसीके लिए संभव नहीं था, कि प्रतिहारोंके चक्रवर्ती-क्षेत्र को फिरसे जीवित करके बाहरी आक्रमणको रोके।

दसवीं सदीका अंत होते-होते उत्तरी भारतमें पालों, गहड़वारों, चालुक्यों, चंदेलों और चौहानोंके अतिरिक्त गुजरात और मालवाके दो और स्वतंत्र राज्य बन चुके थे। गुर्जर-सोलंकी (चालुक्य) तो बहुत कुछ कन्नौजके पतनसे अस्तित्वमें आये। मालवाके परमार राष्ट्रभूटोंके बिनाश (६७४)के फल-स्वरूप स्वतंत्र हो गये। ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें अब उत्तरी भारतकी शक्ति अधिक क्षिप्त-भिन्न हो चुकी थी, वहाँ सात स्वतंत्र दरबार थे। कोई एक बड़ी शक्तिके आधीन रहकर काम करनेके लिए तैयार नहीं था।

देशभाषाकी दृष्टिसे देखनेसे पाल अब भी सिद्ध-कवियोंका सम्मान करते

थे। गहड़वार-दर्बारमें भी अवश्य कुछ लोक-साहित्यका मान था, जैसा कि काशी-स्वर-संबंधी कविताओं तथा स्वयं जयचन्दके महामंत्री विद्याधरकी स्फुट कविताओं-से मालूम होता है। कलचुरी कर्णके दरबारमें भी बब्बर और दूसरे कितने ही कवियों-का सम्मान होता दिखलाई पड़ता है। कालिंजरका चन्देल-दरबार शायद इस बारे-में सबसे पिछड़ा हुआ था। कनकामर मुनि, संभव है, इन्हींके बुन्देलखण्डके हों, मगर उनकी कविताओंको आश्रय देने का श्रेय चन्देल दरबारको नहीं मिल सकता।

मुंज (६७४-७५) और भोज (१०१०-५६) चचा-भतीजे संस्कृत-प्राकृत-के साथ देशी-भाषाके भी प्रेमी थे और उनकी धाराने अवश्य कितने ही अपभ्रंश कवियोंका स्वागत किया होगा, यद्यपि हमारे पास तक उनकी कृतियाँ बहुत थोड़ी पहुँची हैं। चौहान-दरबारका कवि सिर्फ चन्द वरदाई हमारे सम्मुख है। यद्यपि उसकी रचना "पृथ्वीराज रासो"की जो प्रति आज उपलब्ध है, वह बहुत विकृत तथा मूलसे चार सदियों बाद की है। हमने उसके कुछ नमूने यहाँ सिर्फ इसी ख्यालसे दिये हैं, कि चन्दकी कविताका कुछ अंश इसमें मौजूद है। उसकी भाषामें खूब मनमानीकी गई है, इसमें संदेह नहीं।

गुर्जर-चालुक्य-क्षेत्र (६६१-१२५७) यही नहीं कि दिल्ली-कन्नौजके काफी पीछे तक स्वतंत्र रहा, बल्कि इसने अपभ्रंश कवियोंको सबसे अधिक पैदा किया। पैदा करनेसे भी ज्यादा उसने जो बड़ा काम किया, वह है अपभ्रंश-कृतियोंका रक्षा करना। शायद दरबारके जैन होने तथा जैन नागरिकोंके भाषा-प्रेमके कारण ऐसा हो सका।

हमारे इस साहित्यिक युगकी राजनीतिक पृष्ठभूमिकी ओर व्यापक दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा, कि पहले शतक अर्थात् सातवीं-आठवीं सदीमें बाहरी शत्रु अभी उतने प्रबल न थे। नवीं-दसवीं सदीमें हमारा राजनीतिक-संगठन इतना विस्तृत और मजबूत था कि कोई उसका मुकाबला करके सफलताकी आशा नहीं कर सकता था। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दीमें शक्ति आधे दर्जन टुकड़ोंमें बँट गई। और यह था विदेशी आक्रमणकारियोंको न्यौता देना।

तत्कालीन कविताओंमें हमें तीन बातोंकी छाप मिलती है—रहस्यवाद या आध्यात्मिक भूल-भुलैया, निराशावाद और शुद्धवाद या वीररस। ये तीनों ही

काव्य-भावनाएँ उस वक्तके शासक-समाजकी आवश्यकताके लिए बिल्कुल उपयुक्त थीं। उस वक्तके सामन्त बच्चेकी तलवारका चरणामृत दिखलावटी नहीं पिलाया जाता था, बल्कि दरअसल उसे बचपनसे ही मरने-मारनेकी शिक्षा दी जाती थी। मौतसे खेल करनेके लिए वह हर वक्त तैयार रहता था। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियोंके कवियोंने भी अपने आश्रय-दाताओंकी बड़ी-बड़ी वीरताओंका वर्णन किया, लेकिन वह अधिकांश थोड़ी चापलूसी है, यह हमें मालूम है। हमारी इन पाँच सदियोंमें सामन्त वस्तुतः निर्भय वीर होते थे। उनके देश-विजयोंके बारेमें कवि अतिशयोक्ति भले ही कर सकता है, लेकिन शरीरपर तीरों और तलवारोंके घावोंके चिह्नोंके बारेमें अतिरंजनकी जरूरत नहीं थी। ऐसे समाजके लिए वीर-रसकी कविताएँ बिल्कुल स्वाभाविक हैं।

मुझ एक पासा है, जो कभी चित्त भी पड़ सकता है, कभी पट भी। असफल सामन्तके लिए निराशा आवश्यक है, लेकिन निराशा हर वक्त आदमीके दिलको जलाया करती है, इसलिए सब कुछ भूल जानेके लिए आध्यात्मिक भूल-भुलैया या रहस्यवाद भी उतना ही आवश्यक है। प्रभु-वर्गको छोड़ बाकी अस्सी फीसदी जनताके लिए तो निराशावाद बिल्कुल स्वाभाविक है। आध्यात्मिक भूल-भुलैयासे फायदा उठानेवाले साधारण जनतामें शायद ही कोई ये। हाँ, सिद्धोंने सरल जन-भाषामें अपनी कवितायें लिखकर उनके भीतर घुसनेकी कोशिश की। सिद्धोंके बारेमें यहाँ एक बात स्मरण रखनेकी है—उनकी कवितामें रहस्यवाद है अगर निराशावाद उससे छू नहीं गया है। वह कायाको मल-मूत्र-मूर्छा गन्दी चीज नहीं बल्कि तीर्थकी तरह पवित्र मानते हैं, सब तरहके सांसारिक भोगोंको छोड़ने नहीं ग्रहण करनेकी शिक्षा देते हैं। शायद इसमें उनका क्षणिकवादी दर्शन कारण रहा हो। संसारकी सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण बदलती रहती हैं, उनमें संयोग-वियोग होता रहता है, लेकिन जगत्की सारभूत यह क्षणिकता बुरी नहीं है, इसीसे जगत्का वैचित्र्य, जगत्का सौन्दर्य कायम है। अतएव क्षणिक होनेसे जगत् उपेक्षणीय नहीं है।

ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें महमूद गजनवीके सोमनाथ और बनारस तफके आक्रमणोंके बाद भी उत्तरी भारत कई राज्योंमें बँटा ही रहा। सातों दबार आपसमें लड़ते ही रहते, फिर वहाँ आशावाद कहाँ संभव था? अभी सामन्ती

वीरता मौजूद थी, तलवार भनभनाती रहती थी, लेकिन अपनी बिखरी ताकत देखकर निराशावाद उन्हें अपनी ओर खींच रहा था।

(४) इस्लाम भारतका अभिन्न अंग—हम पहिले कह चुके हैं, कि जिस वक्त हिन्दीके आदि कवि सरहपा अपनी कविताएँ रच रहे थे, उससे आधी शताब्दी पहिले ही (७१२-१३) सिंध और मुल्तान हिन्दुओंके हाथसे चले गए। तबसे दसवीं सदी तक इस्लामिक राज्य बहुत आगे नहीं बढ़ पाया। अभी काबुलपर भी हिन्दू ही शासन कर रहे थे। लेकिन ग्यारहवींके शुरू हीमें काबुल ही नहीं लाहौर भी हिन्दुओंके हाथसे निकल गया। मुस्लिम-राज्य-स्थापना भारतके इतिहासमें एक बहुत भारी घटना थी। अभी तक जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारतमें आए थे, वह भारतीय संस्कृतिको स्वीकार कर—हाँ उसमें कुछ अपनी ओरसे दे करके भी—हजारों जात-पातोंमें बिखरे भारतीय जन-समुद्रमें मिलते गये। लेकिन अब जिस संस्कृति और धर्मसे वास्ता पड़ा, वह काफी सबल था। उसे हजम करनेकी ताकत ब्राह्मणोंके जीर्ण-शीर्ण ढाँचेमें नहीं थी। हमारे युगसे आगे हिन्दी-कविताका सूफी-युग (चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी) इस बातका साफ सबूत है, कि मुसल्मान सूफियोंने हिन्दी-साहित्य और उसकी जनतापर काफी प्रभाव डाला, लेकिन इस्लामने भारतपर अधिकार करके सिर्फ आध्यात्मिक भूल-भुलैयाके कुछ पाठ ही नहीं पढ़ाये, बल्कि कुछ सामाजिक गुलियोंको भी हल किया।

‘संदेश-रासक’के रचयिता कवि अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)का जुलाहा-वंश दसवीं सदीके अंतसे पहिले ही मुसलमान हो चुका था। इस्लाम जब भारतके दूसरे प्रदेशोंमें फैला, तो वहाँपर भी हम प्रमुख शिल्पी जातियोंको बड़ी खुशीसे इस्लाम स्वीकार करते देखते हैं। कपड़े बनानेवाले कारीगर सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक जो इस्लाममें दाखिल हो गये, उनकी संख्या भारतीय मुसलमानोंमें आज यदि दो-तिहाई नहीं तो आधीसे ज्यादा जरूर है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। हम जानते हैं, कपड़ेका व्यवसाय रोमनकालसे अंग्रेजी राज्यके स्थापित हो जाने तककी बीस सदियोंमें हमारे देशका बहुत ही महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा, वह देशकी आमदनीका एक बहुत जबरदस्त जरिया था। फिर कपड़े बनाने-

वाले कारीगर हिन्दू-धर्मसे इतने रूठ क्यों गये ? उनकी कारीगरीकी बड़ी माँग थी, वह दास नहीं थे, पैसेके लिए बाजारमें विकनेकी उन्हें जरूरत न थी, अब्दुर्रहमानकी सुंदर कवितासे पता लगेगा, कि वह निरे निरक्षर गँवार भी नहीं थे । जो कारीगर सूक्ष्म मलमल, उसके ऊपर बेल-बूटे, बनारसी किम्साद और उसपरकी अद्भुत चित्रकारी करनेमें सिद्धहस्त हों, वह शिक्षा-संस्कृतिसे विष्कुल शून्य हो ही नहीं सकते । लेकिन हिन्दुओंकी जाति-प्रथा जिसे बौद्ध और जैन भी व्यवहार रूपमें स्वीकार कर चुके थे—इन शिल्पी-जातियोंको बूढ़ बनाकर उनपर सामाजिक अत्याचार करनेके लिए ऊपरी जातियोंको अधिकार देती थी । कोई आश्चर्य नहीं यदि आत्म-सम्मान रखनेवाले पटकार इस्लाम स्वीकार करने-में अपनी अर्घदासताका अन्त समझने लगे, और वह एक-एक करके नहीं बल्कि श्रेणी (Guild)-रूपेण इस्लामके झण्डेके नीचे चले गये । अरब तथा बाहरसे आनेवाली दूसरी मुसलमान जातियाँ अभी हिन्दुओंकी जाति-प्रथासे प्रभावित नहीं हुई थीं । इसलिए उस समय सहस्राब्दियोंसे पीड़ित इन हिन्दू-जातियोंको हिंदुत्व छोड़ इस्लाममें जाते ही दमघोटू अम्बेरी कोठरीसे खुले प्रकाश, खुली हवामें साँस लेते जैसा मालूम होता था । हिन्दू यह बात नहीं कर सकते थे । इस्लामने आरंभिक शताब्दियोंमें इस कामको बड़ी तत्परतासे किया, लेकिन जैसे-जैसे बड़ी जातियोंके हिन्दू इस्लाममें दाखिल होने लगे; वैसे ही वैसे इस्लामकी वह क्रान्तिकारी भावना मरुट होती गई और वहाँ भी ऊँच-नीचका बीज बोया जाने लगा ।

बारहवीं सदीके अंतमें दिल्ली और कन्नौज भी इस्लामी झण्डेके नीचे चले गये थे । अब हिन्दू सामन्त एक-एक करके आत्म-समर्पण करनेके लिए कालकी प्रतीक्षा कर रहे थे । महमूद और कितने ही दूसरे मुस्लिम विजेताओंने हिन्दुओंके मन्दिरोंपर भी प्रहार किया; लेकिन जैसा कि हम कह आये हैं, वह इतनी मेहनत सिर्फ पत्थरोंके तोड़नेके लिए नहीं किया करते थे । वह जाते थे, महन्तों और पुजारियों द्वारा वहाँ जमा की हुई अपार मायाको लूटने । इससे वह लाभ जरूर हुआ कि मंदिरों और देवताओंकी हज़ारों बरससे स्थापित महिमा बहुत घट गई । कोई ताज्जुब नहीं, यदि दिल्ली-विजयके बाद तीन सदियों तक हिन्दू सन्त भी

मूर्तियों और देवताओं के पीछे लट्टु लेकर पड़ गये और चारों ओर निर्गुणवाद की दुंदभी बजने लगी। इस ध्वंस लीलाने कुछ फायदे का भी काम किया और पुरोहितों-महन्तों के प्रभाव को कुछ हल्का किया, यद्यपि वह उतना नहीं कर सकी, जितना कि ईरान और अफगानिस्तान में, शायद यदि सारा हिन्दुस्तान इस्लाम के अन्दर चला गया होता, तो यहाँ की सैकड़ों समस्याएँ खतम हो गई होतीं। मुमकिन है उस वक्त हमारे साहित्य-कला को और भी क्षति हुई होती और एक बार ईरान की तरह मुसलमान बने भारत के जातीयता-प्रेमियों को भी झुंझलाना पड़ता।

सिद्ध-युग की अन्तिम—बारहवीं-तेरहवीं—सदी में उत्तरी भारत की राजनीतिक अवस्था अधिक डाँवाडोल थी। यद्यपि मालवा और गुजरात अपनी स्वतंत्रता को बचाए हुए थे, मगर वह भी भविष्य के लिए निश्चिन्त नहीं थे। ऐसे काल में भी महाकवियों का होना असंभव नहीं है, लेकिन यदि महाकवि अपने पैरों को धरती पर रखते तब न। आसमानी नायिका बनाते वक्त उनका स्वप्न बीच-बीच में पृथ्वी की विकलता के कारण भग्न हो जाता; इसलिए उनका सृजन भी पूर्ण नहीं भग्न ही हो सकता है। इस काल में हमें लवक्षण तथा दूसरे ऐसे ही छोटे-छोटे कवि मिलते हैं। मुसलमान शरणागत की रक्षा के लिए रणथम्भोर के राणा हम्मीर ने हिन्दू-मुसलमान धर्म का ख्याल न करके जिस तरह अपने सर्वस्व की बाजी लगाई, उसने कुछ महाकवियों को जरूर प्रेरणा दी; बाकी कवि बस छोटे-छोटे सामन्तों और सेठों की प्रशंसा के पुल बाँधने में ही अपनी सारी शक्ति खर्च करते रहे।

४. धार्मिक अवस्था

पहिले के वर्णन में जहाँ-तहाँ धर्म के बारे में भी हम कुछ कह आये हैं, लेकिन वहाँ हमने उनका सिर्फ सामान्यरूपेण जिक्र किया। हमारे इस युग के कवियों में बौद्ध, जैन, हिन्दू और मुसलमान चारों धर्म के माननेवाले हैं; इसलिए यहाँ उनके बारे में कुछ और कहने की आवश्यकता है।

मानव-समाज के विकास में धर्म बहुत पीछे आया है, इसे हम दूसरे स्थान पर

बतला आये हैं। जिस वक्त मनुष्यमें धनी-गरीबका भेद नहीं हुआ था, क्योंकि अभी उसके पास धन-उत्पादन और लड़नेके हथियार बहुत दुर्बल—पत्थर, सींग, सड़कीके थे; उस वक्त इन धर्मोंकी आवश्यकता नहीं थी। ब्राह्मणों, बौद्धों तथा जैनोंकी देव-भाला अपने पुराने रूपमें राजसत्ता नहीं पितृसत्ताका अनुकरण करती हैं। वेदोंके पुराने देवताओंमें किसी एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका पता नहीं लगता, लेकिन जैसे ही दुनियाँमें “सर्वशक्तिमान् परमेश्वर” पैदा हुए, वैसे ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर भी आ धमका। गुप्तोंके तिरकुश राजतंत्रने सर्वशक्तिमान् ईश्वर—विष्णु—के महत्त्वको बहुत बढ़ाया। यद्यपि बौद्ध और जैन सृष्टिकर्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी नहीं मानते थे। तो भी वह स्थापित समाज-व्यवस्थाके लिए खतरनाक नहीं थे। प्रवाहण जैवलिके समाज-पोषक सामन्त-समर्थक पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकारकर उन्होंने पहिले ही अपने कार्य-क्षेत्रको सीमित कर लिया था। और अब तो वह ब्राह्मणोंके जाति-पाँति, ज्योतिष, सामुद्रिक सबको मानने लगे थे। जिस वक्त ईसाके पहिलेकी दो-तीन सदियोंमें यवन, शक, आभीर, गुर्जर आदि जातियाँ बाहरसे हिन्दुस्तानमें घुस रही थीं, उस वक्त बौद्धोंका ही पलड़ा भारी था; क्योंकि उन्होंने इन जातियोंको समाजमें समानताका स्थान देकर स्वागत किया था। ब्राह्मण इस बलाको बूझ नहीं पाये, वह अभी सबको “म्लेच्छ” “म्लेच्छ” कहूँ तिरस्कार करते थे; लेकिन जब देखा कि ये आगंतुक म्लेच्छ धर्ममें श्रद्धालु बनकर मिनान्दर और कनिष्ककी तरह मठों और मन्दिरोंकी सोनेसे पाट देते हैं; तो वह भी सोचनेके लिए मजबूर हुए। यद्यपि वह देरसे होशमें आये, मगर उनका हथियार सबसे जबर्दस्त निकला। बौद्ध आगंतुक जातियोंको सम्मानपूर्ण किन्तु समान स्थान देते थे। ब्राह्मणोंने सम्मानपूर्ण ही नहीं बल्कि बहुत ऊँचा स्थान—सिर्फ अपनेसे एक सीढ़ी नीचे—दिया, पीछे उन्हें आबूके अग्निकुण्डसे निकली क्षत्रिय-जातियाँ कहा गया। आबूके अग्निकुण्ड और उससे आदमियोंकी बात भले ही बिलकुल भूठी है, मगर ब्राह्मणोंने आगंतुक म्लेच्छ-जातियोंको क्षत्रिय बनाया, इसमें कोई सन्देह नहीं। और इस प्रकार सामन्ती भारतने चिरकालके लिए ब्राह्मणोंके प्रभावको स्वीकार किया।

(१) बौद्ध धर्म—ईसाकी पहिली तीन-चार शताब्दियोंमें जब ये आगंतुक

क्षत्रिय बनाए जा रहे थे, उसी वक्त बौद्ध धर्म निहत्था कर दिया गया। बौद्ध अब भारतकी किसी सामाजिक समस्याका अपने पास कोई हल नहीं रखते थे, अब उन्हें अपनी पुरानी कमाईको बैठकर खाना था। सामान्त पूरी तौरसे ब्राह्मणोंके हाथमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे चले गये थे। बौद्ध कभी-कभी दिङ्नाग और धर्मकीर्तिके प्रौढ़-दर्शनको सामने रखकर लोगोंकी आँखोंमें चकाचाँध पैदा करना चाहते थे; कभी योग-समाधि, तंतर-मंतर डाकिनी-साकिनीके चमत्कारसे लोगोंको अपनी ओर खींचना चाहते थे और कभी सिद्धोंके विचित्र जीवन और लोक-भाषाकी कविताओंको भी इस कामके लिए इस्तेमाल करते थे; मगर यह सब हवामें तीर चलाना था। अब भी बहुसंख्यक जनताकी कितनी ही समस्यायें सामने थीं; लेकिन बौद्धोंके मस्तिष्क और हथियार कुंठित हो चुके थे। उन्होंने चलते-चलाते हमारी भाषाकी कितनी ही सेवा जरूर की। अफसोस है कि उनकी कविताओंका बहुत कम अंश हमारे पास बच रहा। उनकी सैकड़ों छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें किये तिब्बती भाषाके अनुवादोंमें मौजूद हैं; मगर उससे भी अधिक संख्या उन पुस्तकोंकी रही होगी, जो शुद्ध सांसारिक दृष्टिसे लिखी गई थीं, अतएव वह भारतसे बाहर नहीं ले जाई गई, और बौद्ध धर्मके साथ वह यहीं नष्ट हो गई।

बौद्ध धर्म चलाचली पर था, उसकी भीतरी कितनी ही कमजोरियाँ उसके हितचिन्तकोंको मालूम होने लगी थीं, तो भी सबसे बड़ी कमजोरी—सामाजिक समस्यासे हाथ खींच लेना—की ओर उनका ध्यान नहीं गया। दूसरे धार्मिक पंथोंकी तरह बौद्ध धर्ममें भी ब्रह्मचर्य और भिक्षु-जीवनपर बहुत जोर दिया गया था, लेकिन बारह शताब्दियोंके तजुबेने बतला दिया कि वह ढोंगके सिवाय और कुछ नहीं है। आदमी आहारकी तरह काम-भोगमें भी दूसरे पशुओंसे बहुत भिन्नता नहीं रखता। मठोंके अप्राकृतिक-जीवनमें जो बहुत-सी बुराईयाँ बहुत भारी परिमाणमें घुस आयी थीं, उन्हें देखकर कुछ विचारकोंने सोचा, हमें इस ढोंगको हटाना चाहिए और मनुष्यको सहज-स्वाभाविक जीवनपर लाना चाहिए। इन बातोंको वह खुलकर नहीं कह सकते थे, क्योंकि खुलकर कहनेपर पन्थ और भक्त ही नहीं सारे बाहरी समाजका विरोध इतना

जबर्दस्त होता, कि उन्हें अपना अस्तित्व भी कायम रखना मुश्किल हो जाता। उन्होंने छिप करके एक सीमित क्षेत्रमें अपने विचारोंका प्रचार करना शुरू किया। मुक्त यौन-संबंधके पोषक चक्र-संवर आदि देवता, उनके मंत्र और पूजा-प्रकार तैयार किये। गुह्य-समाज एकत्रित होने लगे, जहाँ स्त्री-मुख्योंको मद्य-मैथुनकी पूरी स्वतंत्रता दी गयी। लेकिन जल्दी ही यह सब काम सहज, स्वाभाविक नहीं अस्वाभाविक रूपमें होने लगा। सरहपाके ढ़चनोंसे जान पड़ता है, कि वह भोग-स्वातंत्र्यकी अस्वाभाविकता या अतिमें नहीं ले जाना चाहता था। वह इस बातका समर्थक था, कि सहज मानवकी जो सहज आवश्यकताएँ हैं, उन्हें सहज रूपसे पूरा होने देना चाहिए। उसने मंतर-तंतर, देवी-देवतापर भी ठोकर लगाए हैं। मगर जान पड़ता है, भीतरी-बाहरी क्रोध बहुत जबर्दस्त था, सहज-मार्गसे पालंड-मार्ग पकड़ना अधिक आसान था, इसलिए सरहपाका सहज-यान, तन्तर-मन्तर, भूत-प्रेत, देवी-देवता-संबंधी हजारों मिथ्या-विश्वासों और ठोंगोंके पैदा करनेका कारण बना। ये सारे मिथ्या-विश्वास, सारी दिव्य-शक्तियाँ महमूद और मुहम्मदबिन-इस्लियारके सामने थोड़ी निकलीं और तारा, कुश्कुला, लोकेश्वर और मंजुश्रीके मन्दिरों और मठोंमें हजार-हजार बरसकी जमा हुई अपार संपत्ति अपने मालिकों और पुजारियोंके साथ ध्वस्त हो गयी। बौद्ध भिक्षुओंके रहनेके लिए जब न कोई विहार रहा, न उनके संरक्षक और पोषक सेठ-सामन्त पहिली अवस्थामें रहे, न साधारण जनताका विश्वास पूर्ववत् रहा, तो उन्हें भारतमें दिन काटना मुश्किल होने लगा। पश्चिमकी धरती तो उनके हाथसे पहिले ही निकल चुकी थी; लेकिन उत्तर (तिब्बत), पूरब (बर्मा, चीन) और दक्खिन (सिंहल)में अब भी उनके स्वागत करनेवाले मौजूद थे। इस प्रकार बचे-खुचे बौद्ध भिक्षु—बौद्ध गृहस्थोंके अनुयायी—बाहर चले गये। भिक्षुओंके अभावमें गृहस्थ बौद्ध धर्मको भूलने लगे, और जिसकी जिधर सींग समाई, उधर चले गए। इस प्रकार नालन्दा, विक्रमशिलाके ध्वंसके बाद पाँच ही छ पीढ़ियोंमें बौद्ध-धर्म नाम-शेष रह गया।

(२) जैन धर्म—सामन्तोंपर जैन धर्मका पुराने समयमें क्या प्रभाव पड़ा था, इसके समर्थनके लिए काफी प्रमाण नहीं मिलते। राष्ट्रकूट (७५३-८७)

और गुर्जर-गोलंकी (६६१-१२५७) राजाओंका जैन धर्मपर बहुत अनुराग था, लेकिन लड़ाकू सामन्तोंके इस अनुरागमें पहिला ही कदम तो यह था, कि बेचारी अहिंसा तक पर रख दी गई। जैन गृहस्थ ही नहीं जैन मुनि (हेमचन्द्र) भी तलवारकी महिमा गाने लगे भला दिग्विजयोंके जमानेमें अहिंसाको कैसे लेकर चला जा सकता था। बौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्म भी जाति-पाँति विरोधी था, लेकिन हमारे युगमें वह भी जाति-पाँतिको बँधे ही मानने लगा था, जैसे ब्राह्मण। इतना ही नहीं हमारे एक जैन कवि मुनिने तो जैन गृहस्थोंको उपदेश दिया है, कि वह अपनी लड़कीको अजैन घरमें न दें। भीतर भिन्न-भिन्न मतोंके रखने-पर भी जो अब तक शादी-ब्याह हो सकता था, उसे भी बन्द कर दिया गया, चलो छुट्टी मिली। जैन धर्ममें सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं माना जाता, लेकिन अब तो स्वयं महावीरके नामके साथ परमेश्वर लगाया जाने लगा। जैन गृहस्थ और दूसरे लोगोंके लिए पारस-भणि परमेश्वर-शब्द मिल गया। परमेश्वरसे मिश्रत भी मानी जाने लगी। परमेश्वर-शब्द काफी था, साधारण लोग उसीमें सृष्टिकर्ता-विधाता सब समझ लेते थे, आगे बालकी खाल खींचनेकी उन्हें जरूरत नहीं थी।

सामन्तोंने जैन धर्मको अपनाकर भी कितना निबाहा, यह आपने देख लिया। हाँ, व्यापार करनेवाली जातियाँ ज्यादा कट्टर बनीं और आज भी जैनोंमें अधिकांश वैश्य ही मिलते हैं। उन्होंने अहिंसाको जरूर कुछ ज्यादा गंभीरताके साथ स्वीकार किया। पश्चिममें भी बनिया-वर्ग जीव-दयाकी ओर बहुत खिंचता है, यद्यपि उसकी दया है—

“जाननहारा जानिया, बनिया तेरी बान।

बिनु छाने लोहू पिबै, पानी पीबै छान ॥”

इसे जैन धर्मकी सफलता कह लीजिए। मगर इस सफलताने हानि कितनी पहुँचाई? पोरवाल, ओसवाल, अग्रवाल, श्रीमाल, आदि जातियाँ मूलतः शौचेय-प्रार्जुनायन आदि गणोंकी वह वीर-अग्रिय जातियाँ थीं जिन्होंने किसी समय धवनों, शकों, गुप्तोंके दाँत खट्टे किये और भारतमें जनतंत्रताके प्रदीपको साताब्दियों तक जलाये रखा। अब सिंहोंके नख-दाँत तोड़ दिये गए और वे

बकरी बनकर सूद खाने और तराजू तोलनेमें लग गये; उन्हें तीर-तलवारकी जरूरत नहीं रह गई। सवाल हो सकता है, क्षत्रियसे वैश्य होने—ब्राह्मणी व्यवस्थाके अनुसार एक सीढ़ी नीचे गिरने—के लिए ये क्षत्रिय तैयार कैसे हो गए? हम इसके बारेमें इतना ही कह सकते हैं "व्यापारे वसति लक्ष्मी" अथवा कुछ पीढ़ियों तक अपनी स्वतंत्रताके लिए तलवार चलाकर देख लिया, कि राज-तंत्रके इतने बड़े सैनिक-संगठनके सामने उनका तलवार हिलाना फजूल है। अब वह क्षत्रियकी जगह नगर-सेठ बने। व्यापार खूब चमका। करोड़ों रुपये लगाकर देलवाड़ा जैसे अनगिनत मंदिर बने, परम-स्वागियों—पात्र और वस्त्र तक भी न रखनेवाले यतियों—का जैन धर्म सोने-हीरेकी राशिसे जगमग-जगमग करने लगा। लेकिन, इस नये सभ्य जैन समाजमें बेचारे निर्धन्यों—तन साधुओं—की आफत आयी। सम्भ्रान्त परिवारोंके पुत्र मुनि बन नंगे-मादरजाद रहनेसे हिचकिचाने लगे और गृहस्थ भी अपने मुनियोंको इस रूपमें देखनेसे संकोच करने लगे। अब वस्त्रधारी स्वेतांबरोंका पलड़ा भारी हो चला; लेकिन वस्त्र ही तक भले धरोके लड़के सन्तोष कैसे कर सकते थे? सवाल उठ खड़ा हुआ, चैत्य-वासी (वस्तीसे बाहर भठोंमें रहनेवाले) और वस्ती-वासीका। लेकिन कुछ ही समय बाद यह भी सवाल व्यर्थ हो गया, और जैन मुनि वस्ती-वास ही नहीं दरबार-वास तक करने लगे।

इस युगमें तंत्र-मंत्र और भैरवी-वक्र या गुप्त यौन-स्वातंत्र्यका बहुत जोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही इसमें होड़ लगाए हुए थे। भूत-प्रेत, जादू-मन्त्र और देवी-देवता-वादमें जैन भी किसीके पीछे नहीं थे, रहा सवाल बाम-भार्गवा, शायद उसका उतना जोर नहीं हुआ, लेकिन वह बिल्कुल नहीं था, यह भी नहीं कहा जा सकता। आखिर चक्रेश्वरी देवी वहाँ भी विराजमान हुई, और हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनीके घ्राणिगनका खूब गीत गाने लगे,

‘ओहिवार (भावलपुर)के जोहियों तथा मेवोंने मुस्लिम काल तक अपनी सलवार नहीं छोड़ी।

जिससे उसी दिशाका सूक्ष्म संकेत मिलता है ।

जैनोंने अपभ्रंश-साहित्यकी रचना और उसकी सुरक्षामें सबसे अधिक काम किया । वह ब्राह्मणोंकी तरह संस्कृतके अधिभक्त भी नहीं थे, क्योंकि वशिष्ठ, विश्वामित्रकी भाँति उनके मुनियोंने संस्कृतमें ही नहीं प्राकृतमें अपने मूलग्रंथ लिखे थे । व्यापारी होनेसे बही-खाता तथा मातृभाषा लिखने-पढ़नेका ज्ञान होना उनके लिए बहुत जरूरी था । ब्राह्मणोंकी समाज-व्यवस्थाके साथ वह बँधे हुए थे । ब्राह्मणोंके महाभारत, पुराण और कथा-वात्तिका हर तरफसे प्रभाव पड़ना जरूरी था, क्योंकि वह समुद्रमें बूंदकी तरह थे । इस प्रकार जैन धार्मिक नेताओंके लिए यह जरूरी हो पड़ा, कि अपने भक्तोंको ब्राह्मणोंका शास बननेसे बचानेके लिए अपने स्वतंत्र कथा-पुराण तैयार करें । व्यापारीसे यह आशा नहीं रखी जा सकती कि वह ब्रह्म ज्ञाननेके लिए कठिन-कठिन भाषाएँ सीखता फिरेगा । अतएव जैनोंने देश-भाषामें कथा-साहित्यकी सृष्टि की, जिसके कारण स्वयंभू और पुण्डित जैसे अनमोल अद्वितीय कविरत्न हमें मिले । उस साहित्यकी रक्षाके लिए हम और हमारी अगली पीढ़ियाँ उन जैन नर-नारियोंकी हमेशा कृतज्ञ रहेंगी, जिन्होंने इन अमूल्य निधियोंको नष्ट होनेसे बचाया । याद रखिये, इन अमूल्य निधियोंमें सिर्फ जैनोंके ही ग्रन्थ नहीं बल्कि अन्दुरहमानके “संदेश रासक” जैसे ग्रन्थ भी हैं ।

(३) ब्राह्मण—हम कह चुके हैं कि ईसवी सनके शुरू होनेके बाद ही ब्राह्मणोंका पलड़ा भारी हो गया । हाँ, उन्होंने सिर्फ सामन्त-वर्गकी स्नेच्छ और धार्मिकी युद्धाग्निकी भीतरी समस्याको ही अग्नि-कुण्डवाले क्षत्रिय बनाकर हल किया था । लेकिन समाजके हर्ता-कर्ता तो आखिर सामन्त थे । उन्हें जो कुछ मिलना-पुलना था, वह इन्हीं सामन्तोंसे । बाक़ी भेड़ोंको भरमाना उनका काम था, जिसमें कि ब्राह्मणोंके सिरजे ईश्वरकी निरंकुशताकी तरह राजाओंकी निरंकुशताके खिलाफ भेड़ें कोई तूफान न सझा करें । सामन्त (राजा)-समाज और ब्राह्मणों—मेरा मतलब धार्मिक नेताओं और पुरोहितोंसे है—का हमेशा चोली-दासनका साथ रहा है । ब्राह्मणोंपर सामन्त जितना विश्वास कर सकता था, उतना वह अपनी जातिके व्यक्तिपर भी नहीं कर सकता था । किसी

सामन्त-वंशी (क्षत्रिय) को राजके प्रधान-मंत्री जैसे बड़े पदको देकर कोई राजा अपने सिंहासनको खतरेमें डाल कैसे सकता था ? विम्बसार (५०० ई० पू०) के ब्राह्मण प्रधान-मंत्री वर्षकारसे लेकर सदा ही हिन्दू-राजाओंके प्रधान-मंत्री ब्राह्मण होते रहे । धुष्मित्र और पेशवा जैसे दो-एक ही अपवाद हैं, जब कि ब्राह्मणोंने नमक-हरामी की हो । वह कभी सिंहासनपर बैठनेकी कामना नहीं करते थे, इसलिए प्रधान-मंत्रीका पद यदि ब्राह्मणोंके लिए सदा सुरक्षित रहता हो, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ।

और ब्राह्मण घाटेमें भी नहीं थे । शुक्रनासका ऐश्वर्य सारापीडसे कम न था । प्रधान-मंत्रीके महलकी सजावट और अन्तःपुरकी रौनक राजाओंके हरमसे कम न थी । ब्राह्मणोंने जो भारतीय जनतंत्रताके हल्केसे हल्के चिह्नको भी न रहने देनेकी हर तरहसे कोशिश की; उसके लिए उनका स्वार्थ मजबूर करता था । प्रधान-मंत्री और मंत्री ही नहीं दूसरे ब्राह्मणोंके लिए भी सामन्त हर तरहसे पूरी भोग-साधना जुटाते थे । चन्द्रदेवने १०६३ ई०में हाथमें कुश लेकर एक ही बार कटेहली (बनारस)के सारे परगने (पत्तला)को ब्राह्मणोंको दान दे दिया; ११०० ई०में फिर उसने बृहदब्रह्मवर्ध पत्तलाको दान किया । राष्ट्रकूट, पाल तथा दूसरे राजवंश भी ब्राह्मणोंके प्रति ऐसी ही उदारता दिखाते रहे । विद्वामित्र-दशिष्ठ-भरद्वाजके समयमें भी ब्राह्मणोंका जीवन भोग-शून्य नहीं था, फिर हमारे इस कालके बारेमें पूछना ही क्या ? ब्राह्मणोंके मंदिरों-पर किस तरह मुक्त-हस्त हो धन खर्च किया जाता था, इसे देखना हो, तो एलौराके कैलाशको देख लीजिए—एक अद्भुत, विशाल शिवालय पहाड़ काटकर निकाल लिया गया है ।

हम कह चुके हैं, कि वाम-मार्गमें ब्राह्मण भी बौद्धोंके साथ कन्धेसे कन्धर मिलाकर खड़े थे । मन्तर-तन्तरकी बात तो खैर आँखमें धूल भोंकनेकी नीतिके कारण ही सकती है, लेकिन चक्र-पूजा । यौन-स्वातन्त्र्यकी उन्हें क्या जरूरत थी ? आखिर ब्राह्मण एकपत्ति-व्रत नहीं थे, संपत्तिके अनुसार वह चाहे जितने व्याह कर सकते थे । दासियोंके रखनेमें भी उनके लिए कोई सीमा न थी । बौद्ध मिथु तो बेचारे जबदंस्तीके ब्राह्मणोंके फन्देको किसी तरह डीला करना

चाहते थे, जिसकी कि ब्राह्मणोंको जरूरत नहीं थी। हाँ, हो सकता है, मध्य-यामके विरुद्ध जो कड़ाइयाँ पीछेके स्मृतिकारोंने कर दी थीं, उनसे मुक्त होनेके लिए इन्होंने चक्का आश्रय लिया। मीन-भांस उस युगके ब्राह्मणोंमें वर्जित था ही नहीं और मुद्रा—हाथकी अँगुलियोंको टेढ़ी-मेढ़ी करना—के लिए चक्की शरण लेनेकी जरूरत नहीं थी। इस प्रकार मुख्य कारण मध्य रहा होगा और स्त्रीके बारेमें उन्होंने “अधिकस्याधिकं फल” समझ लिया होगा।

ब्राह्मणोंने सीधे सेवा करके ही सामन्तोंका उपकार नहीं किया, बल्कि इन्होंने उनके फायदेके वास्ते साधारण जनताकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेके लिए खूब हन-हन करके हथियार चलाए। खानेकी छुआछूतमें खूब तरक्की की और “आठ कनौजिया नव चूल्हा” करके उसे अपने घरसे शुरू किया। उस वक्त भारतके जो व्यापारी अरब जाते थे, उनके बारेमें एक अरब लेखक (अल्वरुनी) ने लिखा है—वे हमारे (मुसलमानोंके) ही हाथका खाना खानेसे परहेज नहीं करते, बल्कि आपसमें भी एक दूसरेका छुआ नहीं खाते।” बहुत-सी नीच कही जानेवाली जातियोंके प्रति तो ब्राह्मणोंकी व्यवस्था बहुत क्रूर थी। कितनी क्रूर थी इसका अन्दाजा कुछ-कुछ आपको लग सकता है, यदि परम अद्वैतवादी शंकराचार्यकी जन्मभूमि मलबारके पंचमोंकी बीसवीं शताब्दीकी अवस्थाका आपको थोड़ा-सा परिचय हो। उस युगके नगरोंकी बहुतसी सड़कें उनके लिए वर्जित थीं; कितनी ही सड़कोंपर धूकनेके लिए उन्हें अपने साथ पुरवा रखना पड़ता था। लेकिन ब्राह्मणोंकी एक और भी व्यवस्था थी—“स्त्री-रत्नं दुष्कुला-क्षपि”, इसलिए श्रोत्रिय ब्राह्मण भी बूढ़ा सुंदरीसे पार्श्व^१ सन्तान पैदा करनेका पूरा अधिकार रखता था।

ब्राह्मणोंने मिथ्या-विश्वासोंकी फैलाने, वयस्क मानवताको बच्चा बनानेके लिए पुराणोंकी संख्या और फलेवरको इसी कालमें खूब बढ़ाया। बुद्धि रखनेवालोंपर यह हथियार नहीं चलता, इसलिए इसी युगमें बुद्धिको भूल-

^१ शूद्रा स्त्रीमें ब्राह्मणका पुत्र।

भूलियामें जालनेके लिए शंकर (७८८-८३०) श्री हर्ष (११८० ई०) जैसे दार्शनिकोंने "मुँहमें राम बगलमें छूरी" वाला अद्वैतवाद पैदा किया ।

इस कालमें जातीय विखरावकी ब्राह्मणोंने चरम-सीमापर पहुँचाया । अभी तक जातियोंके लिए भाषा या प्रान्तोंका भेद नहीं था, मगर अब ब्राह्मणोंने कनौजिया आदि बिल्कुल अलग-अलग ब्राह्मण जातियाँ तैयार कीं और एक जातिमें भी गोविन्दचंद्र-जयचन्द्र (१११४-११३) के कालमें सरयू-गिरियोंमें पंक्ति (उच्चतम) ब्राह्मण और बल्लालसेन (११५८-७९) के समय बंगालमें "कुलीन" ब्राह्मणके नामसे और नये-नये टुकड़े किये गये । दंडीके कुम्हार-ब्राह्मण जहाँ भारतके किसी भी प्रान्तमें जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक रोटी-खेटी कर सकते थे, वहाँ अब रास्ता चारों ओरसे बन्द था । ब्राह्मणोंकी व्यवस्थाने देश-रक्षाके कामके लिए क्या-क्या किया ? स्त्रियोंके लिए तो युद्धमें कोई स्थान था ही नहीं । ब्राह्मण-देवता युद्ध-सेवासे मुक्त थे । वैश्यका काम था डेढ़ा-सवाई करना । शूद्रोंकी हजार जातियाँ ?—उन्हें हथियार लेकर अपनी पीतिमें लड़नेको कौन क्षत्रिय इजाजत देता ! लड़नेका काम था सिर्फ क्षत्रिय-मुखोंका, और उनके सामने भी युद्ध करनेके लिए कोई बड़ा आदर्श नहीं था, सिर्फ नमक-हलाली और इसके बाद सामन्तका भय रह गया था । सामन्तके भयसे या "हम मालिकका नमक खाते हैं" इस ख्यालसे लड़नेवाले योद्धा, किस श्रेणीके होंगे, इसे आप खुद समझ लें । आप कहेंगे, इस युगमें अरबों और तुर्कोंसे युद्ध छिड़ता रहता था, जिसमें योद्धाके दिलमें हिन्दू-धर्मकी रक्षाका भी ख्याल आ सकता था । हम इसे मानते हैं, लेकिन कुछ ही हद तक । क्योंकि मुसल्मान सामन्तकी सेनामें सिर्फ मुसल्मान ही मुसल्मान और हिन्दू सामन्तकी सेनामें सिर्फ हिन्दू ही हिन्दू सैनिक रहे, इसका कोई नियम नहीं था । अन्तर दोनों हीकी सेनायें मिली-जुली होती थीं ।

(४) इस्लाम—इस्लामकी इस युगमें क्या अवस्था थी, इसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं । अभी सदियोंकी मानसिक और शारीरिक दासताओंको तोड़नेकी उसमें हिम्मत और क्षमता थी । साथ ही अरबी खलीफा (उमैय्या और अब्बासी) कोई संकीर्ण विचारवाले धर्मांध शासक नहीं थे । इस्लामकी

पहिली सदीमें बाहे कुछ तोड़-फोड़ हुआ हो, मगर बादमें दुनियाकी सगी संस्कृतिओं और उनकी देवोंके मुसल्मान शासक अबर्दस्त कदरदान संरक्षक थे। अफलातून, अरस्तू और दूसरे यूनानी दार्शनिकों—साइंस-वेत्ताओंका पता भी नहीं लगता, यदि बगदादके खलीफोंके समय अनुवाद और टीकाओं द्वारा उनकी रक्षा न की गई होती। उस समय भारतसे भी कितने ही विद्वान बड़े सम्मानपूर्वक बगदाद बुलाये गए थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन, वैद्यक, गणित और ज्योतिषके बहुतसे ग्रन्थोंके अरबी अनुवाद करनेमें सहायता की थी। मुस्लिम अरबोंने हिन्दुस्तानी ग्रंथोंको स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि जन्हींके द्वारा वह सारे यूरोपमें फैला।

अब्दुर्रहमानकी कवितामें जो विल्कुल भारतीय आत्मा बोल रही है वह बनाबटी बात नहीं थी। अब्दुर्रहमानने दिवताका भंगलाचरण करते वक्त अपने ग्रंथमें अपनेको मुसल्मान भक्त साबित किया है। ग्यारहवीं शताब्दीसे मुस्लिम और हिन्दू सामन्तोंमें राजनीतिक शक्तिको हथियानेके लिए जो भीषण संघर्ष शुरू हुए, उसीके प्रोपेगण्डामें हिन्दू और इस्लाम धर्म घसीटे जाने लगे, जैसे कि आज हॉलिफेक्स और चर्चिल जैसे कट्टर साम्राज्यवादी ईसाई-धर्मको घसीट रहे हैं। यह देशका दुर्भाग्य था कि सामन्तोंके इस भूले प्रोपेगण्डाका शिकार साधारण जनता भी होती थी और उसने कितने ही समय अपनेको अन्ध सिद्ध किया।

जिस वक्त सामन्त अपने स्वार्थके लिए धर्मकी दुहाई देकर कटुताका बीज बो रहे थे, उसी समय सरल-हृदय मानवता-प्रेमी कुछ दूसरे भी पुरुष हुए थे, जो सामन्तोंकी चालसे क्षुब्ध थे और अपनी शक्ति भर दोनों संस्कृतियों और धर्मोंमें भाई-चारा स्थापित करनेकी कोशिश करते थे। हाँ, वह संख्या और साधन दोनोंमें कमजोर थे। सूफी, महात्माओंकी संख्या कभी अधिक नहीं रही और वह जिस तसब्बुफ और अद्वैतका प्रचार करते थे, वह साधारण जनताकी पहुँचसे बाहरकी बात थी। साधारण जनताके समझने और लाभकी बातको लेकर यदि वह कुछ करना चाहते, तो उनकी हालत भी वही हुई होती, जो कि

साम्यवादी सैयद मुहम्मद मेहदी जौनपुरी की हुई। सामन्तोंका हथियार सीधा सांसारिक भोगका प्रलोभन था, जब कि दोनों संस्कृतियोंमें समन्वय स्थापित करनेवालोंका हथियार था, अधिकतर परलोकवाद और मानवकी सहज सहृदयतासे अपील करना।

तेरहवीं और बादकी भी दो-तीन सदियोंमें हमें यदि खुसरोकी छोड़कर कोई मुस्लिम कवि नहीं दिखाई पड़ता, तो इसका यह मतलब नहीं कि करोड़ों भारतीय मुसलमान बनते ही कवि-हृदयसे बिल्कुल बंचित हो गए। हिन्दुस्तानकी साकसे पैदा हुए सभी मुसलमानोंके लिए अरबी-फारसीका पंडित होना सम्भव नहीं था। अब्दुर्रहमान जैसे कितने ही कवियोंने अपनी भाषामें मानव-समाजकी भिन्न-भिन्न श्रुतवैदनाओंको लेकर कविताकी होगी। कुछको उन्होंने कागजपर भी लिखा होगा; मगर उनको हम तक पहुँचानेके लिए सहायक नहीं मिले। सुल्तानी दरबारमें विदेशी भाषाओंकी तूती बोल रही थी। मुस्लिम सामन्तोंके पुस्तकालयोंमें हिन्दुस्तानी लिपि और हिन्दुस्तानी भाषामें लिखी गई कविताएँ पचास-पचास पीढ़ी तक कैसे सुरक्षित रह सकती थीं। उधर हिन्दू सामन्तोंके यहाँ जब स्वयंभू जैसे प्रथम श्रेणीके कवि भी जैन होनेके कारण भुला दिए जा सकते हैं, तो मुसलमान कविके बारेमें पूछना ही क्या है। यह बजह है जो अब्दुर्रहमान (१०१०)से कुतबन (१४६३) तककी प्रायः पाँच सदियोंमें हम किसी मुसलमान कविकी रचनाका पता नहीं पाते। रचनाएँ काफी रही होंगी, लेकिन परिस्थितियाँ उनके जीवित रहनेके अनुकूल नहीं थीं। उन्हें एक ओर “हिन्दी-गन्दी” समझा जाता था और दूसरी ओर म्लेच्छ कविकी कृति।

५. सांस्कृतिक अवस्था

संस्कृति एक बहुत ही व्यापक शब्द है। यहाँ इस युगकी चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीतकलाके बारेमें ही दो-चार शब्द हम कहना चाहते हैं। पाँचवीं-छठीं

सदी भारतीय कलाके मध्याह्नका युग था। सातवीं सदी तक पूर्व-अर्जित मान बना रहा। आठवीं-नवीं सदीमें कुछ ह्रास जरूर होने लगा, लेकिन पतन पूरी तौरसे दसवीं सदीमें दिखलाई पड़ता है। खास करके यह बात चित्र और मूर्ति-कलाके बारेमें बहुत देखी जाती है। दसवीं शताब्दी और उसके बादकी मूर्तियाँ बिल्कुल ही बदसूरत और भावशून्य हैं। वैसे तो तीर्थंकरकी मूर्तियोंकी बनानेमें पहिलेसे भी कलाकार बेगार-सी टासते दीख पड़ते थे। पाँचवीं, छठी, सातवीं सदीकी कुछ बुद्ध मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं, मगर आठवीं सदीके बाद तो बुद्ध और तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ निरी पाषाण-सी रह गई हैं। हाँ, बोधिसत्त्वों और ताराकी मूर्तियाँ नवीं-दसवीं सदीमें उतनी बुरी नहीं देख पड़ती, बल्कि कोई-कोई तो बहुत सुन्दर हैं, खास करके कुकिहारकी आठवीं-नवीं सदीकी कितनी ही पीतलकी मूर्तियाँ बहुत सुन्दर हैं। दसवीं, ग्यारहवीं सदीके कुछ चित्रपट तिब्बतमें मौजूद हैं। लद्दाख और स्पितिके बौद्ध मठोंमें कुछ भित्ति-चित्र भी बहुत अच्छे हैं। लेकिन दसवीं-ग्यारहवीं सदीके जो चित्र जैन और बौद्ध ताल-पीथियों-पर मिले हैं, वे जरूर भद्दे हैं। ज्ञान पड़ता है नवीं सदीके बाद अपवाद रूपसे ही कोई-कोई अच्छे चित्रकार और मूर्तिकार रह गये। कला जितनी दूर तक अव-नत हो चुकी थी और जिस तरहके भद्दे नमूनोंकी तैयार किया जा रहा था, उसे देखनेसे महामूढ़के आक्रमणके बाद—खासकर बारहवीं सदीके बाद—से जो चित्र-मूर्तिकलाकी ओरसे उदासीनता बर्ती जाने लगी, वह अनुचित नहीं थी। वास्तुशिल्प और खासकर पत्थरोंकी नक्काशी बारहवीं शताब्दीमें उतनी बुरी न थी। देलवाड़ाके जैन मंदिरोंमें संगमरमरपर खुदे कमल मधुच्छत्र बहुत सुन्दर हैं, यद्यपि उनमें अंशकरणकी मात्रा जरूरतसे ज्यादा दीख पड़ती है, जिससे गुप्तकालीन सादे सौम्य सौन्दर्यकी उसमें कमी है। तो भी, संगमरमरको मोम या मक्खनकी तरह अपनी छित्रियोंसे काट-काटकर कलाकारने जो कौशल दिखाया है, वह सराहनीय है। लेकिन उसी पत्थरमें जो मूर्तियाँ बनी हुई हैं, उनसे विश्वास ही नहीं होता, कि उतने सुन्दर कमल और मधुच्छत्र बनानेवाले हाथ इतनी भद्दी मूर्तियाँ भी बना सकते हैं। बारहवीं सदीके बाद तो एक तरह चित्र और मूर्तिकलाका दिवाला ही निकल जाता है।

इस युगमें संगीतकी ओर भी ध्यान दिया गया था। आजकलकी कितनी ही राग-रागिनियोंका वर्गीकरण और नामकरण अपभ्रंश-साहित्यके आरंभके साथ होता है। नृत्य और संगीतकी ओर यद्यपि सामन्त-वर्ग बहुत ध्यान देता था और सामन्त-कन्याओंकी शिक्षामें वह अनिवार्य विषय था; लेकिन अब राज-कुमारियाँ दंडीके समयकी तरह अपने कौशलका प्रदर्शन खुले आम नहीं कर सकती थीं। खुले आम नृत्य-संगीतकी जिम्मेवारी अब केवल बेश्याओंपर रह गई थी।

यद्यपि हमारे युगमें कालिजरमें "प्रबोध-चंद्रोदय" जैसे कुछ नाटक लिखे गए, मगर जो पड़ता है, अब नाटकोंका समय बीत चुका था। जहाँ नाटकके लिए जबर्दस्त प्रेरणा स्वाभाविक मानव-जीवन था, वहाँ अब वेदान्त और दर्शन अपने ध्यान-ज्ञान और राग-द्वेष आदिके रूपमें नाटकोंके लिए पात्र देने लगे, फिर वह नाटक कैसा होगा, यह आप खुद समझ सकते हैं।

सामन्तोंकी विलासिताने कुछ नई कलाओंकी भी सृष्टि की। स्वयंभूने राष्ट्रकूट ध्रुव और उसके उत्तराधिकारीके जल-क्रीड़ा-मण्डपमें जो देखा-सुना था, उसीका वर्णन अपने रामायणमें जल-क्रीड़ाके रूपमें किया। उस समय सामन्तोंके स्नान-कुण्ड, स्नान-मण्डप उसके खंभे और दीवारोंके असंकृत करनेमें जंगम और स्थावर रत्नोंका व्यय बिल खोल कर किया जाता था। सामन्तोंकी कलाका प्रधान उद्देश्य होता ही था कामोद्दीपन। वस्तुतः सामन्तोंके जीवनका आदर्श ही था—लाओ, पिओ, मौज करो। धर्म, दर्शन सारे उसके लिए दिखावे और जब तब मन बहलावकी चीज थे।

६. साहित्यिक अवस्था

हमारा यह साहित्य-युग उस वक्त आरंभ होता है, जब कि बाण और हर्ष-वर्धनको रंगमंच छोड़े बहुत देर नहीं हुई थी। कवियोंमें अश्वघोष, भास, कालिदास, दण्डी भबभूति, और बाणकी कृतियाँ बहुत चावसे पढ़ी जाती हैं। स्वयंभूने इन पुराने कवियोंके प्रति अपनी कृतज्ञता साफ प्रकट की है। सिद्धोंमेंसे भी सरहपा, तिलोपा, शान्तिपा जैसे कितने ही संस्कृतके बड़े-बड़े पंडित थे; हाँ, जब

वे भाषा-कविता लिखने बैठते, तो अपने संस्कृत-भाषाके ज्ञानकी भूल जाते थे । तभी वह इतनी सरल भाषामें लिखनेमें सफल हुए ।

कविता और कविको सदा आश्रयकी जरूरत होती है । वह युग सामन्तोंका था । जिस काव्य और कविको सामन्त-वर्गका आश्रय प्राप्त था, वह आर्थिक लाभके तौर पर ही सफल नहीं होता, बल्कि वह चिरस्थायी होनेका अधिकार रखता था । हर युगकी तरह उस समय भी साधारण जनताकी रुचिको पूर्ण करने-के लिए कविताएँ बनती थीं । मगर उनके चिरस्थायी होनेके मार्गमें बहुत सी बाधाएँ थीं । यद्यपि स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे कवि अत्यन्त असाधारण कवि थे, मगर उनके लिए सामन्ती दरबारोंमें वह भी सुभीता नहीं था, जो कि किसी थर्ड-क्लास संस्कृतके विद्वानका होता था । पुष्पदन्तने तो इसीलिए बल्कि भुँकुलाकर कह भी दिया कि जिस वक्त प्रभुवर्गकी यह हालत है, उस वक्त हमारे जैसोंके लिए जंगलमें गुमनाम मारे-मारे फिरते रहना ही अच्छा है । इसीलिए पुष्पदन्तने सामन्तोंके चमर और अभियेक जलको सज्जनताको धो-बहानेवाला ठहराया । उत्तर-कुरु वैसे भी एक वर्गहीन सुजल, सुफल, सुखी देशके तौरपर प्रसिद्ध था, मगर पुष्पदन्तके पहिले हीसे कवि लोग उसे भूल गए थे । पुष्पदन्तने “न दास न कोड राज” “मानव दिव्य”, “भगवं सुभव्य, समानहि सर्व” कहकर “अहो कुरु-भूमि निशंसय स्वर्ग” कहा, इससे भी जान पड़ता है कि देशभाषाके प्रतिभाशाली कवियोंको कितनी प्रतिकूल स्थितिमें रहना पड़ता था । स्वयंभू जैसे महान् कविको भी किसी बड़े दरबारमें स्थान न था एक गुमनामसे अधिकारी धनंजय, रयडाके आश्रयमें रहकर जिनकी गुजार देना भी उसी बातकी पुष्ट करता है । अभी चक्रवर्ती लोग संस्कृत और थोड़ा-बहुत प्राकृत—जो कि अब मृत-भाषा बन चुकी थी—पर ही ज्यादा निगाह रखते थे । शायद वह समझते थे, कि देशी-भाषामें गूँधी उनकी कीर्ति-माला चन्द ही दिनोंमें कुम्हला जाएगी, अमर कीर्ति तो संस्कृत काव्यों द्वारा ही मिल सकती है, इसीलिए उन्हें अपभ्रंश कवियोंकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत नहीं थी ।

सिद्धोंके लिए इस बारेमें कोई दिक्कत नहीं थी । उन्हें किसी दरबारके

आश्रयकी उतनी जरूरत नहीं थी, जितनी कि दरबारको। जल्द सुला देनेवाली उनकी मीठी गोलियोंका जनतापर बहुत प्रभाव था—विचित्र जीवनके कारण दिव्य चमत्कारके कारण, अथवा ज्ञान-विज्ञानके कारण कह लीजिए; राजा सिद्धोंकी पूजा-अर्चामें सबसे आगे रहना चाहते थे। शान्ति पा या रत्नाकर शान्तिकी गौड़ नरेश उसी तरह आँखोंपर रखनेके लिए तैयार थे, जैसे मालव-दरबार या सिंहलेश्वर।

(१) सिद्धोंकी कविता—आस्य कविताके रुढ़ि-वद्ध संकीर्ण लक्षणको लेने-पर कबीरकी तरह सिद्धोंकी कविता भी कविता न गिनी जाए या कमसे कम अच्छी कविता न समझी जाए; लेकिन लाखों नर-नारियोंको उनमें रस, एक तरहकी आत्म-तृप्ति मिलती थी और आज भी उस तरहकी मनोवृत्ति रखनेवाले कितने ही पाठकोंको वह जतनी ही हचिकर मालूम होती है; इसलिए उन्हें कविता मानना ही पड़ेगा। यह ठीक है, उनकी भाषा सीधी-सादी है समझनेमें बहुत सुगम है, लेकिन यह कविताका कोई दोष नहीं। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए, कि सिद्धोंकी सीधी-सादी भाषाको भी लोगोंने खींचातानी करके दृष्टकूट बना उनकी भाषाको "सन्ध्या-भाषा" बना डाला, और फिर तो वह उतनी ही दुर्बोध और क्लिष्ट हो गयी, जितना कि श्रीहर्षका "नैषध" या माघका "शिशुपाल-वध"।

हम बतला चुके हैं, आदिम सिद्ध किस तरह कृत्रिम बहु-निर्द्वन्द्व-पूर्ण जीवनको सहज-जीवनका रूप देना चाहते थे और इसके लिए समाजके चौधरियोंकी कितनी ही रुढ़ियोंको वह तोड़-फेंकना चाहते थे। उनका उद्देश्य कभी नहीं था कि लोग सहज-जीवन बितातेके लिए घँघेरी कोठरियों और "गृह-समाजों"का आश्रय लें। वह इस बातमें सफल नहीं हुए और उनका सहज-यान भी सामन्त-समाजका एक दूसरा कोढ़ बनकर रह गया। उनके आशावादको भी आगे बढ़नेका अवसर नहीं मिला। हाँ, अलख-निरंजनका जो राग उन्होंने गाय़ा, वह चिरकालके लिए अपना असर छोड़ गया। यद्यपि सिद्धोंके अलख-निरंजनसे राम-रहीम या ईश्वर-परमेश्वरसे कोई संबंध नहीं था। वह तो पंडितों और रुढ़िवादियोंके आत्म, वेद, पोथी-पत्रेसे न जाने जा सकनेवाले—अ-लख, विषुद्ध सत्य—को बतलाता

था, जो कि वस्तुतः बौद्धोंके निर्वाणका ही विशेषण है। लेकिन पीछेके चेलों—कबीर नानकसे लेकर राधास्वामी दयाल तक—ने उसका और ही अर्थ लगाकर लोगोंको भुक्तिकी ओर नहीं दिमागी गुलामीकी ओर ढकेला।

सिद्ध पुरानी रुढ़ियों, पुराने पाखण्डोंके बहुत विरोधी थे। आदिम सिद्धोंने तो सरहकी तरह अपने बड़े सम्मान और सुखी जीवनकी भी पर्वाह नहीं की। सरह किसी वृक्ष मालन्दाके एक बड़े प्रतिष्ठित पंडित थे। भगर जब उन्हें वहाँका जीवन दमघोंटू लगने लगा, तो उन्होंने सब कुछको लात मारा, भिक्षुओंका बाना छोड़ा, अपनी (ब्राह्मण) नहीं किसी दूसरी छोटी जातिकी तरुणीको लेकर खुल्लमखुल्ला सहजयानका रास्ता पकड़ा। सरहने सिर्फ दूसरे ही पन्थोंके पाखण्डोंका खण्डन नहीं किया, बल्कि बौद्धोंको भी नहीं छोड़ा। इस बातका अनुकरण पीछेके सन्तोंमें भी पाया जाता है, लेकिन अपने पन्थ और मतको बचाकर। यद्यपि ये पुराने सिद्ध किसी पाखण्डको फैलाना नहीं चाहते थे, लेकिन पीछे उन्होंके नामपर कितने ही मंत्र-तंत्र और पाखण्ड चल पड़े। सिद्धोंने सुख-दुख और दुनियाकी सभी समस्याओंको केवल व्यक्तिके रूपमें देखा। उन्हें ख्यालमें भी नहीं आया, कि समाजकी बुराइयोंको सामाजिक रूपसे ही दूर करनेपर सफलता मिल सकती है। लेकिन जैसा कि हमने पहिले लिखा है, सिद्धोंको निराशावाद छू नहीं गया था। वह निराशावाद, योग-वैराग्यसे लोगोंका पिण्ड झुड़ाना चाहते थे और उन्होंने मरनेके पीछे मिलनेवाले निर्वाणके पीछे भागनेवाले लोगोंकेलिए इसी संसारमें स्वाभाविक भोगमय जीवन बितानेका आदर्श उपस्थित किया। सिद्धोंने आत्मावलंबनको यद्यपि पसन्द किया, भगर साथ ही गुरुकी महिमाको उन्होंने इतना बढ़ाया, कि पीछे वही अन्धेरगरदीका एक भारी साधन बन गया। सिद्धोंके बाद जैन रहस्यवादी कवि, कबीर, दादू, राधास्वामी सबने गुरुकी अतन्त्र भक्तिका राग अलापा।

सिद्धोंकी कवितामें अधिकतर सहजयान और रहस्यवाद ही मिलता है। जिनकी सामन्त-समाजको कभी-कभी जरूरत पड़ती थी, उनको आवश्यकता ऐसे काव्योंकी थी, जिनमें शृंगार और वीररसका जोर हो।

(२) शृंगार और वीररस—उस समयके सामन्त-जीवनका उद्देश्य था

चाहे जैसे भी हो बुनियाफ़ा आनन्द खूब डट करके लेना। ऐसा कहनेसे आचारके नियमोंके विरुद्ध जानेकी जरूरत नहीं है; क्योंकि पुरोहित और महुता अपने मालिकोंकी रुचिके अनुसार हर वक्त नये धर्मशास्त्र और नये आचार-नियम बनानेके लिए तैयार थे। हाँ, भोग निष्कण्टक नहीं हो सकता था। हर वक्त एक सामन्तको दूसरे सामन्तसे ही खतरा नहीं था, बल्कि खुद अपने भाई-बहिनोसे भय लगा रहता था। यदि ज़रा भी चूके, कि भोग और जान दोनोंसे हाथ धोना पड़ा। इसीलिए सामन्तोंको भोगके लिए पूरी क्रीमत् अदा करनेको तैयार रहना पड़ता था। स्वयंभू और पुष्पदन्तने सामन्त-जीवनके इन दोनों पहलुओं—भोग भोगना और मृत्युको तृणवत् समझना—का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछेके काव्योंमें हमें नहीं मिलता। सामन्तको मृत्युकी कोई पर्वाह नहीं थी, व मृत्युके बादकी। विजय हुई तो उसके चरणोंमें सारे भोग पड़े हैं। हाँ, यदि कभी पराजयका मुँह देखना पड़ा, तब या तो सरहपाके पास जाना पड़ता था किसी अपने कविसे निराशावादकी बात सुन सन्तोष करना पड़ता। स्वयंभू और पुष्पदन्तने पराजित सामन्तोंके लिए काफ़ी सन्देश छोड़े हैं।

हेमचन्द्रके संगृहीत एक पदमें "बापकी भूमड़ी" (पितृ-भूमि)के लिए सर्वस्व-उत्सर्ग करनेकी जो भावना दर्शायी गई है, उसे देखकर हमारे कितने ही पाठक शायद उछल पड़ें। लेकिन यह बापकी भूमड़ी साधारण जनताके ख्यालसे नहीं कही गई। यह सामन्तोंकी अपने हाथसे निकल गई बापकी भूमड़ी—निरंकुश राज—को फिरसे जीटानेके लिए आदेश है। अस्सी फ़ीसदी जनता और भविष्यकी सारी पीढ़ियोंके सुख और स्वार्थका वहाँ कोई ख्याल नहीं था।

तब और पीछेके भी कवि सन्देश देते हैं—काया नरक, संसार दुष्क, कोई किसीका नहीं। यह कोई उच्च भावनाका परिचायक नहीं है। चूँकि उनके जीवनके कुछ महीने या कुछ बरस दुखमें कटे और जिस दुखका कारण भी बहुत कुछ समाजकी विषमनीति है, जिसे कि हटानेसे बहुतसे दुखोंके कारण ख़तम हो सकते हैं। लेकिन कविने अपने उस थोड़े समयके दुखको इतना बड़ा करके देखा कि उसे खानेवाली हज़ारों पीढ़ीके सुख-दुखका कुछ भी ख्याल

नहीं आया। एक जीवनके सुख-दुखसे आनेवाली अग्नितः पीढ़ियोंका सुख-दुख परिभाषमें कहीं अधिक है, लेकिन जो उसका न ख्यालकर सिर्फ अपने हीको सब कुछ समझ लेता है, क्या यह उसकी अत्यन्त निम्न कोटिकी स्वार्थान्धता नहीं है? हमारे कवियोंने व्यक्तिके सामाजिक कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसका कारण था, वही सामन्त-समाज, जिसके हाथमें सारे समाजकी नकेल थी और जो व्यक्तिगत आनन्दको ही सर्वोपरि चीज समझता था। हमारे आजके भी कवि जब ऐसी गलती कर बैठते हैं, तो इन पुराने कवियोंको दोष देनेकी क्या जरूरत। वस्तुतः कवियोंने अत्यन्त संदिग्ध परलोकवाद और वैयक्तिक निराशावादपर जितना जोर दिया, उससे ज्यादा उन्हें चाहिए था, अपनी आगेवाली पीढ़ियोंके मुँहकी ओर देखना—जो पीढ़ियाँ कि संदिग्ध और काल्पनिक नहीं बिल्कुल वास्तविक हैं, यह बात खुद उन्हें अपना अस्तित्व बतला देता। केवल अपने लिए अनन्तजीवनकी मिथ्या आशाकी वेदीपर उन्होंने आनेवाली पीढ़ियोंके वास्तविक अनन्त-जीवनकी बलि चढ़ा देनेमें जरा भी आनाकानी नहीं की।

(३) कुछ कवियोंका मूल्यांकन—(क) स्वयंभू—हमारे इसी युगमें नहीं हिन्दी-कविताके पाँचों युगों (१—सिद्ध-सामन्त-युग, २—सूफ़ी-युग, ३—भक्त-युग, ४—दर्बारी-युग, ५—नवजागरण-युग)के जितने कवियोंको हमने यहाँ संग्रहीत किया है, उनमें यह निस्संकोच कहा जा सकता है, कि स्वयंभू सबसे बड़ा कवि था। वस्तुतः वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोंमेंसे एक था। आश्चर्य और क्रोध दोनों होता है कि लोगोंने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा। स्वयंभूके रामायण और महाभारत (या कृष्ण-अरिष्ट) दोनों ही विशाल-काव्य हैं। उनके विशाल आकारको देखकर सन्देह हो सकता है कि कविने कितनी जगह काव्य-शरीरको जैसे-कैसे भी फुलानेकी कोशिश की होगी, मगर ऐसा प्रयत्न सिर्फ वहीं देखनेमें आता है, जहाँ अपने सहस्रमियोंकी अवदस्तीके कारण वह जैन-धर्मकी कितनी ही नीरस रूढ़ियोंको बखाननेके लिए मजबूर होता है—ठीक वैसे ही जैसे कुशल चित्रकार और मूर्तिकार तीर्थकरोंकी मूर्ति बनानेमें बेगार टालने लगते। हम समझते

हैं कि ऐसे बेगारवाले अंश कविके कविता-कलेवरके अभिन्न अंग नहीं हैं। उनके हटा देनेसे न कथानककी मृत्खला ही टूटती है और न रसधारा ही।

यद्यपि स्वयंभू वाणसे "वनघनऊ" या समास उच्चार लेनेकी बात कहता है, लेकिन हर्षचरित और कादंबरीके विकट समासोंका स्वयंभूमें पता नहीं लगता। स्वयंभूकी भाषाका प्रवाह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसने सामान्यतः दुःखता सानेकी कहीं कोशिश नहीं की। पद्य-स्वर बड़े ही कर्णप्रिय हैं। शब्द बिल्कुल नये-तुल्य हैं, और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और और ऊपर उठता जाता है। उसका कवि-कौशल कितना श्रेष्ठ है, यह इसीसे मालूम होगा कि मैंने रामायणसे मृगार, वीर, वीभत्स, आदिके उदाहरणोंकी जब जमा किया, तो ग्रन्थके कलेवरके बड़ जानेके भयसे उनमेंसे एक ही एकको देना चाहा, मगर फिरसे पढ़ते-पढ़ते मालूम हुआ, कि स्वयंभूके वर्णनमें हर जगह नवीनता है, इसलिए एकसे अधिक उद्धरण देनेके लिए मजबूर होना पड़ा।

स्वयंभूने प्रकृतिका बहुत गहरा अध्ययन किया है, यह हमारे दिये हुए उद्धरणोंसे मालूम होगा। समुद्र और कितने ही अन्य स्थलों, प्राकृतिक दृश्यों-का वर्णन करनेमें वह अद्वितीय है। और सामान्य समाजके वर्णनमें उसकी किसीसे तुलना नहीं की जा सकती। किसी एक सुन्दरीके सौन्दर्यको जितना अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन सुन्दरियोंके सामूहिक सौन्दर्यका वर्णन करनेमें उसने कमाल कर दिया है। चित्रकारकी भाँति कविके सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिए। स्वयंभूने राष्ट्रकूटोंके रनिवास और उनके आसोव-अमोदको नखदीकसे देखा था। वहाँ परदा बिल्कुल नहीं था, इसलिए और सुविधा थी। उसी सौन्दर्यको उसने रावण और अयोध्याके रनिवासोंके सौन्दर्यके रूपमें चित्रित किया है।

विलाप-चित्रणमें भी उसने बड़ी सफलता प्राप्त की है। रावणके मरने-पर मन्दोदरी और विभीषणके विलाप सिर्फ पाठकके नेत्रोंको ही सिक्त नहीं कर देते, बल्कि उसका मन मन्दोदरी और विभीषण तथा मृत रावणके गम्भीर और उदात्त भावोंकी दाद देता है।

सामन्ती युगमें स्त्रियोंका अधिकार ही क्या हो सकता है? तो भी सिद्ध-

युग, तथा बादकी घटावियोंकी अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ बेहतर जरूर थी। स्वयंभूने सीताका जो रूप रावणको जवाब देते और अग्नि-परीक्षाके समय चित्रित किया है, पीछे उसका कहीं पता नहीं लगता।

मालूम होता है, तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणकी जरूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयंभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामें क्यों नहीं डाल दिया। तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको देखा था, मेरी इस बातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मैं समझता हूँ कि तुलसी बाबाने "क्वचिदन्यतोपि"से स्वयंभू-रामायणकी ओर ही संकेत किया है। आखिर वाना पुराण निगम आगम और रामायणके बाद ब्राह्मणोंका कौनसा ग्रन्थ बाक़ी रह जाता है, जिसमें रामकी कथा आई है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी बाबाका मतलब है, ब्राह्मणोंके साहित्यसे बाहर "कहीं अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमें रामकथा बड़े सुन्दर रूपमें मौजूद है। जिस सोरों या शूकरसेत्रमें गोस्वामी जीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोंमें जैन-धरोंमें स्वयंभू रामायण पढ़ा जाता था। राम-भक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पड़े थे, उससे यह बिल्कुल सम्भव है कि उन्हें जैनके यहाँ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामी जीसे आठ सौ बरस पहले बना था किन्तु तद्भव शब्दोंके प्राचुर्य तथा लेखकों-वाचकोंके जब-तबके शब्द-सुधारके कारण अभी आसानीसे समझमें आ सकता था। जो उद्धरण हमने यहाँ दिये हैं, उनमेंसे कितनोंका प्रभाव रामचरितमानसके कई स्थलोंपर दिखलाई पड़ेगा। इसका यह हरगिज मतलब नहीं, कि गोसाईजीने भाव वहाँसे चुराया, या उनकी प्रतिभा सिर्फ़ नक़ल करनेकी थी; गोस्वामी जीकी काव्य-प्रतिभा स्वतः महान् है। उसे पहलेकी प्रतिभाओंका वैसे ही सहारा मिला होगा, जैसे हरेक बालक को अपने पूर्वजोंकी कृतियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानका विस्तार करना पड़ता है।

(ख) पुष्पदन्त—पुष्पदन्तका नम्बर स्वयंभूके बाद आता है, किन्तु इस युगके बाक़ी कवियोंमें उसका स्थान बहुत ऊँचा है। पुष्पदन्तकी उपाधियोंमें अभिमान-मेघ बिल्कुल यथार्थ मालूम होता है। भंजी भरतको इस फक्कड़

कविकी बहुत नाज़बंदारी करनी पड़ी होगी। अमीरोंके लिए तो उसने पहले ही कह दिया था “चमरानिलही उड़ेउ गुणई”। “अभिषेक घोंयउ-सुज-नत्तनभाय।” कुष्णराजके दरबारमें पुष्पदन्त कभी अपने मनसे गया होगा, इसमें सन्देह ही भालूम होता है। पुष्पदन्तने विरहका वर्णन बड़ा सुन्दर किया है और गरीबीका भी। अमीरोंके विलासको छोड़कर तो वह महाकाव्यको लिख ही नहीं सकता था, इसलिए वह तो जरूरी ही था; मगर सामन्तोंकी संक्षिप्त किन्तु अतिकठोर आलोचना की है कुछ ही शताब्दियों पहले अपनी प्रजातंत्रीय स्वतंत्रतासे वंचित मगर अब भी जब-तब लड़ती रहनेवाली यौबेयकी भूमिका इतना आकर्षक वर्णन और अन्तमें उत्तर-कुस्की धनी-गरीब-रहित दास-राजा-शून्य दिव्य-मानववाली भूमिकी भारी तारीफ़ बतलाती हैं कि पुष्पदन्तका व्यक्तित्व किसी दूसरी ही तरहका था, जिसके लिए उस कालकी परिस्थिति अनुकूल नहीं थी।

(ग) दो कलिकाल-सर्वेश—हमारे इस युगमें दो “कलिकाल-सर्वेश” भी हैं। सिद्ध शान्तिपा या रत्नाकरशान्ति (१००० ई०) भारतके शायद सर्व-प्रथम “कलिकाल-सर्वेश” थे। गौड़ नृपतिके राजगुरु और विक्रमशिलाके प्रधान होनेसे भी मालूम हो सकता है, कि वह अपने समयके असाधारण पण्डित थे। शान्तिपाके कुछ दर्शन और एक छन्दःशास्त्र “छन्दो-रत्नाकर” ग्रन्थ अब भी बच रहे हैं। दूसरे कलिकाल-सर्वेश हैं आचार्य हेमचन्द्रसूरि (१०८८-११७६)। इनके संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। अपनी मातृभाषामें उन्होंने कोई स्वतंत्र काव्य रचा था, इसकी कम सम्भावना है। लेकिन अपने व्याकरण ‘छन्दोनुशासन’ और “देशी-नाममाला” (कोष) द्वारा जो सेवा उन्होंने हमारी भाषाकी की है, वह स्मरणीय है। अपने व्याकरण और छन्दोनुशासनमें उदाहरणके तौरपर उन्होंने अपभ्रंशके बड़े सुन्दर-सुन्दर सँकड़ों पद्य उद्धृत किये हैं, जिससे मालूम होता है कि वह इस भाषाको जम्बी नाकवाले पंथितोंकी तरह उपेक्षणीय नहीं समझते थे।

(घ) कवि अब्दुर्रहमान—अब्दुर्रहमान हिन्दीका प्रथम मुस्लिम कवि है। (उसकी) भाषा और कलासे मालूम होता है कि कविकी वाणी खूब मेंजी

हुई है। मधुर शब्दोंके चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखनेमें अब्दुर्रहमानने बड़ी सफलता प्राप्त की है। अफसोस है कि इतने सुन्दर कवि-की इतनी कम कविता हमें प्राप्त है। वह भी लुप्त हो गई होती, अगर किसी जैन-पुस्तक-भंडारने रक्षा न की होती। मंगलाचरणकी कुछ पंक्तियोंको छोड़-कर इसकी कवितामें धर्म कहीं छू नहीं गया। कविके वास्तविक कालके बारे-में हमें कुछ नहीं मालूम, लेकिन जान पड़ता है कविकी जन्म-भूमि मुलतानके महमूदके हाथमें जानेसे पहले अब्दुर्रहमान मौजूद थे।

(४) कवियोंकी असर कीर्ति

कवियोंने संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं, कामा नरक आदि बातोंका प्रचार करके सामन्तोंका ही हित किया, साधारण जनता और आगे आनेवाली पीढ़ीका तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होंने उत्पीड़ित प्रजाका पक्ष लेना तो दूर, उनके कष्टों तथा कारणोंके चित्रण करनेका भी प्रयास नहीं किया—इत्यादि-इत्यादि कितने ही दोष उनके ऊपर लगाए जा सकते हैं; लेकिन इसकी छिम्मेवारी बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाजपर है, इस बातका अपने पुराने महान् कवियोंके संबंधमें कोई फ़ैसला देते वक़्त हमें हमेशा ख्याल रखना होगा। सबसे बड़ी बात यह है, कि दोष भी तभी तक लोग देखेंगे, जब तक हमारी दुनिया नई नहीं बनती, इसकी सारी गंदगियाँ दूर नहीं हो जातीं। एक बार जहाँ हमारे समाजका कलेवर बदला, कि कवियोंकी महिमा सिर्फ़ उनके कवित्वके कारण होगी। रामके हाथों भुक्ति पानेवालोंका जब हमारे देशमें नाम भी नहीं रह जाएगा, तब भी तुलसीकी क्रोध होगी। स्वयंभूके धर्म (जैन)का अस्तित्व भी न रहनेपर स्वयंभू नास्तिक भारतका महान् कवि रहेगा। उसकी वाणीमें हमेशा यह शक्ति बनी रहेगी कि कहीं अपने पाठकोंको हर्षात्फुल्ल कर दे, कहीं शरीरको रोमांचित बना दे और कहीं आँखोंको भीगनेके लिए भजबूर कर दे। सनातन-तुलामें नापनेपर हमारे कवियोंका सम्मान शताब्दियोंके बीतनेके साथ अधिक और अधिक बढ़ता जाएगा। जिस वक़्त शत-प्रतिशत जनता शिक्षित और संस्कृत होगी, जिस वक़्त कलाकी निष्पक्ष परखका मान

और ऊँचा होगा, उस वस्तु हमारे कवियोंका कीर्ति-कलेवर, उनका आसन और ऊँचा होगा ।

कालने बड़ी बेदरदीसे हमारे पुराने कवियोंकी छँटाई की है । जाने कितने उच्च काव्योंसे आज हम वंचित हैं । लेकिन इस छँटाईके वाद जो कुछ हमारे पास बचकर चला आया है, उसकी कद्र और रक्षा करना हमारा कर्तव्य है । ऐसा करके ही हम अपने पूर्वजोंका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर सकते हैं ।

हम चाहते हैं कि आदिसे लेकर आज तकके सभी महान् कवियोंकी कृतियोंको पाठकोंके सामने इस तरह रखा जाए, जिसमें वह काव्य-रसका अच्छी तरह आस्वादन कर सकें, कवियोंके मुखसे तत्कालीन समाजकी आप-बीती जान सकें और कवि-परंपराने किस तरह आनेवाली पीढ़ियोंको प्रेरणा और सहायता दी, इसे भी अच्छी तरह समझ सकें । हमारे संग्रहका पाँच युगोंवाला वर्तमान प्रयास सिर्फ़ बीचवाला भाग है जो चार खंडोंमें समाप्त होगा । बीसवीं सदीके कवियोंका संग्रह पाँचवाँ खण्ड होगा और वेदसे लेकर पीछे तकके संस्कृत-पाली-प्राकृत कवियोंका सूक्ति-संग्रह एक अलग खण्ड । उस खण्डमें व्याप्ति काम नहीं चलेगा और मूल-भाषाका देना भी बेकार होगा, लेकिन हम चाहेंगे कि अनुवाद पक्ष-वद्ध हों और जहाँ तक हो सके उन्हीं छन्दोंमें; लेकिन यह काम कवि ही कर सकते हैं । यदि ऐसे कवि उसे अपने हाथमें लेना चाहेंगे, तो हम सहर्ष उनकी अथायोग्य सहायता करेंगे ।

विषय-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
१ : आठवीं सदी		(२) वसंत	३०
§ १. सरहपा (७६० ई०)	२	(३) संध्या-वर्णन	३२
१. बोहा	३	३. भौगोलिक वर्णन	३
(१) रहस्यवाद	३	(१) देश-वर्णन	=
(२) पाखंड-खंडन	४	(२) नगर-वर्णन	३४
(३) मंत्र-देवता बेकार	३	(क) राजगृह	=
(४) सहज-मार्ग	६	(ख) महेन्द्रनगर	=
(५) भोगमें निर्वाण	३	(ग) दक्षिमुखनगर	३६
(६) काया तीर्थ	=	(३) समुद्र-वर्णन	३
(७) गुरु-महिमा	३	(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन	३८
(८) सहज संयम	१२	(५) वन-वर्णन	४०
(९) कमल-कुलिश साधना	१४	(६) मातृभूमि (अयोध्या)- प्रशंसा	३
२. गीत	१६	(७) यात्रा-वर्णन	३
(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी	३	(क) हनुमानकी लंकासे अयोध्याकी यात्रा	३
(२) सहज-मार्ग	१८	(ख) रामकी लंकासे अयोध्या-यात्रा	४६
§ २. शबरपा (७८० ई०)	२०	४. समन्त-समाप्त	=
रहस्यवाद	३	(१) भोजन-प्रकार	३
§ ३. स्वयंभूदेव (७९० ई०)	२२	(२) नारी-सौन्दर्य	४८
१. आत्म-परिचय	३	(क) सीता	३
(१) कविका आत्म-निवेदन	३	(ख) मन्दोदरी	५०
(२) रामायण-रचना	२६	(ग) रावण-रनिवास	५२
२. ऋतु-और कास-वर्णन	३	(घ) अयोध्याका रनिवास	५४
(१) पावस	३		

	पृष्ठ		पृष्ठ
(ङ) मित्र-मित्र देशोंकी नारियाँ	५६	(घ) कृष्णकर्णका युद्ध	६०
(३) जल-जीड़ा	५८	(ङ) सुग्रीव-मेघवाहन-युद्ध	६२
(४) प्रेम (काम)-अवस्था	६०	(च) रावणका शरीर	६४
(५) विरह (सीता)	६२	(छ) लक्ष्मण-रावणयुद्ध	६६
(६) मिलन (सीता-राम)	६४	(न) रण-क्षेत्र	६८
(७) नारी-अधिकार	६६	(६) विजयोत्साह	१००
(क) रावणको सीता-का जवाब	॥	(१०) लक्ष्मणके हाथ रावण-की मृत्यु	॥
(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता	६८	६. विजय	१०२
५. सामन्त और युद्ध	७०	(१) विजयिनी-रामसेनाका लंका-प्रवेश	॥
(१) सामन्त (राम)-वेश	॥	(२) विभीषण द्वारा रामका स्वागत	॥
(२) देश-विजय (देशोंके नाम)	७२	(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत	॥
(३) योधाओंकी उमंगें	७४	(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा (वीर-रावण)	१०४
(४) पत्नीसे बिदाई	७६	७. विलाप	१०६
(५) रण-यात्रा	७८	(१) नारी-विलाप	॥
(६) सैनिक बाजे	८०	(क) अयोध्या-अंतःपुर-का०	॥
(७) युद्ध-वर्णन	८२	(ख) रावण-परिजन-विलाप	१०८
(क) मेघवाहनका युद्ध हथियारोंकी शक्तिकी तुलना	॥	(ग) मन्दोदरि-विलाप	११०
(ख) मेघवाहन-हनुमान-युद्ध	८४	(२) बंधु-विलाप	११२
(ग) हनुमानका युद्ध	८८		

	पृष्ठ		पृष्ठ
(क) दशरथ-विलाप	११२	§ १०. कुक्कुरीपा (८४० ई०)	१४२
(ख) राम-विलाप	११४	§ ११. कमरिपा (८४० ई०)	१४४
(ग) भरत-विलाप	११६	§ १२. कण्हपा (८४० ई०)	१४६
(घ) रावण-विलाप	११८	(१) पद्म-पंडित-निन्दा	"
(ङ) विभीषण-विलाप	१२०	(२) सहज-मार्ग	"
८. कविका संवेश	१२२	(३) निर्वणि-साधना	१४८
(१) काथा-नरक	"	(४) रहस्य-गीत	१५०
(२) गर्भवास दुःख	१२४	(५) वज्र-गीत	१५४
(३) आवागमन दुःख	"	§ १३. गोरक्षपा (८४५ ई०)	१५६
(४) संसार तुच्छ	१२६	१. आत्म-परिधय	"
(५) कोई किसीका नहीं	१३०	(१) मछेन्द्रके शिष्य	"
(६) सामाजिक भेद-भाव	"	(२) चौरासी सिद्धोंसे संबंध	"
धर्म-अधर्मसे	"	२. वर्णन	१५७
§ ४. भुसुक्पा (८०० ई०)	१३२	(१) सहज-यान	"
रहस्यवाद	"	(२) मध्य-मार्ग	१५८
२। नवीं सदी		(३) अलख-निरंजन	"
§ ५. लुईपा (८३० ई०)	१३६	(४) शून्यतत्त्व	१५९
रहस्यवाद	"	(५) रहस्यवाद	"
§ ६. विरूपा (८३० ई०)	१३८	३. साधना और उलटवांसी	१६१
रहस्यवाद	"	(१) साधना	"
§ ७. डोम्बिया (८४० ई०)	१४०	(२) उलटवांसी	"
रहस्यवाद	"	४. संवेश	१६२
§ ८. दारिकपा (८४० ई०)	"	(१) रुढ़ि-खंडन	"
रहस्यवाद	"	(२) राजा-प्रजा समान	१६३
§ ९. गुंडरीपा (८४० ई०)	१४२	(३) योगमें योग	"

	पृष्ठ		पृष्ठ
§ १४. टेंटणपा (८५० ई०)	१६४	(२) पावस-ऋतु	१८२
§ १५. महीपा (८७० ई०)	"	३. भौगोलिक वर्णन	१८६
§ १६. भादेपा (८७० ई०)	१६६	(१) हिमालय	"
§ १७. धामपा (८७० ई०)	"	(२) देश-विजय	१८८
		(३) यीधेय-भूमि	१९०
		(४) मगध-भूमि	१९२
		(५) मालव-ग्राम	"
३ : दसवीं सदी		४. सामन्त-समाज	१९४
§ १८. देवसेन (९३३ ई०)	१६८	(१) राजत्वके दुर्गुण	"
(१) सदाचार-उपदेश	"	(२) राजद्वार	१९६
(२) दान-महिमा	१७०	(३) सामन्ती-भोग	"
(३) धर्माचरण-महिमा	"	(क) वेश्या-व्यापार	१९८
(४) धर्माचरण	"	(ख) विवाह-वर्णन	"
§ १९. तिलोपा (९५० ई०)	१७२	(ग) रान्धियोंका जीवन	२००
(१) सहज-मार्ग	"	(घ) नारी-सौन्दर्य-वर्णन	"
(२) निर्वाण-साधना	"	(ङ) नख-शिल-वर्णन	२०४
(३) निरंजन-तत्त्व	१७४	(च) कुपिता नायिका	२०६
(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार	"	(४) नारी-विलाप	"
(५) भोग छोड़ना बुरा	"	(५) युद्ध	२०८
§ २०. पुष्पदन्त (९५९-७२)	१७६	(६) हस्ति-युद्ध-श्रीड़ा	२१२
१. आत्म-परिचय	"	५. धार्मिक आचार	२१४
(१) कुण्डके स्कंधावारमें कवि	"	(१) श्रोत्रिय कौन ?	"
(२) आश्रयदाता मंत्रीकी प्रशंसा	१७८	(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म	"
(३) भरतके घरमें स्वागत	१८०		
२. काल-मीर ऋतु-वर्णन	१८२		
(१) संध्या-वर्णन	"		

	पृष्ठ		पृष्ठ
६. कृष्ण लीला	२२०	(५) निरंजन-गीत	२४६
(१) गोपियोंके साथ	"	(६) पंथ-मोक्षीपत्रा-निन्दा	२४८
(२) पूतना-लीला	२२२	(७) शून्य-ध्यान	"
(३) झोखल-बंधन	"	(८) योग-भावना	२५०
(४) देवकीनंद घरमें	२२४	(९) सभी देव समान पूजनीय हैं	२५२
(५) गोवर्धन-धारण	२२६	§ २३. रामसिंह (१००० ई०)	"
(६) कालिय-दमन	"	(१) जग तुच्छ	"
(७) कृष्ण-महिमा	२३०	(२) निरंजन-साधना	२५४
७. कविका संदेश	"	(३) पाखंड-खंडन	२५६
(१) गरीबी	"	(४) गुरु-महिमा	२५८
(२) नीति-वचन	२३२	(५) मंत्र-तंत्र ध्यान-आदि बेकार	"
(३) सोहै	"	§ २४. धनपाल (१००० ई०)	२६०
(४) दशंद-वेदान्त	२३४	१. कवि-परिचय	"
(५) काया-नरक	"	२. भौगोलिक वर्णन	२६२
(६) संसार तुच्छ	२३६	(१) कुह-जंगल-देश	"
(७) पूर्व-कर्मवाद	"	(२) गज (हस्तिना) पुर	"
(८) साम्भवादी द्वीप	२३८	३. क्षणिक-सार्थ	२६४
§ २१. शान्तिपा (१००० ई०)	"	(१) बंधुदत्तके सारथीकी तैयारी	"
रहस्यवाद	"	(२) भविष्यदत्तकी मांका विरोध	"
§ २२. योगीन्दु (१००० ई०)	२४०	(३) माताका उपदेश	२६८
(१) ज्ञान-समाधि	"	(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा	"
(२) अलख-निरंजन	२४२	(५) समुद्र-यात्रा	२७०
(३) आत्मा	"	४. सामन्ती वणिक्-सभा	२७२
(४) परमतत्त्व (परमात्मा)	२४४	(१) वसन्त-वर्णन	"

	पृष्ठ		पृष्ठ
(२) नारी-सौन्दर्य	२७४	(४) हेमन्त	३०८
(३) आभूषण-सज्जा	२७६	(५) शिशिर	"
(४) विरह-वर्णन	२७८	(६) वसन्त	३१०
५. सामन्त-सभाष	२८०	§ २७. बज्जर (१०५० ई०)	३१४
(१) राजद्वार (राजागण)	"	१. जन्म-जीवन	"
(२) सामन्ती-युगकी शिक्षा	२८२	(१) गरीबीका जीवन	"
(३) युद्ध (भविष्यवत्सका)	"	(२) सुखी-जीवन	"
४ : ग्यारहवीं सदी		२. सामन्त-सभाष	३१६
§ २५. अज्ञात कवि (१०१० ई०) २८६		(१) कुलक्षणा स्त्री	"
१. तैलप द्वारा पराजित मुंजकी		(२) नारी-सौन्दर्य	"
विषय	"	(३) ऋतु-वर्णन	३१८
(१) मुंजका पश्चात्ताप	"	(क) ग्रीष्म	"
(२) रुद्रादित्य मंत्रीकी सीख	२८८	(ख) पावस	"
(३) मुंजसे सीख संगवाना	"	(ग) शरद	३२०
२. सुखी कुटुम्ब	२९०	(घ) शिशिर	"
३. दासी-प्रेम-निन्दा	"	(ङ) वसन्त	"
४. नीति-वार्त्ता	"	(४) वीर-प्रशंसा	३२४
५. वैराग्य	"	(५) कर्णराजाकी प्रशंसा	"
§ २६. अब्दुर्रहमान (१०१० ई०) २९२		(६) कविका सन्देश	३२६
१—परिचय	"	(जग तुच्छ)	"
२—प्रोषित-पत्रिकाका सन्देश	"	§ २८. कनकामर भुनि	
३—ऋतु-वर्णन	३०२	(१०६० ई०)	३२८
(१) ग्रीष्म	"	१. भौगोलिक वर्णन	"
(२) वर्षा	३०४	(१) अंगदेश-वर्णन	"
(३) शरद	"	(२) चम्पानगरी	"
		(३) सिंहलद्वीप-वर्णन	३३०

	पृष्ठ		पृष्ठ
२. सामन्त-सभाज	३३२	(३) कुलंभ मानुष-जन्म	३५६
(१) राज-दर्शन	"	(४) गुरु सब कुछ	"
(२) राजकुमार-शिक्षा	३३४	५ : चारहवीं सदी	
(३) पति-विरह-वर्णन	"	§ ३०. हेमचन्द्र (११२० ई०)	३५८
(४) पति-विरह	३३६	१. सामन्त-सभाज	"
(५) दिग्विजय	३३८	(१) राज-प्रशंसा	"
(६) युद्ध-वर्णन	३४०	(२) वीर-रस	३६०
३. कविका संदेश	३४२	(३) कुनारी-वर्णन	३६४
(१) मुनिका दर्शन	"	(४) शृंगार	"
(२) संसार तुच्छ	३४४	(५) ऋतु-वर्णन	३७२
§ २९. जिनदत्त सूरि		(क) पावस	"
(११०० ई०)	३४८	(ख) शरद्	३७४
१. जिन-वंदना	"	(ग) हेमन्त	"
२. गुरु-महिमा	"	(घ) वसन्त	"
(जिन-वत्सल)	"	(६) विरह-वर्णन	३७८
(१) दर्शन-व्याकरणादि	"	२. नीति-वाक्य	३८२
विद्यानिधान	"	§ ३१. हरिभद्र सूरि (११५९ ई०)	३८४
(२) गुरु-दर्शनका महा-		१. प्रकृति-वर्णन	"
फल	३५०	(१) प्रातः	"
(३) गुरुकी शिक्षाका फल	३५२	(२) वसन्त	३८६
३. वैश्या-निन्दा	३५४	२. सामन्त-सभाज	३८८
४. कविका संदेश	"	(१) नारी-सौन्दर्य	"
(१) जात-पात भञ्जक	"	(२) पुरुष (कृष्ण)-सौन्दर्य	"
करो	"	(३) विवाह-महोत्सव	"
(२) वर्णोपदेश	"	(४) नारी-विलाप	३९०

	पृष्ठ		पृष्ठ
३. कविका संदेश	३६२	३. कविका संदेश	४१६
(सब तुच्छ)	"	(१) जग तुच्छ	"
§ ३२. अज्ञात कवि (१२६०)	"	(२) इन्द्रियोंको मारो	४१८
१. जगद् साहुके रामकी प्रशंसा	"	(३) नरकका भय	४२०
२. अकालमें दुर्वंशा	"	§ ३७. जिनपक्ष सूरि	
§ ३३. आममट्ट (११७० ई०)	३६४	(१२०० ई०)	४२२
सामन्त-प्रशंसा	"	१. ऋतु-वर्णन	"
(१) सिद्धराज-प्रशंसा	"	पावस	"
(२) कुमारपाल-प्रशंसा	"	२. सामन्त-समाज	४२४
§ ३४. विद्याधर (११८० ई०)	३६६	(१) शृंगार-सज्जा	"
सामन्त-प्रशंसा	"	(२) हाव-भाव	४२६
(जयचन्द-महिमा)	"	§ ३८. विनयचन्द्र (१२००)	४२८
§ ३५. शालिभद्र सूरि		विरह-वर्णन	"
(११८४ ई०)	३६८	(बारहमासा)	"
सामन्त-समाज	"	§ ३९. चन्द बरदाई	
(१) सिंहासनासीन राजा	"	(१२०० ई०)	४३४
(२) सेना-यात्रा	४००	१. हिमालय-वर्णन	"
§ ३६. सोमप्रभ सूरि		२. सामन्त-समाज	"
(११९५ ई०)	४०८	(१) राजा(बीसल)-	
१. भीति-वाक्य	"	प्रशंसा	"
२. सामन्त-समाज	४१०	(२) शृंगार-रस	४३५
(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलभद्र	"	(३) युद्ध	४३८
(२) नारी-सौन्दर्य	४१२	(क) वीर-रस	"
(३) वसंत	"	(ख) रण-यात्रा	"
(४) प्रेम	४१४	(ग) युद्ध-वर्णन	४३९
(५) विरह	४६१	(घ) युद्धमें छल	४४१

	पृष्ठ		पृष्ठ
३ कविका संक्षेप	४४१	(४) शंकर-स्तुति	४६०
(भाग्यवाद)	"	३. कविका संक्षेप	"
६ : तेरहवीं सदी		सन्तोष और निराशावाच	४६४
§ ४०. लक्ष्मण (१२५७ ई०)	४४२	§ ४३. हरिश्चन्द्र (१३०० ई०)	"
१. आत्म-परिचय	"	मंत्री (चंदेश्वर)-प्रशंसा	"
(१) काव्य-भूमि	"	§ ४४. अंबदेव सूरि	
(२) आत्म-परिचय	"	(१३०० ई०)	४६६
(३) कविका दोनता-प्रकाश	४४४	१. सामन्त-सभाज	"
२. सामन्त-सभाज	"	(१) सेठ (समरसिंह)-प्रशंसा	"
(१) राजधानी (रायवड्डिय)	"	(२) बादशाह और मीरकी	
(२) राजा (आहवमल्ल)-		प्रशंसा	४६८
प्रशंसा	४४६	२. तीर्थयात्री "सेना"	"
(३) रानी (ईसरदे)-प्रशंसा	४४८	३. रचना-काल	४७०
(४) मंत्री (कान्हड)-प्रशंसा	"	§ ४५. अज्ञात कवि	
(५) मंत्रिपत्नि-प्रशंसा	४५०	(१३०० ई०)	४७२
§ ४१. जज्जल (१२८० ई०)	४५२	कविका	"
वीर-रस	"	(वैराग्य और वात्सल्य)	"
(राजा हंमीर-प्रशंसा)	"	§ ४६. अज्ञात कवि	
§ ४२. अज्ञात कवि (१२९०)	४५६	(१३०० ई०)	४७८
१. सामन्त-सभाज	"	जीते जी कीर्ति	"
(युद्ध-वर्णन)	"	§ ४७. राजशेखर सूरि	
२. देव-स्तुति	४५८	(१३००)	"
(१) दश-अवतार	"	सामन्त-सभाज	"
(२) राम-स्तुति	"	(१) नारी-सौन्दर्य	"
(३) कृष्ण-स्तुति	४६०	(२) शृंगार-सजाव	४८०

[१]

१-सिद्ध-सामन्त-युग

(७६०—१३०० ई०)

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-शुभ

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

काल—७६० ई० (गोपाल-वर्षपाल ७५०-७०-८०६ ई०) । देश—मगध (नालंदा) । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (६) । कृतियाँ—कायकोष-अमृत-वक्रगीति, विसकोष-भज-वज्रगीति, हाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, दोहाकोष-

१-दोहा^१

(१) रहस्यवाद

अलिप्तो ! धम्म-महासुह पइसइ । लवणो जिमि पाणीहि विनिज्जइ ॥२॥
मन्तह मन्ते सन्ति ण होइ । पडिलभित्ति की उट्टिउ होइ ॥६॥
तरुफल-दरिसण भउ अग्घाइ । वेज्ज देखिख की रोग पसाइ ॥७॥

बाव ण आप अणिज्जइ, ताव ण सिस्स करेइ ।

अन्मा अन्ध कटाव तिम, वेण्ण 'वि कूव पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष^२
सङ्कु-पास तोठहु गुरु-वअणे^३ । ण सुनइ सो णउ दीसइ णअणे^४ ॥३॥
पवण वहन्ते भउ सो हत्सइ । जलण जलन्ते भउ सो वउम्भइ ॥४॥
घण वरिसन्ते भउ सो तिम्मइ । ण उदज्जहि भउ सअहि पइस्सइ ॥५॥

णउ तं वाअहि गुरु कहइ, णउ तं बुज्जइ सीस ।

सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस ॥६॥

सअ-संविती तत्तफलु, सरहापाअ भणन्ति ।

ओ मण-ओअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति ॥१०॥

—सरहपादीय दोहा ७, ८

^१ बेल्सो मेरी "पुरातरण-निबन्धावलि" पृ० १६६ ^२ The Journal of the

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-शुग (७६०-१२०० ई०)

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

उपदेशपीति, बोहाकोष, तस्योपवेश-शिक्षर-बोहाकोष, भावनाफल-वृष्टिचर्या-बोहाकोष, वसन्ततिलक-बोहाकोष, चर्यागीति-बोहाकोष, महामुद्रोपवेश-बोहाकोष, सरहपाव-गीतिका ।

१-दोहा

(१) रहस्यवाद

अलिप्तो ! धर्ममहासुख प्रविशइ । नोन जिमी पानिहीं बिलिज्जइ ॥२॥
मंत्रहिं मंत्रे शान्ति न होइ । प्रतिलब्धी का उत्पित होइ ॥६॥
तरुफल-दर्शन नाहिं भषाइ । वैद्यहिं देखि कि रोग पराइ ॥७॥

जबलों आप न जानिये, तबलों सिख न करेइ ।

अन्धा काळे अन्ध तिमि, बोझहिं कूप पड़ेइ ॥८॥ —दोहाकोष
शंख-भाष तोड़हुं गुरु-वचने । न सुनइ सो नहिं दीसइ नयने ॥३॥
पवन बहन्ते ना सो हिल्लइ । ज्वलन जलन्ते ना सो डहियइ ॥४॥
घन बरसन्ते ना सो भीजइ । न उपजं न क्षयहिं पईसइ ॥५॥

ना सो वाचहिं गुरु कहइ, ना सो बूझइ शिष्य ।

सहजामृत-रस सकल जग, कासु कहीजे कस्य ॥१॥

स्वक-संवित्ती तस्य-फल, सरहपाव भनन्ति ।

जो मन्त्र-गोचर पाइअइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥१०॥

—दोहा ७, ८

(२) पाखंड-खंडन

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ । ऐवह पढिअउ ए चउबेउ ॥१॥

मट्टि पाणि कुस सई पढन्त । घरही बइसी अगि हणन्त ॥

कज्जे विरहइ हुअवह होमें । अक्खि बहाविअ कहुए धूये ॥२॥

ऐकदण्डि त्रिदण्डी भभवां वेसे । विणुआ होइअह हंस-उएसे ।

मिच्छेहाँ जग बाहिअ भुल्ले । धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले ॥३॥

अहरिएहि उडूलिअ छारे । सीस सु बाहिअ ए जहमारे ॥

घरही बइसी दीवा जाली । कोणहि बइसी घण्टा चाली ॥४॥

अक्खि णिबेसी आसण बन्धी । कण्णेहिं खुसखुसाइ जण घन्धी ॥

एण्डी-मुण्डी अण्ण वि वेसे । विक्खिअज्जइ दक्खिण-उवेसे ॥५॥

दीहणवत्त जइ मलिणे वेसे । णगल होइ उपाडिअ केसे ॥

खवणेहि जाण-विडंविअ वेसे । अण्ण बाहिअ भोक्ख-उवेसे ॥६॥

जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह ।

लोम उपाडण अरिथि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्बह ॥७॥

पिन्धी गहणे दिट्ठ भोक्ख, ता मोरह चमरह ।

उळ्ळ-भोअणे होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ॥८॥

सरह भणइ खवणण भोक्ख, महु किम्पि न भावइ ।

तत्त-रहिअ काआ ण ताब, पर केवल साहइ ॥९॥

खेल्लु भिक्खु जे धविर उवेसे । बन्देहिं आ पब्बज्जिअ-वेसे ॥

कोइ सुदण्ठ बइसाण बइट्ठो । कोवि चिप्ते कर सोसइ डिट्ठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

ओ जसु जेण होइ सन्तुट्ठों । भोक्ख कि लब्धइ भाण पविट्ठो ॥

किन्तह दीवे कि तह णेवेज्जे । किन्तह किज्जइ मंतह सेब्बे ॥१४॥

(२) पाखंड-खंडन

ब्राह्मणहि ना जानन्ता भेद । यों ही पढ़ें उ ये चारो वेद ॥१॥

माटि पानि कुश सिमे पढ़न्त । घरही बड़ही अग्नि होमन्त ॥

कार्य बिना ही हुतबहु होमैं । आशि कहावे कहुये घूये ॥२॥

एकदण्डि त्रिदण्डी भगवा बेसे । ना होइहि विनु हंस-उपदेशे ॥

मिथ्यहि अण बाहेऊ भूले । धर्म-अधर्म न जानैं उ तुल्ये ॥३॥

आचरियेहि सपेटी छारा । सीसहि क्षोभत ये जट-भारा ॥

घरही बड़से दीपक वारी । कोलहि बड़से घंटा चाली ॥४॥

आशि निवेशी आसन बाँधा । कर्णें खुसखुसाय जन भन्दा ॥

रंडी-मुंडी अन्यहुं भेसे । देखीयत दन्दिना-उदसें ॥५॥

दीर्घनसा जो भलिने भेसे । नंगा होइ उपाधिय केशे ॥

क्षपणक ज्ञान-विडंबित भेसे । अपना बाहर मोक्ष गवेसे ॥६॥

यदि नंगाये होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहुं ।

लोम उपाटे होइ सिद्धि, तो युवति-नितम्बहुं ॥७॥

पिच्छि गहे देखैं उ जो मोक्ष, तो मोरहु चमरहुं ।

उच्छ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरंगहुं ॥८॥

सरह भनै क्षपणकी मोक्ष, मोहि तनिक न भावइ ।

तत्त्व-रहित काया न ताप, पर केवल साधइ ॥९॥

चेला भिक्षु जे स्थविर-उदेसे । बन्दहि आ प्रव्रजिता-बेसे ।

कोइ स्वतंत्र व्याख्यान बईठो । कोइ चिन्ता करि शोधइ बीठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता भेकार

जो जाँसु जेन होइ सन्तुष्टो । भोक्ष कि लभियइ ध्यान-प्रविष्टो ॥

की तेहि दीपेहि की नवेचे । की हि कीजियइ मन्त्रहुं सेवे ॥११॥

किन्तुह तित्थ तपोवण जाई । मोक्स कि लब्धइ पाणी न्हाई ॥१५॥
 छाड़हुरे भालीका बन्धा । सो मुंचहु जो अच्छहु बन्धा ॥
 समु परिआणे अण्ण न कोई । अवरे गणे सब्बी सोई ॥१६॥
 सोवि पढ़िज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्य-पुराणे वक्खाणिज्जइ ॥
 णहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ । एकै वर गुरु-पात्रे पेक्खइ ॥१७॥
 भाण-हीण पब्बज्जे रहिअउ । घरहि बसन्ते भज्जे सहिअउ ।
 जइ मिंढि विसअ रमन्त ण मुच्चइ । सरह भणइ परिआण कि मुच्चइ ॥१८॥
 जइ पच्चक्ख कि भाणे कीअअ । जइ परोक्ख अंधार म वीअअ ॥
 सरहे णित्ते कह्खिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जल्लइ भरइ उवज्जइ वज्जइ । तल्लइ परममहासुह सिज्जइ ॥
 सरहे गहण गुहिर मग कहिआ । पसू-लोअ निव्वहि जिम रहिआ ॥२१॥
 भाण-रहिअ की कीअइ भाणे । जो अवाअ तहि काह वखाणें ॥
 भव मुदे सअसहि जग बाहिउ । णिअ सहाव णउ केण' वि साहिउ ॥२२॥
 भन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सब्ब' वि रे बड़ ! विअम-कारण ॥
 असमल चित्त म भाणें खरडह । सुह अक्खन्त म अप्पणु भगइह ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

स्वाअन्त पिअन्ते सुहहि रमन्ते । णित्त पुण्णु चक्का'वि भरन्ते ॥
 अइस वम्म सिज्जइ परलोअह । णाह पाए दलीउ अमलोअह ॥२४॥
 जहि मण पवण ण संचरइ, रवि सत्ति णाह पवेस ।
 तहि वड़ !! चित्त विसाम कर, सरहे कहिअ उएस ॥२५॥
 आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिआण ।
 ऐहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥
 सअ-संवित्ति म करहु रे' बन्धा । भावामाव सुगति रे बन्धा ॥
 णिअ, मण मुणहुरे' णिउणें जोई । जिम जल जलहि मिलन्ते सोई ॥३२॥

की तेहि लीख तपोवन जाई । भोज कि लभियहि पानि नहाई ॥१५॥
छाड़हु रे अलीका बन्धा । सो मुंचहु जो घाछै मन्दा ।
तसु परि-जाने अन्य न कोई । अपरे भने सबे ही सोई ॥१६॥
सोइ पढ़िज्जइ सोइ गुणिज्जइ । शास्त्र-पुराणे वक्खातिज्जइ ।
नाहि सो दीख जों तव ना लक्खई । एकहिं वर गुरु-पादें पेखई ॥१७॥
ध्यानहीन प्रव्रज्या - रहितउ । घरहिं बसन्ते भार्या-सहितउ ॥
यदि दूढ़ विषय-रती ना मुंचइ । सहइ भणइ परि-ज्ञान कि मुंचइ ॥१८॥
यदि प्रत्यक्ष कि ध्याने कीजिय । यदि परोक्ष अंधारमें ध्याइय ।
सरहैंहि नित्ये काढिउ राख । सहज स्वभाव न भावाभाव ॥१९॥

(४) सहज-भार

ज्वरइ भरइ उपजइ बध्यायइ । तहैं लथ होइ महासुख सिध्यइ ।
सरहैं गहन गह्वर भग कहिया । पशू-लोक निर्बोध जिमि रहिया ॥२१॥
ध्यान-रहित की कीजै ध्याने । जो भवाक् तेहि, काहि बखाने ।
भव-मुद्राहिं जग सकल बहायउ । निज स्वभाव ना काहुहि साधेउ ॥२२॥
भंज न तंत्र न ध्येय न धारण । सर्वहु मूढ़ रे ! विभ्रम-कारण ।
निर्मल चित्त न ध्याने लींचहु । सुम अछते न आपन भगइहु ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाते पीते सुखहिं रमन्ते । नित्य पूर्ण चक्रहु मरन्ते ।
अइस धर्म सिध्यइ परलोका । नाथ पाइ दलिया भयलोका ॥२४॥
जहैं मन पवन न संचरइ, रवि-शशि नाहि प्रवेश ।
तहैं मुढ़ ! चित्त विश्राम कह, सरह कहेंउ उपदेश ॥२५॥
आदि न अंत न मध्य नाहि, नाहि भव नाहि निर्वाण ।
ऐहु सो परममहासुख, नाहि पर नाहि अप्पान ॥२६॥
स्वक-संजिति न करहु रे मंदा । भावाभाव सुगति रे बंधा ।
निज मन ध्यायहु हिपुणे योगी । जिमि जल जलहिं मिलते सोई ॥

पड़में जह आभास विमुद्धो । चाहते चाहते दिट्ठि गिरुद्धो ॥
 ऐसे जह आभास विकालो । णिअ मण दोस न कुज्झइ वालो ॥३४॥
 मूल-रहिअ जो चिन्ताइ तत्त । गुरु-उवएसे एत-विधत्त ॥
 सरह भणइ बड़ ! जाणहु चंगे । चित्त-रुअ संसारह भंगे ॥३७॥
 णिअ मण सब्बे सोहिअ जब्बे । गुरु-गुण हियए पइसइ तब्बे ॥
 एवें मणे गुणि सरहे शाहिउ । तन्त मन्त नउ एक्क'वि चाहिउ ॥३९॥
 जब्बे मण अत्थमण जाइ, तणु तुट्ठइ बंधण ।

तब्बे समरस सहजे, बज्जइ सुइ न बम्हण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एत्थु सेँ सुरसरि जमुणा, एत्थ सेँ गंगा सागर ।
 एत्थु पद्माग वनारसि, एत्थु सेँ चन्द दिवागर ॥४७॥
 खेतु-पीठ-उपपीठ, एत्थु मई भमइ परिट्ठओ ।
 देहा-सरिसअ तित्थ, मई सुह अण्ण न दिट्ठओ ॥४८॥
 सण्ह-पुअणि-इस-कमल-गन्ध केसर वरणाळे ।

छहहु वेणिम न करहु सोसण लग्गहु बठ ! आले ॥४९॥

काय तित्थ सअ जाइ, पुच्छह कुल ईणओ ।
 बम्ह-विट्ठु तेलोअ, सअल जाहि गिलीणओ ॥५०॥

वुद्धि विणासइ मण भरइ, जहि तुट्ठइ अहिमाण ।
 स माअमअ परम फलु, तहि कि बज्जइ माण ॥५३॥

मवहि उअज्जइ सअहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु काहि उवज्जइ ॥
 विण्ण-विज्जिइ जोऊ बज्जइ । अच्छइ सिरि गुत्ताह कहिज्जइ ॥५४॥

देक्खहु सुणहु परोसहु साहु । जिअहु कमहु बइठ-उट्ठाहु ॥
 आल - मास व्यवहारे पेल्लह । मण छइ एक्काकार न चल्तह ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उवएसे अभिअ-रसु, धाव न पीअउ जेहि ।
 बहु-सत्थत्थ-भस्सलहि, तिसिए मरिअउ तेहि ॥५६॥

प्रथमे यदि आकाश विबुद्धा । देखत देखत वृष्टि निरुद्धा ॥
 ऐसे यदि आयास विकासो । निज मन दोषहि बूझ न वालो ॥३४॥
 मूल-रहित जो चित्तइ तत्त्व । गुरु-उपदेशे अस्तं-अस्त ॥
 सरह भरी मूढ़ ! जानहु बंगा । चित्त-रूप संसारहु बंगा ॥३७॥
 निज मन सबै शोधिय जखै । गुरु-गुण हृदये पविसहु तखै ॥
 ऐस समुक्ति मन सरहै गाहेँउ । तत्र-भत्र नहि एकहु जाहेँउ ॥३६॥
 जखै मन अस्तमन आह, तन दूटइ बंधन ।

तखै समरस सहजे, कहियइ शूद्र न ब्राह्मण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एहिँ सों सुरसरि जमुना, एहिँ सो गंगासागर ।
 एहिँ प्रयाग वाराणसी, एहिँ सो चंद्र-दिवाकर ॥४७॥
 क्षेत्र-पीठ-उपपीठ, एहीँ में भ्रमउँ बाहिरा ।
 देहा सदृशा तीर्थ, नहीं में अन्यहिँ देखा ॥४८॥
 वन-पद्मिनि-दल-कमल-गंध-केसर-धर-नाले ।

छाड़हु द्वैतहि न करहु शोषण, मूढ़ ! न लागहु आरे ॥४९॥
 काय तीर्थ क्षय जाय, पूछहु कुलहीनहै ।
 ब्रह्म-विष्णु त्रैलोक्य, सकलहिँ निरीन अहै ॥५०॥
 बुद्धि विनासै मन मरै, अहै टूटै अभिमान ।

सो मायामय परम-फल, तहें की बाधिय ध्यान ॥५३॥
 भवहीँ उपजै क्षयहिँ विनाश । भाव-रहित पुनि का उत्पाद ॥
 द्वैत-विवर्जित योगहुँ वर्ज । ऐसो श्रीगुरुनाथ कहीजै ॥५४॥
 देखहु सुनहु श्रवहुँ साहु । सूँवहुँ भ्रमहुँ बहटुँ उट्टाहुँ ॥
 कय-विक्रय व्यवहारे । पैलहुँ । मन छाड़हुँ ऐक-कार न चल्लहुँ ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उपदेशे अमृत-रस, धाइ न पीयेँउ जेहि ।
 बहु-शास्त्रार्थ-मस्त्यजहिँ, तृषितै मरेँऊ तेहि ॥५६॥

चित्ताचित्ति'वि परिहरहु, तिभ अच्छहु जिम बालु ।

गुरु-वग्रणें विद भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु ॥५७॥

अक्षर वण्ण परमगुण रहिजे । भणइ न जाणइ एमइ कहिजे ॥
 सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । सुरअ-कुमारी जीम पड़िज्जइ ॥५८॥
 भावाभावे जो परिहीणो । ताहि जग सअसासेस विलीणो ॥
 जब्बे तहें भण गिच्चल थक्कइ । तब्बे भव-संसारहु मुक्कइ ॥५९॥
 आव न अप्पहि पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥
 एमइ कहिजे भन्ति न कब्बा । अप्पहि अप्पा बुज्जसि तब्बा ॥६०॥
 घरे अच्छई बाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पड़िवेसी पुच्छइ ॥
 सरह भणइ बड़ ! जाणउ अप्पा । नउ सो अन्न न आरण-अप्पा ॥६१॥
 विसअ रमन्त न विसअ बिलिप्पइ । ऊअर हरइ न पाणी छिप्पइ ॥
 एमइ जोई भूस सरन्तो । विसहि न बाहुइ विसअ रमन्तो ॥६४॥
 अणिमिस-तोअण चित्त गिरोहे । पवण गिरुहुइ सिरि-गुरु-बोहे ॥
 पवण बहइ सो गिच्चलु जब्बे । जोई कालु करइ कि रे तब्बे ॥६६॥
 पण्डिअ सअस सत्य वक्खाणइ । देहहि बुद्ध वसन्त न जाणइ ॥
 अवणाअमण न तेण विखण्डिअ । तो'बि गिलज्ज भणइ हँउ पण्डिअ ॥६८॥
 जीवन्तहु जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।

गुरु-उवएसे विमल-मइ, सो पर घण्णा कोइ ॥६९॥

विसअ-विबुद्धे नउ रमइ, केवल सुण्ण करेइ ।

उट्ठी वोहिअ-काउ जिम, पलुटिअ तह'बि पड़ेइ ॥७०॥

विसआसति म बन्ध करु, अरे बड़ ! सरहे वुत्त ।

मीण-अज्झम-करि-भसर, पेंक्खइ हरिणहँ अत्त ॥७१॥

जत्त'बि चित्तहु बिप्फुरइ, तत्त'बि णाह सरह ।

अण्ण तरंग अण्ण जलु, भव-सम स-सम सरह ॥७२॥

जत्त'बि पइसइ जलहि जलु, तत्तइ समरस होइ ।

बोस-गुण'अर चित्त तह, बड़ ! परिवक्खण कोइ ॥७४॥

चित्त अचित्तहि परिहरहु, तिमि होवहु जिमि बाल ।

गुरु-वचने बुढ़ भक्ति कर, ज्यो होइ सहज उलास ॥१५॥
 अक्षर वर्ण परम गुण रहिए । भनइ न जानइ अइसे कहिये ॥
 सो परमेश्वर कासो कहिए । सुरत-कुमारी जिमि पसिऐहे ॥१६॥
 भावाभावहि जो परिहीना । तहैं जग सकलाशेष विलीना ॥
 जख्यै तहैं मन निश्चल थाकै । तख्यै मव-संसारहैं मुंचै ॥१७॥
 जो लो ना आपुहिं परि-जानै । सो लो कि देह अनुत्तर पावै ॥
 ऐसेहि कहिये भ्रान्ति न कब्यै । आपुहि आपा बूझसि तब्यै ॥१८॥
 घरे आछतें बाहर पूछै । पति देखई पडोसी पूछै ॥
 सरह भनै मुढ़ ! जानहु, आपा । नहिं सो ध्येय न धारण जापा ॥१९॥
 विषय रमन्त न विषय बिलिपै । पदुम हरइ ना पानी भीजै ॥
 ऐसेहि योगी मूल बुझन्तो । विषय बहै ना विषय रमन्तो ॥२०॥
 अनिमिष-सोचन चित्त निरोधे । पवन निरोधे श्री-गुरु-बोधे ॥
 पवन बहै सो निश्चल जख्यै । योगी काल करै कि रे तख्यै ॥२१॥
 पंडित सकल शास्त्र बख्खानै । देहहिं बुद्ध वसंत न जानै ॥
 अवना-गवन न तेहिं बिखंडित । तोपि निलज्ज भनै हीं पंडित ॥२२॥
 जीवन्तो जो ना जरै, सो अजरामर होइ ।

गुरु-उपदेशे विभल मति, सो पर बन्धा कोइ ॥२३॥
 विषय विसुद्धे ना रमै, केवल शून्य चरेइ ।

उडिया बोहित-काक जिमि, पलटिय तहहिं पड़ेइ ॥२४॥
 विषयासक्ति न बन्ध कर, अरै मुढ़ ! सरहे उक्त ।

मीन-पतंगम-करि-भ्रमर, पेखहु हजिनु युक्त ॥२५॥
 जहवाँ चित्ता विस्फुरै, तहवाँ नाहि स्वरूप ।

अन्य तरंग कि अन्य जल, भव-सम ल-सम स्वरूप ॥२६॥
 जहवाँ पइसै जलहिं जल, तहवाँ समरस होइ ।

दोष-गुणकर चित्त तहैं, मुढ़ ! परिवीक न कोइ ॥२७॥

सुष्णाहिं सज्ज म करहि तुह, जहिं तहिं सम चिन्तस्स ।

तिल-तुस-मत्त'वि सत्तता, बेअणु करइ अणत्त ॥७५॥

सब्ब रुय तहिं स-सम करिज्जइ । स-सम-सहावे' मण'वि वरिज्जइ ॥

सो'वी मणु तहि अमणु करिज्जइ । सहज-सहावे' सो पर रज्जइ ॥७७॥

घरे'-घरे' कहिअइ सोज्जु क्काणा । णउ परि मुणिअइ महसुह ठाणा ॥

सरह अणइ जग चित्ते' वाहिअ ॥ सो अचित्त णउ केण'वि गाहिअ ॥७८॥

एक्कु देव बहु आगम दीसइ । अण्णु इच्छे' फुड पड़िहासइ ॥७९॥

अण्णु णाहो अण्ण' वि रुद्धो । घरे'-घरे' सोअ सिधन्त पसिद्धो ॥

एक्कु खाइ अवर अण्ण'वि पोड़इ । वाहिंर गइ भत्तारह लोड़इ ॥८०॥

आवत्त ण दिस्सइ जन्त गहि, अच्छन्त ण मुणिअइ ।

णित्तरंग परमेसुह, णिक्कलक्कु वारिज्जइ ॥८१॥

सोहइ चित्त गिरालं दिण्णा । अलण-रुय मा देखइ भिण्णा ॥

काअ-वाअ-मणु जाव ण भिज्जइ । सहज सहावे' ताव ण रज्जइ ॥८३॥

घरवइ सज्ज' धरणिअहि, जहिं देसहि अविआर ।

माइएँ तहि की ऊबरइ, बिसरिअ जोइणि चार ॥८४॥

घरवइ सज्जइ सहजे रज्जइ, किज्जइ राअ-विराअ ॥

णिअ पास बइट्ठी चित्ते' भट्ठी, जोइणि महु पड़िहाअ ॥८५॥

(८) सहज संयम

इअ दिवस णिसहि अहीणमइ, तिहु जासु णिमाण ।

सो चित्त सिद्धी जोइणि, सहज संवर जाण ॥८७॥

अक्खर बाढा सअल जगु, गाहि गिरक्खर कोइ ।

ताव से' अक्खर घोलिआ, जाव गिरक्खर होइ ॥८८॥

जिम बाहिर तिम अन्नन्तर । चउदह भुवणे ठिअज गिरन्तर ॥

असरिर काहे' सरीरहि लुक्को । जो तहि जाणइ सो तहि मुक्को ॥८९॥

रुग्गे' समल'वि जो'हि णउ गाहइ । कुन्दुर खणहि महासुहे' साहइ ॥

जिम तिसिअो मिअ-तिसिणे घावइ । मरइ सो'सहिं णअ-अलु कहिं पावइ ॥९१॥

शून्यहिं संग न करहुँ तैं, जहँ तहँ सम चित्तेहि ।

तिल-तुष-मात्रउ शल्यता, वेदन करइ अवश्य ॥७५॥

सर्व रूप तहँ ख-सम करीजै । ख-सम स्वभावे मनहुँ धरीजै ॥

सो भी मन तहँ अ-मन करीजै । सहज स्वभावे सो पर कोजै ॥७७॥

घरेँ घरेँ कहियत सोऊ कहाना । नाहि पर मुनियत महसुख थाना ॥

सरह भनै जग चित्तेँ बहाई । सो अचित्त ना केहुहि गहाई ॥७८॥

एक देव बहु आगम दीसै । आपन इच्छेँ स्फुट परिभासै ॥७९॥

आपन नाथा अन्यहुँ रुढा । घरेँ घरेँ सोई सिद्धान्त प्रसिद्धा ॥

एक खाइ अरु अन्यहिँ फोड़े । बाहर जाइ भतारैँ लोड़े ॥८०॥

अवत न दीसै धात नहिँ, होवत नहिँ जानीजै ।

निस्तरंग परमेस्वर, निष्कलंक धारीजै ॥८१॥

सोई चित्त ललाटे दिष्टा । अपन रूप ना देखहुँ मिष्टा ॥

काय-वाक्-मन जो ना भांगै । सहज-स्वभावे तौ ना राजै ॥८३॥

धरनी खाइस धरपतिहिँ, जहँ देखे अविचार ।

मारिय तहू की ऊबरै, विसरिय योगिनि चार ॥८४॥

धरपति खाइअ सहजै राजै, कीजै राग-विदाग ।

निज पास बढ्ढी चित्ते अष्टी, योगिनि मधु प्रतिभास ॥८५॥

(८) सहज संयम

इमि दिवस निशहिँ अभिमानै, त्रिभुवन औंसु निर्माण ।

सो चित्त सिद्धा योगिनी, सहज संवरा आन ॥८७॥

अक्षर बाढ़ा सकल जग, नाहिँ निरक्षर कोइ ।

तौली अक्षर धोलिया, जो लोँ निरक्षर होइ ॥८८॥

जिमि बाहर तिमि अभ्यन्तर । औदह भुवने धितउ निरन्तर ॥

अक्षरि कोई शरीरे लुकेउ । जो तेँहिँ जानैउ सो तहँ मुँचेउ ॥८९॥

रूपणैँ सकलउ जो ना गहियै । कुंदुख क्षणहिँ महासुख साथै ॥

जिमि तुषितो मृगतुष्णो धावै । मरेँ सोखहिँ, नभ-जल कहँ पावै ॥९१॥

कम्ब-भूष-आश्रयण इन्दिम-विसम-विभार अप दुःख ।

णउ णउ दोहाच्छेदेण, कहवि किम्पि गोप्पु ॥६२॥

पण्डित लोभहु लमहु महु, एत्थु ण किम्प विभप्पु ।

जोगुरुवअणे मइ सुअउ, तहि कि कहमि सु गोप्पु ॥६३॥

(९) कमल-कुलिस (वाभमार्ग) साधना

कमल-कुलिस बै'बि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ-विजास ।

को न रमइ गह तिहुअणहिं, कस्स ण पूरइ आस ॥६४॥

खण-उवाअ सुह अहवा, अहवा वेणि'बि सो'बि ।

गुरु-पुपसारै पुराण अइ, विरला जाणइ कोबि ॥६५॥

गम्भीरहु उआहरणै, णउ पर णउ अप्पाण ।

सहजाणन्द चउट्ट खण, निअ-संवेअण जाण ॥६६॥

घोरै'नारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।

परम-महासुह एकु खणै, दुरिआसेस करेइ ॥६७॥

दुखल-दिवाअर अत्यगउ, उवइ तरावइ सुक्क ।

ठिअ-णिम्माणै'णिम्मिअउ, तेण'बि मण्डल-वक्क ॥६८॥

चित्तहि चित्त णिहालु बढ ! सअल विमु'न्व कुदिट्ठि ।

परममहासुहे'सोज्झ पर, तसु आअत्ता सिद्धि ॥६९॥

मुक्कउ चित्त-गमंद कर, एत्थ विअप्प ण पु'च्छ ।

गअण-गिरी-णइ-जल पिअउ, तहि तइ वसउ सइच्छ ॥७०॥

विसअ-गएँन्दे करै' गहिअ, जिम मारइ पडिहाइ ।

जोई कबडीआर जिम, तिम तहो'णिस्तरि आइ ॥७१॥

जो भव सो णिब्बाण खलु, सो उण मण्णहु अण्ण ।

एक्क सहावै विरहिअ, णिम्मल मइ पडिअण ॥७२॥

घरहि म थक्कु म जाहि वणै, जहि तहि मण परिआण ।

सअलु निरन्तर बोहि-ठिअ, कहिँ भव कहिँ णिब्बाण ॥७३॥

स्कन्ध-भूत-आयतन-हन्त्री-विषय-विचार ग्राम हूय ।

नव-नव वोहा-छन्देहिं, कहव किछु गोप्य ॥६२॥
पठित लोगो क्षमहु मोहि, एहु न किछहु विकल्प ।

जो गुह-वचने में सुनेउ, तेहि किमि कहव सुगोप्य ॥६३॥

(९) कमल-कुलिश (बाममार्ग) साधना

कमल-कुलिश दोउ भध्य भित, जो सो सुरत-विलास ।

को तेहिं रमै न त्रिभुवने, कासु न पूरै भास ॥६४॥

क्षण-उपाय सुख अथवा, अथवा दोऊ सोइ ।

गुरु-प्रसादे पुण्य यदि, विरला जानै कोइ ॥६५॥

गम्भीरेहि उदाहरणे, ना पर ना अप्पान ।

सहजानन्द चतुर्य क्षण, निज-संवेदन जान ॥६६॥

घोर अन्हारे अन्द्रमणि, जिमि उद्योत करेइ ।

परम-महासुख एक क्षण, दुरित-अशेष करेइ ॥६७॥

दुःख-दिवाकर अस्त गइ, उयेउ तारपति शुक्र ।

स्थित निर्माणे निर्भियउ, तेहिहिं भण्डल-वक्र ॥६८॥

चित्रहिं चित्र निहार मुक ! सकल विमुच कुदृष्टि ।

परम-महासुखे सोष पर, तासु हाथ मो सिद्धि ॥६९॥

मुक्तउ जित गयंद कह, एहि विकल्प ना पूछ ।

गगन-गिरी-नदि-जल पियहु, तहैं तट वसे स्व-इच्छ ॥१००॥

विषय-भयन्दे कर गही, जिमि मारै प्रतिभास ।

योगी कैडीकार जिमि, तिमि तहैं निस्तरि जाइ ॥१०१॥

जो भव सो निर्वाणहु, सो पुनि मानहु अन्ध ।

एक स्वभावे विरहिता, निर्मल मै प्रतिपन्न ॥१०२॥

घरहि न रहु ना जाहु वन, जहैं तहैं मन परि-जान ।

सकल निरंतर बोधि भित, कहैं भव कहैं निर्वाण ॥१०३॥

ऐह सो अण्णा ऐह पद, जो परिभावइ को'वि ।

ते विणु बन्धे बेट्टि किउ, अण्ण-विमुक्कउ सो'वि ॥१०५॥

पर-अण्णाण म भन्ति कर, सअल गिरत्तर बुद्ध ।

ऐह सो णिम्मल परमपउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१०६॥

अइय-चित्त-तरुअरुद्ध, गउ तिहुवणे' वित्थार ।

करुणा फुल्ली फल धरइ, पाउ परत्त उअर ॥१०७॥

सुण्णा तरुवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ।

अण्णा भोअ परत्त फल, एहु सो'क्ख पद चित्त ॥१०८॥

सुण्ण तरुवर णिक्करुण, जहि पुणु मूल थ साह ।

तहि यलमूला जो करइ, तसु पडिभिज्जइ बाह ॥१०९॥

ऐक्के' नी' ऐक्के'वि तर, ते' कारणे' फल ऐक्क ।

ए अभिण्ण जो मुणइ सो, भव-णिब्बाण-विमुक्क ॥११०॥

जो अत्थी अणठीअउ, सो जइ जाइ गिरास ।

सण्णु सरावे' भिक्ख वर, त्यजहु ए गिहवास ॥१११॥

पर-उअर ण कौअरु, अत्थि ण दीअउ दाण ।

ऐह संसारे कवणु फल, नर छहुहु अण्णाण ॥११२॥

—दोहाकोष पृ० ८-२३

२-गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद धनावटी

(रत्न गुंजरी)

अपणे रत्ति रत्ति भव निब्बाणा, भिच्छे' लोअ बंधावइ अण्णा ।

अक्खे' थ जाणहु अचिन्त जोई, जाम-भरण भव कइसन होई ॥

जइसो जाम भरण 'वी तइसो, जीवते' महले' णाहि विशेषो ।

जा एधु जामा भरणे' विशंका, सो' करउ रस-रसाने' रे कंसा ॥

जो सचराचर तिअस भमन्ति । जे अजरामर किम्प न होन्ति ।

जामे काम कि कामे जाम । सरह मणइ अचिन्त सो धाम ॥२॥

ऐह सो भाषा एह पर, जो परिभावे कीह ।

सो बिनु बंधे बंध गयउ, आपु विमुक्तउ तोहि ॥१०५॥

पर-आपन ना भ्रान्ति कइ, सकल निरंतर बुद्ध ।

ऐह सो निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१०६॥

अद्वय-चित्त-तरुवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार ।

करुणा फूली फल घरह, ना परत्र उपकार ॥१०७॥

शून्य तरुवर फूलेऊ, करुणा विविध विचित्र ।

अन्या भोग परत्र फल, ऐह सौख्य परचित्त ॥१०८॥

शून्य तरुवर निष्करुण, जेहि पुनि भूल न शास्त्र ।

तहैं अलमूला जो करै, तासुह भांगै वाह ॥१०९॥

एकै एकै ही तइ, ते कारण फल एक ।

ऐह अभिज्ञता करै सो, भव-निर्वाण-विमुक्त ॥११०॥

जो अर्थी अनधीश्रुऊ, सो यदि जाह निराश ।

खंड शरावे भिक्षाहू, छाड़हु ऐह गृहवास ॥१११॥

पर-उपकार न कीयेऊ, अर्थि न दीजेउ दान ।

एहि संसारे कवन फल, वरु छाड़हु अप्पान ॥११२॥

—दोहाकोष पृ० ८—२३

२-गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुजरी)

अपने रचि-रचि भव-निर्वाणा, मिथ्ये लोक बंधावै अपना ।

मैं ना जानहुँ अचिन्ता योगी, जन्म मरण भय कैसन होई ॥

जैसो जन्म-मरणहू तैसो, जीवन मरणे नाहिं विशेषो ।

जो यह जन्म-मरण वीशंका, सो कर स्वर्ण-रसायन कांछा ॥

सो सचराचर त्रिदश भ्रमन्ति, ते अजरामर किमि ना होंति ।

जन्महिं कर्म कि कर्महिं जन्म, सरह भनै अचित सो धर्म ॥२॥

(२) सहज-मार्ग

(राग बेसावरा)

माध न बिन्दु न रवि-शशि-मण्डल , चीन्हा रास - सहावे मूकल ।
 उजु रे उजु छड़ि मा लेहु वंक , निम्रड़ि बोहि न जाहु रे लंक ॥
 हाथेर कंकण मा लेहु दप्पण , अपने आपा ब्रुभतु निम्र-मण ।
 पार - उमारे सोई मजिई , दुज्जण-संगे भवसरि जाई ॥
 वाम - दहिण जो खाल-बिखाला , सरह भणइ वप ! उजु वट भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काय नावहि खान्ति भण केडुमाल । सव् गुरु वमणे घर पतवाल ॥
 धीम धिर करि घरहु रे नहि । ग्रण उपाए पार न जाई ॥
 नीवहि लोका टानम गुणे । निर्मलि सहजे जाउ न आणे ॥
 बाटत भम खान्ति बी बलमा । भव-उल्लोले सम्ब वि बलिमा ॥
 कूल लई खरे सनेते उवाच । सरहा भणइ गमणे समाभ ॥

(राग मालवी)

सुणो हो बिदारिअ रे निम्र मण तोहोरु दोसे ।
 गुरु-वमण विहारे रे आकिन तई पुत ! कइसे ॥
 एकट हु मवाई गमणा ।
 वगे जाया नीलेसि पारे, भागे ल तो होर विगणा ।
 अवाभुअ भव-सोह रे दीसइ पर अप्पाणा ।
 ए जग अस-विवाकारे सहजे सून अपाणा ॥
 अमिअ अचछले विस नीलेसि रे चित्र पर रस अप्पा ।
 धरे परे का बुज्झीले मारि सइव मइ दूठ कुंठवा ॥
 सरह भणइ घर सून गोहानी की मो दूठ बलन्दे ।
 एकेले जग नाशिअ रे विहरहु छन्दे ॥३६॥
 —धर्या पद^१

^१Caryapadas. J.D.L. Cal. vol. XXX, pp. 1—156

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाक्ष)

नाद न चिन्तु न रवि-शशि-मण्डल । चित्ता राग स्वभावे मुञ्चल ।
 ऋजु रे ऋजु छाड़ि ना लेहु वंक । नियरें बोधि न जाहु रे लंक ॥
 हाथेइ कंकण ना लेहु दर्पण । अपने आपा बूझहु निज मन ॥
 पारे - वारे सोई मादई, दुर्जन - संगे भवसर जाई ॥
 वाम दहिन जो खाल-विखाला, सरह भनै बाँप ! ऋजु बाटे भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काय नावही नीकी मन केहुवाल । सवगुरु वचने भर पतवार ॥
 चित्तै थिर कर घर रे नाई । अन्य उपायै पार न जाई ॥
 नाविक नौकाहि खींच गुनैहि । मेली सहजे जानु न भानाहि ॥
 बाटे भय बड़ ही बलवा । भव-उल्लोले सर्वज कम्पा ॥
 कूल लेइ खर सोते बहाय । सरह भनै गगनहीं समाय ॥

(राग भालाशी)

शून्य हो ! विदारिउ निज मन तोहरे दोषे ।
 गुरु-वचन बिहारे रे रहिबे तैं पुत ! कइसे ॥
 एकटहु होई गगना ।

बके जाइ लीलेसि पारे, भांगल तोंहर विज्ञाना ।
 अद्भुत भव-मोह रे बीसइ पर अप्पाना ॥
 ए जग जल-बिवाकार सहजे शून्य अपाना ।
 अमृत अछतै विष गिलेसि रे चित पर रस आपा ।

घरे परे का बूझीले भारि खाइव मै दुष्ट कुटुवा ॥
 सरह भनै वर शून्य गोहारी की मोर दुष्ट बलदे ।
 एकले जग नाशेउ रे विहरहु छन्दे ॥३६॥

—वर्षापद^१

§ २. शबरपा

काल—८८० ई० (धर्मपाल-७७०-८०६) । देश—विक्रमशिला
(भागलपुर) । कुल—क्षत्रिय, सिद्ध (५) । कृतिर्था—चित्तगुह्यगम्भीरार्थ-
(रहस्यवाद)

(गीत—राग वसन्तः)

ऊषा ऊषा पावत संहि बसइ सबरी बाली ।

मोरेंगि पिच्छ परिहिण शबरी गीवत गुंजरि-माली ॥

समत शबरी पागल शबरो भा कर गुली-गुहाठा ।

तोहोरि निघ्न धरिणी नामे सहज-सुन्दरी ॥

नावा तखर भोजिल्ल रे गभ्रणत खानेलि डाली ।

एकेलि सबरी ए वष हिडइ कर्ण कुँबल वज्रधारी ॥

तिश्र-धाउ छाट पडिला सबरो महासुहे सेज छाइली ।

सबर भुजंग नैरामणि दारी पेख राति पोहाइली ॥

चित्र तबोला महासुहे कापुर लाई ।

सुन-नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई ॥

गुरु-बाक-पुंजिआ धनु निघ्न-मण बाणे ।

एके शर सन्धाने बिनह बिनह परम-निवाणे ॥

समत सबरो गुरुआ रोषे गिरिवर-सिहरे संधी ।

पइसन्ते सबरो लोडिब कहसे ॥ २८॥

—अर्थपद

§ २. शबरपा

गीति, महामुद्रा-वध-गीति, शून्यताकुण्डि,] षडंगयोग, सहज-संदर-स्वाधिष्ठान,
सहजोपदेश-स्वाधिष्ठान ।

(रहस्यवाद)

(गीत—राग बसाहि)

ऊँचा ऊँचा पर्वत, सँह वसै शबरी बासी ।

मोर-पिच्छ पहिरले शबरी ग्रीवा गुंजा-माली ॥

उन्मत्त शबरो पागल शबरो ना कर गुली-गुहाड़ा ।

तौहार निज धरनी नामे सहज-सुन्दरी ॥

नाचा तक्षर मोरिल रे गगन ते लागल खारी ।

एकली शबरी यहि बन हीं डै कर्ण कुंडल वधवारि ॥

त्रिषासु-साटे पडल शबरो महोंसुले सेज छाहत ।

शबर मुजंग निरात्मा दारी पेखत राति बिताहत ॥

चित्त तांबूला महासुख कपूर खाई ।

शून्य-नैरात्मा कंठे लेई महासुखे राति बिताई ॥

गुरु-वाक-धुंज धनुष निज-भग वाणे ।

एँक शर संधाने विधहू परम-निर्वाणे ॥

उन्मत्त शबरा गुरुआ रोषे गिरिवर-शिखरे छाँधी ।

पहठ्ठ शबरहि लौटाइव कँसे ॥२८॥

—वर्यापव

§ ३. स्वयंभूदेव

कविराज । काल—७६० ई० (शुभ भारद्वाज ७६०-६४ ई०) । देश—
कोसल (?) मध्यदेश) । कुल—ब्राह्मण (?) कवि माउरदेव और पद्मिनीके

१-आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बहु-यण सयंभु पदं विण्णवइ । महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ ॥
चायरणु कयाइ ण जाणियउ^१ । णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ ॥
णा गिसुणित पंच महाय कब्बु । णउ भरहु ण लक्खणु छंडु सज्जु ॥
णउ बुज्झिउ पिणस-पच्छाय । णउ भामह-वंडिय 'लंका' ॥
वे'वे'साय तो 'वि णउ परिहरमि । वरि रयडा वुत्तु कब्बु करमि ॥

^१ ६२ संघियाँ या प्रायः १२००० इलोक स्वयंभूने रचे । आगे
६३—१०८वीं संघितक त्रिभुवन स्वयंभूने रचा । कथा ६२ तकमें ही पूरी हो
जाती है ।

^२ ८३वीं संघि तक स्वयंभूने रचा । कथा यहीं पूरी हो जाती है, तो भी
त्रिभुवन स्वयंभू ने ७ संघियाँ और जोड़ी हैं । स्वयंभू-रामायणकी सबसे
पुरानी प्रति भंडारकर इन्स्टीट्यूट (पूना) में है । यह गोपालल (ग्वालियर)
में १५६४ ई० (संवत् १५२१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार) को लिखकर
समाप्त की गई । दूसरी प्रति जयपुरमें मिली है । इस प्रकार पहिली प्रति
गोस्वामी तुलसीदासके बेहान्त १६२३ ई० (संवत् १६८०) से ५६ वर्ष
पहिले लिखी, गई थी । तुलसीकृत रामायणकी भाँति यह रामायण भी
धौपाई (पञ्चकविया) में है, और आठ-आठ पाँतियों (अर्थात्तियों) के बात
बोहा या किसी दूसरे शब्दमें घटा (विश्राम) मिलता है । स्वयंभूके उक्त
दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं ।

^३ इच्छानुसार ह्रस्वको दीर्घ करके पढ़िये ह्रस्वचिन्ह है ।

§ ३. स्वयंभू*

पुत्र, आदिपदेवीके पति, त्रिभुवन स्वयंभूके पिता । कृतियाँ—हरिवंशपुराण^१, रामायण (पउमचरित^२), और स्वयंभू-छन्द ।

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुध-जन स्वयंभू तोंहि बीनवई । मोहि सरिसउ ग्रन्थ नाहि कुकवी ॥
व्याकरण किछु ना जानियऊ । ना वृत्ति-सूत्र बख्खानियऊ ॥
ना सुनेउँ पाँच महान् काव्य । ना भरत न लक्षण छन्द सर्व ॥
ना बूझेउँ विंगल-प्रस्तारा । ना भामह - वंशि - अलंकारा ॥
व्यवसाय तऊ ना परिहरऊँ । वर रयडा कहैँउ काव्य करऊँ ॥

*वाण (हृव ६०६-४८ ई०) और रविषेण (६७६ ई०)के नाम स्वयंभू-
ने अपने ग्रंथमें लिखे हैं; उषर पुण्यवंत (६५६-७२ ई०)ने स्वयंभूका नाम
लिया है; इस प्रकार स्वयंभू ६७६ और ६५६के बीचमें हुये । यह रयडा
(राजखेटी ?) धनंजयके आश्रित थे और उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू बंबइ
(बंबक)के आश्रित । बंबइका ज्येष्ठ पुत्र गोविंद था । हमारे कवि (स्वयंभू)के
नाम, श्रीपाल और व्यवसाय भी परिचित थे । किंतु उनमें कोई नाम प्रसिद्ध
महीं है । रामायणकी २०वीं संधिमें उन्होंने “धुवराय राय व तइय भुम-
पणत्तिणसीसु याणुपायेण” पदमें ध्रुव-राज नामक किसी राजाका नाम दिया
है । राष्ट्रकूटोंमें तीन ध्रुव हुये हैं, जिनमें एक महान् विजेता ध्रुव धारावर्ष
(७८०-६४ ई०)था, जो उसके पुत्रसे होने वाली गुर्जर-शाखामें हुये, तो भी वह
८६७ ई०से पहिले हुये थे । ध्रुव धारावर्ष सेनाके साथ कन्नोज आया था । जान
पड़ता है, उसीके अमात्य रयडाके साथ स्वयंभू दक्षिण गये । ध्रुव धारावर्षके
पुत्र इंद्रकी गुर्जर (खेडा) शाखामें वो ध्रुव थे—ध्रुव (प्रथम) धारावर्ष ८३०-
३५, और ध्रुव (द्वितीय) ८६७ ई० ।

सामाण भास छुड मा विहृड । छुड आगम-जुति किपि बहड ॥
 छुड होति सुहासिय-वयणाहें । गामेल - भास परिहरणाहें ॥
 ऐह सज्जन लोयहु किउ विणउ । जं अबहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
 जं एवेवि रुसइ कोवि सलु । तहो हृत्युत्पत्तिउ लेड छलु ॥
 भत्ता । पिसुणे किं अन्नतिथिएण, जसु कोवि ण रुन्वइ ।

कि छण-इन्हु मरुगहे, ण कंपंतु विमुज्जइ ॥३॥

—रामायण १।३

इय एत्थ पउमचरिए धणधवासिय सयंभु एव कए ॥

—रामायण (अन्त)

आइच्चएवि पहिमोवमाएँ, आइच्च नामा ए ।

वीअम उज्झ-कडं सयंभु-चरिणीएँ लेहाविमं ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुज्झु जं, तं निसुणहु रामायण । . . .

अएँ लोयहु सुयणहु पडियाहु । सद्ध - सद्ध - परिचंडियाहु ॥

कि चित्तइ गेह्णवि सक्कियाहें । वासेण वि जाइ न रंजियाहें ॥

तो कवणु गहणु अम्हारिसेहिं । वायरण - विहणहिं आरिसेहिं ॥

कइ अत्ति अणेअ-भेअ भरिया । जे सुयण सहासहिं आयरिया ।

हेंड कि वि न जाणमि मुखु मणे । गिय-बुद्धि पयासिय तो वि जणे ॥

णं सयलेवि तिहुवणे वित्थरिउ । आरंभिउ पुणु राहव-चरिउ ॥

—रामायण २३।१

तहिं अवसरि सरसइ वीरवइ । 'करि कब्बु दिण्ण मइ विमल मइ' ॥

इवेण समप्पिउ वायरणु । रसु भरहे वासे वित्थरणु ॥

पिंगलेण छन्द - पय - पत्थार । भम्महे-वडिणिहि अलंकार ॥

वाणेण समप्पिउ घणघणउ । तं अवसर-उवर घण-घणउ ॥

हरिसेवि पाणिउ गित्तणउ । अवरेहिं मि कइहिं कइत्तणउ ॥

—हरिवंशपुराण १

साक्षान्ध भाष यदि ना गढऊँ । यदि आगम-युक्ति किछू गढऊँ ॥
यदि होई सुभाषित वचनाईँ । ग्रामीण - भाष - परिहरणाईँ ॥
ऐहं सज्जन-लोगहँ का बिनऊ । जो अशुधि प्रदर्शौँ आपनऊ ॥
जो ऐसैँउ रुसै कोह जला । तो हाथ-तछासा लेउ छल ॥
घत्ता । पिशुनहिँ का अम्यर्थना, जासु किछू ना रुचई ।

का पूर्णेंदु मरदु ग्रहँ, हिँ कंपंतो विमुच्यई ॥३॥

—रामायण १।३

एहु इहँ पद्य-चरिते, धनंजयाश्रित स्वयंभुये हिँ किये ।

—रामायण (अन्त)

आदित्यदेवि देवि-प्रतिमा आदित्यदेवीहिँ ।

द्वितीय अयोध्याकांडहिँ लिखेँउ स्वयंभु-धरनीहिँ ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुड़े जो । सोई सुनहु रामायण ।

यदि लोग सुजन पंडित अहँ । शब्दार्थ-शास्त्र परिचित अहँ ॥
की चित्तेहिँ ग्रहण न सक्कियाहँ । आसे हूँ होहिँ न रंजियाहँ ॥
तो कौन ग्रहण हमरे सदृशहिँ । व्याकरण - विहून एतादृशहिँ ॥
कवि अहे अनेक-भेद-भरिया । जे सुजन स्वभाषहिँ आचरिया ॥
हौँ किछुअ न जानउँ मूर्ख-मने । निज बुद्धि प्रकासेउँ तोउ जने ॥
जो सकलैहिँ त्रिभुवने विस्तरिऊ । आरंभेँउ पुनि राघव-चरिऊ ॥

—रामायण २३।१

तेहिँ अवसर सरसति विरजाती । “कह काव्य, दिथो मैँ विमलमति ॥”
इन्नेहिँ समर्पेँउ व्याकरणा । रस भरत सु-वासहिँ विस्तरणा ॥
पिंगलैहिँ छन्द - पद - प्रस्तारा । भान्हु दंडिनेहिँ अलंकारा ॥
वाणैहिँ समर्पेँउ धनधनऊ । सो अक्षर - डंवर अन - धनऊ ॥
हरिसेनने पानिउ आपनऊ । अवरैहिँ कवियेहिँ कवित्वनऊ ॥

—हरिवंशपुराण १

छब्बरिसाहें विमासा एयारस वासरा सयंभुस्त ।

बाणवइ संधि करणे, बीजिगो इतिगो कालो ॥

दियहाहियस्त वारे दसमी-दियहम्मि मूल-गणस्तते ।

एयारसम्मि चंदे उत्तरकांड समाहतं ॥

—हरिवंशपुराण ६२।३, ४

भइभासे विणासिय-भवकलि । हुउ परिपुण्ण चउहिसि निम्मलि ॥

—हरिवंशपुराण (अंत)

धुमराय वूतइय लु अप्पठत्ति-गत्ती सु यागु पाठेण

णामेण साभि अन्ना सयंभु-घरिणी महासत्ता ॥

—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्षर - धास - जलोह - मणोहर । सुयलंकार - छंद-मञ्जोहर ॥

दीह-समास-पवाहा-वर्ण्य । सक्कय-पायय-मुलिणा-लंकीय ॥

देसी-भासा-उभय-तहुज्जल । कवि-दुक्कर-घण-सइ-सितायल ॥

अत्य-अहल-कल्लोला निट्टिय । आसा-सय-सम-अह-परिट्टिय ॥

राम-कहा सरि ऐह सोहती ।

—रामायण १

२-श्रुत और काल-वर्णन

(१) पायस

सीय स-लक्खण दासरहि, त्तरवर-मूले परिट्टिय जावेहि ।

पसरइ सुकइहि कन्वु जिह, मेह-जातु गयणगणे तावेहि ॥

पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहो । पसरइ जेम पाउ पाविट्टहो ॥

पसरइ जेम धम्म धम्मिट्टहो । पसरइ जेम जोण्ह मयवाहो ॥

पसरइ जेम कित्ति जगणाहो । पसरइ जेम चित्ता धणहीणहो ॥

पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहो । पसरइ जेम किलेसु निहीणहु ॥

छैं वर्ष तिमास इग्यारह वासर स्वयंभूको ।

बानवे संधि रचने हि, बोलियउ एतनो कालो ॥

दिवसाधिप को बार, दशमी दिवस मूल-नक्षत्रे ।

ग्यारहवें चंद्र(मासे) उत्तरकांड समाप्त भवो ॥

—हरिवंशपुराण

भादों मास विनाशित भव कलि, दुष्ट परिपूर्ण चक्रंदस निर्मले ।

—हरिवंशपुराण (अन्त)

ध्रुव राजा

नामेन स्वामि स्वयंभुवरिनी महासत्त्वा ॥

—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्षर - वास - जलोध - मनोहर । सु - अलंकार - छंद - मत्स्योषर ॥

दीर्घसमास-प्रवाहहिं वंकित । संस्कृत-प्राकृत-मुलिनालंकृत ॥

देशी भाषा दोड-तट उज्ज्वल । कवि-दुष्कर-धन-शब्द-शिलातल ॥

अर्थ-बहुल कल्लोलहिं सज्जित । आशा-शत-सम-ओष-समपिठ ॥

राम-कथा सरि एहु सोहंती ।

रामायण १

२-ऋतु-और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्ष्मण दाक्षरिणि, तरुवर-मूले बैठेँउ जबही ।

पसरै सुकविहिं काव्य जिमि, मेघ-जाल गगनगणे तबही ॥

पसरै जिमि धुझी बहु-ज्ञानहूँ । पसरै जिमि पापा पापिष्टहूँ ।

पसरै जिमि धर्मा धर्मिष्टहूँ । पसरै जिमि ज्योत्स्ना मुगवाहूँ ॥

पसरै जिमि कीर्ती जगनापहूँ । पसरै जिमि चिन्ता धनहीनहूँ ॥

पसरै जिमि कीर्ती सुकुलीनहूँ । पसरै जिमि क्लेश निहीनहूँ ॥

पसरइ जेम सइ सुर-तूरहों । पसरइ जेम रासि नहें सूरहों ॥

पसरइ जेम दवगि वगंतरे । पसरिउ मेह-जालु तह अंवरे ॥

तहि तह-तहइ पड़इ धनु गज्जइ । जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ।

घत्ता । अमर महद्वणु गृहिय करे, मेह-गइन्दे चडिवि जस-नुदुउ ।

उप्परि गिम गराहिवहों, पाउस-राउ पाई सणद्धउ ॥१॥

जे पाउस-गरिन्दु गल-गज्जिउ । घूली रउ गिमेण विसज्जिउ ॥

गंपिणु मेह विदि आलगउ । तहि करवालु पहारेहिं भगउ ॥

जं 'वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्टिउ हणु-हणंतु उण्हालउ ॥

धग-धग-धग-धगंतु उट्ठाइउ । हस-हस-हस-हसंतु संथाइउ ॥

जल-जल-जल-जलंतु पयलंतउ । जालावलि-फुलिग मेल्लंतउ ॥

धूमावलि-धय-दंड अंघेपिणु । वर-वाउल्लि-खग कइबेपिणु ॥

भइ-भइ-भइ-भइंतु पहरंतउ । तरुअर-रिउ मड-यड-भज्जंतउ ॥

मेह-महग्गय-धड विहडंतउ । जं उण्हालउ विट्ठ भिडंतउ ॥

पाउस-राउ ताव संपत्तउ । जल-कल्लोल-संति पयडंतउ ।

घत्ता । धणु अण्फालिउ पाउसेण, तहि-उंकार-फार दरिसंतउ ।

चोइवि जलहर-हृषि-हड, गीर सरासणि मुक्क तुरंतउ ॥२॥

जल-जाणासणे चायहिं घाइ । गिण्ठु गराहिय रणे विणिवाइ ।

ददुदुर रडे वि लग्न गं सज्जण । गं गच्छंति मोर खल-मुज्जण ॥

गं पूरें सरिउ अक्कदें । गं कइ किलकिलन्ति आणन्दें ।

गं परहुय विमुक्कु उग्घोसे । गं वरहिण लवंति परिउसे ।

गं सरवर बहु ग्रंसु-जलोल्लिय । गं गिरिवर हरिसे गंजोल्लिय ।

गं उण्हविय दवगि विऊए । गं गच्चिय महि विविह-विणोए ।

गं अर्त्तविउ दिवायर दुक्खें । गं पइसरइ रयणि सइ सोक्खें ।

रत्तपत्त-सर-पवणाकंपिय । केण वि काहेउ गिभुऊ जंपिय ।

घत्ता ॥ तेहए काले मयाउरये, विणि'वि वासुएव वलएव ।

तरुवर-मूले स-सीय यिय, जोग लयेविणु मुणिवर जेव ॥३०॥

—रामायण २८:१-३

पसरै जिमि शब्दा सुर-सूर्यहूँ । पसरै जिमि राशि नभेँ सूरहूँ ॥

पसरै जिमि दावाग्नि वनांतरेँ । पसरैँउ मेघ-जाल तिमि शंवरैँ ॥

तड़ि तड़-तड़ै पड़ै घन गरजै । जानकि रामहूँ शरणाहिँ ग्रजै ॥

घत्ता । अमर महाधनु गहि करै, मेघ गयदे चढेँउ यशसुब्बा ।

ग्रीष्म नराधिप कहैँ ऊपर, पावस-राज केर दल सज्जता ॥१॥

जनु पावस-नरेन्द्र गल-गर्जेउ । घूली-रज ग्रीष्मेहि विसर्जेउ ॥

जंपिय मेघवृन्द आ-लागेउ । तड़ि करवाल प्रहारेहिँ भारेउ ।

जनु हि पराङ्-मुख चलेँउ विशाला । छटैँउ हनहनँउ ऊष्णाला ।

घग-घग-घगंत उद्-धायउ । हस-हस-हस-हसन्त संजायउ ।

ज्वल-ज्वल-ज्वल-ज्वलंत प्रचलंता । ज्वालावलि फुलिंग मेलंता ।

धूमावलि-ध्वज-ध्वंड उठायेउ । वर-बादली लहूग कढ़ायेउ ।

झड़-झड़-झड़-झड़ंत प्रहरंता । तरुवर-रिपु भट-ठट भज्जंता ।

मेघ महागज-घट विघटंता । जनु उष्णाला दील भिहंता ।

पावस-राव तर्वाहिँ भायंता । जल-कल्लोल शांति प्रकटंता ।

घत्ता । घनु फरकायेउ पावसहिँ, तड़ि टंकार फार दरसंता ।

प्रेरिय जलचर-हस्ति-घट, तीर शरासन मोचु तुरंता ॥२॥

जल-धागरसने घातहिँ बायेउ । ग्रीष्म नराधिप रणेहिँ निपारैउ ।

दादुर रटन लागु जनु सज्जन । जनु नाचईँ मोर खेल-दुर्जन ।

जनु पूरहिँ सरिता आकदे । जनु कपि किलकिलंति आनन्दे ।

जनु परभूत विमोचु उद्धोषे । जनु वहिन लपंति परदोषे ।

जनु सरवर बहु-अशु-जलोल्लित । जनु गिरिवर हर्षेँ गंजोल्लित ।

जनु ऊषमिय दवाग्नि क्रियोगेँ । जनु नाचिय महि विविधि-विनोदे ।

जनु अस्तमेउ दिवाकर दुःखे । जनु पइसे रजनी सति सौख्ये ।

रक्तपत्र-तरु-यकना-कंपिय । केँहेंहिँ कहेउ ग्रीष्मऊ अल्पिय ।

घत्ता । तेहेँहिँ कालेँ भयातुरे, दोउहिँ वासुदेव बलदेव ।

तरुवर-मूलें स-सीय धित, जोग लइय मुनिवर जेभ ॥३॥

—रामायण २८ । १-३

(२) वसंत

कुव्वर-गयव पराइय जावेहि । फागुण-भासु पयोलिउ तावेहि ।

पइहु वसंत-राउ आणदे । कोइल-कलथलु मंगल-सहे ।

मलि-मिहुणे हि बंदिणे हि पइन्ते हि । वरहिण वावणेहि णच्चंतेहि ।

अमोला-सय-तोरणवारें हि । हुक्कु वसंतु अप्पेय-पयारें हि ।

कथइ चूअ-वणइ पल्लवियइ । णव-किसलय-फल-फुल्लु, भवियइ ।

कथइ गिरि-सिहरहि विच्छायइ । सस-मुंह इव मसि-वणइ जायइ ।

कथइ भाहव-भासहों मेंहणि । पिय-विरहेण 'व' सूसइ कामिणि ।

कथइ गिज्जइ-वज्जइ मंदलु । णर-मिहुणेहि पणच्चिउ गोंदलु ।

तं सहों णयरहों उत्तर-पासे हि । जण-मण-हूइ जोयण-उद्देसेहि ।

दिट्ठु वसंत-तिलउ उज्जाणु । सज्जण-हियउं जेम अपमाणु ।

—रामायण २६।५

णं वीसर-पइ सारएँ सारएँ । साहव-भासु णाइ हक्कारइ ।

सासय-सिब सं पावणे पावणे । दरिसावियउ फगुणे फगुणे ।

णव-फल-वारिपक्काणणे काणणे । कुसुमिय साहारएँ साहारएँ ।

रिद्धि गयवकोक्कणयहि कणयहों । हंस भंसिये कु-वलएँ कुवलएँ ।

महुयर महु मज्जंतएँ जंतएँ । कोइल वासंतएँ वासंतएँ ।

कीर-वंदि उट्ठंतएँ-ठंतएँ । भलयाणिजे आवंतएँ वंतएँ ।

मधुवरि-पडिसंत्तानएँ तावएँ । जहि णवि तित्तिरयहों तित्तिरएँ ।

णाउ ण णावइ किंसुइ किंसुइ । जहि वसेण गय-गाहहों गाहहों ।

तहि तणु तप्पइ सीयहे सीयहे ।

धत्ता—मच्छउ सामणे केणवि अण्णो, जहि अइमुत्तउ रह करइ ।

तं जण-मण-मज्जावणों, सज्ज-प्रहावणु को महुमासु ण संभरइ ॥१॥

कथइ अंगारय-संकासउ । रेहइ तंबिइ फुल्ल पलासउ ।

णं दावाणलु आउ भवेसउ । 'को मइ दइइ ण दइहु पएसउ' ।

(२) वसंत

कुम्भर नगर पहुँचेउ जब्बहि । फागुन-भास प्रबोलेउ तब्वहि ।

पशु वसंत-राव आनन्दे । कौइल-कलकल मंगल-शब्दे ।

अलि-मिथुनेँहि बंदीहि पढ़न्तेँहि । बहिन बामनेँहि नाचतेँहि ।

अन्दोलित-शत-तोरणबारेँहि । दुक्कु वसंत अनेक-प्रकारहिँ ।

कहिँ कहिँ भूत-जनहिँ फलवितहिँ । नव-किसलय-फल फूलुँ झुविसहिँ ।

कहिँ कहिँ गिरिशिखरा बि-ज्झाया । खल-भुख इव मसिवर्णहिँ लाया ।

कहिँ कहिँ माधव-भासहिँ भेदिनि । प्रिय-विरहेँहिँ जनु इवसही कामिनि ।

कहिँ कहिँ गाबेँ वाजेँ भाँदर । नर-मिथुनेँहिँ प्रनाचेँउ गोँदल ।

सो तेहिँ नगरहँ उत्तर-पासेँ । जन-मनहर योजन-उद्देशेँ ।

दीख वसंत-तिलक उद्याना । सज्जन हियहिँ दया अप्रमाणा ।

—रामायण २६।५

जनु दीवस-पति धीरेहँ धीरे । माधव-भास न्याहँ हंकारे ।

शाश्वत-शिव इव पावन-पावन । दरसायऊ फागुनेँ फा-गुन ।

नव-फल-परिपक्वानन कानन । कुसुमेँउ सहकारे-सहकारे ।

अद्दि गयेउ कोकनद करकहँ । हंसा हँसेँ कुवलय कु-वलय ।

मधुकर मधु मज्जतेँ यातेँ । कोकिल वासतेँ वासतेँ ।

कीर-बंदि उदञ्जेँ उजेँ । मलयानिल आवतेँ-बतेँ ।

मधुकरि अतिसंताप लापेँ । जहँ नव-सीतारयेँ सीतारयेँ ।

नाम न नाबेँ किधुकि कि-सुकि । जहँ वशेँहिँ गजनाथहँ नाथहँ ।

तहँ तनु तप्येँ सीतहँ शीते ।

धत्ता—भाछेउ सामान्येँ कौनहुँ अन्येँ, जहँ अतिमुक्तउ रति करइ ।

जन-मन-मज्जावन, स्वच्छ-मुहावन, को मधु-भास न आदरइ ॥१॥

कहिँ कहिँ अंगारक-संकाशा । राजेँ लामर पुत्त पलाशा ।

जनु दावानल आइ गवेषा । “को मैँ दाह न दाह प्रदेसा” ।

कल्पवि माहविणै गिय-मंदिर । यंतु गिवारिउ तं इंदिरिह ।

ऊसर ऊसस्तहु अपविस्तउ । अण्णएँ गव पुफ्फवइएँच्छित्तउ ।

कल्पइ मूय-कुसुम-मंजरियउ । णाइ वसंत वडायउ धरियउ ।

कल्पइ पवण-हयइ पुण्णायइ । णं जगेँ उत्थल्लिया पुण्णायइ ।

कल्पइ अहिणवाइ भमरउलइ । थियइ वसंत-सिरिह णं कुरुलइ ।

फणसइ अवुह-मुहां इव जइइ । सिरि-ह्लाह सिरिहल इव वइइ ।

—रामायण ७१।१-२

(३) संध्या-वर्णन

उवहसइ संभाराउ मुह-बंधुह । विद्वुमयाहइ मोत्तिय-दंतुर ।

छिवइ'व मत्थउ मेरु-महीहइ । तुज्जुवि मज्जुवि कवणु पईहइ ।

जं चंद-कंत-अलिलाहिसित्तु । अहिसेय-पणालु'व कुसिय चित्तु ।

अं विद्वुम-भरगय-कंतिआहि । थिउ गयणु'व सुरघणु-पंतिआहि ।

अं इंदणील-माला-मसीएँ । आलिहइ वंदि भित्तीएँ तीए ।

अहि पोमराय-मह तणु विहाइ । थिउ अहिणव-संभाराउ णाइ ।

अहि सूरकंति खेइज्जमाणु । गउ उत्तर-येसहोँ णाइ माणु ।

अहि चंद-कंति मणि-वंदियाउ । गव-यंद-आसे' चंदियाउ ।

अच्छरिउ कुमार चवंति येव । बहु चंदी-हयउ गयणु केम ।

पिक्खेप्पिणु मुत्ता-हल-णिहाय । गिरि-णिज्जर भणेवि धुकत्ति पाय ।

—रामायण ७२।३

३. भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अवहृत्ये'वि सल-यणु गिरवसेसु । पहिलउ पिरु वण्णमि मगह-देसु ।

अहि पक्क-कलम-कमलिणि पिसण्णु । अलहंत ठरणि येरव विसण्णु ।

कहिं कहिं माधविया निज मंदिर । जोउ निवारेउ इंदिरिह ।
 ऊसर ऊस अतुहुँ अपवित्रा । अन्ये नव पुष्पवतिऐँ क्षिप्तउ ।
 कहिं कहिं मूक कुसुम-मंजरिया । न्याई वसंत बडापउ धरिया ।
 कहिं कहिं पवनाहत पुआगा । जनु जग ऊल्लस्तेँउ पुं-नागा ।
 कहिं कहिं अभिनव-भ्रमर-कुलाल । रहेँउ वसंत-सिरिहि इव कुलउ ।
 पनसा अबुध-मुला इव जहुा । सिरि-फल सिरिफलाहि इव बड्डा ।
 —रामायण

(३) संध्या-वर्णन

उपहृते संध्या-राग सुल-बंधुर । विद्रुमक-अधर, मौक्तिक-बंधुर ।
 छुवइ इव मस्तक मेरु-महीधर । तुम्हरेँउ हमरेँउ कवन पतीधर ।
 जनु चंद्रकान्त सलिलाभिषिक्त । अभिषेक-अणालि 'व' स्पृशित-चित्त ।
 जनु विद्रुम-भरकल-कालियाहि । रहू गगन इव सुरबनु-पंकितयाहि ।
 जनु इंद्रनील-माला-मसीहि । आलिखइ बन्द भित्तीहि ताहि ।
 जहँ पक्षराग-अम-तनु बिभाहि । रहू अभिनव-संध्या-राग न्याई ।
 जहँ सूर्यकांति श्रीइज्जमान । गउ उत्तर-देसहि न्याई भानु ।
 जहँ चंद्रकांतमणि-चंद्रियाव । नव-चंद्राभासे चंद्रिकाव ।
 अंचरजेँउ कुमार व्यक्त एव । बहु चंद्रीभूतउ गगन केम ।
 पेलियवउ मुक्ताफल-निभाय । गिरि-निर्भर सनि धोवत पाय ।
 —रामायण ७२।३

३-भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अपभ्रंशेँउ खल-जन-अनवशेष । पहिलेँउ में वर्णउँ मगह-देश ।
 जहँ पक्व कलम-कमलिनि निखण्ण । अतभंत तरणि धिरवहिँ विषण्ण ।

जहिं सुय-मंतिव सुपरिद्विमाउ । गं वणसिरि-मरगय-कंठियाउ ।

जहिं उच्छ्रु-वणइ पवणाह्वाइ । कंमंति'व पीलणभय-गयाइ ।

जहिं गंदण-वणइ मणोहराह् । गज्जंति'व चल-पत्तव-कराह् ।

जहिं फाडिम-वयणइ दाडिमाह् । गज्जंति ताह् गं कइ-मुहाह् ।

जहिं महुयर-मंतिव सुंदराउ । केअइ-केसर-रय-धूसराउ ।

जहिं दक्का-मंडव परियलंति । पुणु पंथिय रस-सलिलइ पियंति ।

—रामायण ११४

(२) नगर-वर्णन

(क) राकगृह

घत्ता । तहिं पट्टणु गामे' रायगिहु, अण-कणय-समिद्धउ ।

अं पुहइएँ अव-ओव्वणाइ, सिरि-सेहइ आइहुउ ॥४॥

चउ गोअर-त्ति पायार-वन्तु । हेस इव मुत्ताहल-ववल-दन्तु ।

गज्जइ'व मरुद्धय-वय-करगु । धर इव शिवडंतउ गयण-भगु ।

सूलग-भिण्णु देउल-सिहइ । कण इव पारावय-सह-गहिइ ।

धुम्मइ'व गंऐहि मय'भिभलेहि । उड्डइ'व तुरंगहि चंचलेहि ।

ण्हाइ'व ससिकंत-जलोयरेहि । पणवइ'व तार-मेहल-हरेहि ।

पक्खलइ'व नेउर-णिय-सएहि । विप्फुरइ'व कुंडल-धुयलएहि ।

किलकिलइ 'व सव्व-जणोच्छवेण । गज्जइ इव मुख-भेरी-रवेण ।

गायइ 'व अलाव-णिमुच्छणोहि । पुरवइ 'व घम्मु अण-कंचणेहि ।

—रामायण ११४-५

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गयणंगणे' शिण, विज्जाहूर-पवर णरिन्दहो' ।

णाइ स-णिच्छरेण, अवलोइउ णयर महिंदहो' ॥१॥

चउ-दुवार चउ-गोअर चउ-पायार-पंडर । गयण-लग्न पवणाहय-वयमाल-उरं पुरं ।

गिरि-महिन्द-सिहरे रमाउले । रिद्धि-विद्धि-अण-धण-संकुले ।

तं गिएवि हणुयेण चित्तिथं । सुरपुरं किमिदेण अत्तिथं ।

—रामायण ४६।१-२

जहँ धुक-पंक्तिउ सुपरि-स्थिताव । जनु धन-श्री-मरकत-कंठियाव ।

जहँ इशु-वना पवनाहता । कंपत इव पेलन-भय-भीता ।

जहँ नंदन-बने मनोहरा । नाचत इव चल-पल्लव-करा ।

जहँ फाटे धवन दाहिमा । दीखत से वे जनु कपि-मुखा ।

जहँ मधुकर-पंक्तिउ सुंदराई । केतकि-केसर-रज-धूसराई ।

जहँ दाखा-मंडप परिचलहीं । पुनि पंथिक रस-सलिलहि पियहीं ।

—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहँ पत्तन नामा राजगृह, धन-कनक-समृद्धउ ।

जनु पुहुमिहि नवयौवन-श्री-शेखर आदेशितउ ॥

चौगौपुर चौप्राकार-वन्त । हँस इव मुक्ताफल धवल-दन्त ।

नाचत 'व मरुत-धुत-ध्वज-कराथ । धारा इव पड़तो गगन-भाग ।

शूलाग्र बिंधे'उ देवल-शिखर । कवण इव पारावत शब्द-गहिर ।

धूँयत इव मद-विह्वल-गजेहि । ऊड़त इव तुरगेहि चंचलेहि ।

नहावत शशिकांत-जलोदरेहि । प्रणमति 'व तार-मेखल-धरेहि ।

प्रस्खलइ 'व नूपुर-निजलयेहि । विस्फुरइ 'व कुंडल-जुगलऐहि ।

किलकिलति 'व सर्व-जनोत्सवेव । गर्जति 'व मुरज-भेरी-रवेन ।

गायति 'व अलापा-मूर्छनेहि । पूरति 'व धर्म-धन-कांषनेहि ।

—रामायण

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गंगनांगणे स्थितउ, विद्याधर-प्रवर-नरेन्द्रहु ।

न्याहँ स-निश्चरहि, अवलोकेउ नगर-महेन्द्रकहु ।

श्रीद्वार चौगौपुर चौप्राकार पांडुर । गगन लाग पवनाहत-ध्वजमालाकुल पुर ।

गिरि-महेन्द्र-शिखरे रभाकुल । ऋद्धि-वृद्धि-धनधान्य-संकुल ।

साहि देखि हनुमंत चितये'उ । सुरपुर किमि इन्द्र भरतियउ ।

—रामायण ४६।१-२

(ग) दहिमुह-नगर

मण-गमणेण तेण णहेँ जंते । दहिमुह-णयर दिट्ठु हणुबंते ।
दिट्ठु राम-सीमा चउपासेँहि । वरिउ णाइ पुर-रिणिय सहासेँहि ।

जहि पफुल्लियाई उज्जाणइ । बट्टइ^१ णं तिथयर-पुराणइ ।
जहि ण कयावि तलायइ सुक्कइ । णं सीयलइ सुट्ठु पर-दुक्कइ ।

जहि बाविउ वित्थय-सोवाणउ । णं कुगइ^२ व हेट्ठा-मुह-गमणउ ।
जहि पायार ण केणवि लंघिय । जिण-उवएस, णाइ गुह-लंघिय ।

जहि देउलइ घवल-मुंडरियई । पोत्था वायरणइ -वहु-वरियई ।
जहि मंदिरई स-तोरणवारई । णं सम-सरणई सहपरिवारई ।

जहि मुव-येत्त-मुत्त दरिसावण । हरि-हर-बम्हेहि जेहा आवण ।
जहि वर-वेसउ तिणयण-भूवउ । पवन-भुयंग-सत्तहि अणुहअउ ।

जहि गयणत्थ-वेसइ हर हरसइ । राम-तिलोयण जेहा गह्वइ ।
घत्ता—तहि पट्टणे^३ बहु उवमइ भरिअएँ, णं जगे^४ सुक्कइ-कच्चि वित्थरियएँ ।

सहइ स-वरियणु दहिमुहि-राणउ, णं सुरवइ सुरपुरहोँ पहाणउ ॥१॥

रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

णिहलिय मुअंग-विसमि मुक्कु । मुवकंत ण वर-सायरहु दुक्कु^१ ।

दुक्कंतेँहि बहल फुल्लिग भित्त । धण सिप्पि-संख-संपुड-पलित्त ।
वग-वग-वगति मुत्ता-हलाइ । कड-कड-कडंति सायर - जलाइँ ।

हस-हस-हसन्ति पुलिणंतराईँ । जल-जल-जलन्ति मुवणंतराईँ ।
—रामायण २७।५

संचत्सेउ राहव साहणेण । संघट्टिउ बाहणु बाहणेण ।

शेवंतरे दिट्ठु महासमुहु । सुंसुयर-मयर-जलयर-रउइ ।
मण्डोहर-णक्क-मोहु घोइ । कल्लोलावंतु तरंग-थोइ ।

^१ शट्टे, आठे, नार

^२ वेल्हो (वज और बुलेली)

(ग) दधिमुख-नगर

मनकी गतिसों सो नभ जंता । दधिमुख नगर देखु हनुमंता ।
देखु अराम-सीम चौपासैंहि^१ । धरेंउ^२ जनु पुर-रणित सहासहिं ।

जहैं प्रफुल्लिताउ उद्याना । वाटैं^३ जनु तीर्थकर^४-पुराणा ।
जहैं न कदापि तन्नावा सूखहिं^५ । जनु शीतलत सुष्ट पर-दुःखहिं ।

जहैं वापी विस्तृत-सोपाना । जनु कुयती हेंडे-भुंह जाना ।
जहैं प्राकार न कोऊ लंघेंउ । अिन-उपदेश न्याहैं दुर्लभेंउ ।

जहैं देवलहिं घवल-पुंडरिका । पोषी वाँचैं श्री बहु-चरिता ।
जहैं मंदिरा स-सोरणवारा । जनु शम-शरणा सह-परिवारा ।

जहैं भुव-नेत्र-सूत्र-दरसावन । हरि-हर-ब्रह्मा जैसो आवन ।
जहैं वर-वैश्या तिनमन-भूता । प्रवर-भुजंग^६-शतेहिं अनुभूता ।

जहैं गगनस्थ वृषभ हर हरवति । राम-त्रिलोचन सरिसो गृहपति ।
घला । सो पत्तन अहु-उपमा-भरिया, जनु जग सुकवि-काव्य विस्तरिया ।

रहैं स-परिजन दशमुख राना । जनु सुरपति सुरपुरहिं प्रघाना ॥

—रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

निर्दले^७उ भुजंग विसर्ग मोचु । मोचित जनु वर-सागरहिं दूकु^८ ।

दूकत हि बहु स्फुलिंग क्षिप्त । घन-सीप-शंख-संपुट-प्रलिप्त ।
धग-धग-धगत मुक्ताफला । कड-कड-कडत सागर-जला ।

हस-हस-हसंत पुलिनांतरा । ज्वल-ज्वल-ज्वलंत भुवनांतरा ।

—रामायण २७।५

संचल्ले^९उ राघव साधन-संग । संधे^{१०}उ वाहन वाहन-संग ।

थोडा^{११}न्तरे देखु महासमुद्र । सूस^{१२} अवर भकर-जलचरे^{१३}हिं रौद्र ।
मत्स्योधर-नाका-गोह-धोर । कल्लोलावत तरंग-जोर ।^{१४}

बेला बड्ढंतउ द्रुह्दुहंतु । फेणुज्जल-सोय तुषार दिनु ।
तहों अवरें पयडउ राम-सेणु । णं मेह-आलु णहयलें णिसणु ।

—रामायण ५६।६

घरणा । मण-गमणे^१हिं गयणि पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुहुं फिह ।

महि-मंडयहो^२ णह-मल-रक्खसेण, फाडेंउ जठर-भयेसु जिह । २

वीसइ रणायरु रमण-बाहु । विण्णु^३व सवारि छंदु^४ 'व सपाहु ।

अत्यहु सुहि^५व हत्थि^६व करालु । भंकारिउ^७व्व बहु-रयण-पालु ।

सूहव-भुरिसो^८व्व सलोन-सीलु । सुग्गीउ^९व पयडिय इंद-लीलु ।

जिण-सुव चक्कवड^{१०}व कियव सेलु । मज्झाणु^{११}व उप्परि चडिय वेलु ।

तवसि^{१२}व परिपालिय समय-सारु^{१३} । दुज्जण पुरिसो^{१४}व्व सहाव-सारु ।

णिद्धण आलाउ^{१५}व अण्णमाणु । जोइसु^{१६}व मीण-कक्कडय-थाणु ।

महक्ख-णिबंभु^{१७}व सह-माहिर । चामीयर^{१८}व सहय-पीय-मयर ।

तहि जलणिहिउ लंघंतएहि । वोहित्थइ दिट्ठइ जंतएहि ।

सीह-बडड लंघिय इलाइ^{१९} । महरिसि चित्ताइ^{२०}व अविचलाइ^{२१} ।

—रामायण ६६।२-३

(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन

योवंतरे मन्ध्रुत्थत्स वेंति । गोला-गह दिट्ठ समुब्बहंति ।

सुंसुभ्र शोरगधुरु-धुरु-हुरंति । करि-मम-रड्ढोहिम डुह-डुहंति ।

डिडीर-संड-मंडलिउ दिति । ददुदुर थरडिय बुह-डुह-दुरंति ।

कत्तोलुल्लोहिउ उब्बहंति । उगघोस-घोस घव-घव-ववंति ।

पडिक्खलण-वलण खल-खल-खलंति । खल-खलिय खडक्क भडक्क वेंति ।

ससि-संस-कुंद-धवलौ भरेण । कारंडुड्ढाविय उंवरेण ।

बेलहिं बर्धतउ दुह-दुहंत । फेनु-ज्ज्वल तोय-तुषार देंत ।

तेहि ऊपर पहुँचेउ राम-सेन । अनु मेघजास नभ-सले निषण्ण ।

—रामायण ५६।६

घत्ता । मन-गतिहि गगने चलंतउ, लखेउ सवण-समुद्र किमि ।

महि-मंडल नभ-सल राक्षसेहि, फाहेउ जठर-प्रदेश जिमि ॥

दीसइ रत्नाकर रतन-चार । विष्णु^१ व सवारि छंदिव सगाथ ।

अर्थहु सुख इव हस्ति^२ ब कराल । भंडारी इव बहु-रतन-पाल ।

सु-भवं^३ पुरुष इव सलोन-शील । सुग्रीबिव प्रकटेउ इन्द्र-नील ।

जिनसुत चक्रवर्ति^४ व किमेउ शैल । मध्यान्हिव ऊपर चहेउ बेल ।

तपसी इव पालेउ समय-सार । दुर्जन-पुरुष इव स्वभाव-सार ।

निर्धन-अलाप इव अ-प्रमाण । जोतिसि^५ व मीन-कंकटक-थान ।

महकव्य-निर्वैद्य इव शब्द-गहिर । चामीकरिव^६ व दधित-पीत-प्रकर ।

तहँ जलनिधिहू लघंतयेहु । बोहितऊ देखेउ जांतएहु ।

सिंह-चटाहिं लंबित-फलाउ । महच्छवि-बिता इव अविचलाउ ।

—रामायण ६६।२-३

(४) नदी-वर्णन

थोडांतरे मच्छ-उछल्ल देंत । गोवा-नधि देखु समा-बहंत ।

सूसउ धोरा घुर-घुर-घुरंत । करि-मद-रङ्गोहित दुह-दुहंत ।

हिंडीर-खंड मंडलित देंत । दादुर-ध्वनियहु कुर-दुर-दुरंत ।

कल्लोसु-तलोहित उद्वहंत । उद्घोष घोष धव-धव-धवति ।

प्रतिललन-वसन खल-खल-खलंत । खल-खलित खडकि भटकि देंत ।

शशि-शंख-कुंद-धवला करेण । कारंडव^७ डायउ डंभरेण ।

घसा । फेणाबलि बंकिम-बलयालंकिय, नं महि बहुअहे तणिया ।

जल-णिहि भतारहोँ मोँतिय हारहोँ, बाह पसारिय दाहिणिया ॥३॥

—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तहि तेहएँ सुंदरेँ सुप्पवहे । आरण्य-महगय-भुत्त-रहे ।

धुर लखणु रहवरेँ दासरहि । सुर-लीलएँ पुणु विहरंत महि ।

तं कण्ठ-वण्ण-गइ मुएँ विगया । वण कहिमि णिहालिय मत्तगया ।

कत्थवि पंवाणण गिरि-गुहेहिँ । मुत्ताबलि विक्खरंति णहेहिँ ।

कत्थवि उड्डाबिम सउण-सया । नं अठविहेँ उड्डे विणण-नाया ।

कत्थवि कलाव णच्चंति वणे । णावइ गट्टावा जुयइ-जणे ।

कत्थइ हरिणइ भय-भीयाइ । संसारहोँ जिह पावइ याइ ।

कत्थवि णाणा-विह रुक्ख-राइ । नं महि-कुल-बहुअहि रोमराइ ।

—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशंसा

धूर्वत धवल-धय बट-पउर । पिय पेक्खु अउज्झाउरि णयग ।

घसा । किर जम्मभूमि जणणीय सम, अण्णु विहासिय जिणवरेहि ।

पुरि बंदिय सिर सयंभुव करेँहि, जणय-तणय-हरि-हलहरेहि ॥२॥

—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनुमानकी लंकासे अयोध्याकी यात्रा—

घसा । भणगमणेहिँ गयणेँ पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह । . . .

अण्णुभि ओवंतरु जंतएहि, तिहिमि णिहालिउ गिरि-भलउ ।

जो लवली-बलहो चंदण सरहो, दाहिण-पवणहोँ दाम लउ ॥३॥

घस्ता । फेणावलि-वकिम बलयासंकृत, जनु महि-बधुअहि-तनिया ।^१

जलनिधि भत्तारहू भीक्तिकहारहूँ, बाँह पसारिय दाहिनिया ।।

—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तँह तेहिहि सुंदर सु-प्रभो । आरण्य महागज-युक्त रहो ।

धुर लक्ष्मण रथवरे^२ दाशरथी । सुर-लीलहि^३ पुनि निहरंत मही ।

सो कृष्ण-वेण-नदि मृग-सहिता । वन कहउँ निहारिय मत्तगजा ।

कहिँ कहिँ पंचानन गिरि-गुहाहिँ । मुक्तावलियहिँ विकिरंत नभहिँ ।

कहिँ कहिँ उड्डाये^४ उ शकुन-शता । जनु अटविहि उड्डै बियद-गता ।

कहिँ कहिँ कलापि नाचंत वने । न्याई^५ नाट्या वा युवति-अने ।

कहिँ कहिँ हरिना भय-भीताई । संसारहु जिमि पापहि जाई ।

कहिँ कहिँ नानाविध बृक्षराजि । जनु महि-कुलबधुबहि रोमराजि ।

—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि-प्रशंसा

ध्रुवंत धवल-ध्वज बट-अवरू । प्रिये^१ ! पेखु अयोध्यापुरि नगरू ।

घस्ता । फुल जन्म-भूमि जननीहिँ सम, आन विभूषित जिनवरेहिँ ।

पुरि बंदि सिर स्वयंभू करोहि, जनकतनय-हरि-हृलवरेहिँ ।

—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनुमान्की संका-अयोध्या

घस्ता । मन वेगै^१ हिँ गगने^२ चलंतो, लखै^३ उ लवण-समुद्र जिमि ।

अवरो. थोड^४ तरे जातो, तहँहिँ निहारै^५ उ गिरि-मलयो ।

जो लवली बलहो चंदन-सरहो^६, दक्षिण पवन विस्तार लियो ।

जहि जुवइ-पउइ पारजियाई । रत्नुपल-कमलिय-वण धियाई ।

कामिणि-गइ छाया-मंसियाई । जहि हंस-वलइ आवासियाई ।

कर-करयल-ऊहामिय मणाइ । जहि मासइ-कंकेली-वणाई ।

जहि वयण-णयण-पह अल्लियाइ । कमलिदीवरइ समल्लियाइ ।

अहि मधुरआणि-अवहृत्तियाई । कोइल-कुलाई कसणइ यियाई ।

भउहावलि-छाया-वंकियाई । जहि शिब-दलइ कडुअइ कियाई ।

जहि बिहुर-भार ऊहामियाइ । बरहिण-कुसाई रोवावियाई ।

तं मलउ सुएँवि विहरंति जाव । दाहिण-मधुरएँ आसण्ण ताव ।

धत्ता । किक्किंध-महागिरि लक्खियउ, तुंग-सिहइ कोडावणउ ।

छुइ रमिअहेँ पुइइ-विलासणिहेँ, उर-पयेसु णंग सव्वणउ ॥४॥

जहि इंदणील-कर-भिज्जमाणु । ससि थाइ जुण्ण-दप्पणु-समाणु ।

जहि पसंमराय-कर-सेय-पिडु । रत्नुपल-सणिहु होइ चंडु ।

जहि मरगय-खाणिवि विप्फुरंति । ससिविबु भिसिणि पत्तुअकरंति ।

तं मेल्लेँ विरह-सुच्छल्लिय-गत । णिविसद्धेँ सरि कावेरि पत्त ।

जालइय विहंजेँवि णरवरेहि । महकव्व-कहा इअ कइ-वरेहि ।

सामिय-आणा इअ किंकरेहि । तित्थंकर-वाणि'व गणहरेहि ।

सिअ-सासयमोत्ति'व हेँउयेहि । वरसद्धुप्पत्ति'व वाउएहि ।

पुणु दिट्ठु महानद तुंगभइ । करि-मयर-भच्छ-कच्छय-रउइ ।

धत्ता । असहति वण-दव-पवण-भइ, दसह-किरण-दिवायरहोँ ।

णं संज्जेँ सुट्ठु ति साएण, जीहेँ पसारिय सायरहोँ ॥५॥

पुणु दिट्ठु पवाहिणि कण्णवेण्ण । किविणत्थ-पडत्ति'व महि-णिसण्ण ।

णं इंदणील-कंठिय-धरेण । दक्खविअ समुद्धोँ आयरेण ।

पुणु सरिभीम-जलोह फार । जा सेउण देसहोँ अमिय-धार ।

पुणु गोसा-णइ भंथर-पवाह । संभेण पसारिय णाइ वाह ।

जहँ युवति-अवर पाराजिताई । रक्तोत्पल-कदली-वन भिताई ।

कामिनिगति-आया-भषिताई । जहँ हंस-यूथ आवासिताई ।
कर-करतल ईहामृग-मनाई । जहँ मालति-कंकेली-बनाई ।

जहँ वदन-नयन-प्रभ केँ कियाई । कमलि-दीवरहु समेलियाई ।
जहँ मधुर-वाणि अपहृस्तिताई । कोकिल-कुलाई कृष्णा भिताई ।

भौंहाबलि-आया-वंकिमाई । जहँ निंब-पत्र कटुका कियाई ।
जहँ बिकुर-भार ईहामृगाई । बहिण-कुसाई रोवाइताई ।

सो मलय-भूमि विहरंत जौ । दक्षिण-मधुराहिँ आसन्न तौ ।
घत्ता । किष्किंध-महागिरि लखियहु, तुंग-शिखर कोडावनऊ ।

यदि रम्यहिँ पुहुमि-विलासिनिहीँ, उर-प्रदेश अनंग सर्वनऊ ॥३४॥
जहँ इन्द्रनील-कर-भिद्यमान । शशि रहै जीर्ण-दर्पण-समान ।

जहँ पद्मराग-कर-तेज-पिंड । रक्तोत्पल-सदृश होइ चंद ।
जहँ भरकत-खानिहिँ विस्फुरति ॥ शशिबिंब भिसिहिँ प्रत्युपकरति ।

सो छाडि विरह-मुच्छलिय-नाव । निमिषार्धे सरि कावेरि प्राप्त ।
ज्वालयित बिम्बेहु तरवरेहिँ । महकान्य-कथा सो कविवरेहिँ ।

स्वामी-आशा सो किकरेहिँ । तीर्थकर-वाणि सो गण'अरेहिँ ।
शिव-शाश्वत मोति सो हेतुएहिँ । वर शब्दु-त्पत्ति सो वायुएहिँ ।

पुनि देखु महानदि तुंगभद्र । करि-मकर-मच्छ-कच्छप-रउद्र ।
घत्ता । असहंतौ वन-दव-पवन भळ, दुसहु किरण-दिवाकरहु ।

जनु संच्यहिँ सुति तूषितयहिँ, जीभ पसारे'उ सागरेहिँ ॥३५॥
पुनि देखु प्रवाहिणि कृष्णवेण्य । कृपिणार्थ-प्रवृत्ति'व महि-निषण्ण ।

जनु इन्द्रनील कंठे धरेहिँ । देखिविय समुद्रहु आकरेहिँ ।
पुनि सरि भीम जलोघ फार । जौ सेतुन देसहु अमृधार ।

पुनि गोदा नदि मंथर-प्रवाह । संभेहिँ पसारे'उ नारि-बाह ।

पुणु वेणि पाइन्हिउ बाहिणीउ । णं कुडिल-सहायउ कामिणीउ ।

पुणु ताणि महानइ सुप्पवाह । सज्जण-मत्तिव्व अलद्धयाह ।
थोवंतराले^१ पुणु बिभु थाइ । सीमंतउ पि हिमिहितणउ णाइ ।

पुणु रेखा णइ हणुवंत एहि । साणिदिय रोसव संगएहि ।
कि विभहो^२ पासिउ उवहि चार । जो सविमु किविणु अश्व खार ।

तं णिसुणेवि सीय-सहोयरेण । विम्मच्छिय णहयल-भोयरेण ।
घत्ता । जं विभु मुए^३ वि गय सायरहो^४, मा रुसहि रेवा-णइहे^५ ।

णिल्लोणु मुयइ सलोणु सरइ, णिय-सहाउ यहु तिय भइहे^६ ॥६॥

साणम्मय द्वरवरेण चत्त । पुण उज्जवणे^७ णिविसेण पत्त ।

अहि जणवउ सघणु महघणो^८व्व । रामो वरिवच्छलु लक्खणोव्व ।
गुणवंतउ घणु कर-संगहो^९व्व । अमुणिय-कर-सिर-त्तणु वम्महो^{१०}व्व ।

साविउ महिल^{११}व्व उज्जेणि मुक्क । पुणु पारियत्त मासवु दुक्कु ।
जो घणालंकिउ णर-वइ^{१२}व्व । उच्छहणु कुसुम-सर रइवइ^{१३}व्व ।

तं मेल्ले^{१४} वि अउणा^{१५} णइ पवण्ण । जा असय^{१६}-जलय-गव-सालि-अण्ण ।
जा कसिण भुयंगि^{१७} व विसहो^{१८} भरिय । कज्जल-रेहा-वण घरणिऐ^{१९} भरिय ।

थोवंतरे^{२०} जल-णिम्मल-तरंग । ससि-संख-सम-प्पह विट्ठ गंग ।
घत्ता । अम्ह^{२१} विहि गरुवउ कवणु जइ, जुज्झि वि आयं मच्छरेण ।

हिमवंतहो^{२२} णं अवहरिविणिया, धय-वडाइ^{२३} रयणाथरेण ॥७॥
थोवंतरे^{२४} तिहि मि अउज्झ दिट्ठ । णं सिद्धिपुरिहि सिद्धव पइट्ठ ।

अहि मिहुणइ आरंभिय रयाइ । पंथिय इव उव्वाइय पयाइ ।
पाहुण इव अवसंखण-मणाइ । गिरिवर-गत्ता इव सव्व णाइ ।

अविचल-रज्जा इव सुकरणाइ । रिसि-उल इव भाण-परायणाइ ।
धनुहर इव गुण-मेल्लिय सराइ^{२५} । अहो^{२६} रत्ता इव पहराउराइ ।

घत्ता । महि-मंदरु-सायर जावणहू, जाव दिसइ महणइ जलइ ।
तउ होति ताव जिणकेराइ, पुण्ण पवित्तइ भंगलइ ॥८॥

—रामायण ६.१३-८

पुनि दोड पयस्विनि वाहिनीहुँ । अनु कुटिल-स्वभावउ कामिनीहुँ ।

पुनि तापि महानदि-सुप्रवाह । सज्जन-मैत्री 'व' अलख्य-थाह ।
 थोडंतराले पुनि विष्य जाइ । सीमंतहुँ हिमकेरि न्याई ।

पुनि रेवा नदि हनुमंत आइ । सान्दिल रोषउ संगतेहि ।
 की विष्यहु पासे उदधि चार । जो सबहुँ कृपण भापेउ खार ।

सो सुनि सीय-सहोदरेन । विमरशेउ नभतल-गोचरेन ।
 धत्ता । जो विध्यभुमिहुँ गउ सागरहु, ना रुसइ रेवा नदिहि ।

निर्लवण मुंचइ सलवण सरइ, निज स्वभाव स्त्रीमयहि ॥६॥
 सा नर्मद दूरतरेण त्यक्त । पुनि उज्जयिनी निमिषेण प्राप्त ।

जहँ जनपद सघन महाधं इव । रामीपरि कत्तल लक्ष्मण इव ।
 गुणवंतउ घन कर-संग्रह इव । अमुनिय-कर-शिर तनु मन्मथ इव ।

शापित महिलि'व उज्जयन मुंचु । पुनि पारियात्र मालवहिँ कूकु ।
 जो धान्यालंकृत नरपति इव । उत्सहन कुसुम-शर रतिपति इव ।

सो छाडिय जमुना नदी पहुँच । जो अलक-जलक गो लाल-वर्ण ।
 जो कृष्णभुजंगि'व विष-भरिया । कज्जल-रेखा-वन धरनि धरिया ।

थोडंतरे जल-निर्मल-तरंग । शशि-शंख-समप्रभ देखु गंग ।
 धत्ता । हमरो सम गच्छो कौन, यदि जूझिब बहु-मत्सरही ।

हिमवंतहु जनु अपहरण किय, ध्वजपताक रतनाकरही ॥७॥
 थोडंतरे तहँहि अयोध्या दृष्ट । जनु सिद्धिपुरिहि सिद्धप प्रविष्ट ।

जहँ मिथुनइ भारंभेउ रजाई । पंथिक इव उट्ठाइय पदाई ।
 पाहुन इव आलिंगन-मनाई । गिरिवर-नाथ इ सर्व न्याई ।

अविचल राज्या इव सु-करणाई । ऋषि-कुल इव भांड-परायणाई ।
 धनुघर इव गुणे मेलेउ शराई । अहोरात्रा इव प्रहरावराई ।

धत्ता । महि-मंदर-सागर जावनहुँ, जो लौ दीसइ महनदि जलई ।

ता होति तौ लौ जिनकेरइ, पुण्य-पवित्र मंगलइ ॥८॥

—रामायण ६६।३-८

(ख) रामजी लंकासे अयोध्या-वापस—

गउ लंक विहीसणु मिच्चवल् । सोलहउसे दिवसे^१ पयट्ट बल् ।

स-विमाणु स-साहणु गयण-वहे । वावंतु निवाणह पिअय महे ।

एहु सुंदर दीसह भयरहर । एहु मलम-चराहर सुरहि-तर ।

किकिंश-महिषहो^२ इह सयल । इह तुलिय कुमार^३ कौडिसिल ।

हैंउ लक्खणु एण पहेण गय । एत्तहि खर-दूसण-तिसिर हय ।

इह संबु कुमारहो^४ खुडिउ सिर । इह फेडिउ रिसि-उवसणु चिर ।

इह सो उहेसु निअच्छियउ । जिअ मोम जणणु जहि अच्छियउ ।

एहु वेसु असेसु विचार चरिउ । अइवीर णराहिउ अहि घरिउ ।

घत्ता । तं सुंदरियउ जियंत उर, जहि वण बाल समावडिय ।

लक्खिअइ लक्खण पायवहो, अहिणव बेल्लि णाइ चडिय ॥१६॥

रामउरि एहु गुण-गारविय । जा पूयण अक्खे^५ कारविय ।

एहु अरुणु गामु कविलहो^६ तणउ । जहि मल-थल्लाविउ अप्पणउ ।

एहु दीसह सुंदरि ! भिअ-इरि । जहि वस किउ वालि-खिल्लु वइरि ।

वइदेहि ! एउ कुम्बर-णयर । कल्लाण-माल जहि जाउ णर ।

एहु वसउर जहि लक्खणु भमिउ । सीहोयर सीह समरि दमिउ . . .

दीसह संबु सुवणु भउ । निअविउ विहीसणि णं णवउ ।

धुवंत धवल-अय-वड-पउर । पिय ! पेक्खु अउअउरि णयर ।

—रामायण ७८:१६-२०

४-सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लहु^१ भोजणु आणहि सुंदरउ । अं सरस-सलोगउ जेहे^२ सुरउ ।

तं निसुणे^३ वि वेवि संचल्लिउ । णं सुरसरि-जउणा उत्थल्लिउ ।

(क) लंका-अयोध्या

गयउ लंक विभीषण-मित्र-जल । सोलहवे^१ दिवस प्रवृत्त बल ।

स-विमान स-सेना गगनपथी । दर्शत निवानइ प्रियकांक्षी ।

ऐहु सुंदर दीसइ मकरधर । एहु मलय-धरावर सुरभि-सर ।

किष्किन्ध महेंद्रहु एहु सकला । एहि^२ ठायउ कुमारे कोटि-शिला ।

ही^३ लक्ष्मण जेहि पथहिं गयउ । ऐहिठेव सर-दूषण विशिर हुते^४उ ।

एहिं शांव कुमारहु खुटे^५उ गिरु । एहिं नाशे^६उ ऋषि-उपसर्ग चिरु ।

ऐहिं सोई देश निरीक्षियऊ । जित मोमजनन जहूँ अचिछियऊ^७ ।

एहु देश अशेष विचार धरे^८ऊ । अतिवीर नराविप जहूँ धरे^९ऊ ।

घरसा । सो सुंदरियउ जयंतपुर, जहूँ वनपाल आइ पडिया ।

लखहु ऐहु लक्ष्मण पादपद्म, अभिनव बेइल-जस पडिया ॥१॥

रामपुरि एहु गुण-गौरविया । जा पूजन यक्षहिं कारविया ।

एहु अरुण-ग्राम कपिलहू-सनऊ^{१०} । जहूँ फेंक बिधे^{११}उ मैं आपनऊ ।

एहु दीसइ सुंदरि ! विध्यगिरी । जहूँ वश किउ वासस्थित्य वैरी ।

वैदेहि ! एहु कुव्वर-नगरु । कल्याण-भाल जहूँ जने^{१२}उ नरु ।

एहु बजापुर जहूँ लक्ष्मण भ्रमे^{१३}ऊ । सिंहोदर सिंह समरे^{१४} दमेऊ ।

दीसइ सर्व सुवर्ण भयऊ । निर्मिये^{१५}उ विभीषण जनु तबऊ ।

ध्रुवंत धवल-ध्वज-पट-प्रवरु । प्रिये ! अयोध्यापुरि नगरु ।

—रामायण

४-सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

सधु^१ भोजन आनहिं सुंदरऊ । जो सरस-सलोनउ जिमि सुरऊ ।

सो सुनिकर दोऊ संचलियउ । जनु सुरसरि-जमुना उच्छलियउ ।

^१ आधे=हैं

^२ केरउ

^३ सुरस

रहु एककु लहु लेविणु आइउ । नं सुरसरि-सच्छिउ विनसाइउ ।

दड़डिउ भोयणु भोयण-सज्जइ । अच्छइ पच्छइ लह्यइ पेज्जइ ।
सककर-संढे^१हि पायस-पयसे^२हि । लड्डुव-लावण-गुल-इक्खु-रसे^३हि ।

भंडा-सोयवत्ति धीअउरे^४हि । मुग-सूप णाणाविह कूरे^५हि ।
सालणहि विवण्ण-विचित्ते^६हि । माइणि मायंदेहि विचित्ते^७हि ।

अल्लय-पिप्पलि-मिरिया-मलयहि । लावण-भाजूरे^८हि कोमलयहि ।
चिन्निहिमा^९कणेर-वासुत्तिहि । पेउव-पप्पडेहि सुपहुत्ते^{१०}हि ।

केलय-गालिकेर-जंदीरिहि । करभर-करविदेहि करीरिहि ।
तिम्मणेहि णाणाविह-वण्णे^{११}हि । साउव-भज्जिय-सट्ठावण्णे^{१२}हि ।

अण्णु वि खंड-सोल्ल-गुल-सोल्लिहि । वडवा-इंगणेहि कारेल्ले^{१३}हि ।
विजणेहि स-महिय-दहि-खीरिहि । सिंहारणि-चूय-वत्ति-सोवीरिहि ।

धत्ता । अच्छउ एउउ मुह-रसिउ, अविअण्हउ उत्तावणउ किह ।

जहि जि लहिज्जइ तहि जि तहि, गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ॥११॥

—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—

हरि पहरंतु पसंसिउ जावे^१हिं । जाणइ-णयण कडक्खिय तावे^२हिं ।

सुकइ-सुकब्ब-सुसंधि सु-संधिय । सुपय-सुवयण-सुसइ-सुवद्धिय ।
धिर-कलहंस-गमण गइ-मंथर । किल-मज्झारे^३णियंवे^४ सुवित्थर ।

रोमावलि मयरहसत्तिणी । नं पिपिलि - रिद्धोलि विलिणी ।
अहिणव-हुइपिड-पीणत्थण । नं मयगल-उर-खंभणिसुंभण ।

रेहइ वयण-कमलु अकलंकउ । नं माणस-सर विअसिउ पंकउ ।
सुललिय-लोयणु ललिय-पसण्हें । नं वरइत्त मितिय वर-कण्हें ।

बोलइ पुट्टिहि वेणि महाइणि । चंदण-लयहिं ललइ नं णायणि ।
धत्ता । किं बहु जंपिएण तिहिं भुयणिहिं जं जं वंगउ ।

तं तं मेलवेवि नं, दइवे^५णिम्मिउ अंगउ ॥३॥

—रामायण ३८।३

राधु एक लघु लेके आयउ । अनु सुरसरि-सकमी विस्तरायउ ।
 परसेँउ भोजन मोदन-सज्जइ । खय्यँह चोष्यइ लेह्यइ पेयइ ।
 शक्कर-खंडेहिँ पायस-पयसेहिँ । लड्डू-सवण गोल-इक्षुरेहिँ ।
 मंडा-सोय बत्त घेवरहीँ । मूँगसूप नाना-विधि गुठहीँ ।
 सालन एहू वर्णबिचित्रा । माइन भाकंदहीँ विचित्रा ।
 अदरक-पीपरि-मिरिचा-मलयहिँ । जावण-कइयईहिँ कोमलयहिँ ।
 खिरभटिका^१ कनेर-वासुतेहिँ । पेउब पापडहीँ सुबहूतहिँ ।
 केला-नारिकेल-जंबीरा । करभर-करविदा कारीरा ।
 तेवनहीँ नानाविध वर्णहिँ । स्वादू भजिया-खट्टावनहिँ ।
 अन्यउ खंड-सोल गुड-सोली । बहवा-इंकनाह कारंसी ।
 व्यंजनहीँ स-भैंस-दधि-खीरहिँ । शिखरण-अम्मावट-सौवीरहिँ ।
 घत्ता । रहैँऊँ एहू मुख-रसिक, अचितृष्णा ललचाव किमि ।
 जहँहिँ लेइये तहँहिँ तहँ, मीठो जिनवर-वचन जिमि ॥११॥

—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता —

हरि प्रहृत प्रशसेँउ जम्बेँ । जानकि नयन कटाक्षेँउ तब्बेँ ।
 सुकवि-सुकाव्य सुसंधि संधिया । सुपद-सुवचन-मुशब्द, सुवंधिय ।
 धिर-कलहंस-गमन गतिमंथर । कृष्ण मंभारेँ नितंब सुविस्तर ।
 रोमावली मकरधर तीनी । जनु पिपीलिका पंक्ति-विलोनी ।
 अभिनव हूड-पिंड पीनस्तन । जनु मदकल-उर-खंभ-निजीतन ।
 राजे वदन-कमल अकलंकउ । जनु भानससर विकसेँउ पंकज ।
 सुललित-लोचन ललित-प्रसन्ना । जनु वरियात मिलेँउ वर-कन्या ।
 डोले पीठिहिँ बेणि महाइनि । वंदन-सतहिँ ललैँ जनु नागिनि ।
 घत्ता । का बहु जल्पनेहिँ सिहु भुवनहिँ जो जो चंगा ।
 सो सो मिलाईया जनु दैवेँ निरमेँउ अंगा ॥३॥

—रामायण ३८।३

संचल्ले बिंभ पद्मणयेण । सक्सिज्जइ जाणइ राणयेण ।
 पप्फुल्लिय ववलकमल-वयणा । इंदीवर-दल-दीहर-गयणा ।
 तणु मप्फे^१ गियंवे^२ वच्चे^३ गरुआ । जं गयण कडक्खिय जणय-सुया ।
 उम्मायण मयणहिं^४ मोयणेहिं^५ । माणे^६ हि संदीवण-सोसणेहिं^७ ।
 आइम्मिय सल्लिउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छियउ ।
 कर मोडइ अंगु वलइ हसइ । अससइ ससइ पुणु णीससइ ।
 घत्ता । मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु, पट्ट येम पजपित्त कुइयमणु ।
 वलियंढएण वसि वणवसहुं, उहाले विघाणहु यासु महु ॥

—रामायण २७३

(ख) मंदोदरी—

घत्ता । सहसत्ति दिट्ठु मंदीयरिए, दिट्ठिएं चल-भउहालइ ।
 दूरहों जे^१ समाहउ वच्छयले, णं गीलुप्पल-मालइ ॥२॥
 दीसइ तेष वि सहसत्ति वाल । णं भसले अहिणव-कुसुममाल ।
 दीसंत चलण-णेउर रसंत । णं महु-राव वंदिण पठंत ।
 दीसइ गियंवे-मेहल-समग । णं कामएव-अत्थाण-मग ।
 दीसइ रोमावलि छुहु चडति । णं कसण-वाल-सप्पिणि लसंति ।
 दीसंति सिहिणि^१ उवसोह दंत । णं उरयलु भिदिवि हत्थि-दंत ।
 दीसइ पप्फुल्लिय वयण-कमलु । णीसासामोवासत्त-भसलु ।
 दीसइ सुणा (सु)अणुहुव^२ संगधु । णं गयण-जलहों^३ किउ सेयउबंधु ।
 दीसइ णिट्ठलु^४-सिरु चिहुर-छण्णु । ससि-विंबु^५ व पव-जलहर-णिमण्णु ।
 घत्ता । परिभमइ दिट्ठि तहों^६ तहिं जि तहिं, अण्णहिं कहिं^७ मि ण थक्कइ ।
 रस-तंपडु महुयर-मंति जिम, केयई भुइवि ण सक्कइ ॥३॥

—रामायण १०।२-३

^१ सिहिण—भूनावाली प्रति का पाठभेद^२ य—यूना^३ निडालु—यूना

संचल्ले^१ उ विध्या पयनयेहिं । लक्सिज्जे जानकि रामएहिं ।

प्रफुल्लित-शवल-कमल-वदनी । इंदीवर-दल-दीरघ-नयनी ।

भोके क्षीण नितंब-वक्ष गरुआ । जो नयन कटाक्षिय जनकसुता ।

उन्मादन मदनेहिं मोदनेहिं । बाणे^२हिं सँदीपन-शोषणेहिं ।

आक्रमिया सालिय मूर्खियऊ । पुनि "दुःख दुःख" उन्मूर्छियऊ ।

कर मोई अंग कपें हसई । आइवसै श्वसं पुनि निःश्वसई ।

घत्ता । मकरध्वज-शर-जर्जरित-तनु, प्रभु ईमि प्रजल्ये^३ उ कुपित-मना ।

बलवतें मवसं वन वसहू, उदारे जानहु यासु(?) ममा ॥३॥

—रामायण २६।३

(ख) मंदोदरी

घत्ता । सहसा दृष्ट मंदोदरिए, दृष्टिहि चल-भौं^४ हा-लई ।

दूरहुं हि धारे^५ उ वक्षतले, जनु नीलोत्पल-मालई ॥२॥

दीसइ तेहिहिं सहसा हि बाल । जनु भमरे अभिनव-कुसुममाल ।

दीसंत चरण-नूपुर रसंत । जनु मधुर-राव बंदिन पळंत ।

दीसइ नितंब-मेखल-समग्र । जनु कामदेव-दरार-मार्ग ।

दीसइ रोमावलि छुट^६ चढति । जनु कृष्ण-बाल-सपिणि ललति ।

दीसंत स्तनहू शोभ देंत । जनु उर-तल भिदे^७ उ हस्तिवंत ।

दीसइ प्रफुल्लित वदन-कमल । निश्वासाभोदासक्त-भ्रमर ।

दीसइ सुनास अनुभुत-सुगंध । जनु नयन-जलधि किये^८ उ सेतुबंध ।

दीसइ निस्तर शिर चिकुर-छत्र । शशि-बिंब^९ व नव-जलयर-निमग्न ।

घत्ता । परिभ्रमे दृष्टि तहि तहुं^{१०}हि तही^{११}, अन्यहि कहिं न सकई ।^{१२}

रस-लपट मधुकर-यंक्ति जिमि, केतकि भूमि न सकई ॥३॥

—रामायण १०।२-३

तहि अवसरे^१ आइय मंदोयरि । सीहहों^२ पासि^३व सीह-किसोयरि ।

वर-गणियारि^४ वलीला-गामिणि । पिय माहविये^५वि महुरालाविणि ।
सारंगि^६व विष्कारिय-गयणी । सत्तावी संजोयण-वयणी ।

कलहंसि^७ व थिर-मंथर-गमणी । लच्छि^८ व तिय तू बैजू रवणी ।
अहयो भाणि हि अणुहर-भाणी । जिह सा तिह एहवि पड^९ राणी ।

जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पयसुंदर ।
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणे^{१०} । जिह सा तिह एह वि ण कुसासणे^{११} ।

घत्ता । कि बहु जंपिण्ण उवमिज्जइ काहे^{१२} किंसोयरि ।

णिय-पडिछंदइ ना यिय, सइ जे^{१३}णाइ मंदोयरि ॥४॥

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

..... । संचल्लिय मंदोयरि राणी ।
साइ समाणु स-डोर स-गेउर । संचल्लिय सयझु^१ वि अतेउर ।

जं पप्फुल्लिय पंकय-गयणउ । जं कुवलय-दल-दीहर-गयणउ ।
जं सुरवर-करि-मंथर-गमणउ । जं पर-गरवर-मण-बूरणवउ ।

जं सुंदर सोहणु^२ ग्ववियउ । जं पीणत्थण-भारे^३ णमियउ ।
जं मणहुर तणु-मज्झु सरीरउ । जं उरयट्ठपिमं गंभीरउ ।

जं गेउर-रव अणु भंकारउ । जं रंघोलिय मोत्तिय-हारउ ।
जं कंशी-कलाव-यन्भारउ । जं विब्भम-भूभंगु-वियारउ ।

घत्ता । तं तेहउ रावणकेरउ, अतेउर संचल्लियउ ।

णं सभमर माणस-सरहे^४ रे^५, कमलिणि-अणु पप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहिं पइसते^६हि दिहु स-गेउर । रावण-केरउ इट्ठ^७तेउर ।

चिहुरेहि सिंहडि-उलंनु भाइ । कुरुतेहि^८ इविदिर-विदु णाइ ।

तेहि अक्सर आइय मंदोदरि । सिंह-पासें जनु सिंह-कुशोदरि ।

वर-गयंदि जिमि लीलागामिनि । प्रिय-माधवियहिं मधुरालापिनि ।

सारंगी इव फारिय-नयनी । सत्ताईस-संयोजक-वदनी ।

कलहंसि^१द बिर-मंथर-गमनी । लक्ष्मी इव या रूपारमणी ।

अभय भाणी अनुहर-भाणी । जेहिं सा तेहिहि सो पटरानी ।

जेहिं सा तेहिं ऐसहि सुमनोहर । जेहिं सा तेहिं ऐसहि पदसुंदर ।

जेहिं सा तेहिं ऐसहि जित-शासन । जेहिं सा तेहिं ऐसहि न कुशासन ।

घत्ता । का बहु जल्पनेहिं उपमिज्जै, कंस कुशोदरी ।

निज प्रतिविदउ ता ठिय, स्वयं न्याहै मंदोदरी ॥४॥

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रभिवास—

..... । संचल्लिय मंदोदरि रानी ।

ताहि स-मान स-झोर स-नूपुर । संचल्ले^२उ सकलहु अन्तःपुर ।

जो प्रफुल्लिय पंकज-नयनउ । जो कुबलयदल-दीरघ-नयनउ ।

जो सुर-वर-करि-मंथर-गमनउ । जो पर-नरवर-मन-भूरनउ ।

जो सुंदर-सौभाग्य-अर्घ्यवयउ । जो पीनस्तन-भारे नमिअउ ।

जो मन्-हर तनु-मध्य शरीरउ । जो उरोज स्तनियउ गंभीरउ ।

जो नूपुर-रव-घन-भंकारउ । जो संडोलिय मुक्ता-हारउ ।

जो कांची-कलाप प्राग्-भारउ । जो विभ्रम-भ्रूभंग-विकारउ ।

घत्ता । सो तेहु रावणकेरउ, अंतःपुर संचल्लियउ ।

जनु सभ्रमर मानससरहिं, कमलिनि-वत प्रफुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहें पइसंतहि देखु स-नूपुर । रावण-केरउ इष्ट-अंतःपुर ।

चिकुरेहिं शिखांडि-कुल मतहुं भाय । कुटिलेहिं इंदीवर-वृन्द न्याहै ।

^१ कुटिल-प्रकाली

भउहेहि अणंग-वणु-लइ वन'व । गयणिहि नीलुप्पल-काणणं 'व ।

मुह-विबे'हि मय-लंछण-बलं 'व । कल-वाणिहि कल-कोइल-कुलं 'व ।

कोमल-वाहे'हि लयाहरं 'व । पाणिहि रतुप्पल-सरवरं 'व ।

गक्खे'हि केअइ-सूई-यलं 'व । सिहिणे'हि सुवण्ण-घड-मंडलं 'व ।

सोह्मो' वम्मह-साहणं 'व । रोमावलि णाइणि-परियणं 'व ।

तिबलिहि अणंगपुरि-खाइयं 'व । गुज्जेहि मयण-मज्जण-हरं 'व ।

उएहि तरुण-केली-वणं 'व । चलणगेहि पल्लव-काणणं 'व ।

असा । हंस-उलु 'व गइएहि, कुंजर-जूहु 'व वर-सीलहि ।

चाब-बलु 'व गुणेहि, छण-ससिविंनु 'व सयल-कलहि ॥५॥

—रामायण ७२।५

(घ) अमोघ्याकर रत्नवास—

किं चलण-तलगइ कोमलाइ । णं णं अहिणव-रतुप्पलाइ ।

किं ऊरु परोप्पह भिण्ण-तेय । णं णं वर-रंभा-संभ येय ।

किं कणय-दोह धोलइ विसालु । णं णं अहिरयण-णिहाण-यालु ।

किं तिबलिउ जठर पद घाविआउ । णं णं कामउरिहि लाइआउ ।

किं रोमावलि वण-कसण एह । णं णं मयणाणल-धूम-सेह ।

किं णव-यण, णं णं कणय-कलस । किं कर णं णं पारोह-सरिस ।

किं आयंकिर-करयल चलंति । णं णं असोय-पल्लव ललंति ।

किं अणणु, णं णं चंद-बिब । किं अहरउ णं णं पक्क-बिबु ।

किं दसणावलिउ स-मुत्तिआउ । णं णं मल्लिय कलियउइ भाउ ।

किं गंड-वास णं दंति-दाण । किं लोयण, णं णं कामवाण ।

किं भउह इमाउ परिट्टियाउ । णं णं वम्मह-वणु-सट्टियाउ ।

किं कण्ठा कुंडल-हरण एय । णं णं रवि-ससि-विष्फुरिय-तेय ।

किं भालउ, णं णं ससहरद्धु । किं सिरु, णं णं अलि-उल-णिक्कद्धु ।

—रामायण ६१।२१

भौंहेहिं मनंग-वनु लता-वन इव । नयनहिं नीलोत्पल-कानन इव ।

मुख-विषेहिं मृगलाञ्छन-बल इव । कल-वाणिहिं कल-कोकिल-कुल इव ।

कोमल-बाहेहिं (काम-)लताधर इव । पाणिहिं रक्तोत्पल-सरवर इव ।

नखही केतकी-सूचि-थल इव । स्तनही सुवर्णघट-मंडल-इव ।

सौभाग्ये मन्मथ-सेना इव । रोमावलि नागिनि-परिजन इव ।

त्रिवलीहिं मनंगपुरी-खाई इव । गुह्येहिं मदन-मज्जन-गृह इव ।

ऊरुएहिं तरुण-कदलीवन इव । चरणार्थेहिं पल्लव-कानन इव ।

घत्ता । हंसकुल इव गतिएहिं, कुंजर-जूथ इव वर-तीलहिं ।

चाप-बल इव गुणेहिं, क्षण-शशिबिंद इव सकल-कलेहिं ॥५॥

—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याकां रनिवास—

की चरण-तलागा कोमला । जनु जनु अभिनव-रक्तोत्पला ।

की ऊरु परस्पर-भिन्न-तेज । जनु जनु वर-रंभा-संभ एह ।

की कनकडोरि डोलइ विशाल । जनु जनु ग्रहि रतन-निधान-पाल ।

की त्रिवली जठरुपरि वाह्या । जनु जनु कामपुरिहिं खाहेया ।

की रोमावलि घन-कृष्ण एह । जनु जनु मदनानल-धूम-स्नेह ।

की नव-यन, जनु जनु कनक-कलश । की कर, जनु जनु प्रारोह-सरिस ।

की आलंबित-करतल चलति । जनु जनु अशोक-पल्लव ललति ।

की आनन, जनु जनु चंद्रबिंब । की अधरउ, जनु जनु पद्म-बिंब ।

की दशनावलिउ स-मौक्तिकाउ । जनु जनु मल्लिक-कलियहीं भाउ ।

की गंडपास जनु दन्ति-दान । की लोचन, जनु जनु काम-माण ।

की भीहा एह परिस्थिताउ । जनु जनु मन्मथ-धनु-शष्टियाउ ।

की कर्ण कुंडलाभरण एह । जनु जनु रवि-शशि विस्फुरित-तेज ।

की भासउ, जनु जनु शशधरार्थ । की शिर, जनु जनु अलि-कुल-निबद्ध ।

—रामायण ६६।२१

(ङ) भिन्न-भिन्न वेशोंकी तारियाँ—

घत्ता । तहोँ वणहोँ मउभे हणुबतेण, सीय जिहासिय दुम्मणिया ।

णं गयण-मगोउ भेल्लिय, खंदलेह-वीयहेँतणिया ॥७॥

सहिय सहासहि परिअरिय, णं वणदेवय भवयरिय ।

तिण-भेँतुवि गवलवसणु जाहेँ, जिब्बणिज्जइ काइँ तहेँ ॥

वर-पथ-तलेँहिँ पउणारएहिँ । सिंघलणहेँहिँ दिहिँ गारएहिँ ।

उच्चंगुलिऐँहिँ बेँडहिलएहिँ । बहुल्लिएँ गुफेँहिँ गोसएँहिँ ।

वर-पोट्टुरिएहिँ मायँदियेँहिँ । सिरिपव्वय-तणिएँहिँ मंडियेँहिँ ।

ऊरुअ-जुयले जिप्पालएण । कडिमंडलेण करहाडएण ।

वरसोणिय कंची-केरियाएँ । तणु-णाहिएण गंभीरियाएँ ।

सुल्लिय-पुट्टिएँ सीवअरियाएँ । पिडत्थणिअएँ एलउलियाएँ ।

वच्छयले मज्झिमएसएण । भुअ-सिहरेँ पच्छिमएसएण ।

वारमईकेरेँहिँ बाहुलेहिँ । सिंघव मणिबंधहिँ बट्टुलेहिँ ।

माणगीवेँहिँ कच्छाणुणेहिँ । उट्टुउडेहिँ कोकणियहिँ-तणेहिँ ।

दसणावलियए कण्णाडियए । जीहएँ को रोहणवाडियए ।

णासउडेँ तुंग विसपत्तणेहिँ । गंभीरएहिँ वर-लोयणेहिँ ।

भउहाजुएण उज्जेणएण । भालेण अचित्त उडाणएण ।

कासियहिँ कवोलेहिँ पुज्जयेँहिँ । कण्णेहिँ मि कण्णाउज्जयेँहिँ ।

काअिसेहिँ केस-विसेसएण । विणएण विदाहिण-एसएण ।

घत्ता । अह किं बहुणा वित्थरेण, अण्णिवि इणणेँ सुंदरि-भइण ।

एक्केकीवत्थु लएप्पिणु, णालइ अडिय पयावइण ॥८॥

—रामायण ४६।८

दिव्वेहिँ णाणा-पयारेहिँ पुप्फेहिँ । रत्तुप्पलं-दीवरंभोय-पुप्फेहिँ ।

अइउत्तया-सोय-पुण्णाय-णाएहिँ । सयवसिया-भालई-मारिजाएहिँ ।

(क) भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—

धत्ता । तहें बनहि मध्ये हनुमंतउ, सीय निहारे^१उ दुर्मनिया ।

जनु गगन-मार्गे उन्मीलित, चंद्रलेख दुलियह-तनिया ॥७॥

सखिय सहस्रेहि परिवारिय, जनु वनदेवी अवतरिया ।

तृण-मात्रहु नव-लक्षण जाहि, निर्वर्णये काहें ताहि ॥

वर-पद-तलेहि^२ पधार-एहि । सिंहलिनेहि^३ दिशि-गौरवेहि ।

उन्वांगुलीहि^४ वंपुत्पएहि । बाढलिऐ गुल्फेहि^५ गोलएहि ।

वर-पेट-एहि^६ माकंदएहि । श्रीपर्वत-केरहि^७ मंडितेहि ।

ऊरध-जुगले^८ नेपालयेहि । कटिमंडलेइ करहाटिकेहि ।

वरश्रोणिय कांची-केरिया । सूक्ष्म-नाभिकेहि^९ गंभीरिया ।

सुललित-पृष्ठिय शिवारियेहि । पिंड-स्तनियइ एलकुलियइ ।

वक्ष-तले मध्यम-देशिया । भुज-शिररे पच्छिम-देशिया ।

द्वारधती-केरइ बाहुयहि^{१०} । सिंघदिय वर्तुल-मणिबंधहि ।

मान-ग्रीवहि^{११} कच्छाणनिया । ओठउडे^{१२} को^{१३}कणि-तनिया ।

दशनावलिहि^{१४} कक्षाडिया । जीभहि^{१५} रोहण-बाडिया ।

नासउडे^{१६} तुंग-दियय-तनिया । गंभीरिया वरलोचनिया ।

भीहा-भुगेइ उज्जेनिया । भालेहें विचित्र ओडियानिया ।

काशिया कपोलेहि^{१७} पुंजकेहि । कर्णेहि^{१८} हि कनउज्जकेहि ।

केश-विशेषकेहि^{१९} काबिलिया । विनयेहि^{२०} हि वक्षिण-देशिया ।

धत्ता । अरु का बहु-विस्तारेहि^{२१}, अन्यान्येहि^{२२} सुंदरिमयी ।

एक-एक वस्तु लेइके, जनु गढे^{२३}उ प्रजापति ।

—रामायण ४६।८

दिव्येहि^{२४} नाना-प्रकारेहि^{२५} पुष्पेहि^{२६} । रक्तोत्पल-दीवर-भोज-पुष्पेहि^{२७} ।

अतिमुक्ताकर-शोक-मुक्ताग-नागेहि^{२८} । शतपत्रिका-मालति-पारिजातेहि^{२९} ।

कणिया (र)-कणवीर-मंदार-कुदेहि । विग्रहल-वर-तिलय-वडलेहि । मदेहि ।
 सिधूर-बंघूक-कोरंट-कूजेहि । दमणेण भरुएण पिवका-तिसंजकेहि ।
 एवं भ मालाहि अण्णण-रुवाहि । कण्णाडियाहि'व्व सरसार-भूपाहि ।
 आहीरियाहि'व्व वायाल-भसलाहि । बलाडियाहि'व्व मुह-वण-कुसलाहि ।
 सोरहियाहि'व्व सव्वंग-मलआहि । मालविणिआहि'व्व मज्जारुउआहि ।
 मरहडियाहि'व्व उदाम-वायाहि । गीयज्जुणीहि'व्व अण्णण-ध्यायाहि ।
 —रामायण ७१।६

(३) जल-क्रीडा

धत्ता । तहि सर-गह-यले स-स-कलत्त वेवि हरि-हलहरा ।
 रोहिणि^१-रणहि णं परमिय चंद-दिवायरा ॥१४॥
 तहि तेहएँ सरेँ सलिले तरंतहैं । संचरंति चामीयर-जंतहैं ।
 णाइ विमाणइ समहों पडियहैं । वण-विचित्त-रयण-वेयडियहैं ।
 णत्थि रयणु जहि जंतु ण घडियउ । णत्थि जंतु जहि भिट्ठणु ण चडिअउ ।
 णत्थि भिट्ठणु जहि णेह्ठ ण बड्ठिय । णत्थि णेह्ठ जहि सुरउ ण बड्ठिय ।
 तहि नर-नारि-जुबइ जल कीडइ । कीडंताइ णंहंति सुरलीसइ ।
 सलिलु करगह आप्फालंतहैं । मुरय-वज्ज-धायव धरिसंतहैं ।
 कलियहि कलियहि अहिणव-गेयहि । बढइ सुरयक्खित्तिय तेयहैं ।
 छंदेहैं तालिहैं वहुलय-भंगेहि । करुणुच्छेत्तिहि णाणा भंगेहैं ।
 धत्ता । चोक्खु स-रागउ, सिंगार-द्वार-दरिसावणु ।
 पुप्फ-रज्जु-ज्जुवत, जलकीडणउ सलक्खणु ॥१५॥
 जले जय-अय सदेँ ण्हाय णर । पुणु णिग्गय-हल सारंग-धर ।
 —रामायण २६।१४-१६

सल्लविसत्ता-सुंदरि सीयहैं । वज्जयण-सीहोयर-वीएँहैं ।

धत्ता । बुल्लइ भरह णराहिवह, सर-मज्जे तरंत-तरंतहैं ।
 देवर मोहि वारदरिअच्छहुँ, जल-कील-करंताहैं ॥१०॥

कर्णकार-कर्णवीर-मंदार-कुंदेहिं । बेईस-बरतिलक-वकुलेहिं मंदेहिं ।

सिंधूर-वंधूक-कोरंट-कच्चेहिं । दवनेहिं मरएहिं पिकका-तिसंध्येहिं ।
ऐसेहि मालाहिं अन्यान्य-रूपाहिं । कम्मरडियाहिं इव सरसार-भूताहिं ।

आहोरियाहिं^१ व वाचाल-भसला^२हिं । वाराडियाहिं^३ व मुखवर्ण-कुशलाहिं ।
सौराष्ट्रियाहिं^४ व सर्वांग-मृदुकाहिं । मालविणियाहिं^५ व कटिमध्य^६ सूक्ष्माहिं ।

मरहट्टियाहिं^७ व उदाम-वाचाहिं । गीत-ध्वनिहिं^८ इव अन्यान्य-छायाहिं ।

—रामायण ७१।६

(३) जलक्रीडा

धत्ता । तहें सर-नभ-सले स्वस्व-कलत्रेहिं हरि-हलधरा^१ ।

रोहिणि रानिहिं जनु प्र-रमे^२उ चंद्र-दिवाकरा ॥१४॥

तहें तेहि हि सर सलिल तरंता । संचरही^३ चाभीकर-यंत्रा ।

नारि-विमाना स्वर्गहें पडिया । वर्ण-विचित्र-रत्न-बीजडिया ।

नाहि रत्न जहिं जंतु न गडियउ । नाहि जंतु जहिं मिथुन^४ न बडियउ ।

नाहि मिथुन जेह नेह न बडियउ । नाहि नेह जेह सुरत न बडियउ ।

तहें नर-नारि-युवति जलक्रीडे^५ । क्रीडंती नहाई सुरलील^६ ।

सलिल कराग्रहिं उच्छालन्ते^७ । मुरज-वाद्य थापा दरसन्ते^८ ।

स्लक्षितहिं बलितहिं अभिनव-गीतेहिं । बद्ध^९ सुरत-समन्वित तेजहिं ।

छन्देहिं तालहिं बहुलय-भंगहिं । करुण-तेस्सेपी नाना-भंगहिं ।

धत्ता । चक्षु सरागउ शृंगार-हार-दरसावन ।

पुष्परज्जु युध्यंत, जलक्रीडनउ सलसावन ॥१५॥

जले जय-जय-शब्देहिं नहाएँ नर । पुनि निकसे हल-सारंगधर ।

—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला सुंदरि सीतहिं । वज्रकर्ण-सिंहोदर-शीतहिं ।

धत्ता । बोले भरत नराधिप, सर-मध्ये तरंत-तरंताई ।

देवर थोडिवार रहउ, जलक्रीड करंताई ॥१०॥

^१ अमर

^२ हरि = लक्ष्मण, हलधर = राम

^३ जोड़ा

तं पडिक्खणु पइट्ठु महासर । जल-कीडहेँ वि अक्खलु परमेसर ।

लगज सुंदरीउ जज-भासेहि । गाढालिंगण-बुवण-हासेँहि ।

हेला-हाव-भाव-विण्णासेहिँ । किलिंकियि विच्छित्ति-विलासेहिँ ।

मोट्टाविय कुट्टमिय वियारेहि । विवमम दरविब्बोक-पयारेहिँ ।

तो वि ण खुहिउ भरहु सहसुट्टिउ । अक्खलु ण गिरि-मेरु परिट्टिउ ।

अच्छइ जाव तीरेँ सुह-दंसणु । ताव महागउ-तिजग-विहीसणु ।

णिय आलाण-खंभु उप्पाडेवि । मंदिर सयइ अणेयइ पाडेवि ।

परिभमंतु गउ तं जेँ महासर । जलकीलइ जहि भरहु णरेसर ।

—रामायण ७६।११

(४) प्रेम (काम)-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीयहेँ देह-रिद्धि पावतिहेँ । येँक्कु दिक्खु दप्पणु जोयतिहेँ ।

पडिमाछलेँण महाभयगारउ । आरिस बेस णिहालिय णारउ ।

जणय-तणय सहसति पणट्ठी । सीहागमणेँ कुरंगिँव दिट्ठी ।

“हा हा माएँ” भणतिहिँ सहियहिँ । कैलयलु कियउ भग्न गह्म-गहियहिँ ।

अमरिस कुञ्जइय किकर । उक्खयँव कुञ्जरवाल भयंकर ।

मिलिवि तेहि-कहँ कहँभि ण मारिउ । लेवि अद्धचदेँहिँ णोसारिउ ।

घत्ता । गउ सब राहुउ देवरिसि, पडे पडिम लिहेवि सीयहेँ तणिया ।

दरिसाविय भामंडलहोँ वि, सजुत्ति णाइ-णर धारणिया ॥८॥

दिट्ठु जेँ जेँ पडपडिम कुमारैँ । पंचहि सरहि विद्धुणं मारेँ ।

सुसिंय दणु घुम्मइय णिडालउ । बलिय अंगु मोडिय भुयडालउ ।

यद्ध केसु परकोडिय वच्छउ । दरिसाविय दस कामावत्यउ ।

चित पढम याणंतरेँ लगइ । बीयएँ पिय-मुह-दंसणु भगइ ।

सो प्रतिपल पइसु महासर । जलक्रीडहिंहि अचल परमेस्वर ।

लागी सुंदरी ज चौपासेहिं । गाढासिंगन-चुवन-हासेहिं ।
हेला-हाव-भाव-बिन्धासेहिं । किलकिंचित-विकिप्ति-विलासेहिं ।

मोटावन-कुटुमन-विकारेहिं । विभ्रम-वरविज्जोक-प्रकारेहिं ।
तोउ न क्षुभेउ भरत भट उदठेउ । अविचल जनु गिरि मेरु परिद-ठिउ ।

जौ लो रहै तीर शुभ-दर्शन । तौ लो महगज-त्रिजग-विभीषण ।
निज बंधान-खंभ उप्पाडिय । मंदिर-शतहिं अनेकहिं पातिय ।

परिभ्रमंत गज तेहिहिं महासर । जलक्रीडे जहै भरत-नरेस्वर ।

—रामायण ७६।११

(४) प्रेम-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीता देह ऋद्धि पावतिह । एक दिवस दपण जोयतिह ।

प्रतिमा छलेइ महाभयकारु । ऐसी वेस तिहारेउ न्यारु ।
जनकतनयाँ सहस्रह्री भारी । सिंहागमने कुरैगि व लागी ।

“हा हा मारु” भनतिहिं सखियाहिं । कलकल कियेउ, भागु गहिगहियहिं ।
आमरस्त्री कोषेऊ ! किकर । उत्किप हव करवाल भयंकर ।

मिलब तेहि कहै कहै न मारिउ । लेखि अर्धचंद्रेहि निस्सारिउ ।
बसा । गउ सव राघव-देव-ऋषि, पटे प्रतिम लिखब सीता-तनिया ।

दरसायेउ मामंडलहुँ, युक्ति नारि-नर धारणिया ॥८॥
देखु जोहि प्रति-प्रतिम कुमार । पंचहिं शरहि बेशु जन मारा ।

सुखेउ बदन घूमिया ललाटउ । कपेउ अंग मोडेउ भुजडालउ ।
बंघेउ केश मरोड़िय बक्षा । दरसायेउ दश कामावस्था ।

चित्त प्रथम स्थानंतरे लागै । दुसरे प्रियमुख-दर्शन भागै ।

तइयएँ ससइ दीह-पीसासे । कणइ अउत्थइ कर-विण्णासे ।

पंचम डाहे भंगु ण दुच्चइ । छट्ठइ मुहहो ण काइ किरुवइ ।

सत्तभि थाणे ॥ गसु लइज्जइ । अट्ठमे गमणू माएहिं भिज्जइ ।

णवमएँ पाण-संदेहहो दुक्कइ । दसमएँ मरइ ण केमवि चुक्कइ ।

धत्ता । कहिउ णरिंदहो किंकरिहिं, पहु दुक्कर जीवइ पुत्त तउ ।

हा सेहिं वि कण्णहु कारणेण, सो दसमी कामावत्थ गउ ॥६॥

—रामायण २१।८-९

लक्खिउ लक्खणु लक्खण-भरियउ । णं पच्चक्खु मयणु अवयरियउ ।

भू उणियवि मुर-भवणाणंदहो । मणु उल्लोलेहिं जाइ णरेंदहो ।

मयण-सरसणे धरे वि ण सक्किउ । वम्महो दस ठाणेहि पदुक्कउ ।

पहिलइ कहुबि समणू ण बोल्लइ । वीयएँ गुरु पीसामु पमेल्लइ ।

तइयए समयु भंगु परितप्पइ । चउत्थइ णं करवत्तेहि कप्पइ ।

पंचमे पुणु पुणु पासेइज्जइ । छट्ठएँ बार-बार मुच्छिज्जइ ।

सत्तमे जलुवि जलइ ण भावइ । अट्ठमे मरण-लील दरिसावइ ।

णवमएँ पाण पढंत ण वेअइ । दसमएँ सिर छिज्जंतु ण चेयइ ।

धत्ता । एअ विपंभिउ कुसुमाउहु, दसहेमि थाणेहिं ।

तं अच्छरिउ जं भुक्कु, कुमार ण पाणेहिं ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-विरुएँ दुम्मणिया, असु-अलोल्लिय-लौयणिया ।

मोक्कल केस कवोलु भुआ, दिट्ठ विसंठुल जणय-सुया ॥

आणइ-वयण-कमलु अलहत्तिउ । भुहु ण देंति फुल्लंबुय पंतिउ ।

हणइ तो वि ण करंति णिवारिउ । करयलेहि लगंति णिवारिउ ।

एव सिस्सीमुह सा निज्जंती । अण्णु विऊय-सोय-संतंती ।

वणे अच्छंति दिट्ठ परमेसरि । सेस सरिहि मज्जेण मुरसरि ।

तिसरे स्वसँ दीर्घ-निःश्वासँ । कँदँ चतुर्थँ करविन्यासँ ।

पंचम दाहँ अंग, न बोलइ । छठयँ मुखहिँ न काहुहि देखइ ।

सतयँ आन न आस लईजँ । अठयँ गमनोन्मादे भिज्जै ।

नवयँ प्राणसँदेहुहु दूकँ । दसयँ मरव न कथमपि चूकँ ।

घत्ता । कहँउ मरेन्द्रहिँ किकरिन्ह, प्रभु ! दुष्कर जीवँ पुत्र तव ।

हा ताहिहिँ कन्यहिँ कारणे, सो दसई कामावस्थ गउ ॥६॥

—रामायण २१।८-९

लखैँ लक्ष्मण लक्षण-भरिया । जनु प्रत्यक्ष भदन अवतरिया ।

भू आनेउ सुरभवनानंदहु । मन उल्लोषेहिँ जाइ नरेंद्रहु ।

मदन सरासनेँ धरख न राखेउ । मन्मथ दस आनेहिँ प्रदूकेँउ ।

पहिले काहुहि सँग ना बोलै । दूजेहिँ बड़ निःश्वास प्रमेलै ।

तीजे सकल अंग परितप्यै । चौथे जनु तरवारहिँ कँपै ।

पंचयेँ पुनि पुनि प्रासादिज्जँ । छठयेँ वार-वार मूर्छिज्जँ ।

सतयेँ जलहु जलाइँ न भावै । अठयेँ मरण-शिलाँ दरसावै ।

नवयेँ प्राण पतंत न वेदै । दसयेँ शिर छेवैत न केनै ।

घत्ता । इमि बिजृम्भेँउ कुसुमायुध, दसहुहिँ थानहँ ।

सो अचरज जो छूट, अ प्राण कुमारकहँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राभ-वियोगे दुर्मनिया, अश्रु जलोत्थित-सोचनिया ।

मुक्तहु केश कपोलेँ भुजा, देखु विसंस्थूल जनकमुता ॥

जानकि-वदन-कमल अलभतिउ । मुख न देति फुल-न्वुक-भक्तिउ ।

हनँ तो उ न करति निवारैँउ । करतलेँहीँ लागति निरासेँउ ।

ऐस शिलीमुख सासनयता । अन्येँ वियोग-शोक-संतप्ता ।

वनेँ वसति दीक्षु परमेस्वरि । शेष सरिहिँ मध्ये (जनु) सुरसरि ।

हरिसिद्ध अंजणेउ इत्यंतरे । वण्णउ एक्कु रामु भुवणंतरे ।

जो तिथ एह आसि माणंतउ । रावणु सइ जि मरइ अलहंतउ ।
गिरलंकार जो होंसी सोहइ । जइ मंडिय तो तिहुयणु मोहइ ।

सीयहोंतणउ रुउ वण्णेप्पिणु । अप्पहु गहे पच्छण्णु करेप्पिणु ।
घत्ता । जो पेसिउ राहुवचंदेश, सो घत्तिउ अंगुत्थलउ ।

उच्छंगि पडिउ वइदेहिहे, णावइ हरिसहो पोटुलउ ॥६॥ ...
लक्खिय सीया एवि किह । वियसिय सरिया होइ जिह ।

णं मय-लच्छण ससि-जोष्हा इव । तित्ति-विरहिय गिम्ह-तप्प्हा इव ।
णिब्बियार-जिणवर-पडिमा इव । रइविहि विण्णाणिय-धडिया इव ।

अभय-करच्छज्जीव-दया इव । अहिणव-कोमल-वण्ण-लया इव ।
स-पउहर पाउस-सोहा इव । अविचल सव्वंसह वसुहा इव ।

कंति-समुज्जल-तडिभाला इव । सुट्ट सलोण उयहि-बेला इव ।
णिम्मल-कित्तिव रामहो केरी । तिहुयणुमिवि परिद्विय सेरी ।

—रामायण ४६।६, १२

(६) मिलन (सीता-राम)

“अहों अहों परमेसर दासरहि । पच्छएँ लंकाउरि पईसरहि ।

मिलि ताव भबारा^१ जाणइहे । तइ दुत्तर विरह-महाणइहे ।
चडु ति-जग-विहूसण-कुंभ-यले । मय-परिमल-मेलविथ भसले” ।

घत्ता । तं णिसुणे वि हलहरु-वक्कहरु, सीयहे पासे समुच्चलिया ।

अहिसेय-समएँ सिरिदेवयहो, दिग्गय विणिण णाइ मिलिया ॥६॥

वइदेहि दिट्ठ हरि-हलहरेहि । णं चंद-नेह विहि-जलहरेहि ।

णं सरय-सच्छि पंकय-सरेहि । णं पुण्णएँ विहि पक्खंतरेहि ।
णं सुरसरि हिम-गिरि-सागरेहि । णं णह-सिरि चंद-विवायरेहि ।

परिपुण्ण-मणोरह जाणईहि । तर इव लायण्ण-महाणईहि ।

हरखेँउ आंजनेय ऐँहि अवसरे" । वन्यउ एक राम भुवनंतरे" ।

जो तिय एहु अहै मानंतिय । रावण भरै सतिहिँ अलमंतिय ।
निरसंकार होति जो सोहै । यदि मंडित तो त्रिभुवन मोहै ।

सीयहिँ केर रूप वर्णविय । आपुहँ तभे" अछन्न करेविय ।
घसा । जो प्रेखेँउ राघवचंद्रेण, सो डारेँउ अंगुष्ठि लिऊ ।

उत्संगे" पडिउ वैदेहिकहँ, मानो हर्षहँ पोष्टलिऊ ॥६॥
लक्ष्मेउ सीत ऐसु किमि । विकसिउ सस्ति होइ जिमि ।

जनु मृणालाञ्जन शशि ज्योत्स्ना इव । तूप्ति-विरहित ग्रीष्म-तृष्णा इव ।
निर्विकार जितवर-श्रुतिभा इव । रतिपतिहिँ जनु निज गडिया इव ।

अभयकर अछ्छ जीवदया इव । अभिनव-कोमल-वर्णलता इव ।
स-भयधर पावस-शोभा इव । अविचल सर्वसह वसुधा इव ।

कांति-समुज्ज्वल तडिमाता इव । सुद्धि सलोन उदधि-बेला इव ।
निर्मल कीर्ति इव रामहिँ केरी । त्रिभुवनहूँहि परिस्थाय सेरी ।

—रामायण ४६।६, १२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहो" अहो परमेश्वर ! दाशरथी । पाछे लंकापुरी पइसँही ।
मिलु तब भट्टारक जानकिही" । तर दुस्तर विरह-महानदिही" ।

चहु त्रिजग-विभूषण कुंतले । मद-परिमल मेलायेँउ असले" ।
घसा । सो सुनियाहि हलधर-वक्रधर, सीतहिँ पास समुच्च-प्रसिया ।

अभिषेक समय श्रीदेवियहूँ, दोँउ दिगज न्याई" आमिलिया ॥
वैदेहि दीख हरि-हलधरेहिँ । जनु चंद्रलेख बिबु-जलधरेहिँ ।

जनु शरद-लक्ष्मि पंकज-सरेहिँ । जनु पूर्णो बिबु पक्षांतरेहिँ ।
जनु सुरसरि हिमगिरि सागरेहिँ । जनु नभअरी चंद्र-दिवाकरेहिँ ।

परिपूर्ण-मनोरथ जानकीहिँ । तरे" इव लवण्य-महानवीहिँ ।

णिय-गयण-सरासणि संघ इव । पिउ पगुण-गुणेहिं निबंघ इव ।

जस-कहमे^१ णं जगु लिप इव । हस्तिंसु पवाहे^२ सिप्प इव ।

विज्जे इव करयल-पल्लवेहिं । अण्णे इव गहकुसुमे^३हि णवेहिं ।

पइसर इव हियए^४ हलाउहहो^५ । कर इव उज्जोउ दिसाभुहहो^६ ।

घत्ता । मेहलिय^७ मिलंतहो^८ रहुवइहे^९ । सुहु उप्पण्णउ जेतइउ ।

इंदहो इंदत्तणु णत्ताहो, होज्जण होज्जवे^{१०} तेत्तइउ ॥७॥

सकलत्तउ लक्खणु पणय-सिर । पमणइ जलहर-गंभीर-गिर ।

“जं किउ सर-दूसण-तिसर-वहु । जं हंसदीवे^{११} जिउ हंसरहु ।

जं सत्ति पडिच्छिय समर-मुहे ॥ जं लम्पु विसल्ल करंवुरुहे ।

जं रणे^{१२} उप्पण्ण चक्करयणु । जं णिहिउ बलुद्धर दहवयणु ।

तं देवि ! पसाए^{१३} तउत्तणे^{१४} । कुलु धवलित जाइ सहत्तणे^{१५}” ।

अहिवायणु किउ लक्खणेण जिह । सुग्गीव-पमुह-गरवरहिं तिह ।

सयलवि णिय-णिय वाहणे^{१६}हिं यिय । पर-पुर-पवेस-सामगि किय ।

जय-अंगल-सूरइ ताडियाई^{१७} । रिउ-धरिणिहिं वित्तइ पाडियाई^{१८} ।

—रामायण ७.५६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—“हले हले^१ सीएँ सीएँ कि भूढ़ी ! अच्छहि दुक्खे^२ महणवे^३ छूढ़ी । . . .

हले हले^४ सीएँ ! सीएँ ! महि भुजहिं । माणुस-जम्महो^५ अणहुंजहिं ।

घत्ता । पिउ अच्छहि पट्टु पडिच्छहिं, जइ सम्भावे^६ हसिउ पई ।

तो लइ सह एवि पसाहणु, अब्भत्तिय एत्तउ उ मह^७” ॥१२॥

तं जिसुणेवि वयदेहि सुया । पमणइ पुलय-विसट्ट भुआ ।

निज-नयन-शरासने^१ संघ इव । प्रिय-प्रभुण-गुणेहि^२ निबंध इव ।

यश-कर्दमे^३ जनु जग लेप इव । हंसियेउ प्रवाहे सीप इव ।

विष्ठा इव करतल-पल्लवेहि^४ । अवे^५ इव नखकुसुमेहि^६ नवेहि ।

प्रतिसर इव हियइ हलायुधह^७ । कर इव उज्जोतु निशा-मुखह^८ ।

घत्ता । मेहरिहि^९ मिलते रघुपतिहि^{१०}, सुख उत्पन्न जेतनऊ ।

इन्द्रह^{११} इन्द्रत्व-प्राप्ति समये, हुयउ न होइहि तेत्तनऊ ॥७॥

स-कलत्रउ लक्ष्मण प्रणत-शिरा । प्रभनै जलधर-गंभीर-गिरा ।

“जो किउ खर-दूषण-विशिर-वधा । जो हंसदीपे^{१२} जितु हंसरथा ।

जो शक्ति प्रतीच्छेउ समर-मुखे । जो लाग विशाल्य करबुद्धे ।

जो रणे^{१३} उत्पन्न चक्ररतना । जो निधिउ बलुद्धर दशवदना ।

सो देवि ! प्रसादे^{१४} तवतनऊ^{१५} । कुल बबले^{१६}उ जाइ सतित्वनऊ^{१७} ।

अभिवादन किउ लक्ष्मणेहि^{१८} यथा । सुग्रीव प्रमुख-नरवरहि^{१९} तथा ।

सकलेहि^{२०} निज-निज वाहने^{२१} धितउ । पर-भुर-प्रवेश-सामग्रि^{२२} कियउ ।

जयमंगल-तूर्य ताडिया । रिपु-भरिणिहि^{२३} चित्ता पाडिया ।

—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका अधार—

रावण—“हले हले सीते सीते ! का भूकि । रहहि दुःख-महार्णवे^१ छूटि ।

हले हले सीते सीते ! महि भोगहु । मानुष-जन्मह^२ फल अनु-भोगहु ।

घत्ता । प्रिय इच्छहि^३ पट्ट प्रतीच्छहु, यदि सद्भाव^४ हसिउ तै^५ ।

तो लेहु मम एहु प्रसाधन, अभ्यर्षेउ^६ एत्तना मै^७ ॥१३॥

सो सुनिया वैदेह-सुता । प्रभणइ पुलक-विसृष्ट-भुजा ।

सीता—“सच्चउ इच्छमि दहवयणु ।

इच्छमि जह महु महु ण णिहालह ।

जह पुणु णयणानंदणहोँ, ण समप्पिय रतुणंदणहोँ ।
ता हउँ इच्छमि एउ हले, पुरि खिप्पती उयहि-जले । . . .

इच्छमि णंदण-वणु मज्जंतउ । इच्छमि पट्टणु पयलहोँ जंतउ ।

इच्छमि दहमुह-तरु छिज्जंतउ । तिलु तिलु राम-सरेँहि भिज्जंतउ ।

इच्छमि दसँवि सिरइ णिवडंतहँ । सरेँ हंसाहय इव सयवसई ।

इच्छमि अंतउरु रोवंतउ । केस-विसंधुलु वाह मुथंतउ ।

इच्छमि छिज्जंतिय धय-चिंधहँ । इच्छमि णच्चंताई कवंधहँ ।

इच्छमि धूमं धारिज्जंतहँ । चउदिमु सुहइ चियाई बलंतहँ ।

जं जं इच्छमि तं तं सच्चउ । णं तो करमिज्जइ हले पच्चउ” ।

—रामायण ४६।१५

(स) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसल-जयरेँ पराइय जावेहिँ । दिणमणि गउ अत्यवणहोँ तावेहिँ ।

जत्यहोँ पियपमेण णिब्वासिय । तहोँ उववणहोँ मज्जेँ आवासिय ।

कहवि विहाणु भाणु णहि उगगउ । अहिमुहु सज्जण-खोउ समागउ ।

कंतहितणिय कंति पेँक्खेप्पिणु । पभणइ पोमणाहु निहसेप्पिणु ।

“जइ वि कुलम्पयाउ गिरवज्जउ । महिलउ होँति सुद्धु णिल्लज्जउ ।

दरदाविय कइक्ख-विक्लेवउ । कुडिलमइउ बड्ढिय अवलेवउ ।

बाहिर धिट्ठउ गुण-परिहीणउ । किह सयखंडु ण जंति तिहीणउ ।

गउ गणंति णिय-कुलु महलंतउ । तिहुयणेँ धयस-पडहु वज्जंतउ ।

अंगु समोहेँवि धिद्धिक्कारहोँ । वयणु णिएँति केम भत्तारहोँ” ।

सीय ण भीय सइत्तण गब्बेँ । बलेँवि पवोत्थिय मच्छर गब्बेँ ।

“पुरिस-णिहीण होँति गुणवंतिवि । तियहेँ ण पत्तिज्जंति मरंतिवि ।

सीता—साँचे इच्छुअँ दशाननू । . . . ।

इच्छुअँ यदि मम मुख न निहारै ।

यदि पुनि नयनानंदनहिँ, न समपेँउ रघुनंदनहिँ ।
तो हौँ इच्छुअँ एहु हले, पुरि फेँकंती उदधि-जले ।

इच्छुअँ नन्दन-वन मज्जंता । इच्छुअँ पट्टन पातल जंता ।
इच्छुअँ दशमुख-तर छिन्नंता । तिल-तिल राम-शरेंहिँ भिद्यन्ता ।

इच्छुअँ दसहु शिरा निपतंता । सरें हंसाहत दब शत्पन्ना ।
इच्छुअँ अन्तःपुर रोवंती । केश-विसंस्थूल ढाह भरंती ।

इच्छुअँ क्षिप्रंता ध्वज-चिन्हा । इच्छुअँ नाचंता काबंधा ।
इच्छुअँ भूमा वारिज्जंता । चौदिशि सुहृदी चिता बलंता ।

ओ ओ इच्छुअँ सो सो साँचय । जनु तो करऊँ मेँ फलेँ प्रत्यय ।

—रामायण ४६।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसलनगरे पहुँचेउ अब्बहिँ । दिनमणि गउ अस्तमन्नु तब्बहिँ ।

अहेवा प्रियतमेहिँ निर्वासिय । तँहि उपवनहिँ माँझ आवासिय ।
कहू बिहान भानु ना उगगउ । अभिमुख सज्जन लोग समागउ ।

कांतहि-कैरि कांति पेखियबी । प्रमणें पद्मनाभ बिहसियबी ।
“यद्यपि कुलप्रताप निरवद्या । महिलउ होहिँ सुधूँ निर्लज्जा ।

तनिक दाबें कटाक्ष-विक्षेपउ । कुटिलमयिउ बाकिय अबलेपउ ।
बाहर बीठउ गुण-परिहीना । किमि शतखंड न जांति त्रिहीनउ ।

नहिँ गणहीं निजकुल मइलंता । त्रिभुवनेँ अयश-मटह बाजंता ।
अंग समोडेँहु विक्थिक्कारहूँ । वदन नियति केम भर्तारहूँ ।

सीय न भीत सतीत्वाहिँ गर्वेँ । बलेँहु प्रबोलैलेँउ मस्सर-गर्वेँ ।
“पुरुषा हीन होहिँ गुणवंतउ । तियहिँ न पतियायहीँ भरतिउ ।

घसा । खड्डलक्कड्ड सलिलु वहते^१ यहाँ, पडराणियहे^२ कुलगमहे^३ ।

रयणायक खारड देतड, तो बि ग थक्कड्ड गं जेम्मयहे^४ ॥८॥

साणु ग केणवि जणेण सणिज्जड्ड । गंगा गइहे^५ तंजे^६ प्हाइज्जड्ड ।

ससि सु-कलंकु तहि जे^७ पड्ड णिम्मल । कालउ मेहु तहि जे^८ तडि^९ उज्जल ।

उवलु अपुज्ज ग केणवि छिप्पड्ड । ताहि पडिम चंदणे^{१०} विलिप्पड्ड ।

धुज्जड्ड पाउ पंकुजड्ड लगड्ड । कमल-माल पुणु जिणहो^{११} वलगड्ड ।

दीवउ होइ सहावे^{१२} कालउ । वहि सिहए^{१३} मंडिज्जड्ड आलउ ।

गर-गारिहि एवहुउ अंतड । मरणे^{१४} वि वेत्ति ग मेत्तिड्ड तरुवर ।

एह पड कवण बोत्त पारंभिय । सड वडाय मड अज्जु समुत्थिय ।

तुहु पेक्खंतु अच्चु वीसत्थउ । उहुउ जलणु जड्ड उहिवि समत्थउ ।

घसा । कि किज्जड्ड अण्णड दिव्वे^{१५}, जेण विसुज्जहो^{१६} महु मणहो^{१७} ।

जिह कणय-लोत्ति डाहुत्तर, अच्चमि मज्जे^{१८}उ आसणहो^{१९} ॥९॥

—रामायण २३।७-९

५-सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

परबले^{२०} दिट्ठए^{२१} राहुव-वीर पयट्टउ । रड रण-रहसेण उरे सण्णाहु विसट्टउ ।

सो राहुव पहरण-हत्थाए^{२२} । इणुवड णिहण-समत्थाए^{२३} ।

धीहर-मेहल-गुप्पंताए । चंदण-कड्डमे^{२४} खुप्पंताए ।

विच्छोइय मणहर कंताए । किय-माया सुग्गीवे^{२५} ताए ।

रण-रहसुद्धूसिय-गत्ताए । अफ्फालिय वज्जावत्ताए ।

आवीलिय तोणा-जुमंताए । किंकिणि खलंत बल-मुहलाए ।

कंकण-णिवद्ध करकमलाए । वित्थिण्णुण्णय बळ्ळयलाए ।

कुंडल-मंडिय-पांडयलाए । चूडामणि-चुंविय-भालाए ।

भासुल-मुलिआरुल-वयणाए । रत्तुप्पल-सण्णिह-गयणाए ।

जं सेन-सण्णद्धए^{२६} दिट्ठाए । तं लक्खणे वि आलुद्धाए ।

—रामायण ६०।१

^१ तडित्, बिजली

घत्ता । खडखड सलिल बहंतियहु, पदरानियह कुलभयहु ।

रतनाकर सारइ दैतउ, तोषि न आकै जनु निर्मथे ॥८॥
सोउ न कोइहँ जनेहिँ गणीजै । गंगानदिहिँ सोउ नहईजै ।

शशि सकलंक ताह प्रभाँ निर्मल । कालउ मेघ ताहु तडि उज्जल ।
उपल अपूज्य न कोउं छुवई । तेहि प्रतिमा चंदन लेपइ ।

घोइये पाव पंक यदि लागै । कमल-माल पुनि जिनहु समपै ।
धीपउ होहि स्वभावे कालउ । बाति शिखहिँ मंझिजै आलउ ।

नर-नारिहीँ एवडउ^१ अंतर । भरते^२उ बेलि न मेले^३ तखर ।
एहुतै^४ कवन बोलि प्रारंभउ । सति बड़ाइ मै आज समुज्झउ ।

तुह देखंत होहु विश्वस्ता । दहउ ज्वलन यदि दहन-समर्था ।
घत्ता । का कीजै दूसर दिव्येहिँ^५, जाते^६ विशुद्धइ मम मना ।

जिमि कणक-लोले^७ दाहुत्तर, रहहुँ माँझहु आसना ॥९॥
—रामायण ८३।१-६

५-सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

पर बले वीर राघववीर । रवि रण लसेहिँ उर सप्ताह निबद्धउ ।

सो राघव प्रहरण-हस्ताऊ । दनुपति-निर्दलन-समर्थाऊ ।
दीरघ-भेखल गोप्यताऊ । चंदन-कंदमे^१ लेप्यताऊ ।

कीछोहिउ मनहर-कान्ताही^२ । कृत-माया सुग्रीवे^३ ताही^४ ।
रण-रमसेहिँ धूसित गात्राए । आस्फालिय वैयावर्त्याए ।

आ-चारैउ तूणी-जुगलाए । किंकिणि-सलंत बल-मुखराए ।
कंकण-निबद्ध-करकमलाए । विस्तीर्ण-घत-वक्षतलाए ।

कुंडल - मंडित - गंडतलाए । चूडामणि - कुंभित - भालाए ।
भासुर - पुलकाकुल - बदनाए । रक्तोत्पल - सशिम - नयनाए ।

जो सेन-सनद्धा-दीखाए । सो लक्ष्मणें^५ आलुब्धाए ।
—रामायण ६०।१

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

पइआसु नराहिउ जावेहि । साहुणु^१ मिलिउ असेसु^१ वि तावेहि ।लेहु लिहेपिणु जग-बिक्सायहो । तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहो ।
अमाएँ भित्तु वद्धलं पिक्खुव । हरिणक्खरहिँ लीण नं डिक्खुव ।सुंदर पत्तु वंतु वरसाहु^१व । गाव बहुल सरि गंगपदाहु^१व ।
विट्टु राय तहिँ आय अणंतवि । सल्ल-विसल्ल-सीह-बिक्कांतवि ।दुज्जय-अजय-विजय-जय-अय मुहँ । गर-सद्धूल-विउल गय-गय मुहँ ।
रुहवच्छ-महिबच्छ-भहद्वय । चंदण-चंदोयर-गर(ड)द्वय ।

केसर-मारि-चंड-जमहंटा । कोंकण-भलएँ-यंडिया-गट्टा ।

गुज्जर-गंग-बंग-भंगाला । पइविय-मारियत्त-पंचाला ।

सिधव-कामरुव-नाभीरा । तन्जिय-मारसीय-परतीरा ।

मरु-कण्णाड-साड-जालंधर । टक्क-हीर-कीर-खस-बब्बर ।

अवरवि जे ऐक्केक्क-पहाणा ।

—रामायण ३०।२

घत्ता । जे अल मलयल पबल-बले, हरि-बल-बलेहि साहिया ।

ते गरवइ लक्खणकुसेहि, सबसि करेण्णिणु साहिय ॥५॥

अस-सब्बर-बब्बर-डक्क-कीर । कडवेर-कुरव-सोंडीर-बीर ।

तुंग-ग-बंग-कन्होज्ज-भोट्ट । जालंधर-अवणा-जाण-अट्ट ।

कंभीरो-सीपर-कामरुव । ताइय-पारस-काहार-सूव ।

नेपाल-घट्ट-हिंडीव-तिसर । केरल-काहुल-कइलास-वसिर ।

अंधार-ममह-महा-हिवावि । सक-सू सेण-मरु-पत्थिवावि ।

एयवि अवरवि किय बस-विहेय । पल्लट्ट पडीवासेहि लेय ।

—रामायण ६२।६

(२) देश-विजय

(पेशोके भाष)

परि-आरूढ नरसिंघ जन्वहि^१। साधन^१ मिले^२ अशेषउ तन्वहि^३।

लेख लिएवउ जग-विख्यातहु । तुरत विसजउ महिबर-रायहु ।
आगे लियउ बद्धल पेखु^४व । हरिणाक्षरहि^५ लीन जनु डिकखु^६व ।

सुंदर पात्रवंत वर साधु^७व । नाव-बहुल सरि गंग-प्रवाहु^८व ।
दील राय तहु^९ आय अतंतउ । सल्ल-विसल्ल-सिंह-विक्रांतउ ।

दुर्जय-अजय-विजय-अय-जय मुख । नर-शार्दूल-विपुलगज-गजमुख ।
शशवत्स-महिवत्स-महाध्वज । चंदन-चंदोदर-भारुध्वज ।

केसर-मारि-चंड-यमघंटा । कौकश-मलय-पंडिया-तट्टा ।

गुर्जर-गंग-वंग-भंगाला । पहलिय-दारियात्र-पंचाला ।

सिंधव-कामरूप-गंगीरा । ताजिक-पारसीक-परसीरा ।

मरु-कर्नाट-जाट-जालंधर । टक्क-अहीर-कीर-खस-बर्वर ।

अवरहु जे ऐक-एक प्रबाना । ।

—रामायण ३०।२

धत्ता । जे अलमत बल प्रवलबले^१, हरिवल बलेहि^२ साधिया ।

ते नरपति(हुँ) लव-कुशेहि^३, स्ववश करीय प्रसाविया ॥५॥

खस-सर्वर-बर्वर-टक्क-कीर । कोबेर-कुरव-शोहीर-वीर ।

तुंग-डुंग-वंग-कंवोज-भोट । जालंधर-खल्ला-जान-जट्ट ।

कश्मीर-उशीनर-कामरूप । ताजिक-पारस-काहार-सूब ।

नेपाल-धट्ट-हिंदिय तिसरा । केरल-कोहल-कैलास-वशिर ।

गंधार-भगह-मद्र-आहिवाड । शक-शूरसेन-मरु-पार्थिवाड ।

एतउ अवरउ किउ वश-विधेय । पलटेंउ प्रतीवासेहि^४ लेय ।

—रामायण ८२।६

^१रण-साधन, सेना

(३) योधाओंकी उमंगें

अण्णेकक सुहृद सण्णद केवि । गिय कंतहु आलिगणु करेवि ।

अण्णेकहु वण तंबोलु देइ । अण्णेकक समप्पिउ पिउ ण लेइ ।

मह कत्ते^१ समाणे^२ जउदलेहिं । ह्यपण्णे^३हि रहवर-पोप्फलेहिं ।

णर-वर संचूरिय-चुण्णएण । रिउ-जयसिरि-जहुअएँ दिण्णएण ।

अण्णेकहो जाई सुकंत देइ । ऊहुल्लई फुल्लई नतर लेइ^४ ।

णसमिच्छमि^५ हँउ तुहु लेहि भज्जे^६ । एत्तिउ सिरु गिवडइ सामि-कज्जे^७ ।

अण्णेकहो^८ धण-भूसणई देइ । अण्णेककु तंपि तिण-समु गणेइ ।

किं गंधे^९ किं चंदण-रसेण । मह अंगु पसाहेव्वउ जसेण ।

यत्ता । अण्णेकहो^{१०} धण अप्पाहइ, हिम-ससिकंत-समुज्जलई ।

करिकुंभइ पाह दलेप्पिणु, आणेज्जहिं मोत्ताहलई ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

केवि जस-लुद । सण्णद-कोह । केवि सुमित्त-मुत्त । सुकलत्त-वत्त-मोह ।

केवि णीसरंति वीर^१ । भूधर^२व्व तुंगधीर ।

सायर^३व्व अप्पमाण । कुंजर^४व्व दिण्णदाण ।

केसरि^५व्व उदकेस । वत्त-सव्व-जीवियास ।

केवि साभि-भत्ति-वत्त । मन्धिरगि-पज्जलंत ।

केवि आहवे अभंग । कुंकुमं पसाहि-अंग ।

केवि सूर साहिमाणि । सत्ति-सूल-वक्कपाणि ।

केवि गीठ वादणत्थ । तोण-दाण-वाव-हत्थ ।

कुद लुद-बुद केवि । गिरगयासु सण्णहेवि ।

—रामायण ५६।२

^१ नह नलेइ—पुना

^२ हेलाबुवई-छंद

(३) योधाओंकी उमंगें

अनेक^१ सुभट सन्नद्ध कोइ । निज कंतहैं आतिगत करेइ ।

अनेकहु धनि तांबूल देहिं । अनेक समर्पेउ पिय न लेहिं ।

मैं कंत समाने चउदलेहिं । हय पर्षेहिं रघवर-श्रीफलेहिं ।

नरवर संचूरित-चूर्णकेहिं । रिपु-जयश्री-वधुअइ दिखकेहिं ।

अनेकहु जाई सुकंत देइ । ऊहलैं फूलैं नर न लेइ ।

नहिं इच्छतैं हउं तुहु लेइ भाज्ये । ईहउ छिर निपतैं स्वाभिकार्ये ।

अनेकहैं घन-भूषणें देइ । अनेक सोउ तृणसम गनेइ ।

का गंधहिं का चंदन-रसही । मैं अंग प्रसाधेबउं यशेहिं ।

घशा । अनेकहु घन आपानही, हिम-शशिकान्त-समुज्जलई

करिकुंभई नाथ ! दलेबिय, आनीजै मुक्ताफलई ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

कोइ यशसुब्ध । सन्नद्ध-कोष । कोइ सुमित्र-पुत्र । सुकलत्र त्यक्तमोह ।

कोइ निःसरंति दीर । भूषर हव तुंगवीर ।

सागर इव अप्रमाण । कुंजर इव दिग्ग-दान ।

केसरि इव ऊर्ध्व-केश । त्यक्त-सर्व-जिविताश ।

कोइ स्वामि-भक्तिमंत । मस्तरागि-प्रज्वलंत ।

कोइ आहवे अभंग । कुंकुमे प्रसाधित-अंग ।

कोइ घूर साभिमानि । शक्ति-शूल-चक्र-भाणि ।

कोइ गीढ़-बासणास्त्र । तूष-बाण-चाप-हस्त ।

क्रुद्ध लुब्ध-युद्ध कोइ । निर्गत-असु सन्नहेइ ।

—रामायण ५६।२

(४) पत्नीसे विदाई (राघव-सैनिककी)

धस्ता^१ । कोइ पचाइउ हणु हणु सदै^२, परिहइ कोइ कवउ आणदि^३ ।

रण-रसियहो^४ रोमचुम्भिणहो^५, उरे^६ सण्णाहु ण माइउ अण्णहो^७ ॥२॥
पभणइ कावि "कंत ! करि-कुंभे जेतडाई । मुत्ताहलाई लेवि महु आणेज्जहि तेत्तडाई" ।

कावि कंत-बिधइ अप्पाहुई । कावि कंत गिय-कंतु पसाहुई ।
कावि कंत-मुह मंति करावई । कावि कंत दप्पणु दरिसावई ।

कावि कंत पिम-गयणइ अंजई । कावि कंत रण-तिलउ पउंजइ ।
कावि कंत स-विधारउ जणइ । कावि कंत तंबोलु समप्पइ ।

कावि कंत-बिबाहर लग्गइ । कावि कंत आलिगणु मग्गइ ।
कावि कंत ण गणेइ णिवारिउ । सुरयारंभु करेइ गिरारिउ ।

कावि कंत-सिरे^८ बंधइ फुल्लई । वत्थइ परिहावई अमुल्लइ ।
कावि कंत आहरणइ दीयई । कावि कंत परमुहइ पजोयई ।

धस्ता । कहवि अंगे रीसहु ण माइय, पिय रण-बहुअएँ सहुँई संगइया^९ ।

जइ तहु तहे^{१०} अणुराइउ वट्टइ, तो महुँ ण हवय देवि पयट्टइ ॥३॥
पभणइ कोवि "वीरजइ चवहि एव भज्जे । तो वरे^{११} तहे^{१२} जे^{१३} देमि जाजुत्त सामिकज्जे ।"

कोवि भणइ "गयगंडवलग्गइ । आणवि मुत्ताहलई धयग्गई ।"
कोवि भणइ "णउ लेमि पसाहुणु । जाव ण भंजमि राहव-साहुणु ।"

कोवि भणइ "मुहवित्ति ण इच्छमि । जाव ण सुहउ छट्ठक पडिच्छमि ।
कोवि भणइ "ण णिहालमि दप्पणु । जाव ण रणि विणिवाइउ लक्खणु ।"

कोवि भणइ "णउ अविस्सउ अंजमि । जाव ण सुरवट्टु-अण-मण-रंजमि ।"
कोवि भणइ "णउ सुरउ समानमि । जाव ण भड्डु कुलक्खउ आणमि ।"

कोवि भणइ "धणि फुल्ल ण वंधवि । जाव ण रणे^{१४} सर धोरणि संघवि" ।

धस्ता । कोवि भणइ "धणे^{१५} णउ आलिगमि, जाव ण दंति-दंत आलिगमि" ।

कोवि करवि ण विसि आहारहो^{१६}, जाव ण दिण्ण सीय दहवयणहो^{१७} ॥४॥

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

धत्ता । कोइ प्रथायउ हृत-हृत शब्दे^१; परिहरि कोउ कबहुँ आनंदे ।

रणरसिया रोमांचु-झिन्नहँ । उरें सप्ताह न आयउ अन्यहँ ॥२॥

प्रभण कोइ “कंत ! करिकुंभे” जेतनाई । मुक्ताफलाई लेबि आनीजे तेतनाई ।”

कोइ कंत चिन्हाई^२ पूजै । कोइ कंत निज-कंत प्रसाधै ।

कोइ कंत-मुख बोंवन करावै । कोइ कंत दर्पण दरसावै ।

कोइ कंत-प्रिय-नयनहिं अंजै । कोइ कंत रणतिलक प्रयोगै ।

कोइ कंत सविकारउ जल्पै । कोइ कंत तांबूल^३ समपै ।

कोइ कंत-विवाधर लागै । कोइ कंत आलिंगन मांगै ।

कोइ कंत न गनेइ निवारिउ । सुरतारंभ करेइ निवारिउ^४ ।

कोइ कंत शिरे^५ बांधै फूलहिं । वस्त्रहिं पहिरावै अनमोलहिं ।

कोइ कंत आभरणहिं योजै । कोइ कंत परमुखहिं प्रयोगै ।

धत्ता । “कहवि अंगे” रोसहु न भाइय, प्रिय रण-वधु-संग ईष्यइय ।

यदि तुहुं तहें अनुरागिय बट्टै^६, तो भम न हवै^७ देवि प्र-बट्टै ॥३॥

प्रभने कोइ “वीर ! यदि बोलु एव भार्ये । तो बरु तेहिहि देउं जो युक्त स्वामि-कार्ये ।”

कोइ भनै “गजगंड विलगनहिं । आनवि मुक्ताफलहिं ध्वजाग्रहिं ।”

कोइ भनै “ना लेहुं प्रसाधन । जौ लौं न भंजउं राघव-साधन ।”

कोइ भनै “मुखवृत्ति न इच्छउं^८ । जौ लौं न सुभट-छडक्क प्रतीच्छउं ।

कोइ भनै “न निहारौं दर्पण । जौ लौं न रण विनिपातौं लक्ष्मण ।”

कोइ भनै “ना आखिहुं अंजौ^९ । जौ लौं न सुर-वधूजन-भन रंजौ ।

कोइ भनै “न सुरति सम्मानौ^{१०} । जौ लौं न भटहूँ कुल-क्षय आनी^{११} ।

कोइ भनै “धनि ! फूल न बांधव । जौ लौं न रणे सर पांती सांधव ।”

धत्ता । कोइ भनै “धनि ! ना आलिंगौ^{१२}, जौ लौं न दंति-दंत आलिंगौ ।”

कोइ “करवि न वृत्ति आहारहु, जौ लौं न दीन सीय दशवदनहुं ॥४॥

^१ अत्यंत

^२ बाटै (काशी) = है

^३ होबै (काशी) = है

गरुड पड-हरीए अञ्चंत गेहिणीए । रणे^१ पइसंतु कोवि सिक्खविउ गेहिणीए ।

णाह णाह ! संमरंगणे^२ काले । तूर भेरि-दङ्गि-संख-रक्-भाले ।
उत्परंत वर वीर समुदे । सीह-णाय णर-णाय-रउदे ।

मत्त-हृत्थि गल-गज्जिय सदे । अक्खिडिज्ज पर राहवचदे ।
कावि णारि परिहासइ एमं । तेम जुअमु णवि लज्जमि जेवं ।

कावि णारि पडिवोहइ णाहं । भग्गमाणे^३ पहे जीवमि णाहं ।
कावि णारि पडिचुवणु देइ । कोवि वीर अवहेरि^४ करेइ ।

कते^५ कते^६ मइ मंडु लएबी । कित्ति-वहुय रणे^७ परिचुवेबी ।
कावि णाहि णवकार करेइ । कोवि वीर रणे^८-दिक्ख लएइ ।

—रामायण ५६।३-५

धोवंतर जाव परिममइ । सहुं कतए^९ कोवि वीर चवइ ।

सुंदरि ! भुगणयणे ! मरालगइ ! तं पहु पसाउ कि वीसरइ ।
तं पेसणु तऊ लगिमउं । तंजीविउ दाणु अमगियउं ।

तं उच्चासणु मणे^{१०} वेयडिउ । तं मत्तगइदे^{११}-खंघे^{१२} चडिउ ।
तं मेहलु तं कंठाहरणु । तं खेसिउं तं जे^{१३} सभासहणु ।

तं फुल्लु सहत्थे^{१४} तं तंनोसु । तं असणु स-मरियलु कच्चोसु ।
तं वीर आरु चामीयरहो । अवरवि पसाय लंकेसरहो ।

एयहुं जसु एकइ णावइइ । सो सत्तमि णरयणवे^{१५} पइइ ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेक्खु पेक्खु आवंतउ साहणु । गलगज्जंत महगय-वाहणु ।

पेक्खु पेक्खु हिंसंत तुरंगम । णहयले^{१६} विउले^{१७} भवंति विहंगम ।
पेक्खु पेक्खु विषइ धूमंतइ^{१८} । रह-चक्कइ^{१९} महियले^{२०} सुप्पंतइ^{२१} ।

पेक्खु पेक्खु कइडिय असिवत्तइ^{२२} । धाणुक्किय फारक्किय पत्तइ^{२३} ।

गच्छ पदवरिधि अत्यन्त स्नेहनिबद्धि । रणे पदसंत कोइ सिखायउ गेहनिबद्धि ।

“नाथ नाथ ! समरंगण काले । तूर्य-भेरि-दंडि-शैल-ख-मासे ।
उत्तरत बरवीर समुद्रे । सिंहनाद नरनाद रउद्रे ।

मत्त-हस्ति-नालगजित शब्दे । आभिडिया धर राधवचदे ।”
कोइ नारि परिहासै एवं । “तिमि जूझी नहि लज्जउँ येवं ।”

कोइ नारि प्रतिबोधै नाथह । “भागते तोहि जीवउँ ना हउँ ।
कोइ नारि प्रतिचुवन देई । कोई भी अवधीर करेई ।

“कंत कंत ! मै मूढ़ लपेवी । कीर्ति-वधुअ रणे परिचुवेवी ।”
कोइ नाहि नमकार करेई । कोइ धीर रण-दीक्ष लएई ।

—रामायण ५६:३-५

शोडंतर यावत् परिभ्रमई । कांतासो कोइ वीरा कहई ।

“सुंदरि ! मृगनयने ! मरालगति । सो प्रभु-प्रसाद का बीसरइ ।
सो प्रेषण तऊ लागेऊ । सो जीवित-दान अमंगेऊ ।

सो उच्चासन मन बीजडऊ । तेंहि मत्तगयंद-स्कन्धे चढिऊ ।
सो मेहरि सो कंठाभरणू । सो चोलिउ सोउ संम-नालभनू ।

सो फूल स्वहृदये सो समूल । सो अशन स-परिवस कट्टोर ।
सो चीर भार चामीकरहू । अवरो प्रसाद लंकेस्वरहू ।

एतहुँ यश एकइ ना बढई । सो सतवे नरकाणंध पढई ।

—रामायण ६२:५

(५) रण-यात्रा

पेखु पेखु आवंतउ सावन^१ । गलगर्जत महागज-बाहन ।

पेखु पेखु हिनहिनत तुरंगम^२ । नभतले विपुल भवति विहंगम ।
पेखु पेखु चिन्हा कंपता^३ । रथचक्का महितलहिं खनता ।

पेखु पेखु काहिय असिपत्रा^४ । धानुजैहिं फरकायो पत्रा ।

पेक्खु पेक्खु वज्जंतइ तूरहैं । णाणा-विह निताय-गंभीरहैं ।

गलगज्जंत धणुह-टंकारहैं । सुहड विमोक्क पोक्कहक्कारहैं ।

पेक्खु पेक्खु सय-संख रसंता । णाइ स दुक्खउ सयणं कयंता ।

पेक्खु पेक्खु पचलंतउ णरवइ । गह चक्कहहो मज्जे सणि णावइ ।

वसउर-णाहु णिहालहैं जावेहिं । सयलु वि सेणु पराइउ तावेहिं ।

—रामायण २५।४

घंटा-टंकार-मणोहराहैं । उहुंत मत्त-महुयर-सराहैं ।

ससि-सूर-कंत-कर-णिम्भराहैं । बहु-इंद-गील-किय-सेहराहैं ।

पवल्लय-माला रंजोलिराइ । मरगय-रिछोलिएँ सोहराइ ।

मणि-योमराय-वणुज्जलाहैं । वेडुज्ज-वज्ज-पहु-णिम्मलाहैं ।

मुत्ता-हल-माता चवलियाहैं । किंकिण-धग्घर-सर-मुहलियाहैं ।

धूवंत धवल-धुय-धय-बडाहैं । वज्जंत संख-सय-संघडाहैं ।

सुगीवे रयणुज्जोइयाहैं । विहि विणिण विमाणइ डोइयाहैं ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पहु-पहु-संख-मेरी-रवेण । कंसाल-ताल-दडिरउ रवेण ।

कोलाहल काहल-णीसणेण । वड्डीअ मुउंदा मीसणेण ।

धंमुक्क करउ-टिविला-रवेण । झल्लरि-हंजा-डमरुअ-करेण ।

पडिठक्क-हुडुक्का-वज्जिरेण । घुम्मंत-अत्त-गय-वज्जिरेण ।

तंडविय-कण्ण-विहुणिय-सिरेण । गुमु-गुमु-गुमंत इंदीवरेण ।

पक्खरिय सुरय पवणुज्जडेण । धूवंत-धवल-वय-धूवडेण ।

मण-गमणा मेल्लिय संदणेण । जम-वरुण-कुवेर-विमइणेण ।

वंदिण जयकाह-गधोसिरेण । सुर-वहुअ-सत्थ-वरितोसणेण ।

घसा । सह सेणो सहइ दसाणणु णीसरिउ ।

छण-खंखुं ब तारा णियरे परिउरिउ ॥१॥

—रामायण ६३।१

पेखु पेखु बाजंता तूरई । नानाविध निनाद-भांभीरई ।

गलगर्जत धनुष-टंकारा । सुभट विभीचु पुक्क हंकारा ।
पेखु पेखु शतशंख रसंता । न्याई स्वदुःखत स्वजन रुदंता ।

पेखु पेखु प्रचलंतउ तरपति । ग्रह-चक्रहु मांझे स निशापति ।
दशपुर-नाथ निहारे'उ जब्बै । सकलहु सैन्य पराइउ तब्बै ।

—रामायण २५।४

बंटा-टंकार मनोहराई । लहुंत मत्त-मधुकर-स्वराई ।

शशि-सूर-कांत-कर-निर्भराई । बहु-इन्द्रनील-कृत-शेखराई ।
प्रबलय-माला रंखोलिराई । मरकत-मक्तीही' सोहराई ।

मणि-रश्मिराग-वर्णोज्ज्वलाई । वैदूर्य-वज्र-प्रभ-निर्मलाई ।
मुक्ता-फल-माला-घवलित्ताई । किंकिणि घर्घर स्वर मुखरित्ताई ।

कंपंत धवल-धुत-ध्वज-बडाई । बाजंत शंख-शत-संघटाई ।
सुधीवै' रतनोद्योतिताई । विधि दोउ धिमानई कोइयाई ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पट्ट पट्ट-शंख-भेरी-रवेहिं । कंसाल-ताल-दडिरव-रवेहिं ।

कोलाहल काहल-निःस्वनेहिं । बड्डीय भूदगा मिश्रणेहिं ।
धंमुक्क-करड-टिबिला-रवेहिं । भल्लरि-संजा-डमरू-करेहिं ।

प्रतिठक्क-ठुठक्का बाजिरेहिं । घूमंत मत्तगज-गजिरेहिं ।
तांडविय कर्ण-विबुनित-नशिरेहिं । गुम-गुम-गुमंत इंदीवरेहिं ।

पाखरिय सुरग-पवनोज्ज्वालेहिं । धुन्वंत-धवल-ध्वज-धूबटेहिं ।
मनगमना छोडी स्यंदनेहिं । यम-वरुण-कुवेर-विभर्दनेहिं ।

वंदिन जयकारु-दूधोषणेहिं । सुर-अधुअ-सायं-ररितोषणेहिं ।
धत्ता । सबसेनहिं सह दशानन तीसरिऊ ।

क्षण-अदि'ष सारा-निकरे परित्तरिऊ ॥१॥

—रामायण ६३।१

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहन का युद्ध—

पच्छद् मेघवाहनो गहिय-पहरणे निगाड तुरंतो ।

णं जुग-खय-सणिच्छरो भरिय-मच्छरो अहर-विष्कुरंतो ।

सो'वि पधाइउ रहवरे' चडियउ । णं केसरि-किसोरु णिव्वडियउ ।

संचत्तइए तीयदवाहणे' । तूरइ हयइ असेस'दि साहणे ।

संजज्झंति केवि रयणीयर । वर-तोणीर-वाण-घणु-वर-कर ।

के'वि तिकखर-खग्गु-वखय-हत्था । केवि गुरुहु ऊणमिया-मत्था ।

केवि चखिय हिंसंत-तुरंगे'हिं । केवि रसंत-मत्त-मायंगे'हिं ।

केवि रहे'हि के'वि सिविया-जाणे'हिं । केवि परिट्ठिय-पवर-विमाणे'हिं ।

पुच्छिउ णियय-सारही, "अहो महारही ।

दिढई जाई जाई, कहि कित्तियहें ।

अत्थइ रणहो' समत्थइ, रहिहें' खडावियहें ।"

(हथियारोंकी शक्तिकी तुलना—)

तो एत्थंतरि पमणइ सारहिं । "अत्थई अत्थि देव ! जइ पहरहिं ।

चक्कइ पंच सत्त वर-वायइ । दस असिवरहें अणिट्ठिय गावइ ।

वारह अत्त पण्णारह मोगगर । सोलह जउठि दंड रणे' दुद्धर ।

वीस फरसु चउवीस तिसूलइ । कोतइ तीस सत्तु-पड्ढिकूलइ ।

घण एणतीस चाउ वसुणेंदा । चाल पंचास तीस अद्धंदा ।

सेल्लइ सट्ठि खुरुप्पइ सत्तरि । अण्णइ कणय-चडिय चउहत्तरि ।

असीति सत्तिज गवइ भुसंडउ । जाउ दिवे दिवे' रण-रसि-यट्ठिउ ।

सउ गारायद्धें जं परिमाणमि । अण्णहि पुणु परिमाणु ण जाणमि ।

अत्त । वारह णियलइ सोलह, विज्जउ रह चडिअउ ।

जेहि घरिज्जइ समरंगणि, इंदु' वि भिडिअउ ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहनका युद्ध—

पाछेई मेघवाहन गहिय-प्रहरणा निर्गतउ तुरंता ।

जनु युग-क्षय शनिश्चर, भरिय-मत्सर अधर-विस्फुरंता ।

सोउ प्रधायउ रथवर चढियउ । जनु केसरि-किशोर नीबड़ियउ ।

संचलतेई तोयदवाहने । तूर्येहिं हयहिं अशेषहु साधने ।
सभाहंति कोइ रजनीचर । वरतूणीर-त्राण-धनु-वर-कर ।कोइ तीखर-सङ्ग-घत-हत्था । कोइ गुरुहिं अवनामिय-मत्था ।
कोइ चढिय हिनहिनत तुरंगेहिं । कोइ रसंत मत्त-मातंगेहिं ।कोइ रयेहिं कोइ शिविका-यानेहिं । कोइ बैठे प्रवर-विमानेहिं ।
पूछेउ निजय-सारथी, "अहो महारथी !

दुठे जाई जाई, कहु केसियई ।

अर्थह रणहु समर्थ, रथिहिं चढावियई ।

हथियारोंकी शक्तिकी तुलना

तो एही बिच प्रभणे सारथी । "अर्थे अहै देव ! यदि प्रहरहिं ।

चक्रे पाँच सात वर-वायहिं । दश असि-वरहिं अविष्टित गावै ।

वारह ऋष पद्मारह मुद्गर । सोलह लउरि-बंछ रणे दुधर ।

बीस परशु चौबीस त्रिशूलहिं । कुंतहिं तीस शत्रु-प्रतिकूलहिं ।
घन पैतीस चाप वसुनेद्रा । चाल पचास तीस अर्घवा ।सेलहिं साठ क्षुरप्रहिं सत्तर । अन्यहिं कनक-चढिय औहत्तरि ।
अस्सी शक्तिहिं नवै भुसुंढिउ । जाउ दिने दिन रण-रसिकस्यउ ।

सौ नाराचौ जो परिमाणी । अन्येहिं पुनि परिमाण न जानऊ ।

धत्ता । वारह निगडहिं सोरह विद्या रथ चढियउ ।

जेहिं अरिये समरंगणे, इन्द्रहूँ भिडियउ ॥१॥

—रामायण ५३:४-५

(ख) मेघवाहन और हनुमान्का युद्ध—

एककल्लउ सुहहु अणंत-बलु । पप्फुल्लु तोवि तहोँ मुह-कमलु ।

परि-सक्कइ थक्कइ उल्ललइ । हक्कारइ पहरइ दणु दलइ ।

आरोक्कइ हुक्कइ उत्थरइ । परिअंभइ^१ हंभइ वित्थरइ ।

णवि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेहिँ । जिह जिणु संसारहोँ कारणेहिँ ।

हणुयहोँ पासेँहिँ परिभमइ बलु । णं मंदल-कोळिहिँ उयहिँ-जलु ।

घसा । धरेँवि ण सक्कइ बलु सयलु 'दि उक्खय-पहरणु ।

माख्हेँ पासेँहिँ परिभमइ मंदरहोँ णाइ तारायणु ॥६॥

घाइउ पवणणंदणो दणु-विमदणो बलहोँ पुलह-अंगो ।

हउ-रहु रह-वरेण गउ गय-वरेण, तुरएण वर-तुरंगो ॥

सुहहेँ सुहहु कवंध कवंधेँ । छत्तेँ छत्तु चिघुहउ चिघेँ ।

वाणेँ वाणु चाउ वर-चावेँ । खगोँ खग्गु अणिट्ठिय-भक्खेँ ।

चक्कइ चक्कु तिसूल तिसूलेँ । मोगर मोगारेण हुसिहूलेँ ।

कणएँण कणउ मुसलु वर-मुसलेँ । कोत्ते कोत्तु रणंगणेँ कुसलेँ ।

सेल्लेँ सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पेँ । फलिहिँ फलिहु गयावि गय-रूपेँ ।

जंतेँ जंतु एंतु पडिलियउ । बलु उज्जाणु जेण दरमलियउ ।

णासइ सयलु'णाविय मत्थउ । णिगाइ दुण्णि तुरंगु णिहत्थउ ।

विवरामूहउ हल्लिय-वयणउ । भग्गमडप्फरु मउलिय-णयणउ ।

घसा । वियलिय-पहरणु णासंतु णिएँ वि णिय-साहणु ।

रह-वर वाहेँवि यिउ अग्गाएँ, तोयदवाहणु ॥७॥

रावण-राम-किंकरा रणे भयंकरा, भिडिय विप्फुरंता ।

विउ सुग्रीव-राहुवा विजय-लाह-वाणाइँ हणु भणंता ॥

वेवि पयंठ वेवि विज्जा-हर । वे'ण्ण'वि अक्खय-तोण-घणुह-कर ।

वे'ण्ण'वि वियउ-थच्छ पुलइय-भुअ । वे'ण्ण'वि अंजण-भंदोयरि-सुअ ।

(ख) मेघवाहन और हभूमान्का युद्ध—

एकल्लज सुभट अनंतवलू । प्रपुल्ल तोड तसु मुख-कमलू ।

परि-शक्कै थाकै उल्ललई । हक्कारै प्रहरै दनु-दलई ।

आ-रोकै दूकै उल्ललई । परि-रुंघै रुंघै विस्तरई ।

नहि छिदरै भिदरै प्रहरणेहिं । जिमि जिन संसारहु कारणेहिं ।

हतुम्ह-पासेहिं परिभ्रमै बलू । जनु मंदर-कोटिहिं उदधि-जलू ।

घत्ता । धरेव न सककै बल सकलहु उक्खाड-प्रहरण ।

मारुति-पासेहिं परिभ्रमै मंदर-कोटि'व तारागण ॥६॥

आये'उ पवननंदनो दनु-विमर्दनो । बलवत् पुलकित-अंगो ।

हय-रथ रथवरेहिं गये'उ गजवरेहिं तुरगेहिं वरतुरंगा ।

सुभटेहिं सुभट कवंध कवंधेहिं । छत्रे' छत्र चिन्हहुकै चिन्हा' ।

बाणे' बाण चाप बर-बापे' । खड्गे' खड्ग अनिष्टित'-यवे' ।

ककहिं चक्र त्रिशूल त्रिशूले' । मुद्गर मुद्गरहिं हुलिहूले' ।

कनकेहिं कनक मुसल बर-मुसले' । कुते' कुत रणंगण कुसले' ।

सेले' सेल 'क्षुरप्र क्षुरपे' । फरिहिं फरिहु गजाहु गज-रूपे' ।

यंत्रे' यंत्र आवत प्रतिस्थलिये'उ । बल उद्यान येन दरमलिये'उ ।

नाशै सकल नवाइया मत्थउ । निर्गत बोड तुरंग-निरर्थउ ।

विवर-मुखाहु हालिय-बधनहु । भगन'-भिमान मुकुलिया-नयनहु ।

घत्ता । विचलिउ प्रहरण नाशत निजहु निज-साधन ।

रथवर वाहुहु रहू आगे, तोयदवाहन ॥७॥

रावण-राम-किंकरा रण-भयंकरा, भिडे'उ विस्फुरता ।

सुग्रीव-राघव-विजल लाभवाणा हन भनता ॥

दोड प्रचंड दोड विद्याधर । दोऊ अक्षय-तूण-धनुष-कर ।

दोऊ विकट-बल पुलकित-भुज । दोऊ अंजन-मंदोदरि-सुत ।

वेण्णि'वि पवण-दसाणण-णंदण । वेण्णि'वि दुद्ध-दाणव-भइण ।

वेण्णि'वि पहरण-परवल-चड्डिय । वेण्णि'वि जय-सिरि-वहुभवरंडिय ।

वेण्णि'वि राहव-रावण पक्खिय । वेण्णि'वि सुर-वहु-णयण-कडक्खिय ।

वेण्णि'वि समर-सरैहिं जसवंता । वेण्णि'वि पट्ट-सम्माण-सरंता ।

वेण्णि'वि धीर-धीर भय-चत्ता । वेण्णि'वि परम-जिणिदहो' भत्ता ।

वेण्णि'वि अतुल-मल्ल रण-दुद्धर । वेण्णि'वि रत्त-गेत्त-फुरिया-हर ।

घत्ता । विहिमि महाहउ जो असुर-सुरेंदहि दीसइ ।

राहव-रावणहो' से तेहउ दुक्खर होसइ ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

मिडिअइ वे'वि सेण्णइ आउ जुज्झु घोर ।

कुंडल-कडय-मउडणिमडंत कणय-डोर ।

हण-हण-हणकाह महारउहु । छण-छण-छणंतु गुण-पिंछ-सइ ।

कर-कर-करंतु कोयंड-पवर । थर-थर-थरंतु गाराय-णियर ।

खण-खण-खणंतु तिक्खग खणु । हिलि-हिलि-हिलंतु हय-चंचलगु ।

गुलु-गुलु-गुलंत गयवर विसालु । "हणु-हणु" भणंतु णर-वर-विसालु ।

पोप्फल-वसणे गत्त-भालु । धावंत कलेवर सब-करालु ।

भल-भल-भलंतु सोणिय-पवालु । छिज्जंत खलण तुटंत वालु ।

गिवडंत सीसु गच्चंत रंड । ऊणल्ल तुरय-वय-छत्त-दंड ।

तैहि तेहएँ रणे' रण-भर-समत्थु । राहव-किंकर वर-वारणत्थु ।

धत्ता । सीहउउ चवल सीह-संदणे चडियउ ।

संतावणु सुहुमारिज्जे' अग्निडिउ ॥९॥

वेण्णि'वि सीह-संवणा वेण्णि'वि सीह-विंधा ।

वेण्णि'वि चाव-करमला वे'वि जमे' पसिद्धा ।

दोऊ पवन-दशानन-नंदन । दोऊ बुद्धम-दानव-मर्दन ।

दोऊ प्रहरण परबल-चढ़िया । दोऊ जयश्री-बधु आँलिंगिया ।

दोऊ राघव-रावण-पक्षिय । दोऊ सुरबधु-नयन-कटाक्षिय ।

दोऊ समर-शतेहिँ यशवंता । दोऊ प्रभु-सम्मान स्मरंता ।

दोऊ वीर-वीर भय-त्यक्ता । दोऊ परम-जिनेंद्रह भक्ता ।

दोऊ अतुल-मल्ल रण-बुधर । दोऊ रक्तनेत्र स्फुरिताक्षर ।

घत्ता । दोँउहिँ महाहव जो असुर-सुरेंद्रहिँ दीसै ।

राघव-रावणैह सो, वैसे दुष्कर होवै^१ ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

भिड़िया दोऊ सेन आव युद्ध घोर ।

कुंडल-कटक मुकुट विपतंत कणक-डोर ॥

हन-हन-हनकार महा-रज्ज । छन-छन-छनंत गुण-पिच्छ-शब्द ।

कर-कर-करंत कोदंड-भ्रवर । धर-धर-धरंत नाराज-निकर ।

खन-खन-खनंत तीक्ष्णाग्र सङ्ग । हिलि-हिलि-हिलंत हय-चंचलाग्र ।

गुलु-गुलु-गुलंत गजवर-विशाल । "हन हन" अनंत नरवर-विशाल ।

फुफ्फुस बसने गाथात्त-भाल । धाबंत कलेवर शव-कराल ।

भल-भल-भलंत शोणित-प्रवाह । छिद्यंत चरण तुट्यंत बाँह ।

निपतंत शीश नाचंत खंड । फिक्कंत तुरग-ध्वज-झन्झंड ।

तैह तैहिँ रणे रणधर-समर्थ । राघव-किंकर वर-वारणास्थ ।

घत्ता । सिंहध्वज चपल सिंह-स्पंदन बक्षियउ ।

संतापन मुखमारी हव भिड़ियउ ।

दोऊ सिंहस्पंदना दोऊ सिंहचिन्हा ।

दोऊ जाय-करतला दोऊ जग-प्रसिद्धा ।

वेणि'वि' अंस-सुद्ध विरुद्ध कुद्ध । वेणि'वि वंसुज्जस कुल-विसुद्ध ।

वेणि'वि सुर-बहु-आणंद-जण । वेणि'वि सत्तुत्तम सत्तु-हण ।

वेणि'वि रण-धुर-धोरिय महंत । वेणि'वि जिण-सासण-भत्तिवंत ।

वेणि'वि दुज्जय जय-सिरि-णिवास । वेणि'वि पणई-यण-पूरियास ।

वेणि'वि निसियर-णर-वर-वरिट्ठ । वेणि'वि रावण-राह्वहँ इट्ठ ।

वेणि'वि जुज्झंत सिलीमुहेहि । णं गिरि अवरोरप्पर सरि मुहेहि ।

मारिज्जहों भय भीसावणेण । भणु जीउच्छिणु संतावणेण ।

तेण'वि तहों चिर-पेसिय-सरेहि । संसार'व परम-जिणेसरेहि ।

—रामायण ६३।३-४

(ग) हमूमान्का युद्ध

हणुवंत-रणे परिबेढिज्जइ णिसियरेहि ।

णं गयण-यले बाल-दिवायर जलहरेहि ।

पर-बलु भणंतु हणुवंतु एककु । गय-जूहों णाइ इंदु थक्कु ।

आरोक्कइ कोक्कइ समुहँ णाइ । अहिजहि जे'थट्ठ तहि तहि जे'थाइ ।

गय-बड भड-थड भंजंतु जाइ । वंसत्थले लग्गु दवणि णाइ ।

एक्कू रट्ठ महँहवे' रस-विसट्ठ । परिभमइ णाई वले' भइय वट्ठ ।

सो णवि, भडु जासु ण मलित माणु । सो ण थयउ जासु ण लग्गु वाणु । . . .

सो णवि तुरंगु जस गो'डु ण तुट्ठ । सो विण रंडु जासु ण रहंगु फट्ठ ।

सो शवि भडु जासु ण छिण्णु गत्तु । तं णवि विमाणु जहि सरु ण पत्तु ।

घसा । जगडंतु बलु मारइ हिडइ जहि जे' जहि ।

संगाम-महिहे' रंड गिरंतर तहि जे' तहि ॥१॥

अं जिणेवि ण सक्कउ वर-भडेहि । बेढाविउ मारइ गय-भडेहि ।

गिरि-सिहिर-गहिर कुंभत्थलेहि । अणवरय-नलिय-गंडत्थलेहि ।

छप्पए-भंकार-भणोहरेहि । घंटा-टंकार-भयंकरेहि ।

तंबविय कण उट्ठं करेहि । मुक्कं हुवेहि मय-णि व्मरेहि । . . .

^१ धे=वो (गुजराती)

दोऊ यशसुख बिरुद्ध क्रुद्ध । दोऊ बसोखल कुल-विशुद्ध ।

दोऊ सुरबधु-आनंद-जनन । दोऊ सत्कोत्तम शत्रु-हनन ।

दोऊ रण-धुर-धौरे'य भहंत । दोऊ जिन-शासन-भक्तिबंत ।

दोऊ दुर्जय जयश्री निवास । दोऊ प्रणयीजन-पूरितास ।

दोऊ निशिचर-नरवर-वीरष्ट । दोऊ रावण-राघवहैं इष्ट ।

दोऊ युध्यंत शिलीमुखेहिं । जनु गिरि अपरोपर सरि-मुखेहिं ।

मारीचहु भय-भीषावणेहिं । धनुज्या उछिन्दु संतापनेहिं ।

सोऊ तेहि चिर-अपित-शरेहिं । संसारि'व परम जिनेवरेहिं ।

—रामायण ६३।३-४

(ग) हनुमान्का युद्ध

हनुमंत-रणे परिवेठिजै निशिचरेहिं ।

जनु गगनतले बालद्विवाकर जलधरेहिं ।

पर-बल अनंत हनुमंत एक । गज-यूथहिं न्याई' हंडु थाक' ।

आरीकइ कोकइ समुंहे' वाह । जहैं जही' ठट्ट तहैं तही' थाय' ।

गज-घट भट-ठट भंजंत जाइ । बंश-स्थले' लागि दवाग्नि न्याई' ।

एको रथ महाहवे रस-विसट्ट । परिभ्रमै न्याई' बले' भयावर्त्त ।

सो नहिं भट जासु न मलै'उ भाव । सो नहिं ध्वज जासु न लागु वाण । . . .

सो नहिं तुरंग'जसु गौ'ड न टूट । सो नहिं रथ जसु न' रथंग फूट ।

सो नहिं भट जासु न छिन्दु गत । सो नहिं विमान जेहि शर न प्राप्त ।

घत्ता । भगडंत बल मासति हिंइह जहैंहि जहै ।

संग्राम-महिहिं कंड निरंतर तहैंहि तहै ॥१॥

जो जितव न सक्केउ धर-भटेहिं । वेष्ठावित मासति गजघटेहिं ।

गिरि-शिखर-नाहिर-कुंभस्थलेहिं । अनवरत-नासित-गंडस्थलेहिं ।

षट्पक्ष-भंकार-भनोहरेहिं । घंटाटंकार-भयंकरेहिं ।

तांडविय कर्ण ऊर्ध्व-करेहिं । भुक्त-आंकुशेहिं मद-निमंरेहिं । . . .

रण-रसिएँहि वैहानिद्वएहि । पेल्लिउ पडिवक्खु कददएहि ।

पासइ विहडप्फउ गलिय-खगु । चूरंतु परप्फर चलण-मगु ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेक्खेँवि गियय-सेणु । रावणु अयकारेवि कुंभयण्णु ।

घाहउ भय-भीसणु भीम-काउ । णं राम-बसहोँ खय-कालु आउ ।

परिसक्कइ रण-भूमिहि ण माइ । गिरि-मंदर-थाणहोँ चलिउ गाइ ।

जउ जउ जि समच्छर देइ दिट्ठि । तउ तउ जेँ पडइ णं पलय-किट्ठि ।

कोँवि बाएँ कोवि भिउडिएँ पणट्ठु । कोँवि ठिउ अवठंभेवि धरणि विट्ठु ।

कोँवि कहवि कडच्छए णर णिलुक्खु । कोँवि दूरहोज्जेँ पाणेहि मुक्खु ।

घसा । सुग्रीव वले गरुअउ हुअउ हल्लोहलउ ।

णं अंगरे' हत्थि पइट्ठव राउलउ ॥३॥...

इत्थंतरे किमिकषाहिवेण । पडिबोहणत्थु आमुक्क तेण ।

उम्मोहिउ उट्ठिउ वलु तुरंतु । कहि कुंभयण्णु वलु वलु भणंतु ।

घसा । सयडम्महु पुणुवि पढीवउ धावियउ ।

णं उयहि-अलु महि रेल्लंतु पराइयउ ॥५॥

पर-बलु णियेवि समुत्थरंतु । लंकाहिवेण धरहर-धरंतु ।

करि कडडिउ गिम्मल चंदहासु । उग्गामिउ णइ दिणयर-सहासु ।

रिउ-साहणेँ भिडइ ण भिडइ जावै । सौँडीर-वीर-णर तिण्णि तावै ।

इंदइ घणवाहण वज्जणक्क । सिर णमिय कियंजलि-वृत्त थक्क ।

“अम्हेँहि जीवेंतेँहि किकरेहिँ । तुहु अप्पणु पहरहि कि करेहिँ” ।

सामिउ सम्माणेवि वद्ध-कोह । तिण्णेँवि समरंगणेँ भिडिउ जोह ।

चंदोयर-तणयहु वज्जणक्क । घणवाहणु भामंडलहोँ थक्क ।

इंदइ सुग्रीवहोँ समहु चलिउ । णं मेरु महोयहि पइह्वे चलिउ ।

घसा । णर णरवरहोँ तुरयहोँ तुरय समावडिउ ।

रहु रहवरहोँ गयहोँ महग्गउ आविडिउ ॥६॥

रणरसिकेहि^१ वेधा-विद्वएहि । पेल्ले^२उ प्रतिपक्ष कपिध्वजेहि ।

नाशइ बिहउंफल गलित-सह्य । चूरंत, परस्पर-वरण-मार्गः ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेखिय निजय-सैन्य । रावण जयकारहु कुंभकर्ण ।

घायउ मयभीषण भीमकाय । जनु रामवलह सयकाल आय ।
परि-सकै न रण-भूमिहि अमाइ । गिरि-मंदर-थानहु चलेउ न्याहैं ।

ओहि जेहि समझहु देइ दृष्टि । सोइ सोइ पडै जनु प्रलय-वृष्टि ।
कोइ बाचे कोइ भुकुटिहि^३ प्रणष्ट । कोइ ठिउ अवयंभेहि बराविष्ट ।

कोइ कोइ कटाक्षहि^४ तरउ लूकु । कोइ दूरही^५हि प्राणेहि मोचु ।
धस्ता । सुग्रीवहु गरुओ हुयो हल्लाहलउ ।

जनु अभहारे पइठउ हस्ति राजुलउ ॥३॥..

एहि अन्तर किष्किवाधिपेहि^६ । प्रतिबोधनार्थ आमोचु तेहि^७ ।

उन्मोहे^८उ उठेऊ बल तुरंत । कहै कुम्भकर्ण-बलबल भनंत ।

धस्ता । शकट-मुंह पुनि हि प्रतीपउ घावियउ ।

जनु उदधि-जल मही रेल्लंत^९ परायउ ॥४॥

परबल निजे^{१०}हु समुत्थरंत । लंकाधिपेहि^{११} धर-थर-थरंत ।

करे^{१२} काढे^{१३}उ निर्मल चंद्रहास । उगियउ जनु दिनकर-सहस्र ।
रिपु-सेना भिडइ न भिडइ याव । शौहीर-बीर-नर तीन ताव ।

इंद्रजि-घनवाहन-वज्रनाक । शिर नमिय कृतांजलि-हस्त थाक ।
“हम सब जीवतेहि^{१४} किकरेहि^{१५} । तुहु अपने प्रहरै किं करेहि ।”

स्वामिय सम्मानेहु बद्ध-क्रोध । तीनों समरंगणे^{१६} भिडे^{१७}उ थोष ।
चंद्रोदर-तनयहु वज्रनाक । घनवाहन भामंडलहु^{१८} थाक ।

इन्द्रजि सुग्रीवहि समुह चलिउ । जनु मेघ महोदधि-ययन चलिउ ।
धस्ता । नर नरवरहु^{१९} तुरयहु तुरय समापडिउ ।

रथ रथवरहु^{२०} गजहु महागज आभिडिउ ॥५॥

(ङ) सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—

किंकिष-गराहिउ धरिउ जाव । घण-वाहण भामंडलहैं ताव ।

अग्निदू परोंपह जुझ धोर । सदि भोत स-उत्तरे पहर थोर ।

छिजंत महगय गरुभ-गतु । निवडंत समुद्रधुम-धवल-धतु ।

लोहंत महारह-हय-रहंगु । घुमंत-पडंत महातुरंगु ।

तुष्टंत कवड तुष्टंत खगु । णच्चंत कवंचउ अस्ति-कर-गु ।

आयामेवि रणे रीसिय-मणेण । अग्रेउ मुक्कु घणवाहणेण ।

आमेलिउ आयउ धगधगतु । अंगार वरिसु गहें दक्खवंतु ।

वारुण विमुक्कु भामंडलेण । णं गिरिहि वज्जु आखंडलेण ।

उल्लाविउ जलगु जलेण जं जे । सरु णागवासु पम्मुक्क तं जे ।

घसा । पुप्फवड-सुउ दीहर-पवर-महासरेहैं ।

परिवेळियउ मलयिदुव विसहरेहि ॥६॥

—रामायण ६५।१-६

तार मारिच्च साहण सुतेणाहिवा । सुअपचंडालि संमुच्च दहिमुह-णिवा ।

घसा । अण्णेकहु मि भवणेक्केक्क पहाणहु ।

किं सक्कियउ गार्डे गणेप्पिणु दाणहु ॥७॥

केणवि कोवि दोच्छिउ "मरु सवडम्भु धाहि थाहि ।

केणवि कोवि वुत्तु "समरंगणे रहवर वाहि वाहि ॥"

केणवि कोवि महासर-जाले । छाइउ जिह सुक्कालु दुकाले ।

केणवि कोवि भिण्णु वच्छयले । पडिउ घुलंतु णवरि महि-मंडले ।

केणवि कहोवि सरासणु ताडिउ । णं हेडामुहु हिअव उपाडिउ ।

केणवि कहोवि कवउ णिव्वाटिउ । वलि जिह दस-दिसेहि आवटिउ ।

केणवि कहोवि महदउ पाडिउ । णं मउ माणु मडप्फरु साडिउ ।

केणवि दंति-दंतु उणाडिउ । णावइ जसु अप्पणउ भमाडिउ ।

केणवि मंउ दिण्णु रिउ-रहवरे । गरुडे जिह भुयंग-भुअणंतरे ।

केणवि कहि वि सीसु अच्छोडिउ । णं अवरारु-खसु-फल तोडिउ ।

(६) सुधीव और मेघवाहनका युद्ध—

किष्किव-नराधिप घरेँउ थाव । धनवाहण भामंडलहैं ताव ।

आभिडेँउ परस्पर युद्ध-घोर । शरस्रोत स्व-उत्तरेँ प्रहर घोर ।
छिन्नंत महागज गरुड-नाथ । निपतंत समुद्रत-धवल-छत्र ।

लोटंत महारथ-द्वय-रथांग । घूमंत पडंत महातुरंग ।
टूटंत कवच टूटंत खड्ग । नाचंत कवचउ असि-कराग्र ।

आयामेहु रणेँ रोषितमनेहिँ । आग्नेय मोचु धनवाहनेहिँ ।
आग्नेलेँउ आतप घगधगंत । अंगार दरिसु नभेँ दग्धवंत ।

वारुण विमोचु भामंडलेहिँ । जनु गिरिहिँ वज्र आखंडलेहिँ ।
वूआयउ ज्वलन जलेहिँ ओ हि । शर नागफास प्रम्भोचु सो हि ।

घत्ता । पुष्पवती-सुत दीरघ-प्रवर-महाशरेहिँ ।

परिवेठेँउ मलयद्रुम'व विषवरेहिँ ॥६॥

—रामायण ६५।१-६

तार मारीच साधन सुसेनाधिपा । सुत प्रचंडालि समूछेँ वधिमुसुनूपा ।

घत्ता । घंसेकहुहिँ भवने एक एक प्रधानहैं ।

का सक्किय नाम गनाइव राजहैं ।

केहु सँग कोउ दर्शउ "भर शकटमुँह स्थाहिँ स्थाहिँ ।

केहु सँग कोउ कह "समरंगणेँ रथवर वाहिँ वाहिँ ।"

केहु कहैं कोउ महाशर जालेँ । छापेउ जिमि सुकाल दुकालेँ ।

केहु कहैं कोउ भिन्दु वक्षस्थले । पडेँउ घुरंत केवल महिमंडले ।

केहु कहैं कोउ शरासन ताडेँउ । जनु हेठामुँह हृदय उपाडेँउ ।

केहु कहैं कोउ कवच निर्वह्तिउ । बलि जिमि दशविशेहिँ आबह्तिउ ।

केहु कहैं कोउ महाध्वज पाटेँउ । जनु मृदु मान'हंकारा साटेँउ ।

कोऊ दंति-दंत उप्पाडेउ । मानोँ यश आपनोँ भमाडेँउ ।

कोउ अंग दियेँउ रिपु-रथवरेँ । गरुडेँ जिमि भुजंग भुवनंतरे ।

कोऊ काहुहिँ शीश आछोडिउ । जनु अपराध बुझ फल तोबिउ ।

घसा । केणवि समरे दिण्णु विव्वन्नसहो हिअउ थिरु ।

जीविउ जमही गुरु पहरहो सामियहें सरु ॥६॥

—रामायण ६६।६

(घ) राक्षसका शरीर

दसहिं कंठेहि दसजे कंठाई दस भालहिं तिलय दस ।

दस सिरेहिं दस भउड पज्जलिय ।

दहहिमि कुंडल-ज्जुएहि कण-जुयल-मुकउल मुहलिय ।

फुरिउ रयण-संवाउ दसाणण रोमुव । अह थिउ स-तारायणु वहुल पऊसु'व ।

पढम वयणु सय-सूर समप्पहु । सिद्धराणु सुरहंमि दूसहु ।

वीयउ वमणु धवल-धवलच्छउ । पुण्णिम-यंद-विन्न-सारिच्छउ ।

तइयउ वयणु भुयण-भय-गारउ । अंगाराणु मुक्कंगारउ ।

वयणु चउत्थउ बह-मुह मासुरु । पंचमएण सइजे'णं सुर-गुरु ।

छट्टउ सुक्क सुक्क-संकासउ । दाणव-वविस्सउ सुर-संतासउ ।

सत्तमु कसणु सणिच्छइ भीसणु । दंतुरु वियडु वाडु दुहरिसणु ।

अट्टमु राहु-वयणु विकरालउ । णवमउ धूमकेउ धूमालउ ।

दसमउ वयणु दसाणणकेरउ । सव्व-जणहो' भय-दुक्ख-जणेरउ ।

घसा । बहु-रूवउ बहु-सिरु बहु-वयणु, बहु-विह-कबोलु बहु-विह-णयणु ।

बहु-कंठउ बहु-करु वि बहु-पउ, णं णट्ट-पुरिसु रसभाव गउ ॥८॥

ते णिएप्पिणु णिसियरिंदस्स सीसइ णयणइ मुहई'पहरणाई रयणीयर भीसणु ।

आहरणइ वच्छयलु राहुवेण पुच्छिउ विहीसणु ।

“किं तिकूउ सेलोवरि दीसइ णव-घणु । देव देव ! ऐहु रहें थिउ रावण ।

किं गिरि-सिहरहें, णहि दीसराहें । णं णं आयहें दससिर-सिराहें ।

किं पलय-विवायर-मंडलाहें । णं णं आयहें भणि-कुंडलाहें ।

किं कुवलयाहें माणस-सरहो' । णं णं णयणहें लंकेसरहो' ।

किं गिरि-कंदरहें भयाणणाइ । णं णं दह-वयणे' दसाणणाहें ।

किं सुर-चावह चाउत्तिमाइ । णं णं कंठाहरणहें हमाहें ।

किं तारा-वयणहें तणुज्जलाहें । णं णं धवलहें मुत्ताहलाहें ।

घसा । काहुहिं समरे दीत विपक्षहें हृदय थिर ।

जीवित जमहु पुर प्रहरहु स्वामियहें शिर ॥६॥

—रामायण ७/८१६

(च) राक्षसका शरीर

दसहिं कंठे दसहु कंठा दस भालहिं तिलक दस ।

दस सिरोहिं दस मुकुट प्रज्वलिय ।

दसहिं पि कुंडल-युगेहिं कर्ण-युगल-शुक-कुल-मुसरिय ।

स्फुरे'उ रतनसंघात दशानन रोषि'व ।

अथ भिउ स-सारागण बहुल प्रदोषि'व ।

प्रथम वदन क्षय-शूर समर्पहु । सिंदुर-अरुण सुरथउ दुस्तहु ।

दूसर वदन धवल-धवलाक्षउ । पूणिम-चंद्रशिव-सारिखसउ ।

तीसर वदन भुवन-भयकारउ । अंगारारुण मोचु अंगारउ ।

वदन चतुर्यउ बुध-भुल-भासुर । पंचम स्वयं एव जनु सुरगुह ।

छट्टउ शुक्ल-शुक्र-संकाशक । दानव-पक्षिक सुर-संघासक ।

सत्तम कृष्ण शनिश्चर भीषण । दंतुर विकट-दाढ़ दुर्दशन ।

अष्टम राहु-वदन धिकरालउ । नवमउ धूमकेतु धूमालउ ।

दसमउ वदन दसाननकेरउ । सर्वजनन्ह भय-हु:ख-अनेरउ ।

घसा । बहु-रूपउ बहु-शिर बहु-वदन, बहु-विध कपोल बहु-विध नयन ।

बहु-कंठउ बहु-करहु बहु-पद, जनु नट्ट-मुख रसभाव गयउ ॥६॥

सो निजेही निस्चरेन्द्र कर सीसैं नयनैं मुखैं प्रहरणें रजनीचर भीषण ।

आभरणैं वसतल राघवेहिं पूछे'उ विभीषण ॥

“का त्रिकूट शैलोपरि दीसैं ववधन ?” “देव देव ! एहु रथें हौ रावण ।”

“का गिरि-शिखरा नहिं दीसराइ ?” “ना ना अहें दससिर-सिराइ ।”

“का प्रलय-दिवाकर-मंडलाहें । ?” “ताना अहें भणि-कुंडलाहें ।”

“का कुलयाहें मानससरहु ?” “ना ना दशवदने दस आननहु ।”

“का सुर-आषा चापीत्तमहु ?” “नाना कंठाभरणा एहु ।”

“का तारा-गणहें तनुज्वलाहें ?” “ना ना धवसहें मुक्ता-फलाहें ।”

किं कसणु विहीसण गंयण-पलु । णं णं लंकाहिं वच्छ-यलु ।
किं दिसवे यंड-सोंड-पयरो । णं णं दहकंवर-कर-णियरो ।

धत्ता । तं वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण, लोयणइं विरिल्ले वि तक्खणेण ।

अवलोइउ रावणु मच्छरेण, णं रासि-गयेण सणिच्छरेण ॥६॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करं केरप्पिणु सांयरावत्तु शित्त लक्खणु ।

गरुड-रहे गारुडत्थु गारुड-मदुड ।

वलु वज्जावत्तु धरु सीह धिधु वर-सीह-संदणु ।

गयवि हत्थु गय-रह-वर पमय महदुड ।

विप्फुरंणु किंकिधा-हिउ सण्णदुड ।

धत्ता । सण्णहे वि पासु दुक्कइ वलहों, अक्खोइणि वीससयइ वलहों ।

विरएवि वूडु संचल्लियइ, णं उयहि-मुहइ उत्थाल्लियइ ॥१०॥

घुट्टु कलमलु दिण्ण रणभेरि चिंघाइ समुन्निमयइ,

लइम कवय-किय-हेइ-संगहे ।

गय-घडउ पघोइयउ मुक्क-तुरय-वाहिथ-भहारहा,

राम-सेण्णु रण-रहसियउ ।

कहिमि ण भाइउ जगु गिलेवि,

णं परवलु गिलइ पधाइयउ ।

अग्गिमट्टु जुज्झु रोसिय-मणाहु । रयणीयर-वाणर-संछणाहु ।

उसरिय संख-सय-संघडाहु । रण-वहु फेडाविय मुह-वडाहु ।

उट्ठंकुस-घाइय गय-घडाहु । खर-पवण'दोलिय धय-वडाहु ।

कंपाविय सयल-वसुंधराहु । रोसाविय आसीविसहराहु ।

मेत्ताविय णयणहु वासणाहु । संजलिय दिसामुहु इचणाहु ।

जय-लच्छि-वहुअ-गेण्हण-मणाहु । जूराविय सुर-कामिणि-जणाहु ।

उग्गामिय भामिय अस्सि-वराहु । णिव्वट्टिय लोट्टिय हय-वराहु ।

णिहलिय कुंभ कुंभत्थलाहु । उच्छलिय धवल-मुसाहसाहु ।

“का कृष्ण विभीषण गगन-तला ?” “ना ना लंकाधिप वक्षतता ।”

“का दीसइ चंड बाँड प्रकरो ?” “ना ना दसकंवर कर-निकरो ।”

बता । सो वचन सुनीयउ लक्ष्मणेहिं, लोचनहिं विरंतेउ तत्क्षणेहिं ।

भवलोकेउ रावण भत्सरेहिं, जनु राशिगतेहिं शनिश्चरेहिं ॥६॥

(६) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करे करवाल सागरावसं ठाढो लक्ष्मणु ।

गरुड-रघे गरुडास्त्र गारुडा-मूर्धउ ।

बल बज्रावतं धरु सिंहचिन्ह वरसिंह-स्यंदनु ।

गजहि हस्त गज-रथ-वर प्रमद महाध्वज ।

विस्फुरत किष्किधाधिप सप्तद्वज । . . .

धत्ता । सभाहिं व पार्श्वं दूर्क बलहु, असोहिणि वीस-सौ बलहु ।

विरचि व्यूह संचलिय, जनु उदधिमुखइ उच्छलिय ॥१०॥

घुष्टु कलकल दीनु रणभेरि चिन्ह उठियाई,

लेइ कवच क्रिय-हेति-संग्रहा ।

गज-घटउ प्रप्ररियउ मोक्ष तुरग जाहेउ महारथा,

रामसेन्य रण-रहसियउ ।

कहिहु न अमायउ जगे निगति,

जनु परबल निगलै धाइयऊ ॥

आरब्धु युद्ध रोषितमनाहें । रजनीचर-धानर-सांछनाहें ।

अपसरिय शंख-शत-संघटाहें । रण-बधु फेरारिय मुख-पटाह ।

ऊर्ध्वकुश धाइय गजघटाह । खर-भवनांदोलिय ध्वजपटाह ।

कंपाविय सकल वसुंधराह । रोषाविय आशीविधधराह ।

भेलाविय नयनहुं दासनाह । संज्वलिय दिशामुख इधनाह ।

जय लक्ष्मि-वधुभ्र-ग्रहणन-मनाह । भूराविय सुरकामिनि-जनाह ।

उट्टाविय आभिय असिवराह । नीवतिय लोदिय इयवराह ।

निर्दलिय कुंभ कुंभस्थलाह । उच्छलिय धवल-मुक्ताफलाह ।

घत्ता । भड-यड गय-घडेहिं भिडंतएहिं, रह-तुरयहिं तुरिड भिडंतएहिं ।

रयणियर समुद्रिउ भक्तिकिह, णिय-कुसु भइलंतु दुपुत्तु जिह ॥११॥

—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाउ सुदठु समरंगणु दुसंचारखे । तहिं मि केवि पहरंति स-साहुक्कारखे ।

केहिमि करि-कुंभइ परमदुइ । णं संगम-सिरिहे यण बटुई । . . .

केहिमि लइयइ पर-बल-छतई । णं जयसिरि-लीला-सयवत्तई ।

केहिमि चक्खु पसरु अलहतेहिं । पहरिउ बासा सुंचिकरतेहिं ।

केण' वि खग-लट्टि-परियट्टिय । रण-रक्खसहो जो'हु णं कड्ढिय ।

केण'वि करि-कुंभत्थलु पाडिउ । णं रण-भवण-वार उग्घाडिउ ।

कत्थइ सुसुमूरिय असि-घारेहिं । मोत्तिय-दंतुरु हसियउ अहरोहिं ।

कत्थइ रुहिर-पवाहिणि धावइ । जाउ महाहउ-पाउसु पावइ ।

घत्ता । सोणिय-जल-महरणगिरेहिं'व, सुहंतराल णह-यल-गएहिं ।

पज्जलइ बलइ धूमाइ रयणु, णं जुग-खय-काले कालवणु ॥१२॥

—रामायण ७४।१२

हे गरणाह ! णेह अच्चरियउ । पर-बलु पेक्खु केम जज्जरियउ ।

हंड-णिरंतरु सोणिय चच्चिउ । णाणा विह-विहंग-परिअंजिउ ।

कोवि पयंड-वीरु बलवंतउ । भमइ कियंतु वरिउ जगडंतउ ।

गय-घड भड-यड सुदुड वहंतउ । करि-सिर कमल-संडु तोडंतउ ।

रोक्कइ कोक्कइ दुक्कइ थक्कइ । णं सय-कालु समरे' परिसक्कइ ।

—रामायण २५।१८

घत्ता । तेहएँ समरे' सूरहेंमि मज्जंति मइ ।

गय-गिरिवरे'हि ताव समुद्रिय रुहिर-णइ ॥२॥

गय-वर-गंडसेल-सिहर'गा-विणिगय णइ तुरंतिया ।

उद्धुव धवल छत-डिंडीर समुव्वहंतिया ।

पक्खोअर-सोणिय-जल-पवाह । करि-मयर-तुरंगम-णक्क-गाहु ।

चक्कोहर संवण संसुमार ॥ करवाल मच्छ परिहच्छ चार ।

घत्ता । भट-ठट-गजघटेहिं मिहंतएहि, रथ-तुरंगहिं तुरिय मिहंतएहिं ।

रजनिचर समुद्वेज महु किमि, निजकुल मैतंत दु-पुत्र जिमि ॥११॥

—रामायण ७४।५-११

(८) रण-क्षेत्र

जाव सुष्टु समरंगण दुःसंचारा । तहँहि कोइ प्रहरति स-साधुकारा ।

कोऊहि करिकुंभँ परिमीजँ । जनु संग्राम-श्री स्तन-बहुँ ।

कोऊ लेइय पार-बल छत्रहिं । जनु जयश्री-लीला शतपत्रहिं ।

कोऊ चसु-प्रसर अलभता । प्रहरेज वाला-सुचि करता ।

कोऊ खड्ग यष्टि परि-काठिय । रण-राक्षसहँ जीभ जनु काठिय ।

कोऊ करिकुम्भस्थल पाटेँउ । जनु रण-मवन-द्वार उगघाटेउ ।

कहि कहि सुठि काठिय अस्तिधारेहिं । भौतिक-दंतुह हसियउ अघरेहिं ।

कहिँ कहिँ रुधिर प्रवाहिणि थावँ । याव महाह्व-पावस भावँ ।

घत्ता । शोणित जल-प्रहरणाग्रेहि इव, सुखंतराल नभतल गतेहिं ।

प्रज्वलै बलै घूमै रतन, जनु युगअयकाले कालवदन ॥१२॥

—रामायण

हे नरताप ! नेह आस्वर्यउ । पर-बल पेखु केम् जर्जरियउ ।

रुख निरंतर शोणित-वर्चित । नानाविध विहंग परि-अंचित ।

कोइ प्रचंड वीर-वलवंता । भ्रमै कृतांत-वरेँउ भगडंता ।

गज-घट भट-ठट सुभट बहंता । करि-शिर-कमलबंध-सोढंता ।

रोकै कोकै ठूकै थाकै । जनु क्षयकाल समरेँ परिसकै ।

—रामायण २५।१८

घत्ता । तेही समरे सूरहँहि भज्जंत ।

गज-गिरिवरेहिं तव अमुद्रिय रुधिरनवी ॥२॥

गजधर-भंड शैल शिखराग्र-विनिर्गत नदी तुरंतिया ।

उद्धृत-धवल-छत्र-डिंडीर-समुद्-बहंतिया ।

प्रवरोज्झर-शोणित-अक्षप्रवाह । करि, मकर, तुरंगम नाक-ग्राह ।

चक्कोघर स्पंदन शिशुमार । करवाल, मच्छ-परिहस्त चार ।

सत्तेभ-कुंभ-भीषण-सिलोह । सिय-चमर-जलाया-यति सोह ।

तंणइ^१तरेवि केँवि वावरंति । बुडुंति केवि केँवि उम्बरंति ।

केँवि रय-धूसर केवि रहिर-सित । केँवि-हत्य हडएँ-विहूणे^२विधित ।

केँवि लग्न पडीवादंत-मुसले^३ । णं^४धत्तु विलासिणि-सिहिण-जुधले^५ ।

केँवि गियथ विमाणहों भोप देंति । णहेँ^६णिवडेँवि बडरिहि सिरइ लेंति ।

तहिँ तेहए रणेँ^७सोणिय-जलेण । रउ सोसिउ सज्जणु जिह खलेण ।

—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जं राम-सेणु गिम्मल-जलेण । संजीवेँउ संजीवणि-जलेण ।

तं वीरेहि वीर-रसाहिएहि । बगतेँहि पुलय-यसाहिएहि ।

वज्जतेँहि पडहेँहि मदलेहि । गिज्जतेँहि धवलेँहि मंगलेहि ।

णच्चंतेँहि खुज्जय-वावणेहि । जज्जरिय पढते वमणेहि ।

गायतेँहि अहिणव-गायणेहि । वायतेँहि वीणा-वायणेहि ।

—रामायण ६६।२०

तो खर-गहर-पहर-धुव-केसर केसरि-जुत्त-संदणो ।

धवल-महद्धउ समुद्धायउ दसरह-जेठु-णंदणो ॥

जस-धवल-धूरि-धूसरिय-अंगु । धवलंवह धवला वर-तुरंगु ।

धवलाणणु धवल-पलंव-बाहु । धवलाभल-कोभल-कमल-गाहु ।

धवलउ जेँ सहावेँ धवल-वंसु ॥ धवलच्छि-मरालिहेँ राय-हंसु ।

धवलाहँ लवलु धवलायंवत्तु । रहु-णंदणु दणु-पहरंतु पत्तु ।

—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके शत्रुओं रावणकी मृत्यु

तो गहिय बंद-हासाउहेण । हक्कारिउ लक्ष्मणु दह-मुहेण ।

लइ पहए पहए किं करहि खेउ । तुहु एक्केँ चक्केँ साबलेउ ।

मत्तेभ-कुंभ-भोषण-शिलोष । सितचमर बलाकार्यक्ति सौह ।

सो नदी तरन कोउ व्यापरति । बूडति कोइ कोइ ऊवरति ।
कोइ रजधूसर कोइ रुधिर-लिप्त । कोउ हाथहरे विहुणेउ-धित्त ।

कोइ लाग प्रतीपा दैत-मुसले । जनु घूर्त्त बिलासिनि-स्तन-भुगले ।
कोइ निजहु विमानहँ भँप दैति । नभे निपतिय बैरिहि शिरहिँ लैति ।

तहँ तेहि रणे शोणित-जलेहिँ । रज सोखेउ सज्जन जिमि खलेहिँ ।

—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जो राम-सैन्य निर्मल-जलेहिँ । संजीवेउ संजीवनि-खलेहिँ ।

सो वीरेहिँ वीररसाधिकेहि । बलतेहिँ पुलक प्रसाधितेहिँ ।
वाजते पटहेहिँ माँदलेहिँ । गीयतेहिँ धवलैहिँ मंगलेहिँ ।

नाचते कुब्जक-वामनेहिँ । चर्चरी पढतेहिँ ब्राह्मणेहिँ ।
गायते अभिनव-गायनेहिँ । वाजतेहिँ वीणावादनेहिँ ।

—रामायण ६६।२०

तो सर-नसर-प्रहर घुत केसर केसरियुक्त-स्यंदनेहिँ ।

धवल-महाध्वज फहरायेउ दशरथ-ज्येष्ठ-नंदनेहिँ ।
यश-धवल-धूरि-धूसरित अंग । धवलावर धवला वरतुरंग ।

धवलानन धवल-प्रलंब-बाह । धवलामल-कोमल-कमल-नाभ ।
धवलद्वहि स्वभावे धवल-वंश । धवलाक्ष-मरालिहेँ राजहंस ।

धवला लवण्य धवलातपत्र । रघुनंदन दनु-प्रहरंत प्रप्त ।

—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके द्वार्यों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चंद्रहासायुवेहिँ । हुक्कारेउ^१ लक्ष्मण दशमुखेहिँ ।

ले प्रहर प्रहर का करहि क्षेप । तुह एको चक्को सावलेप ।

^१ हुकारेउ (मँथिली, भोजपुरी, मगही)

महु पद पुणु आयं कवणु गण्णु । किं सीह(हि) होइ सहाउ अण्णु ।

तं णिसुणे^० वि विप्फुरियाहरेण । मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण ।
घत्ता । उभयइरिहे^० णं अत्यइरि गउ, सूर-बिबु कर-मंडियउ ।

सहैं मुएँहि हणंतहों^० दहमुहहों^०, मंड-उरत्यलु खंडिअउ ॥२२॥

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम-)सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसते^० बल-गारायणेण । बवधालिय णायरिया-गणेण ।

ऐँहु सुंदरि ! सोक्खुप्पायणहो । अहिरामु रामु रामायणहो ।

ऐँहु लक्खणु लक्खण-लक्ख-वरु । जो रावण-रावण-पलयकरु ।

ऐँहु भामंडलु भामूसमुउ । बइदेहि-सहोयरु जणय-सुउ ।

ऐँहु किक्किवहहिउं दुहरिसू । तारा-वइ तारावइ-सरिसू ।

ऐँहु अंगउ जेण मणोहरिहे । केसम्महु किउ मंदोयरिहे ।

ऐँहु सुर-वर-करि-कर-मवर-मुउ । णंदण-वण-मइण पवण-सुउ ।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषणद्वारा लंकामें रामका स्वागत—

बहि-बोव-अल-क्खय-भाहिअ-करा । गय तहिँ अहि हलहर-बक्कहरा ।

आसीसेँहि सेसहि पणवणेहिँ । जय णंद बद्ध बद्धावणेहिँ ।

उच्छाहेँहिँ धवलेँहिँ मंगलेहिँ । पडु-पडहहिँ संसेँहिँ मंदलेहिँ ।

कइ-कहएँहिँ णउ-णट्टावएँहिँ । गायण-वायण-फंफावएँहिँ ।

णर-णायर-वंभण-ओसणेहि । अवरेँहिँमि तित्त-परिअत्तणेहिँ ।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामायण^० मरहु णीसरियउ । हय-गम-रह-गारिद-परियरिउ ।

अण्णे तहि सत्तुहणु स-वाहणु । स-रह सु-सालंकार सु-साहणु ।

मम तै" पुनि आहि कवन गम्य । का सिंहह होइ स्वभाव ग्रन्थ ।

सो सुनिया विस्फुरिताधरोहिं । मेलेउ रथांग लक्ष्मीधरोहिं ।
धत्ता । उदयगिरिहिं जनु अस्तगिरि गउ, सूरबिब-कर-मंडियऊ ।

स्वयं मृतहि हनंतहु वक्षमुखहु, मंडउरस्थल खंडियऊ ॥२२॥

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम) सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसते बल-नारायणेहि । व्यवचालिय नागरिका-ननेहि ।

ऐहु सुंदरि ! सौख्य-उपायनहु । अमिराम राम रामायणहु ।

ऐहु लक्ष्मण लक्षण-लक्ष-धर । जो रावण रावण प्रलय-कर ।

ऐहु भामंडल भाभूषभूत । वैदेहि-सहोदर जनकसुत ।

ऐहु किष्किधाधिप दुर्दशू । तारा-पति तारापति-सरिसू ।

ऐहु अंगद जानै मनोहरिहा । केश-अह किउ मंदोदरिहा ।

ऐहु सुरवर-करि-कर-अवर-भुजू । नंदन-वन-मदन पवनसुत ।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषण द्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दूबि-जल-आक्षत गहिय-करा । गा तहें जहें हलधर-चक्रधरा ।

आक्षीषेहिं शेषहिं प्रनमनही । "जय नंद वर्ध" बद्धावनही ।

ऊखाहेहिं धवलैहिं भंगलैहिं । पट्ट पट्टेहिं शंखेहिं भाँदलैहिं ।

कवि-कथनेहिं नट-नट्टावनही । गायन-बादन-फफावयही ।

नर-नागर-ब्राह्मण घोषणही । औरैहिउ चित्त-परितोषणही ।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामायमने भरत नीसरेऊ । हय-गज-रथ-नरेन्द्र परिचरेऊ ।

अन्यहु तँह पात्रुहन सवाहुना । स-रथ स-स्वालंकार सु-साधना ।

छत्त-विमाप्प-सहासइ धरियई । अंवरें रवि-किरणइ अंतरियई ।

तूरइ हृयई कोछि-परिमाणेंहिं । बुंदुहि दिण्ण गयणें गिब्वानेंहिं ।
अणवउ गिरवसेसु संखुब्भइ । रह-गय-तुरयहिं भग्गु ण लब्भइ ।

णिवडिय एककमेक्क भिडमाणेंहिं । पेल्ला-बेल्लि जाय जंपाणहिं । . .

घस्ता । केक्कय-सुएण णमंतएण, सिरुहु चलणंतरे कियउ ।

दीसइ विहि रत्तुप्पलहें, णीलुप्पल-मज्जे गाइ थियउ ॥१॥
जिह् रामहो तिह् णमिउ कुमारहो । अंतैउरहो पटोतिर हारहो ।

वलेण बलुद्धरेण हक्कारेंवि । सरहस णिय-भुय-वंड पसारेंवि ।
अवहंठिउ मामरु बहु-वारउ । मत्थए चुविउ पुणु सयवारउ ।

सय-वारउ उच्छंयें चडाविउ । सय-वारउ भिच्चुहु दरिसाविउ ।
सय-वारउ दिण्णउ आसीसउ । वरिस सगिस हरिसंसु विमीसउ ॥

—रामायण ७६।१-२

अयजयकारु करतेंहिं लोएँहिं । मंगल-धवलु-च्छाह पऊएँहिं ।

अइहव सेसासीस सहासेहिं । तारय-णिवहु-छडा-विण्णासेहिं ।
दहि-दोवा-दप्पण-जल-कलसेहिं । मोत्तिय-रंगावलि णव-कणिसेहिं ।

वंभण-वयणु'घोसिय वेएँहिं । कंडिअ जज्जरिच्च' सम-भेएँहिं ।
णड-कइ-कहय छत्त-फफावेहिं । लक्खिय तारारो'हणु निहावेहिं ।

भट्टेहिं वयणु'च्छाह पढतेंहिं । वायाली स-विसर सुमरतेंहिं ।
मल्ल-प्फोडण-सरेंहिं विचित्तेंहिं । इंदयाल-उप्पाइय चित्तेंहिं ।

भंद फंद वंदेंहिं कुदेंहिं । डोम्बेंहिं वंसारो'हणु करतेंहिं ।
घस्ता । पुरें पइसंतहो राहवहो, णट्ट-कला-विण्णाणइ केवलई ।

बुंदुहि ताडिय सुरेंहिं णहो, अच्छरेहिंमि गीयइ मंगलई ॥४॥

—रामायण ७६।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सयल सुरासुर दिण्ण पसंसहो । अज्ज अमंगलु रक्खस-वंसहो ।

खल-खुदहु पिमुणहु दुवियइडहु । अज्ज मणोरुह सुरवर सड्डहु ।

छत्र-विमान-सहस्र धरिया । अंबरे रविकिरणहँ अन्तरिया ।

तूर्य हनै (हिँ) कोटि परिमाणा । सुंदुभि दियेँ उ गगने गीर्वाणा ।
जनपद निविशेष संक्षुब्धा । रथ-गज-तुरगहिँ मार्ग न लब्धा ।

निपतेँ उ एकमेक भिडमाना । पेलापेलि जायेँ ऋग्माणा ।
घत्ता । केकयि-सुतहिँ नमंतएहिँ, शिररुह चरणंतरे कियउ ।

दीसै विधि-रक्तोत्पलहँ, न्याइँ नीलोत्पल मौंके ठियउ ॥१॥
जिमि रामहँ तिमि नमेँ उ कुमारहु । अंतःपुरहु प्रभोलिर हारहु ।

वलेँ हिँ बलुद्धरेहिँ हक्कारिय । स-रमस निज-भुजदंड पसागिय ।
अवलिंगिउ माता बहु बारा । माथे चुबेँ उ पुनि शतबारा ।

शतवारउ उत्संगे चढाइउ । शतवारउ भृत्यहँ दरसाइउ ।
शतवारउ दीनेँ उ आशीषा । बरिस-सरिस हरि सं सुविभीषा ।

—रामायण ७६।१-२

जयजयकार करतेहिँ लोमेँ हिँ । मंगल-धवल-उच्छाह प्रयोगेँ हिँ ।
अतिभव शेषाशीष-सहस्रेँ हिँ । तारक-निबहु-छटा-धिन्यासेँ हिँ ।

दधि-दूर्वा-दर्पण-जलकलशेँ हिँ । मौक्तिक रंगावलि नवमँजरिहिँ ।
ब्राह्मण-वदन-उद्धोषिय वेदहिँ । कंडिक चर्चरि इव समभेदहिँ ।

नट-कवि कथेँ छत्र फहरावै । लखियत ताराकृष्ण विभावेँ हिँ ।
भाटेँ हिँ वचन-उच्छाह पढतेँ हिँ । वंतालिक बिसार सुभरतेँ हिँ ।

मल्ल-स्फोटन-शरेहिँ द्विचित्रेँ हिँ । इंद्रजाल-उत्पादित चित्तेँ हिँ ।
मंद फंद वदेँ हिँ कूदतेँ हिँ । डोमेँ हिँ वंशारोह करतेँ हिँ ।

घसा । पुरि पइसंतहँ राघवहँ, नाट्यकला विज्ञानहँ केवलइँ ।
सुंदुभि ताबित सुरेँ हिँ नमहु, अप्सरोहिँ उ गाइय मंगलाईँ ।

—रामायण ७६।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सकल-सुरासुर दीनु प्रशंहि । आज अमंगल राक्षस-वंशहिँ ।

खल-शुद्ध पितृनहु दुविदग्धहु । आज मनोरथ सुरवर सिद्धहु ।

हुदहुही बज्जहु गज्जहु सायर । अज्ज तवउ सच्छहु दिवायर ।

अज्जु मियकु होउ पहवतउ । वाउ वाउ जगि अज्जु सइत्तउ ।

अज्जु धणउ धणरिद्धि णियच्छउ । अज्जु जलंतु जलणु जगे अच्छउ ।

अज्जु जमहो गिब्वहउ जमत्तणु । अज्जु करेउ इंदु इंदत्तणु ।

अज्जु धणहु पूरंतु मणोरह । अज्जु णिरगलु हंतु महागह ।

अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ । अज्जु गाउ मोक्कलउ सरासइ ।

—रामायण ७६।४

जो भुवणा-हिंदोलणा, बइरि-समुद्ध-विरोलणा ।

सुर-सिंधुर-कर-बंधुरा, परिश्रद्धिय रणभरधुरा ॥

जे शिर ओर पलब-पईहर । मुहि मंभीस वीस-पहरण-धर ।

जे बालत्तणे बालक्कीलइ । पणय-मुहेहि छुहंतउ लीलइ ।

जे गंधव्व-वावि-आडंभण । सुर-सुंदरि-बुह-कणय-णिहंभण ।

जे वह सवण-रिद्धि-विग्भाडण । तिजग-बिहूतण गय-मय-साडण ।

जे जम-दंड-बंड-उडालण । स-वसुंधर कइलासु च्चालण ।

जे सहास-यर मडफर-भंजण । णलकुव्वर^१-मोहिणि-मग-रंजण ।

जे अमरिद्ध-दण-उहट्टण । वरुण-गराहिव-बल-दल-अट्टण ।

—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका सत्यमनके लिये

रोवतेंहे दसरह-णदणैण । धाहाविउ सव्वे परियणैण ।

दुवसाउरु रोवइ समयु लोउ । णं वप्पिणि अप्पे^१वि भरिउ सोउ ।

^१ कुवेर (वैश्ववण)-पुत्र

दुंदुभि बाजै गरजै सागर^१ । आज तपउ स्वच्छंद दिवाकर ।

आज मृगांक होउ प्रभवन्ता । वायु वाहु जग आज स्वतंत्रा ।

आज अनप धन-श्रद्धि निशच्छउ^२ । आज ज्वलंतु ज्वलन जग अच्छउ ।

आज यमहु निर्वहउ यमस्वा । आज करेउ इंद्र इंद्रत्वा ।

आज धनहु पूरंतु मनोरथ । आज निरगल होंतु महाग्रह ।

आज प्रफुल्लउ फलउ वनस्पति । आज गाउ परिमुक्त सरस्वति ।

—रामायण ७६।४

जो भुषना हिंदोलना, वैरिसमुद्र-विरोलना ।

सुरसिंधुर करबंधुर, परिआ-ठिउ रणभरभुरा ॥

जो थिर थोर प्रलंबपती-हर । सुखि भीडंत बीस-प्रहरणघर ।

जो बालत्वैहि बालक्रीडइ । पन्नग-मुखैहि छवन्ता लीलइ ।

जो गंवर-वापिया-गाहम । सुर-सुंदरि बुधकनेक निरूपण ।

जो वैश्रवण-श्रद्धि-विआटन । विजय-विभूषण गज-मद-शाटन ।

जो यमदंड-चंड-उद्धारण । स-वसुंधर कैलाश-उच्चारन ।

जो सहस्रकर-गर्व-विभंजन । नलकूबर-नोहिनि-मनरंजन ।

जो अमरेंद्र-दर्प-अवधटन । वरुण-नराधिप-बल-दल-बंदन ।

—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अस्तःपुरका लक्ष्मणके लिए

रोवन्ते दशरथ-नंदनही^१ । आहावेउ^२ सर्व परिजनही^३ ।

दुःखाकुल रोवै सकल लोक । जनु बप्पे बप्पे अरेउ शोक ।

रोवइ भिच्च-यणु समुह-हत्थु । गं कमस-संडु हिम-पवण-वत्थु ।

रोवइ अतेउरु सोयकुण्णु । गं(स)ज्जमाणु संल-उल्लु चुण्णु ।

रोवइ अवरा इव रामजणणि । केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि ।

रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय । रोवइ सुमित्त सोमिप्ति-माय ।

हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गउसि । किह सत्तिऐ वच्छत्थले हउसि ।

हा पुत्त ! भरंतु म जो हउसि । दइवेण केण विच्छो हउसि ।

घत्ता । रोवन्तिऐ लक्खण-मायरिऐ, सयल लोउ रोवावियउ ।

कारुणइ कव्व कहाऐ जिह, कोव ग अंसु मुआवियउ ॥१३॥

—रामायण ६६:१३

(ख) राक्षस-परिजन-विलाप

घत्ता । ताव दसाणणु आहयणे पडिउ मुणेवि सदोरु सणेउरु ।

धाइउ मंदोरि-पमुह, धाहावंतु सयलु अतेउरु ॥४॥

हुम्माणु कुक्क-महण्णवे चित्तउ । पिउ-विज्जय जालोनिष-लित्तउ ।

सोक्कल-कैस विसंठुल-गत्तउ । विहउप्पहु थिवउंतु'द्धंतउ ।

उद्ध-हत्थु उद्धाहावंतउ । अंसु-जलेण वसुह सिचंतउ ।

गेउर-हार-डोर गुप्पंतउ । चंदण-छह-कहमे लुप्पंतउ ।

पीण-पउहुर-भारक्कंतउ । कज्जल-जल-मल महलिज्जंतउ ।

णं कोइल-कुलु कहिमि पयट्टउ । णं गणियारि-बूहु विच्छुट्टउ ।

णं कमिलिणि वणु थाणहो चुक्कउ । णं हंसि-उल्लु महासर मुक्कउ ।

कलुण-सरेण रसंत पथाइउ । णिविसे रण-धरित्ति संपाइउ ।

घत्ता । हथ-गय-भठ-रहिराखणिय, समर-वसुंधर सोह ण पावह ।

रत्तउ परिहवेवि पंगुरेवि, थिय रावणु अणुमरणे णावह ॥५॥ . . .

तहि बहवयणु विट्ठु बहुवाहउ । कप्पतरु'व्व पत्तोट्टिय साहउ ।

रज्ज-गय-नल्लण-संभु च्छिण्णउ ।

रोवै भूत्पगण उठाइ हाथ । जनु कमल-वंड हिमपवन-प्राप्त ।

रोवै अन्तःपुर शोकपूर्ण । जनु सज्जमान शंख-कुल-चूर्ण ।

रोवै औरहिँ इव रामजननि । केकयि दापित तरुमूल-सननि ।

रोवै सुप्रभ विच्छाय जाय । रोवै सुमित्राँ सौमित्र-माय ।

हा पुत्र पुत्र ! कहँवा गओसि । किमि शक्तिहिँ वक्षस्थले हतोसि ।

हा पुत्र ! भरत न जोयोसी । दैवेहिँ किमि बिच्छोहेओसी ।

घत्ता । रोवँती लक्ष्मण-महतारी, सकल लोक रोवावियऊ ।

कारुण्यइ काव्यकथाइ जिमि, को ना अश्रु सुचावियऊ ॥१३॥

—रामायण ६६।१३

(ख) शवण-परिजन-विलाप

घत्ता । तब दशानन आहवै पड़ेँउ, सुनिय स-डोर स-नूपुर ।

वाइउ मंदोदरिप्रमुखा, धाहावत सकल-अंतःपुर ॥४॥

दुर्मन दुःख महार्णव क्षिप्तउ । प्रिय-वियोग-ज्वालोलिय-लिप्तउ ।

मुक्तहु केश विसंस्थुल^१-गानउ । हृडवडंत निपतंत उद्भांतउ ।

ऊर्ध्वहस्त उद्-धाहावतउ^२ । अश्रुजलेहिँ वसुधा सिंचतउ ।

नूपुर-हार डोर गोप्यंतउ । चंदन-छट-कदंभ मेढंतउ ।

पीन-मयोधर-भाराक्रान्तउ । कज्जल-जल-मल महलिज्जंतउ ।

जनु कोकिल-कुल कथा-प्रवृत्तउ । जनु गजियार-यूष-विच्छुट्टउ ।

जनु कमलिनि-वन थानहँ चूकउ । जनु हंसीकुल महसर मुंचउ ।

करण-स्वरेहिँ रसंत प्रधायेंउ । निमिषे^३ रणघरिनि संप्रापेंउ ।

घत्ता । हृथ-गज-भट-रघिरारुणित, समर-वसुंधर सोइ न पावै ।

रक्तउ परिभवेहु अंकुरेंउ, ठिउ रावण अनुमरणे^४ न प्रावै ॥५॥...

तहँ दशवदन वीस बहुवाँहा । कल्पतरु इव लोटिय आखा ।

राज्यगज-नलान-खंभ^५ चिह्नउ ।

^१ अस्तव्यस्त

^२ याड मास्ती

^३ हाथी बांधने का खंभ

घसा । दह दिगहाइ स-रसियहैं, जं जुझंतु न गिहैं मुसउ ।

तेण चक्कु सेज्जहि चढेँवि, रण-बहुअएँ समाणु नं मुसउ ॥६॥...

घसा । गिणैवि अवत्थ दसाणणहों, हा हा सामि भणंतु सबेयणु ।

अतेउर मुच्छाविहलु, गिवडिउ महिहि भत्ति गिच्चेयणु ॥७॥

(ग) संबोदरि-विलाप—

तारा-अक्कु'व थाणहों चुक्कउ । 'दुक्कु दुक्कु' मुच्छाएँ आमुक्कउ ।

लाग सएँव्वएँ तहि मंदोयरि । उव्वसि-रंभ-तिलोत्तिम-सुंदरि ।

चंदवयण-सिरिक-तणुइ(इ?)रि । कमलाणण-गंधारि'व सुंदरि ।

मालइ-वंपय-माल-मणोहरि । जय-सिरि-वंपण-लेह-तणूष(द?)रि ।

सन्धि-वसंत-लेह-मिय-लोयण । जीयण-गंध गोरि-गौरौयण ।

रयणावलि मयणावलि सुप्पह । काम-लेह काम-सय सइप्पह ।

सुहय वसंत-तिलय मलयावइ । कुकुम-लेह-पउम-पउमावइ ।

उप्पल-माल-गुणावलि गिरुवम । किति-दुद्धि-जय-सन्धि-मणोरम ।

घसा । आपहिँ सोभारियहि, अट्टारह हि'व जुवइ-सहासेँहि ।

णव-घण-मालाअंवरै'हिँ, छाइउ मिज्जु' जेम चउपासेँहि ॥८॥

रोवइ लंकापूर-वरमेसरि । हा रावण ! तिहुयण-अण-केसरि ।

पइ विणु समरतूइ-कहों वज्जइ । पइ विणु बालकील कहों छज्जइ ।

पइ विणु णवगह-एक्कीकरणउ । को परिहेसइ कंठाहरणउ ।

पइ विणु को विज्जा आराइइ । पइ विणु अंध-हासु को साइइ ।

को गंधव्व-आपि आओइइ । कण्णहों खवि-सहासु संखोइइ ।

पइ विणु को कूवेर भंजेसइ । तिजग-विट्ठसणु कहों कसेँ होसइ ।

पइ विणु को जमु विणिवारेसइ । को कइलासु'उरणु करेसइ ।

सहस-किरणु णलकुव्वर-सक्कह । को अरि होसइ ससि-वरणक्कह ।

को गिहाण रयणइ पालेसइ । को वट्ठहविणि विज्जाँ लएँसइ ।

घत्ता । दश दिवसाई स-रात्रियहिं, जनु युध्यंत न निद्रा प्राप्तउ ।

सो चक्र-सम्यहिं चढिया, रण-वधुयेहिं संग सुतउ ॥६॥...

घत्ता । पेक्षि अयस्य दशाननहो "हा हा स्वामि" भनंत सवेदन ।

अंतःपुर मूर्छाविकल, निपतेउ महिहिं भट्ट निश्चेतन ॥७॥

(ग) मन्दोदरि-विलाप—

ता-चक्र इव घानहिं चूकउ । दुःख दुःख मूर्छहिं ग्रामुंचउ ।

लागू रोइवा तहें मन्दोदरि । उब्बंशि-रंभ-तिलोत्तम-सुंदरि ।

चंद्रवदनि श्रीकांत सनूदरी । कमलानन गंधारि 'व सुंदरी ।

मालति-चंपक-माल-भनोदरी । जयश्री - चंदन - लेख तनूदरी ।

लक्ष्मि-वसंत-लेख मृगलोचन । योजन-गंधों गोरि गोरोचन ।

रतनावलि मदनावलि सुप्रभ । कामलेख कमलता स्वयंप्रभ ।

सुखद-वसंत-तिलक मलयावलि । कुंकुम-लेख पद्म-पद्मावलि ।

उत्पल-माल-गुणावलि निरुपम । कीर्ति बुद्धि जय लक्ष्मि मनोरम ।

घत्ता । आएहिं शोकार्तोहिं, अट्टारहिं बरयुवति-सहस्रोहिं ।

नव घनमालाङ्गवरेहिं, छाइ विज्जु जेम सौपासोहिं ॥८॥

रोवैं लंकापुर-परमेश्वरि । 'हा रावण ! त्रिभुवन-जन-केसरि ।

तुम विनु सभर-तूर्य कहैं वाजै । तुम विनु बालक्रीड कहैं छाजै ।

तुम विनु नवग्रह एकीकरणउ । को पहिरावैं कंठाभरणउ ।

तुम विनु को विद्या^१ आराधै । तुम विनु चंद्रहास^२ को साधै ।

को गंजव-वापि आडोभै । कर्णहु छवि-सहस्र संखोभै ।

तुम विनु को कुवेर भंजीहै । त्रिजगविभूष केहि वश होइहै ।

तुम विनु को यम विनिबारीहै । को कैलाशोद्धरण करीहै ।

सहस्रकिरण-नलकूवर-शक्रहु । को अरि होइहै शशि-वर्णउ कहै ।

को निधान रतनहिं पालीहै । को बहुरूपिन विद्या लीहै ।

यत्ता । सामिय पहुँ भविण विणु, पुष्पविमाणे चडेँ वि गुरुभतिऐ ।

मेरु-सिहरेँ विण-मंदिरहँ, को मइ जेसइ वंदण-हृतिऐ ॥६॥

पुणुवि पुणुवि गयणगण-गोसरि । कलुषाकण्डु करह मंदोयरि ।

गंवण-वणेँ दिज्जति मणोहरि । सुमरमि पारियाय-तव-मंजरि ।

वुड्ढण वाजिहँ वण-परिवट्टणु । सुमरमि ईसि ईसि मयखण्डणु ।

सयण-भयणेँ जहणियर-विमारणु । सुमरमि लीला-अंकय-ताडणु ।

पणय-रोस-समए भएँ वंघणु । सुमरिम रसणा-दाम-णिबंधणु ।

सुमरमि दिज्जमाण दणु-वावणि । धरणेँवहोँ केरउ चूडामणि ।

सुमरमि सामि कुमारहोँ केरउ । वरहिण पेहुण कण्णेँ ऊरउ ।

सुमरमि सुर-करि-मय-भसु सामसु । हारेँ ठविज्जमाणु भुत्ताहसु ।

यत्ता । सुमरमि सह सुरयावहणु, जेउर-वर-अंकार-विलासु ।

तोइ महारउ वज्जमउ, हिणउ ण वेवसु होइ गिरासु ॥१०॥

पुणुवि पुणुवि मंदोयरि बंपइ । उट्ठेँ भडारा कितिउ सुप्पइ ।

जहँ वि गिरारिउ णिहएँ भुत्तउ । तोँ वि ण सोइहि महियलें सुत्तउ ।

सामिय ! को भवराहु महारउ । सीयहें दूई गय-सय-वारउ ।

तँहि प्रकारणिज्जेँ भारइउ । जेण परिट्टिउ पाराउट्टउ ।

तहिँ भवसरेँ पिउ पेँक्खेवि धाहउ । कावि करेइ मलीअइ-साइउ ।

आविगेवि ण सव्वायामेँ । कावि णिकंभइ रसणा वामेँ ।

कावि करसूएण कवि हारेँ । कावि सुयंभ-कुसुम-पन्भारेँ ।

कवि उरेँ ताडिवि लीला-कमलेँ । पभणह मल्लिएण मुहुकमलेँ ।

—रामायण ७६।४-११.

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर इशरधका विलाप

केणवि कहिउ ताम भरहे सहोँ । गय सोभित्ति राम वण-वासहोँ ।

तँ गिसुणेवि वयणु धुयवाहउ । पडिउ महीहरोँव्व वज्जाहउ ।

घत्ता । स्वामी ! तुमहि भये यिनु, पुष्पविमान चढबि गुरु-भक्तिय ।

मेरु शिखरें जिनमंदिरें, को मोहिं लेइसै बंदन हाथिय” ॥६॥

पुनि पुनि गगनगण-मोचरी । करुणाकंदन कर मंदोदरी !

“नंदनवने दीपंत मनोहरि । सुमिरौ पारियात्र-तह-मंजरि ।

हुब्बन-वापिहिं स्तन-परिवर्त्तन । सुमिरौ तनिक तनिक आलिगन ।

शयन-भवने नख-निकर-विदारन । सुमिरौ लीलापंकज-सादन ।

प्रणय-रोष-समये मम बंधन । सुमिरौ रसनादाम-निबंधन ।

सुमिरौ दीयमान दनु-दानव । वरणींद्रहु केरहु चूडामणि ।

सुमिरौ स्वामि-कुमारहु केरउ । वहिन पिच्छहु कर्णपूरउ ।

सुमिरौ सुर-करि-मदमल श्यामल । हारे ठपीयमान मुक्ताफल ।

घत्ता । सुमिरौ सकुत-सुरत-आरोहण, नूपुर-वरभंकार-विलास ।

तोउ हमारौ वज्र-मय, हृदय न दो-दल होइ निराश” ॥१०॥

पुनिहु पुनिहु मंदोदरि जल्ये । “उठु भट्टारक केतक सुतै ।

यदिउ अवश्यहि निद्रा भुक्तउ । तऊ न सोहै महितल-सुत्तउ ।

स्वामी ! को अपराध हमारउ । सीतहिं दूति गई सतवारउ ।

तहै अकारणीय आरुढउ । जाते परि-स्थित-पारा-उट्टउ” ।

तेहि अवसरे प्रिय पेखब बाइउ । कोइ करेइ अलीकै साइउ ।

आलिगेबि न सर्वायामे । कोइ निबंधै रसना-दामे ।

कोइ वरंशुकेहिं कोइ हारे । कोइ सुगंध कुसुम-प्राग्भारे ।

कोइ उर ताडबि लीलाकमलेहिं । प्रभनै मुकुलितेहिं मुखकमलेहिं ।

—रामायण ७६:४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर वनारथका विलाप

काहुहिं कहेउ तबहिं वनारथ सहै । गये सौमित्रि राम वनवासहै ।

सो सुनि केहिं वदन कँपवाइउ । पडेउ महीघर इब बजाइउ ।

घटा । जं मुच्छाविज राउ, सयलु'वि जणु मुह-कायह ।

पलयाणिल-संततु, रसेवि लग्गु णं सायह ॥६॥

चंदणेण पब्बालिज्जंतउ । चमस्सखेविहिं विज्जिज्जंतउ ।

“दुक्खु दुक्खु” आसासित राणउं । जरठ-मियंकु'व थित उद्दाणउ ।
अविरस अंसु-जलोल्लिय-थयणउं । एम पजंपित गगिर-वयणउ ।

णिवडिय असणि अज्ज आयासहो' । अज्ज अमंगलु वसरह-वंसहो' ।
अज्ज जाउं हउं सुडिय-वक्खउ । दुह भायणु पर-मूह हउं वेक्खउ ।

अज्ज णयह सिय-संपय-मे'ल्लित । अज्जु रज्जु परचक्के' पे'ल्लित ।
एव पलाउ करोवि सहगए' । राहव-अणणिए' गउळ लग्गए' ।

केस-विसंतुल दिट्ठ हअंती । अंसु-पवाह धाह मे'ल्लंती ।

—रामायण २४।६-७

• (ख) लक्ष्मणके लिये रामका विलाप

घटा । सोमिति-सोय-परिमाणेण, रहुवह-जंदणु मुच्छिअउ ।

जलु चंदणु चमस्सखेवए'हिं, दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छिअउ ॥२॥

हा लक्खण-कुमार ! एक्कोयर' । हा भदिय उविद दामोदर ।

हा माहव ! महुमह महुसूयण । हा हरि-कणह-विण्हु-गारायण ।

हा केसव ! अनंत-लच्छी-हर । हा गोविंद ! जणइण-महिहर !

हा गंभीर-महाणइ-रंभण । हा सीहोयर-दप्पणिसुंभण । . . .

हा हा रुद-भुत्ति-विणिवारण । हा हा वासिस्सिल्ल-संहारण !

हा हा कविल-मरट्ट-विमइण । हा वणमाली-गयणाणंदण ।

हा अरि-दमण ! मडप्पर-अंजण । हा जिय-योम सोम-मण-रंजण ।

हा महुरिसि-उवसग्ग-विणासण । हा आरण-हुत्थि-संताजण !

हा करवाले-रयण-उद्दालण ! संव-कुमार-विलास-णिहालण !

हा खर-दूसण-वलमुसुमूरण ! हा सुग्गोव-मणोरह-पूरण !

हा हा कोडिसिला-संवालण ! हा हा मथर-हरो उत्तारण !

घृता । जो मूर्छाये^१उ राव, सकलहु जन मुँह-कातर ।

प्रलयानल-संतप्त, बोलन लागु जनु सागर ॥६॥

चंदनेहिं लेप्पाइज्जंतउ । चमर-उत्क्षेपेहिं बीजायंतउ ।

“दुःख दुःख” आश्वासै राणा । जरठ मृगाकि 'व ठिउ उझाना ।

अविरल-अश्रु-जलोलित-नयना । इमि प्रजल्येउ गद्गद-वयना ।

“निपतिय अशनि आज आकाशहैं । आज अमंगल दशरथ-वंशहैं ।

आज जाउँ ही पीठिय वझहु । दोउ भाइज परमुँह हीं पेलैं ।

आज नगर सिय-संपति मेले^२उ । आज राज्य परचक्रे^३ पेलैं^४उ ।

इमि प्रलाप करेव सहाग्रद । राघव-जननिहैं आयउ लगो^५हु ।

केश-विसंस्थुल दीस रोवँती । अश्रुप्रवाह धाह भेलँती^६ ।

—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिए रामका विलाप

घृता । सौमित्र शोकपरितापे^१हिं, रघुपतिनंदन मूर्छियउ ।

जल-चंदन-चमर डुलावनहैं, दुःख-दुःखउ मूर्छियउ ॥२॥

“हा लक्ष्मण कुमार एकोदर ! हा भविय उपेन्द्र वामोदर !

हा माधव मधुमथ मधुसूदन ! हा हरि कृष्ण विष्णु नारायण !

हा केशव अनंत लक्ष्मीधर ! हा गोविंद जनार्दन महिधर !

हा गंभीर-महानदि-बंधन ! हा सिंहोदर-वर्ष-निनाशन !

हा हा यद्ग भुक्ति दिनिवारण ! हा हा वाविलित्य-संहारण !

हा हा कपिल-(कु)दर्प-विमर्दन ! हा वनमाली नयनानंदन !

हा अरिदमन-गर्व-बी-भंजन ! हा जितपथ सोम-मन-रंजन !

हा महौ ऋषि-उपसर्ग विनाशन ! हा आरभ्य-हस्ति-संतापन !

हा करवाल-रत्न-उद्धारण ! हा विष्णु-कुमार-विलास-निहारण !

हा खर-दूषण-बल-मुसमूरण ! हा सुग्रीव-मनोरथ-पूरण !

हा हा कोटिशिला-संचालन ! हा हा भकरधरो उत्तारन !

^१ त्यागेड

^२ शत्रु शासन

घत्ता । कहि तुहूँ कहि हूँ कह पिअय, कहि जगेरि कहि जणु गउ ।

हय-विहि विछोउ करेपिणु, कवण यणोरह पुण तउ ॥३॥

हरि-गुण संभरंतु विहाणउ । ववइ स-दुखखउ राहव-राणउ ।

वरि पहिरउ पर-गरवर-खकएँ । वरि खय-कालु दुक्कु अत्यक्कएँ ।

वरितं कालकुटु विसु भविखउ । वरि जम-सासणु नयण-कडक्खिउ ।

वरि असिपंजरे थिउ ओवंतर । वरि सेविउ कियंत-दंततर ।

अप दिण वरि जलण जलंतएँ । वरि वगला-मुहँ भमिउ भमंतएँ ।

वरि बज्जासणें सिरें पडिच्छिय । वरि दुक्कति भविति-समिच्छिय ।

वरि विसहिउ जम-महिंस-भडिक्किउ । भीसण-काल-दिट्ठि अहिडंकिउ ।

वरि विसहिउ केसरि नह-पंजर । वरि जोयउ कलि-कालु सणिच्छर ।

घत्ता । वरि दंति-दंते मुसलणेंहि, विणिभिदाविउ अप्पणउ ।

वरि अरय-दुक्खु आगामिउ, नउ विउउ भाइहिं तणउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) ब्राह्म सक्कमके लिये सरतका बिलाप

हैंउ आमंडलु^१ हणुवंत एहु । ऐहु अंगद रहसुच्छलिय देहु ।

तिणिवि आईय कज्जेण जेण । सुणु अक्खमि कि बहु वित्थरेण ।

सीयहि कारणे रोसिय-मणाहें । रणु बट्टइ राहव-रावणाहें ।

लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु । दुक्कर जीवइ तेँ आय इत्थु ।

तं वयणु सुणिवि परियालयेलु । नं कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु ।

णं चवण-काले सगहो सुरेंदु । उम्मुच्छिउ कहवि कहवि णरेंदु ।

दुक्खा उर आहा वणह लग्गु । पुण्णक्खइ हरिं व मुयंतु सग्गु ।

घत्ता । हा पइ सोमिति ! मरंतएण, मरइ निरुसउ दासरहि ।

मत्तार-विहूणिय गारि जिह, अज्जु अणाहीहूय भहि ॥१०॥

घत्ता । कहैं तुझैं कहिहौं का पियहिं, कहैं जनेरि कहैं जनक गछ ।

हृत्-विधि ! विछोह कराइय, कवन मनोरय पूर्ण तब" ॥३॥

हरि-गुण संबंदत विद्याणउ । रौबइ सदुःखउ राधव-राणउ ।

वर प्रहरी पर-नरवर-चक्रउ^१ । वर अयकाल दुक्कु अत्यक्कउ ।

वर सो कालकूट विष भक्षिउ । वर यमशासन-नयनकटाक्षउ ।

वर असिपंजरे^२ ठिउ शोढंतर । वर सेउव कृतांत-दंतान्तर ।

भंग देंउव वर ज्वलन जलते । वर वगलामुखे^३ अमिव अमंते ।

वर वज्रासने^४ शिरैहिं प्रतीच्छिव । वर दुक्कंत भवित्रि समीच्छिव ।

वर विसहव यम-महिष-भंडक्कउ । भीषण-काल-दृष्टि अभिडंकउ ।

वर विसहव केसरि-नख पंजर । वर जोयव कलिकाल-शनिस्वर ।

घत्ता । वर दंतिबेते^५ मुसलभेहि, विनि-भिदाविउ आपनहुं ।

वर नरक-दुःख आगामिउ, नहिं वियोग भाइहिंतनउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके सिये भरतका विलाप

हौं मामंडल हनुमंत एहु । एहु ग्रंगद रमसोच्छलिय-देह ।

तीनहुं आयजें कार्येहिं जेहि । सुनु भाखी का बहु विस्तरेहि ।

सीतहिं कारणे^१ रोषितमनाहें । रण अलै राधव-रावणाहें ।

लक्ष्मण शक्तिहिं विनि-भिनु तब । दुष्कर जीवै सो आय अन्न^२ ।

सो वचन सुनिअ परिपातयेल । जनु कुलिश-समाहृत पड़ेउ शैल ।

जनु च्यवन-काल स्वर्गहैं सुरेन्द्र । उन्मूर्छिउ कहव कहव नरेन्द्र ।

दुःखाकुल घाहा वनह लग्न । पुण्य-क्षय हरि हव मरत सर्ग ।

घत्ता । हा तब सौमित्रि ! मरंतई, मरै अवश्यहिं दाशरथी ।

भर्त्तार-विहूनी नारि जिमि, आज अनाया भइ मही ॥१०॥

हा भायर ! ऐकसि देहि वाय । हा पइ विणु अइसिरि-विहव जाय ।

हा भायर ! महु सिरि पडिय गयणु । हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयणु ।

हा भायर ! महुयर-महुर-वाणि । महु णिवडिउ-सि दाहिणउ पाणि ।

हा ! किं समुद्धु जल-णिवहु खुट्टु । हा ! किह दिहु कुम्भकडाहु फुट्टु ।

हा ! किह सुरवह^१ लच्छिऐं विमुक्कु । हा ! किह जमरायहो^२ मरणु दुवकु ।

हा ! किह दिणयर कर-णियरं चत्तु । हा ! किह अणंगु दोहंगु पत्तु ।

हा ! चंचल हूयउ केम मेह । हा ! केम जाउ णिद्धणु कुवेर ।

घसा । हा ! णिव्विसु किह अरणेंदु^३ थिउ, णिप्पहु ससि-सिहि-सीयलउ ।

टलटलि हूई केम महि, केम समीरणु णिव्वलउ ॥११॥

सम्भइ रयणायरे^४ रयण-खाणि । लम्भइ कोइल-कुले^५ महुर-वाणि ।

लम्भइ चंदणु-सिरि मलय-सिंगे^६ । लम्भइ सुहवत्तणु जुवइ-अंगे^७ ।

सम्भइ धणुअणऐं धरापवण्णु । लम्भइ कंचणे^८ परवऐं सवण्णु ।

लम्भइ पेसेण सामिएं पसाउ । लम्भइ किऐं-विणऐं जणाणुराउ ।

सम्भइ सज्जणे^९ गुण दाणे^{१०} कित्ति । सिय असिवरे^{११} गुरु-उले^{१२} परम-तित्ति ।

सम्भइ वसियरणे^{१३} कलत्त-रयणु । महकब्बे^{१४} सुहासिउ सुकड-वयणु ।

सम्भइउ वयार-सइहि सुमित्तु । मइवे^{१५}हि विसासिणि चारु चित्तु ।

लम्भइ परतीरि महुअु भंडु । वरवेणु-मूले^{१६} वेलुज्ज-खंडु^{१७} ।

घसा । गय-मोत्तिउ सिंघलदीवे^{१८} मणि, बइरागरहो वज्ज पउर ।

आयइ सव्वइ लब्भंति जइ, णवर ण लम्भइ भाइवइ ॥१२॥

—रामायण ६६।१०-१२

(घ) कुम्भकर्णके सिधे रावणका विलाप

तं गिसुणेवि दसाणण हल्लिउ । णं वच्छत्थले^१ सूले^२ सल्लिउ ।

थिउ हेट्टामुहु रावण-राणउ । हिम-हय-सयवत्तु^३ थ विदाणउ ।

स्वइ सवुवस्सउ गम्मार-वयणउ । वाह मरंतु णिरंतर वयणउ ।

हा हा कुम्भयण्ण ! एक्कोयर । हा हा मय-मारिज्ज-सहोयर ।

^१ इन्द्र

^२ शेषनाग

^३ हरितकान्ति वेदुर्यमणिका दुक्का

हा भायर ! एकहि देंहि वाच । हा तैं विनु जययी विभव जाय ।

हा भातर ! भम श्री पडिय गगन । हा द्वियहु फूट् बाहैं वदन ।

हा भायर ! मधुकर मधुर-वाणि । मम निपतेँउ तुम दाहिनउ पाणि ।

हा ! का समुद्र-जल-निवह खुट्ट । हा ! का दूढ कुंभकडाह फूट्ट ।

हा ! किम्बु सुरपति लक्ष्मियेहि मुञ्चु । हा ! किम्बु यमराजहें मरन दुक्कु ।

हा ! किम्बु दिनकर-कर-निकर-त्यक्त । हा ! किम्बु अनंग दौमगि-प्राप्त ।

हा ! चंचल होयउ केम मेरु । हा ! केम बनेँउ निर्घन कुबेर ।

घस्ता । हा ! निर्विष किम्बु वर्षींउ ठिउ, निष्प्रभ शशि शिखि शीतलउ ।

टलटलि हूइ केम महि, केम समीरण निर्दलउ ॥११॥

लब्धै रतनाकरेँ रतनखानि । लब्धै कोकिल-कुलेँ मधुरवाणि ।

लब्धै चंदन श्रीमलयशृंगेँ । लब्धै सुखवत्त्वउ युवसि-अंगेँ ।

लब्धै धन-धान्य-धरा प्रपन्न । लब्धै कंचन-पर्वतेँ सुवर्ण ।

लब्धै दासेहिँ स्वामिय प्रसाद । लब्धै कृतविनये जन'नुराग ।

लब्धै सज्जनेँ गुण, दानेँ कीर्ति । सित असिदरेँ, गुरुकुलेँ परम तृप्ति ।

लब्धै वशिकरणेँ कलत्र-रतन । महकब्धेँ सुभाषित सुकवि-वचन ।

लब्धै उपकार-मइहि सुमिस । मारदवेँहिँ विलासिनि चारुचित्त ।

लब्धै परतीरेँ महार्घ भांड । दर-वेणु-मूलेँ वेलुज्ज'खंड ।

घस्ता । गजमोतिउ सिंहलदीपेँ मणि, वैरागरहु वज्र ।

आगतेँ सर्वइ लब्धेँति यदि, पर नहिँ लब्धै भाइवर ॥१२॥

—रामायण ६६।१०-१२

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका बिलाप

सो सुनिय दशानन हिल्लेउ । जनु वक्षस्थल सूलेहि सालेउ ।

ठिउ हेठामुह रावण राणा । हिम-हृत-शतपत्रि 'व विद्राणा ।

रोव सकुलउ गद्गद-बदना । बाहू भरत निरंतर वचना ।

"हा हा कुंभकर्ण एकोदर । हा हा मम मारीच-सहोदर ।

हा इंदइ हा तोयदवाहण । हा जमहंट अणिट्टिय-साहण^१ ।

हा केसरि-णियंव-इणु-दारण । जंबुमालि हा सुअ हा सारण ।

हुक्खु हुक्खु पुणु भणु विणिवारिउ । सोय-समुदहो^२ अप्प उत्तारिउ ।

—रामायण ६७।६

(६) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावे^३हिं । मुञ्छइ^४ णाइ णिवारिउ तावे^५हिं ।

णिवडिउ घरणि वट्टि णिव्वेयणु । हुक्खु समुट्टिउ पसरिय केयणु ।

जरण घरेवि रोएँवएँ लग्गउ । हा भायर महेँ मुएँवि कहि गउ ।

हा हा भायर ! ण किउ णिवारिउ । जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ^६ ।

हा भायर ! सरीरे^७ सुकुमारएँ । केम विआरिउ चक्कएँ धारएँ ।

हा भायर ! दुण्णिट्टएँ मुत्तउ । सिज्जे^८ मुएँवि किं महियले^९ मुत्तउ ।

धत्ता । कि अवहेरि करेवि थिउ , सीसे^{१०} चडाविय जलग तुहारा ।

अञ्जमि सुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिणि भडारा ॥२॥

रुअइ विहीसणु सोयक्कभियउ । तुहु ण^{११} त्यमिउ वंसु अत्थमियउ ।

तुहु ण जिअसि सयसु जिउ तिहुयणु । तुहु ण मुअसि मुयउ वंदिज्जणु ।

तुहु पडिअसि ण पडिउ पुरंदर । मज्जहु ण भग्गु भग्गु गिरि-कंदर ।

दिट्ठि ण गट्ठ गट्ठ लंकाउरि । वयण ण गट्ठ गट्ठ मंदोयरि ।

हारु ण तुट्ठु तुट्ठु तारायणु । हिअय ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु ।

चक्कु ण हुक्कु हुक्कु एक्कंतरु । आउ ण सुट्ठु सुट्ठु रयणायरु ।

जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल । तुहु ण सुत्तु मुत्तउ महिमंडल ।

सीय ण आणिय आणिय जमउरि । हरि-यल कुद्ध कुद्ध णं केसरि ।

—रामायण ७६।२-३

^१ अपार ११ साधन बाले

^२ निरेही

हा इंद्रजि(त्) हा तोयदवाहन ! हा यमघंट अनिष्टित-साधन !

हा केसरि-गितं-वनु-दारण । जंबुमालि हा शुक हा सारण^१ ।

“दुःख दुःख” पुनि मन विनिवारिउ । शोक-समुद्रहो^२ आय उत्तारिउ ।

—रामायण ६७।६

(६) रावणके सिमे विभीषणका विलाप

आपुहिं हनै विभीषण जब्बे । मूर्खे जनुक निहारिउ तब्बे^३ ।

निपतेउ घरणि घूमि निर्वेदन । दुःख समुद्रिउ पसरिउ वेदन ।

चरण घरिय रोधवै लागउ । “हा भायर ! मम मुद्दम कहाँ गउ ।

हा हा भायर ! न किउ निवारैउ । जनविरुद्ध व्यवहरिउ निरारिउ ।

हा भायर ! शरीर सुकुमारा । केम विगारेउ चक्रहिं धारा ।

हा भायर ! दुनिद्रे मुक्तउ । शय्य भुएँउ का महिले^४ सुत्तउ ।

घत्ता । का अवहेल करेबि ठिय, सीस चढाएव चरण तुहारा ।

रहौ सुठि उन्मायियउ हृदय फूटु आलिगु भट्टारा^५ ॥२॥

रौबै विभीषण शोक-कमियउ । तुहुं न अस्तमिउ वंश^६ स्तमियउ ।

तुहुं न जीवसि सकल जिउ त्रिभुवन । तुहुं न मुखउ मुयेउ वेदनिय-जन ।

तुहुं पडियेउ न पडेउ पुरंदर । मुकुट न भंगु भंगु गिरिकंदर ।

दृष्टि न नष्ट नष्ट लंकापुरि । वचन न नष्ट नष्ट मंदोदरि ।

हार न टूटु टूटु तारागण । हृदय न भिडु भिडु गगनांगण ।

चक्र न कुक्कु^७ कुक्कु एकंतर । आयु न खुट्टु^८ खुट्टु रतनाकर ।

जीव न गउ गउ आशा-पोटुल । तुहुं न सुत्तु सुत्तु महिमंडल ।

सीय न आनेउ आनेउ यमपुरि । हरि-बल क्रुद्ध क्रुद्ध जनु केसरि ।

—रामायण ७६।२-३

^१ महाराजा

^२ शीर कर भीतर घुसा

^३ सतम हुई

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

मागुसु देहु होइ धिणि-विट्ठलु । सिरैहि निवठउ हइह पोट्टलु ।

बलु कुजंतु भाय-मउ कुहेडउ । मलहौं पुंजु किमि-कीडहु सूडउ ।

पूइगंधै रहिरामिस-भंडउ । भम्म-रुक्खु दुगंध-करंडउ ।

अंतहौं पोट्टलु पक्खिहिं भोयणु । वाहिहि भवणु मसाणहौं मायणु ।

आयहु कलुसिमऊ जहि अंगउ । कवण पएसु सरीरहौं चंगउ ।

अण्णइ सुण्णरुव दुप्पेच्छउ । कच्चियलु पच्छाहर-सारिच्छउ ।

ओअण्ण गंडहौं अणुहरमाणउ । सिरु णालिथर-करंक-समाणउ ।

—रामायण ५४।११

एण सरीरे अविणय-याणे । दिट्ठ णट्ठ जसविट्ठ-समाणे ।

सुर-चावेण'व अथिर सहावे' । तडि फुरणै'ण'व तक्खण-भावे' ।

रंभा-गब्भेण'व णीसारे' । पक्क-फलेण'व सउणाहारे' ।

सुण्णहरेण'व विहडिय-यंधे' । पच्छहरेण'व अइदुगंधे' ।

उक्कएडेण'व कीलावासे' । अकुलीणेण'व सुकिय-विणासे ।

परिवाहेण'व किमि-कोट्टारे' । असुइहि भवण' भूमिहि भारे' ।

अट्ठिय-पोट्टलेण वस-कुंडे । पूय-तलाये आमिस-उंडे ।

मलकूडेण रहिर-जलघरणे' । अस्मि-विबरेण पेम्म-णिज्झरणे ।

कुहिय-करंडएण धिणिवते' । चम्ममएण हमे'ण कूजते' ।

—रामायण ७७।४

तं चलणु जुअलु गय-मंथरउ । सउणाहि खज्जंतु भयंकरउ ।

तं सुरय-णियं व सुहावणउ । किमि बुडबुडंति चिसावणउ ।

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

मानुष देह होइ घृण-विट्ठल^१ । शिराहैं बाँधेउ हाडह पोटल ।

चलु सङत मायामय-कचरउ । मलहैं पुंज कृमि-कीटहु सूडउ ।

पूतिगंध रक्षिरामिष-भंडा । चर्मवृक्ष दुर्गंध-करंडा ।

आँसहु पोटल पक्षिहैं भोजन । काँठहैं भवन मसानेहु भायन ।

प्रायहु कलुषीयहु जहि अंगउ । कदन प्रदेश शरीरहु चंगउ ।

अन्यहैं शून्य-रूप दुष्प्रेक्ष्यउ । कटितल पच्छाघर सादृश्यउ ।

जोवन गंडहु^२ अनुहरमानउ । शिर नारियर-करंक-समानउ ।

—रामायण ५४।११

एहि शरीरे अविनय-थाने । दृष्ट-नष्ट जलविदु-समाने ।

सुर-चापा इव अथिर-स्वभावा । तडि-स्फुरणि^३ इव तत्क्षण भावा ।

रंभागर्भ इवा निस्सारा । पक्वफल इव शकुनाहारा ।

शून्यघर इव विघटित-बंधा । पच्छा घर^४ इव अतिदुर्गंधा ।

कूडापुंजि^५ इव कीटावासा । अकुलीना इव सुकृत-विनाशा ।

परिबाधा इव कृमि-कोटारा । अशुची-भवना भूमिहि आरा ।

अस्थिर पोटलका वसकुंडा । पूति-तलावा आमिष-कुंडा ।

मल-कूटऊ रक्षिर-जल छरना । लसि-निंदरा पीब-निर्भरणा ।

कुथित करंडा^६ ऊ घृणवंता । चर्ममया एते कूजंता ।

—रामायण ७७।४

सो चरण-मुगल गजमंथरउ । शकुनेहैं खाद्यंत भयंकरउ ।

सो सुरस-निर्तब-सौं हाथनऊ । कृमि बुजबुजंति चिरसाइनऊ ।

^१ गंधा विट्ठलाहा (मल्लिका)

^२ फोड़ा

^३ पाखाना

^४ पेटी

तं पाहि-पयेसु किसोयरउ । सज्जंतमाणु विउ भासुरउ ।

तं जोव्वणु अवरुंणमणउ । सुज्जंत नवर भीसावणउ ।
तं सुंदरवयणु जिअंताहुँ । किमि कप्पिउ णवर मरंताहुँ ।

तं अहर-विबु वण्णुज्जलउ । सुवंतु सिबेहिं पिणि-विट्ठलउ ।
तं णयणु-जुअणु विअम-भरिउ । विज्झायउ कायहिं कप्परिउ ।

सो विट्ठर-भाउ कोडावणउ । उट्ठंतु णवर भीसावणउ ।
घत्ता । तं माणुसु तं मुह-कमलु, ते वण तं गाळालिणणउ ।

णवरि वरेविणु णा सउहु, बोसिज्जइ भिधि विसितावणउ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहिं तेहइ एस-वस-भूय-भरे । णव मास वसेंअउ देहपरे ।

णव पाहिकमलु उत्पल्लु जहिं । पहिउउ जे पिटु संबंधु तहिं ।
वस-विबुसु परिट्ठिउ वहिर-अलु । कणु जेम पईयउ वरणियलु ।

विहि वस-रसिहि समुट्ठिअउ । णं जसें डिंडीर समुट्ठिअउ ।
तिहि वस-रसिहिं बुभुअ अडिउ । णं सिसिर-विबु कंकुम पडिउ ।

वस-रसि चउत्थहें वित्थरिउ । णावइ पवअंकुह णीसरिउ ।
पंचमै वस-रसि जाउ वसिउ । णं सूरण-कंडु चउप्पलिउ ।

वस-वस-रसेहिं कर-वरण-सिह । वीसहिं णिप्पणु सरीर थिह ।
णव-मासिउ देहहो णीसरिउ । वट्ठंतु पडीवउ वीसरिउ ।

घत्ता । जेण बुवारे आइयउ, ओ तं परिहरे ण सककइ ।

पतिहि जुसु वइल्लु जिह, अव-संसारे भमंतु ण थककइ ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

इअ जणे वि वीरहि अप्पणउ । करे कंकणु ओवहि दप्पणउ ।

अउगइ संसार भमंतएण । आवंता अंत मरंतएण ।

सो नाभिप्रदेश कृशोदरक । सादंतमान ठिउ भासुरक ।

सो, यौवन अवच्छन्न^१-मनक । सुज्जंत अती-भीषावणक ।
सो सुंदर वदन जियतेही । कुमि-काटिय तुरत मरतेही ।

सो अघर-विन्न वणोज्वलक । नोचंत शिवे^२हिं घृण-विदूतक ।
सो नयन-युगल विभ्रमभरिऊ । विच्छायाउ^३ कायहें खप्परिऊ ।

सो चिकुर-भार हर्षाविणक । उहुंत तुरत भीषावणक ।
असा । सो मानुष सो मुखकमल, सो स्तन सो गाढालिगनक ।

तुरत घरते नासकटू, बोलिय विक् चिरसाइनक ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहें तेहिहि रस-वस-भूत-भरे । नव मास वसेयउ देहघरे ।

नव नाभिकमल उच्छल्ल जहाँ । पहिलहिहि पिंड संबंध तहाँ ।
दस दिवस परिट्-ठिउ^४ रुधिर-जलू । कण जेम पडेऊ घरणितलू ।

दोउ दशरात्रे^५हिं सम्-उठियक । जनु जले^६ डिडीर^७ सुमुठियक ।
तेहिदश रात्रे बुद्ध गढेऊ । जनु शिशिरविदु कुंकुम पडेऊ ।

दशरात्रि चउत्थेहिं विस्तरिऊ । न्याई प्रवलांकुर निस्सरिऊ ।
पंचये^८ दशरात्रे जायो बली । जनु सूरत-कंद चऊपहली ।

दश दशरात्रेहिं कर-स्वरण-शिरू । बीसहिं निष्पन्न शरीर थिरू ।
नवमासे देहा नीसरिऊ । वर्तन्त अतीउ बीसरिऊ ।

असा । जेहि दुवारे आयक, जो तेहि परि-वारयउ न सकै ।

पातिहि जूतो बइल्ल जिमि, भव-संसार भ्रमंत न थाकै ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

ऐहु जानवि धीरेहि आपनक । कर-कंकण जोवें स्पर्णक ।

चउगति संसार भ्रमंतएहि । आवंत-जांत-भरतएहि ।

^१ अवच्छन्न=मासिगन ^२ सियारों से ^३ कुरूप ^४ रहेउ ^५ कमलनास

जगे जीवे कोण स्वाविम्वड । को गरुड धाह ण भुमावियड ।

को कहिमि णाहि संताविम्वड । को कहिमि ण भावह पावियड ।

को कहि ण दुक्कु^१ को कहि न मुड । को कहि ण भमिड को कहिं ण गड ।

कहि णवि मोयणु कहि णवि मुरऊ । जगे जीवहो किपि ण बाहिरऊ ।

तहलोउ विम्वसिउ अस्तएण । महि सयल रुजभंद^२ बूढतएण ।

अत्ता । सामर पीयउ पियतएण, भूमुऐहि रुयंतहि भरिउ ।

तुहु-कलेवर-संचरें, मिरि-मेह सोधि अंतरिउ ॥६॥

यह पद कि बहु अविएण राम । भवे भमिड भयकरे^३ तुहुमि ताम ।

णहु जिहं तिहं बहु रुवंतरेहिं । जर-जम्भण-अरण-परंपरेहिं ।

सा सीय^४ वि जो णिसएहिं माय । तुहुं कहिमि बणु सा कहिंमि माय ।

तुहु कहिमि भाउ सा कहिमि बहिणि । तुहु कहिमि पइउ सा कहिमि पंरिणि ।

तुहु कहिमि गरएँ सा कहिमि सगे^५ । तुहु कहिमि महिहिं सा गयण-मगे^६ ।

तुहु कहिमि णारि सा कहिमि जोहु । कि सुइणा-रिबिहि करहि मोहु ।

उम्मेदु^७ विऊअ गइइएसु । जगहुतु भमइ जगु णिरवसेसु ।

जह ॥ भरिउ जिण-वयणकुसेण । तो खज्जइ माणुस-माणुसेण ।

अत्ता । एम भणेप्पिणु बेवि मुणि, गय कहिमि णह-गण-पंवे^८ ।

रासु परिठिउ किविणु जिह, धणु इक्कु लएवि सहत्थे^९ ॥१०॥

—रामायण ३६।६-१०

(४) संसार तुच्छ

को काल-भुपंगहो^१ उव्वरइ । जो जगु जे सव्वु उवसंहरइ ।

तहो जहि जहि कहिमि दिट्ठि रमइ । तहि तहि ण भइय वहु भमइ ।

केवि मिलइ मिलइ केवि उमिलइ । काहिमि जम्मावसाणि मिलइ ।

केवि गरम-विलेहि पइसे विगसइ । काहिवि अणुलभाउ जे वसइ ।

^१ हुकना=प्रवेश करना

जगे जीवहि को न रौ बाध्यऊ । को गरुष घाह न मुचाइयऊ ।

को काहिहि ना संतावियऊ । को काहि न भाषइ पावियऊ ।

को कहै न दुखकु को कहै न मुऊ । को कहै न भ्रमेउ को कहै न गऊ ।

कहै नहि मोदन कह नहि मुरतू । जगे जीवहै ना किय बाहिरऊ ।

तिहु लोक विकसेउ अशांतएहि । महि सकल दग्ध दहंतएहि ।

घसा । सागर पियेउ पियंतएहि, अँसुएहि रोवतेहि भरेऊ ।

हाऊ-कलेवर-संचयेहि, गिरि-मेरु सोऊ अंतरिऊ ॥६॥

अथ तोहि का बहु वचनेहि राख ! भवे भ्रमिउ भयकरे तुहुज नाम ।

नट जहै तहै बहु-रूपांतरेहि । जर-जन्म-मरण-परंपरेहि ।

सो सीतउ मोनिशतेहि आथ । तुहु कतहु बाप ऊ कतहु माय ।

तुहु कतहु भाय ऊ कतहु बहिनि । तुहु कतहु दयित कतहु धरिनि ।

तुहु कतहु नरके ऊ कतहु सरगे । तुहु कतहु महिहि ऊ गगन-मये ।

तुहु कतहु नारि ऊ कतहु जोष । का स्वपन-आदिही करहि मोह ।

उन्मेठ^१-वियुक्त गजेद्रएस । भगदंत भ्रमे जगे निरवशेष ।

यदि न धरिय जिन-वचनांकुशही । तो खाइय भानुष भानुषही ।

घसा । इमि भनिया दोऊ मुनि, गयउ कतहु नभगण-पथे ।

राम बईठेउ कृपण जिमि, धनु एकलहु स्वहृत्ये ॥१०॥

—रामायण ३६।९-१०

(४) संसार सुख

को काल-भुजंगते ऊबरई । जो जग सर्वहै उपसहरई ।

तहै जहै जहै कतहु दृष्टि रमई । तहै तहै जनु भयावर्त भ्रमई ।

कोह गिलइ गिलइ कोइ ऊगिलई । कतहु जन्मावसान मिलई ।

कोह नरक-विलेहि पइसे विकसै । केतहै अनुसन्म एव बसई ।

केवि कइइइ सगहों वरि चडेवि । केवि सय होने ईउपरे चडेवि ।

केवि धारइ थोरइ पाव वितेण । केवि भक्खइ पाणाविहुमसेण ।

यत्ता । तहो कोवि ण बुक्कइ भुक्खियहों, काल-भुयंगहों हुसहहो ।

जिण-वयण-रसायणु लहु पियहों, जि अजरामर-पड लइहो ॥२॥

जइ काल-भुयंगु णउम बसइ । तो कि सुर-बइ सगहों जसइ ।

—रामायण ७८।२, ३

विरहाणल-जाल-मलित-तणु । वितेणएँ लग्गु विसण्ण-मणु ।

सज्जउ संतारि ण क्षत्थि सुहु । सज्जउ गिरि-मेरु-समाण बुहु ।

सज्जउ जर-जम्भण-भरण-भउ । सज्जउ जीविउ जलविध-सउ ।

कहों भव कही परियणु बंधु जणु । कहों माय-वप्पु कहों सुहि-सयणु ।

कहों पुत्तु-मित्तु कहों किर घरणि । कहों भाय-सहोयव कहों बहिणि ।

फलु जाय ताव बंधव-सयण । आवासिय पायवि जिहु सउण ।

बलु एम भणेप्पिणु पीसरिउ । रोबंतु पडीवउ बीसरिउ ।

यत्ता । मिट्ठणु लवण-वज्जिमउ, अण्णु'कि बहु असणे'हिं भुत्तउ ।

राहुउ भमइ भुयंगु जिहु, वणे "हा हुं सीय" अणंतउ ॥११॥

हिंउते' वग्ग मळप्फरेण । वणवेवय पुण्डिय हलहरेण ।

"अणे' अणे' वेयारहिं काई मई । कहिं कहिमि दिट्ठ जइ कंसयई" ।

बलु एम भणेप्पिणु संकलिउ । ता वग्गएँ वण-गयंदु मिलिउ ।

"हे कुंजर-कामिणि-नाइ-गमणा । कहे' कहिमि दिट्ठ जइ भिगणयणा" ।

गिय-मडिरवेण वेआरियउ । जाणइ सीयएँ हवकारियउ ।

कत्थइ दिट्ठई इंदीवरई । जाणइ-वण-गयणई बीहरई ।

कोई निकसि सर्ग ऊपर चढई । कोई क्षय-होवन ऊपर चढई ।

कोइ घारै धूरै पाप विषहिं । कोइ भस्मखै नामाविष मंसहिं ।

घसा । तहँ कोइ न बाँचै भूखियही^१, काल-भुजंगह दुस्सहही^२ ।

जिन-वचन-रसामन लघु पियहु, जिमि अजरामर-पद लहहु ॥२॥

यदि काल-भुजंग नही^३ डैसई । तो किमि सुरपति स्वर्गहँ लसई ।

—रामायण ७८।२,३

विरहानल ज्वाला-प्रलिप्त तनू । चिता इव लागु विषण्ण-भनू ।

साँचै संसारे^४ न अहँ सुखू । साँचै गिरि-मेरु-समान दुखू ।

साँचै जर-जन्मा-मरण-भवा । साँचै जीवित जलविदु-समा ।

कहँ घर कहँ परिजन बंधुजना । कहँ माय-बाप कहँ हित-सजना ।

कहँ पुत्र-मित्र कहँ पुति घरिनी । कहँ भाय-सहोदर कहँ बहिनी ।

फल जबै तबै बांधव-स्वजना । आवासे^५ पादपे^६ जिमि शकुना ।

बल^७ ऐसेहि भनिया नीसरेऊ । रोवंत पढीयउ बीसरिउ ।

घसा । निर्वेनु लक्ष्मण धजितउ, अन्धहु बहुत सनेहि त्यक्तउ ।

राघव भ्रमै भुजंग जिमि, वने "हा हा सीथ" भनंतउ ॥११॥

हिंडंतो भग्न गर्वएहिं । वनदेवत पूछिय हलचरेहिं^८ ।

"क्षण-क्षण विकारा काह मई । कहिं कतहुँ दीस यदि कांताँ तई" ।^९

बल^{१०} भनिया ऐसे संचलेऊ । तब आये^{११} वन-गयंद मिलेऊ ।

"हे कुंजर कामिनि-गति-गमना ! कहिं कतहुँ दीस यदि भूगनधना ।"

निज प्रतिरवेहिं बीचारियऊ । जानै सीता हनकारियऊ^{१२} ।

कतहुँ दीसे^{१३} इंदीवरही^{१४} । जानै वनि-नयनि-दीवरही^{१५} ।

कतपहँ असोय-दलु हल्लियउ । जाणइ धन-वाहा डोल्लिअउ ।

धनु सयलु गवेसवि सयल महि । पल्लट्टु पडीवउ दासरहि ।

—रामायण ३६१७-१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगे जीवहो नाहिँ सहाज कोवि । रह वंचइ मोह-भसेण तोवि ।

इय भइ इउ परियणु इउ कलत्तु । णउ बुजभइ जिह सयलेहिँ चित्तु ।

एककेण कणुअउ विहुरकाले । एककेण सुयेअउ जरपयाले ।

एककेण वसेअउ तहिँ णिगोरे । एककेण रुइअउ पिय-विऊरे ।

एककेण भमेअउ भवसमुहे । कंमोह मोह जलयर-रउहे ।

एककहोँ जेँ दुक्खु एककहोँ जेँ सुक्खु । एककहोँ जेँ वंधु एककहोँ जेँ मोक्खु ।

एककहोँ जेँ पाउ एककहोँ जेँ भम्मु । एककहोँ जे भरणु एककहोँ जे जम्म ।

—रामायण ५४१७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुणिअर कहिवि लग्गु बिउलाहँ । कि जणेण णियहिँ धम्मे कलाहँ ।

धम्मे भइ-थइ-हुय-गय-संवण । पावेँ सरण-विऊय-क्कवण ।

धम्मे सग्गु भोग्गु सोहग्गु । पावेँ रोग्गु सोग्गु दोहग्गु ।

धम्मे रिद्धि-विद्धि सिय-संपय । पावेँ अत्थहीण णर-विहय ।

धम्मे कइय-मउइ-कडिसुत्ता । पावेँ णर-वासिहेँ सुत्ता ।

धम्मे रज्जु करंति णिरुत्ता । पावेँ परसेसण-संजुत्ता ।

धम्मे वर-पल्लकेँ सुत्ता । पावेँ तिण-संगारेँ विमुत्ता ।

धम्मे णर देवत्तणु पत्ता । पावेँ णरय-बोरेँ संकंता ।

धम्मे णर रमंति वर-निअयउ । पावेँ दुह-विऊय दुह-णिलयउ ।

धम्मे सुंदर अंगु णिवद्धउ । पावेँ अंगुलउँवि बहिरंअउ ।

—रामायण २८१६

कतहूँ अशोक-दल हिलियऊ । जानै धनि-बाहूँ डोलियऊ ।

वन सकल गमेषैंउ सकल भही । पलदेउ पाछहूँ दाखरणी ।

—रामायण ३६।७-१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगै जीवहूँ नाहिँ सहाय कोऊ । रसि बाँचै मोहबशेहिँ तऊ ।

ऐहु घर ऐहु परिजन ऐहु कलत्र । ना बूझै जिमि सकलेहिँ छिन्न ।

एँकलेहिँ करनिबुड विधुर-कालेँ । एँकलेहिँ सोईबुड जरठ-कालेँ ।

एँकलेहिँ बसीबुड तहँ विधोगेँ । एँकलेहिँ रोईध्वज प्रिय-बियोलेँ ।

एँकलेहिँ भमेबुड भव-समुद्रेँ । कर्मोच-मोह-जलचर-रउद्रेँ ।

एँकलेहिँहि दुख एकलेहिँहि सुख । एकलेहिँहि बँध एकलेहिँहि मोक्ष ।

एकलेहिँहि पाप-एकलेहिँ धर्म । एकलेहिँहि मरन एकलेहिँ जन्म ।

—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुनिवर कहन लागु विपुलाइँ । का जनेहिँ निज-धर्म-फलाइँ ।

धर्मेँ भट-ठट-हुय-गज-स्यंदन । पापेँ मरन-वियोग-व्रंदन ।

धर्मेँ स्वर्ग-भोग-सौभाग्य । पापेँ रोग-शोक-दौभाग्य ।

धर्मेँ श्रुति-बुद्धि सित-संपत । पापेँ अर्थहीन नर-विद्रथ ।

धर्मेँ कटक-मुकुट-कटि-सूत्रा । पापेँ नर दारिद्र्ये क्षिप्ता ।

धर्मेँ राज्य करंति निचिता । पापेँ पर-प्रेषण-संयुक्ता ।

धर्मेँ वर-पर्वके सुप्ता । पापेँ तृण-साथरेँ विमुक्ता ।

धर्मेँ नर देवत्वहिँ प्राप्ता । पापेँ नरक-घोर-संक्रांता ।

धर्मेँ नर रमंति वर-निलये । पापेँ दुख-वियोग-दुख-निलये ।

धर्मेँ सुंदर अंग निबधा । पापेँ पंगुल अरु बहिरंघा ।

—रामायण २८।६

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

काल—८०० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६) । देश—नरसंवा ।

(रहस्यवाच)

(१—राग पटमंजरी)

काहेरि भेणि भेलि अच्छहू कीस । बेठिल हाक पञ्चम चलदीस ।

अप्यण मांसे हरिणा बहरी । लणह ण छाठम भूसुकु अहेरी ।

लिण ण छुपइ पिअइ ण पाणी । हरिणा हरिणीर णिलम ण आणी ।

हरिणी बोलम सुण हरिणा तो । ए वन छाडि होहु भान्ती ॥

सरसैं हरिनार खुर न दीसइ । भूसुकु भणइ मुड ! हिमहिं ण पइसइ ॥६॥

(२—राग वरारी)

गिनि अंचारी मूसा करम अचारा । अमिम-भसम मूसा करम अहारा ॥

मार रे जोइया । मूसा-पवना । जेण तूठइ अकणा-गवणा ॥

अन बिदारम मूसा अणम गासी । अंचल मूसा कलिमां गासम धासी ॥

कासा मूसा उह ण बाण । अंधणे जठि करम अमिम पाण ॥

तब्बे मूसा अंचल अंचल । सवगुठ बाहै करह सो निचल ॥

जब्बे मूसा अचार तूठम । भूसुकु भणइ तब्बे अंधण फिट्टइ ॥२१॥

(२३—राग बंडारी)

जइ सुन्ह भूसुकु अहेरी गाइअ मरिहसि पंच जना ।

अलिणीवन पइसन्ते होहिसि एक्कु भणा ॥

जीवैंत मा विहणि मएल ण अणिहिलि ।

जइ विणु मांसे भूसुकु पउमवण पइसहिलि ॥

माआजाल पसारी बांधेलि माम्मा हरिणी ।

सदगुठ बोहैं बूझि रे कासु (काहिणी ॥)

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

मूल—राजपुत्र (राजत) भिक्षु, सिद्ध (४६) । कृतियाँ (हिन्दी)—सहज-नीति
(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेर भक्ष्य भेलि रहोँ कईस । वेठिल हाक पई चौदीस ॥
अमने मांस हरिना वैरी । क्षणहुं न छाडै भूसुक अहेरी ॥
तृण न छुर्व पिपै न पानी । हरिना हरिनी-निलय न जानी ॥
हरिनी बोलै सुनु हरिना तो । ई वन छाड़ि होवहु अमन्तो ॥
तृषित आवत हरिना खुर ना दीसै । भूसुक भनै मुख ! हियहिं न पईसै ॥६॥

(२१—राग बराही)

निशिअधियारी मूसा करै सँचारा । अमृत-भक्ष्य मूसा करै अहारा ॥
भार रे जो गिया ! मूसा पवना । जासे टूटै अवना-गवना ॥
भव बिदारै मूसा खनै गाती । अंचल मूसा खाइ नार्थ थाती ॥
काला मूसा रोम न बर्ण । गगने उठि करै अभिय पान ॥
तब्बै मूसा अंचल-वंचल । सद्गुरु-बोधे करहु सो निश्चल ॥
जब्बै मूस-सँचारा टूटे । भूसुक भनै तब्बै बंधन छूटे ॥२१॥

(२३—राग बराही)

यदि तुम भूसुकु अहेरे जइसा, भरिहो पाँच जना ।
नलिनीवन पइठन्ते, होइहा एकमना ।
जीवत न हनिहा मरल न अनिहा ।
न बिनु मांस भूसुक पदुमवन पइठिहा ॥
माया-जाल पसारी बधिहा माया-हरिनी ।
सद्गुरु-बोधे बुझि रे कासु (एहु) कहनी ॥

(अप्यण काये छट्ठवि णउ भइति साअइ कालाकाले लेइ ।
पाणी-वेणी जाहि हरिणा पाणि अवेक्खउ ॥

चंचल चंचल चलिआ सुण मीके अत्थगळ ॥ २३ ॥

(२७—राग कामोद)

अथ राति भर कमल विकसित, बसि स जोहणी तासु सँग उलहसित ।

चालिअउ ससहर मग्य भवभूई । रघुणइ सहज कहेमि ॥

चालिअ ससहर-गउ णिब्बाणे । कमलिनि कमल बहुइ पणाले ॥

विरमानंद विलक्षण सुढ । जो एधु बुज्झइ सो एधु बुढ ।

भूसुकु भणइ मई बुझिय मेले । सहजाणंद महासुह लीले ॥ २७ ॥

(३०—राग मल्लारी)

कल्याणेह निरन्तर फारिआ । आवाभाज दुबल दालिआ ।

उइउ गगन माज्झ अदभुआ । पेत्त रे भूसुकु । सहज सरुआ ॥

आसु सुगन्ते सुइइ ईधमा । शिङ्गुए णिज मण देइउ उल्लाल ।

विसअ विसुज्झे मई बुझिअउ आणवे । गगणहं जिम उजोली चन्ते ॥

ए तिलोए एत बि सारा । जोइ भूसुकु कइइ अंबभारा ॥ ३० ॥

(४१—राग कण्ह-गुजरी)

आइएँ भनुअवाएँ जग रे भसिआँ सो पडिहाइ ।

रज्जु-सप्य देखि जो चमकिउ, साँचे जिम लोअ लाइउ ॥

मकट जोइआरे भा करहाय लोण्हा । अइस सहावे जइज बुज्झसि तूटइ वांसमा तोरा ॥

सरु-मरीचि गंधव-नगरी दापण-पडिबिबु जइसा ।

बासावसे सो दिह भइआ, आये पाथर जइसा ॥

आंभिसुआ-जिम केलि करई खेलइ चहुविह खेसा ।

बाधुअ-तेषे सस-सिंगे आकाश फूजिला ॥

राउसु भणइ नढ भूसुकु भणइ नढ सअला अइस सहावा ।

जइ तो मूढा अन्धसि भात्ती पुच्छहु सदगुरु पावा ॥ ४१ ॥

(आपन काये छड़िहा ना मैली । साथ कालाकाले लेई ।
पानी-बेणी नहिं हरिना पानी चाहेउ ।

चंचल- चंचल चलि शून्य-भष्ये अययेउ) १ ॥२३॥

(२७—राग काषोब)

आधीरासि भर कमल विकसेउ । बतिस जोगिनी तासु अंग हुलसेउ ॥

चालहु शशधर मग अवचूती । रतने सहज कहीं मै ॥
चालिय शशधर गयेउ निर्वणि । कमलनि कमलहिं बहै प्रणाले ॥

विरमानंद विलक्षण शुद्ध । जो एहु जानै सो एहिं बुद्ध ।

भूसुक भनै मै भूमधौ मेला । सहजानंद महासुख-खीसा ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

कृष्णा-मेष निरन्तर फारी । भावाभाव द्वन्दही दारी ॥

उयेउ गगनमाँझ अदभूता । पेखु रे भूसुकु सहज-स्वरूपा ॥

जामु सुनत टूटै इन्द्रजाल । नि-घुए निजमन देख जलास ॥

विषय विबुद्धे मै बूझेउ आनंदा । गगनहिं जिमि उजाला चंदा ॥

एहि तिलोके एहुहि सारा । जोइ भूसुकु फटे अँधियारा ॥३०॥

(४१—राग कण्ठ गुजरी)

आदिहिं अजन्मते जग ई भ्रान्ति सो प्रतिभाइ ।

रज्जु-सर्प देखि चमकेउ सौचै जिमि लोग साइ ॥

अहह जोगिया ! न कर हाथ लोना । ऐस स्वभाव यवि बूझसि दुटइ कासना तोरा ॥

मरु-मरीचि गंधर्व-नगरी दर्पण-प्रतिबिम्ब जैसा ।

वातावर्त्तौ सो बूढ होई, पानिहिं पाथर जैसा ॥

बाँझमुता जिमि केली करै, सेलै बहुविध खेला ।

बालू-तेले शश-शृंगे आकाश फुलेला ॥

राजहु भनै मूढ भूसुकु भनै मूढ सकल ऐस स्वभावा ।

मदि तै मूढा हवँ भ्रान्त पूछहु सद्गुरुपावा ॥४१॥

(४३—राग बंगाल)

सहज महातब फरिअइ तिलोए । ससम सहावे बाणते मुक्क कोइ ।
जिम जले पाणिअ टलिआ मेउ न जाअ । तिम मण-रंअणा समरसे गद्यण समाअ ॥
यासु नाहि अप्पा तासु परेला काहि । आइ-अन्तअ ण, जाममरण भव नाहि ।
भूसुहु भणइ बड ! राउसु भणइ बड ! सभला एह सहाव ।
जाइ ण आवइ रे ण सहि भावाभाव ॥४३॥

(४६—राग भरवारी)

राअ - नावबी पैउपखेडे बाहिउ । अदम बंगाल देसह लूटेउ ।
आजि भूसुक बंगाली भइली । णिअ परिणी अडाली लेली ॥
डहिउ जे पैच पाटन इन्दि-विसमा गला । जातमि अिअ मोर कहि गइ पइठा ॥
सोण-रअ मोर किपि ण थाकिउ । णिअ परिवारे महासुह थाकिउ ।
अउकोडि अँडार मोर लइउ असेस । जीवते महले नाहि विसेस ॥४६॥

—चर्यापध

२ : नवीं सदी

§ ५. लुईपा

काल—८३० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६)

देश—मगध । कुल—कापस्थ, सिद्ध (१)

रहस्यवाद

(१—राग धर्मजरी)

काअरा तखवर पंच जि आस । अंचल चीए पइछा काल ॥

दिब करिअ महासुह परिमाण । लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु स्फुरै (फई?) त्रिलोके । ल-सम स्वभावे बंध-मुक्त कोइ ॥
जिभि जले पानी डाले भेद न जान । तिभि मन रतन समरस गगन-समान ॥
जासु न आपा तासु परया काहु । आदि-भक्त न जन्म-भरण भव नाहि ॥
भूसुकु भनै मूढ ! राखसु भनै मूढ ! सकल एह स्वभाव ।
जाइ न आवै रे ना तहँ भावाभाव ॥४३॥

(४६—राग मल्लारी)

राजनावडी पदुमखंडे चलायेँउ । अ-दय बंगल-देश लूटेउ ।
आज भूसुकु बंगाली भइली^१ । निज घरनी चंडाली लेली ॥
डहेँउ पाँच पाटन इन्द्रि-विषया भष्टा । न जानौं चित्त मोर कहँ जाइ पइठा ॥
सोना-रूपा मोर किछुअ न रहेँऊ । निज-परिवारे महासुख रहेऊ ॥
चौकोटि भँडार मोर लियउ अशेष । जियले मूझले नाहि विशेष ॥४६॥

—चर्यापद

२ : नवीं सदी

§ ५. लुईपा

कृतिर्मा—अभिसमय-विभंग, तत्त्व स्वभाव-बोहा कोष । बुद्धोदय
भगवद्-अभिसमय, गीतिका ।

रहस्यवाद

(१—राग पतमजरी)

काया तक्षर पाँचउ डाल ॥ चंचल चित्ते पइठा काल ॥
दृढ करि महासुख परिमान । जुई भनै गुह पूछिय जान ॥

^१ आज भूसुकु युद्ध में हारली—भाटे

समल-समाहिहि काह करिअइ । सुख-दुखेते^१ निचित मरिअइ ॥

झडिअउ छंद बांधकरण कपटेर आस । सुण-पक्ष भिडि लेहु रे पास ॥

भणइ लुई ग्राम्हे भाणे दिट्ठा । घमण-चमण बेणि उपरि बइट्ठा ॥१॥

(११—राग पदममरी)

भाव न होइ अभाव न जाइ । अइस सँबोहे^२ को पतिआइ ॥

लुई भणइ बड ! दुलख बिगाणा । तिधातुए किलइ ऊह लागेना ।

जाहिर बण-बिन्ह-रूप न जाणी । सो कहसे आगम-बेएँ बलाणी ॥

काहे रे किस भणि मई बिबि पिच्छा । उदक-चंद जिम सांच न भिच्छा ।

लुई भणइ मई भावई कीस । जा लेह मच्छम ताहेर ऊह न बीस ॥२॥

—नयानंद^३

५६. विरूपा

काल ८३० ई० (शैबपाल ८०१-४२) बेल—त्रिउर (मगध ?) ।

कुल—भिक्षु, सिद्ध (१) । कृतियाँ—अमृतसिद्धि, बोहा-कोष, कर्मबंजालिका-

रहस्यवाद

(१—राग गजडा)

एक से खोंबिनि दुइ धरे सांधअ । बीअ न वाकलअ कारुणी बांधअ ॥

सहजे धिर करि वाखणि सांधअ । जे^४ अजरामर होइ दिइ कांधअ ॥

बसमी दुआरते बिन्ह देखइआ । भाइल गराहक अपने बहिआ ॥

अउशदि धडिये देल पसारा । पइठल गराहक नाहि निसारा ॥

एक धडुली सरुह नास । भणइ धिक्का धिर कर खाल ॥३॥

—नयानंद

सकल समाधिहिं काहू करिज्जे । सुख-दुःखनते^१ निचित मरिज्जे ॥

आदि छंद-बंध कर ना कपटकी आश । शून्य-पक्ष भीडि लेहु रे पाश ॥
मनै लुई मै^२ ध्याने दीठा । धमन-चमन दो^३ उहि ऊपर बैठा ॥१॥

(३६—राग पटमखरी)

भाव न होइ अभाव न होइ । ऐस सँबोधिहिं को पतियाइ ।

लूह मनै मूढ ! दुःखैस विज्ञाना । निघातुहिं विससै ऊह लागै ना ॥

आहि वर्ण-चिन्ह-रूप न जानी । से कैसे आगम-वेद बखानी ।

काहे रे कैसे भनि मै^४ वेबो^५ पूछा । उदक-चंद जिमि साँच न भिय्या ॥

लूई मनै मै^६ भावो^७ कैसे । जे लेइ रहौ तेहि ऊह न दीसै ॥२६॥

—चर्यापद

§ ६. विरूपा

बोहकोष, विरूप-गीतिका, विरूप-वज्र-गीतिका, विरूप-वज्र-चतुरशीति, मार्ग-फलान्विता वचनक, सुनिष्कर्षयतस्वोपदेश ।

रहस्यवाद

(३—राग गबगा)

एक ते सूँडिन^१ दुइ घरे साँच । चीअ न काकल वारुणी बाँच ॥

सहजे धिर करि वारुणि साँचा । जे अजरामर होइ (न) दूढ स्कंधा ॥

दकाम दुवारे चिन्ह देखि कहै । आयउ ग्राहक अपन लेन कहै ॥

चौ^२ सठ-घडिया देल पसारा । पद्दु गराहक नाहिं निसार ॥

एक धडुल्ली स्वरूपी नाल । मनै विरूपा धिर कर आल ॥३॥

—चर्यापद

^१ सराब बेचने वाली

§ ७. डोम्बिपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०६-४६ ई०) । देश—भगव कुल—कन्निर,

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-जजना-माँगे बहइ नाई । तँह बुडिली मातंगी पोइआ लीले पार करेइ ।
बाहुतु डोम्बी बाहलो डोम्बी, वाट भइल उछारा ।

सदगुरु-पाअ-प(सा)ए जाइव पुनु जिनउरा ॥

पाँच केडुआल पछले माँगे पीठत काच्छी बाँधी ।

गअण-हुसोले सिञ्चहू पाणी न पइसइ साँधी ॥

चंद-सूज्ज दुइ चक्का सिठि-संहार-मुलिन्दा ।

वाम दहिन दुइ भाग न चैवइ वाहुतु छन्दा ॥

कवडी न लेइ कोडी न लेइ मुच्छडे पार करई ।

ओ एषे चडिया बाहुव न जा(न)इ कूले कूल बुझाई ॥१४॥

—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०६-४६ ई०) । देश—सालिपुत्र (उड़ीसा)

रहस्यवाद

(३४—राग बराडी)

सुन-कारुण अभिले चारे काअवाअचीओ ।

विलसइ दारिक गअणत पारिमकूले ॥

अलकल लकल विए महासुहे ।

विलसइ दारिक गअणत पारिम कूले ॥

§ ७. डोम्बिपा

सिद्ध (४) । कृतियाँ—अक्षरविकोपवेश, गीतिका, नाडी-चिंतु-द्वारे योग-वर्णः ।

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-यमुना-माँके चलै नार्द । तँह बूडल भातंगी पुतिथा सीले पार करेइ ॥
ले चल डोम्बी ले चल डोम्बी-वाट सोभारा ।

सद्गुरु-पाद-प्रसादे आयेब पुनि जिन-पूरा ॥
पाँच केडुआल पडत भाँगेमे पीठसे कच्छी बंधी ।

गगन-दुखोलेहिँ सीँचहु पानी न पडै संघी ॥
चंद्र-सूर्य हुइ अक्रा सृष्टिसंहार-पुलिन्दा ।

वाम-दहिन दोँउ मार्ग न दीसइ (नाव) चलाव स्वर्छंदा ॥
कौडी न लेइ दौडी न लेइ छूछै पार करेइ ।

जो एहिँ चलि चलावन न जानै कूलहिँ कूल बुढेइ ॥१४॥
—वयपिद

§ ८. दारिकपा

कुल—राजा, सिद्ध (७७) । कृतियाँ—महागुह्य तत्त्वोपवेश, तथतादृष्टि, सप्तम सिद्धांत

रहस्यवाद

(३४—राग बराडी)

शून्य करुणा अभिषे काय-वाक्-चित्ते ।

विलसै दारिक गगनते पारिमकुले ॥

अलख लसै चित्त महासुखे ।

विलसै दारिक गगनते पारिमकुले ॥

किन्तो मन्तो किन्तो तन्तो किन्तो भाण-वखाणे ।

अप्य पइहु महासुह लीले दुलबख परम-निवाणे ॥

दुःखे मुखे एक्क करिआ भुज्जइ इन्दी जानी ।

स्वपरापर न चेवइ बारिक समलानुत्तर मानी ।

राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे बाधा ।

सुहुपाअ-एए बारिक द्वादश भुअणे लाधा ॥३४॥

—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

काल—६४० ई० (वैवपाल ८०६-४६) । देश—डिसुमगर ।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तिअहु चापि जोइनि दे सैकवाली । कमल-कुलिश घोटि करहु विआली ॥

जोइनि तई बिनु खनहि न जीवमि । तो मुह चुम्बि कमल-रस पीवमि ।

खेपहुँ जोइनि खेप न जाअ । मणि-कुले बहिआ उडिआने समाअ ॥

सासु घरे वालि कोचा-ताल । चाँद-सूज बेणि पखा फाल ।

अणइ गुन्डरी अम्हे कुन्दुरे बीरा । नर अ नारी भाअे उभिल बीरा ॥४॥

—चर्यागीति

§ १०. कुक्कुरीपा

काल—६४० ई० (वैवपाल ८०६-४६) । देश—कपिलवस्तु । कुल—ब्राह्मण

रहस्यवाद

(२—राग गवहवा)

हुलि हुहि पिटा धरण न जाइ । रुखेर तेतुलि कुंभीरे खाइ ।

आगिन धर पण सुन हे भोविआली । कानेट चोरी निज अक्षराती ॥

की तोर मंत्रे की तोर तंत्रे की तोर ध्यान बखाने ।

आप पईठा महसुल लीजे दुर्लख परम-निवाणे ॥
दुःख-मुख एक करी सकै इन्द्रजाली ।

स्व-परापर न चीन्है क्षरिक सकल अनुत्तर मानी ॥

राजा राजा राजा अवर राजा मोह बैसाया ।

लूईपाद-पणे क्षरिक डावश मुबनहिं पाथा ॥३४॥

—व्यापिद

§ ६. गुंडरीपा

कुल—मोहार, सिद्ध (४) । कृतिर्पा—गीति ।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तियड़ा चाँपि जोगिनि रे अँकवारी । कमल-कुलिश घोंटि करहु बियाली ॥
जोगिनि तोहि बिलु क्षणहुँ न जीयौ । तब-मुख चूमि कमल-रस पीयौ ॥

फेँकेहु जोगिनि लेप न जाय । मणि-कुंडल बहि उडचाने समाय ॥
सासु घरे डाली कुंजी-ताल । चाँद-सूर्य दोउं पाखहिं फाल ॥

भतै गुंडरी मै कन्हुरे वीरा । नर-नारी-भाँके दीने उँ चीरा ॥४॥

—व्यागीत

§ १०. कुक्कुरीपा

सिद्ध (३४) । कृतिर्पा—योगभावनोपदेश, अवपरिच्छेदन ।

रहस्यवाद

(२—राग गण्डा)

कूर्म ब्रूहि पात्र धरन न जाय । वृत्तेर इल्ली कुंभीर खाय ।

अगिन घर पुनि सुनु कुबिज्ञाली । कानेट चोरि लिये उँ अधराती ॥

ससुरा निंद गेल बहुडी जागअ । कानेट खोरे निल का गइ मागअ ॥

दिवसइ बहुडी काग-डरे भाअ । राति भइले कामरु आअ ।
अइसन चर्या कुक्कुरिपाए गाइउ । कोड़ि भाके एकु हिमहिं समाइउ ॥२॥

(२०—राग पटमञ्जरी)

हैंउ निरासी समन भतारी । मोहोर विगोआ कहण ■ जाई ।

फिटल गो भाए ! अन्तरङ्गि चाहि । जा एयु बाहम सो एयु नाहि ॥

पहिल विआण मोर वासना पूडा । नाडि विआरन्ते सेव बापुडा ।

जाण जावण मोर भइले से पूरा । मूलन खलि बाध संघारा ॥

भणधि कुक्कुरिपाए भवधिरा । जो एयु बूझइ सो एयु वीरा ॥२०॥

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

काल ८४० ई० (देवपाल ८०६-४६ ई०) । देश—उड़ीसा । कुल—राजकुमार
रहस्यवाद

(८—राग धैवधी)

सोने भरिती करुणा नावी ।

रूपा थोइ नाहिक ठावी ॥

बाहुनु कामलि गभण-उवेसे ।

गेल जाम बाहुइइ कइसे ॥

खुटि उपाड़ी मेलिलि काल्छि ।

बाहुनु कामलि सद्गुरु पुच्छि ॥

मांगत चढ़िले चउदिस चाहअ ।

(नाव-पीठ चढ़ि विलहिं पछअ) ।

केहुआस नाहि के कि (नाविक) बाहुन के पारअ ॥

वाम दाहिण चौपि मिलि मिलि (चढ़ि) मांगा ।

बाटत मिलिल महासुह सांगा ॥८॥

—चर्यापद

सासु नींदि गइल बहुवा जागै । कानेट घोरि लिय कागहि मांगै ॥

दिवसहि बहू-काग उर खाय । राति भइले कामरूप जाय ॥
ऐसन चर्या कुक्कुरि गाये । कोटि मौक्त एक हियहि समाये ॥२॥

(२०—राग षडमंजरी)

हौं निराशी स-मन भतारी । मोर विज्ञान कहल न जाई ।

फूटल रे माई ! अन्त मैं देखौं । ओ एहिं गिरे उ सो ऐहि नाही ॥
प्रथम विज्ञाने मोरि वासना टूटी । नाडी विचारते सोइ बापुड़ी ॥

नवयौवन मोर भइल से पूरा । मूल निखूटि पाप संहारा ॥
भने कुक्कुरीपा भव थिरा । जो एहि बूझे सो एहि वीरा ॥

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

भिक्षु, सिद्ध (३०) । कृत्तिपां—असंबंध-दृष्टि, असंबंध-सर्गदृष्टि, गोतिका ।

रहस्यवाद

(८—राग वैष्णवी)

सोनेहि भरती करुणा नावी ।

रूपा थापे नाहिक ठाँवी ॥

ले चल कामलि गगन-उदेसे ।

गैला जन्म बहुरिहै कैसे ।

खूँटी उपाडि फेकल काँची ।

ले चल कामलि सद्गुरु पूछी ॥

मागे चढल चतुर्दश देखै ।

(नाच-पीठ चढ़ि बलही पड़ई) ।

केहुआल नाही कैसे खलायब पारै ॥

शाम-दहिन चाँपि मिलि(चढ़ि)भाँगा ।

वाटेहि मिलल महासुख-संगा ॥८॥

—चर्यापद

§ १२. काहपा

(कृष्णपाद, चर्मापाद, कृष्णवज्रपाद), काल—८४० (देवपाल ८०६-४६ ई०) । बेल—कर्नाटक : भिमास—बिहार और बंगाल (सोमपुरी) ।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोभहृ गब्ब समुब्बहइ, हँउ परमत्थें पवीण ।

कोडिअ-मज्जे एक्कु जइ, होइ गिरंजण-लीण ॥१॥

आगम-वेध-पुराणे^१(ही), पण्डित माण वहन्ति ।

पक्क-सिरीफले^२ अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति ॥२॥

सिति-जल-जलण-पवण-गघण बि माणह ।

मण्डल-बधक विसअ-बुद्धि लइ परिमाणह ॥३॥

(२) सहज-मार्ग

णितरंग-सम सहज-रूअ सअस-कलुस-विरहिए ।

पाप-पुण्य-रहिए कुञ्ज पाहि काण्ह फुट कहिए ॥१०॥

वहिण्णिवकालिआ सुण्णासुण्ण पइट्ट ।

सुण्णासुण्ण-वेणि मज्जे^३ रे बड़ ! किम्पि ण विट्ट ॥११॥

सहज एक्कु पर अत्थि तहि फुड काण्ह परिजाणइ ।

सत्यागम बड़ पठइ सुणइ बड़ ! किम्पि ण जाणइ ॥१२॥

अह ण गमइ ऊह ण जाइ । वेणि-रहिए तसु गिन्वल ठाइ ।

मणइ काण्ह मण कहवि ण फुट्टइ । निवल पवण धरिणि-बर वट्टइ ॥१३॥

वरगिरिकन्दर गुहिरे जगु तहिँ सअल^४ बि वुट्टइ ।

बिभल सलिल सोंस जाइ, कालगि पइट्टइ ॥१४॥

पह वहन्ते गिअ-मणा, बन्धण किअरु जेण ।

तिहुअण सअल^५ बि फारिआ, पुणु सारिअ तेण ॥१७॥

^१The Journal of the Department of Letters, Cal. Uni.

§ १२. कण्हपा

कुल—आहूण-भिक्षु, सिद्ध (१७) । कृतियाँ—गीतिका, महाकुंडल, वसंत
तिलक, असंबंध-बुद्धि, वज्रगीति, दोहाकोष^१ ।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

सोना गर्व समुद्रहै, हीं परमार्थ-प्रवीण ।

कोटी-मध्ये एक यदि, होह निरंजन-लीन ॥१॥

आत्म-वेद-पुराणहीं, पण्डित मान वहति ।

पञ्च-सिरीफलं अलिय जिधि, बाहरहींहि भ्रमन्ति ॥२॥

क्षिति-जल-ज्वलन-पवन, गगनहु मानहु ।

मंडल-चक्र विषय-बुद्धि लेह परिमाणहु ॥३॥

(२) सहज-मार्ग

निस्तरंग सम सहज कप, सकल-कलुष-विरहिए ।

पाप-पुण्य-रहित किछु नाहि, काण्हे फुर कहिये ॥१०॥

बाहर निकालिय शून्याशून्य प्रविष्ट ।

शून्याशून्य दोउ मध्ये, मूढा ! किछु न पृष्ट ॥११॥

सहज एक पर घई तहँ फुर कण्ह परि-जानै ।

शास्त्रागम बहु पई सुनै मूढ । किछु न जानै ॥१२॥

अभी न जाइ ऊर्ध्व न जाइ । ईत-रहित तामु निश्चल ठाह ।

भनै काण्ह मन कैसहु न फूटै । निश्चल पवन धरनी-धरे नाटै ॥१३॥

वर-गिरि-कन्दर-कुहरे, जग तहँ सकलउ टट्टै ।

विमल-सलिल सुनि जाइ, काल-अगिम पइट्टै ॥१४॥

प्रभा वहन्ता निज मन, बंधन कियेऊ जेहिं ।

त्रिभुवन सकलउ फारिया, पुनि संहारिय सेहिं ॥१७॥

सहजे निचवल जेण किअ, समरसें निअ-मण-राअ ।

सिद्धो सो पुण तवखणे, णउ जरामरणह भाअ ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

निचवल निव्विअप्प निव्विअर । उअअ-अत्थमण-रहिअ सुसार ।

अइसोसो निब्बाण भणिज्जइ । अहिं मण माणस किम्पि ण किज्जइ ॥२०॥

जइ पवण-ममण-दुआरे, दिइ तात्तावि दिज्जइ ।

जइ तसु घोराअरे, मण दिवहो किज्जइ ॥

जिण-रअण उअरे जइ, सो वर अम्वर छुप्पइ ।

भणइ काण्ह भव मुञ्जन्ते, निब्बाणो वि सिज्जइ ॥२२॥

वर-गिरि-सिहर उतुंग मुणि, सबरे अहिं किअ वास ।

णउ सो लंघिअ पँचाणणेहि, करि-वर दुरिआ आस ॥२५॥

एहु सो गिरिवर कहिअ भँइ, एहु सो महासुह ठाव ।

एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव ॥२६॥

सब जणु काअ-वाअ-मण मिलि विफुरइ सहि सो दूरे ।

सो एहु मंगे महासुह निब्बाण एक्कु रे ॥२७॥

एक्कु ण किज्जइ मत्त ण तत्त । निअ-वरणी लइ केलि करन्त ॥

निअ-घरे घरणी जाव ण मज्जइ । ताव कि पञ्च वण विहरिज्जइ ॥२८॥

एसो जप-होमे मण्डल कम्मे । अणुदिण अच्छसि काहिउ धम्मे ॥

तो विणु तसणि निरन्तर गेहे । बोहि कि लब्भइ एण वि देहे ॥२९॥

जे किअ निचवल मण-रअण, निअ-घरणी लइ एत्थ ।

सोह वाजिरा-णाहु रे, मयिं वुत्तो परमत्थ ॥३१॥

जिमि लोण विलिज्जइ पाणिऐहि, तिम घरणी लइ जित्त ।

समरस जाई तवखणे, जइ पुणु ते सम पित्त ॥३२॥

—बोद्धाकोष^१

सहजे निरुचल जेहिं किय, सम-रस निज-मन राग ।

सिद्धा सो पुनि तत्क्षण, न जराभरणहैं भाग ॥१६॥

(३) निर्वाण-साधना

निश्चल निर्विकल्प निर्विकार । उदय-अस्तमन-रहित सु-सार ।

ऐसो सो निर्वाण भनिजै । जेह मन-मानस कछुउ न किजै ॥१७॥

यदि पवन-गमन-दुआरे, दृढ तालाहू दीजै ।

यदि तेंह घोर अन्हारे, मन-दीपहु कीजै ॥

जिन-रतन लये यदि, सो वर-अंधर छूवै ।

भनै काण्ह मव भोगतहिं, निर्वाणहु सीमे ॥१८॥

वर-गिरि-शिखर-उतुंग भुनि, शबरा^१ जेह किउ वास ।

ना सो लांछे^२ पांच मुख, करिवर दूरे^३ आस ॥१९॥

एहु सो गिरि-वर कहे^४ मै, एहु सो महासुख-ठाव ।

एक रजनि सहज क्षणे, लभै महासुख जाव ॥२०॥

सब जग काय-वाक्-मन मिलि, स्फुरै नाहि सो दूरे ।

सो एहि भंगे^५ महासुख निर्वाण एक रे ॥२१॥

एक न कीजै मन्त्र न तन्त्र । निज घरनी लेइ केलि करन्त ।

विज घरे घरनी जौ न मज्जै । तौ की पंच वर्ष विहरीजै ॥२२॥

एहु जप-होमे मंजल कर्म । अनुदिन रहौ काहे धर्म ।

तो विनु तरणि निरुत्तर स्नेहे । बोधि कि लब्धै अन्यहिं देहे ॥२३॥

जो किउ निश्चल मन-रतन, निज घरनी लेइ एत्थ ।

सोई वज्जरनाथ रे, मै^६ बोले^७ परमार्थ ॥२४॥

जिमि नोन बिलाय पानियहिं, तिमि घरनी लेइ भित्त ।

सम-रस जाये तत्क्षण, यदि पुनि सो सम वित्त ॥२५॥

—दोहाकोष

(४) रहस्य-गीत

(२) गीते^१

(६—राग पटमंजरी)

एवंकार दिइ बाखोइ मोहिउ । बिबिह विआपक बांधन तोडिउ ॥

काण्ह विलसिआ आसव-भाता । सहज-नलिन-वन पइसि निवाता ॥

जिम जिम करिणा करिणिरे^२ रीभस । तिम तिम तयता-मभगल बरिसअ ॥

छड गइ समल सहावे सुद । भावाभाव बलाग न छुद ॥

दशबल रमण हरिअ दश दीसे^३ । अविहंकरिकूँ दम अकिलेसे^४ ॥६॥

(१०—राग बेशारव)

नगर बाहिरे डोम्बि तोहोरि कुडिआ । छाइ खोइ जाई सो बान्हण नाडिया ।

भाली डोम्बि तोए सम करिब म संग । निधिण काण्ह कपालि जोई लांग ॥

एक सो पदुम चौबठि पासुड़ी । तहिं चडि याचअ डोम्बि बापुड़ी ॥

हालो डोम्बि तो पूछमि सझावे । आइससि जासि डोम्बि काहरि नावे^५ ॥

ताति विकणअ डोम्बी अवर न चंगडा । तोहोर अन्तरे छडि नइ पेडा ॥

तूँ लो डोम्बी हाँउ कपाली । तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि हाडेरि माली ॥

सरवर भाँजिअ डोम्बी झाअ मोलाण । मारमि डोम्बी सेमि पराण ॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नाडि शक्ति दिइ धरिआ छाटे । अनहा डमरु बजइ विरनाटे ॥

काण्ह कपाली जोइ पइठ अचारे । देह न अरि विहरइ एककारे^६ ॥

अलि-कलि बंटा नेउर चरणे । रवि-शशि-कुंडल फिउ आभरणे ॥

राग-दोष-मोहे लाइअ छार । परम भोख लवएँ मुत्ताहार ॥

मारिअ सासु वणंद घरे^७ शाली । मा मरिअ काण्ह भइल कपाली ॥११॥^१ J.D.L. XXX (115—56)

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें

(६—राग पदमंजरी)

ऐहि विधि दोउ सम्भा मोडी । विविध-व्यापक बंधन तोडी ।

काण्ह विजासे आसव-भाता । सहज नशिन-वन पइठि नि-वाता ॥

जिमि जिमि करिणा करिणिहिं रीभै । तिमि तिमि तथता भद-कण वरसै ॥

षड्गति सकल स्वभावे शुद्ध । भावाभाव बालाग्र न शुद्ध ॥

दशबल-रतन-भरित दश दीसा । अविद्या-करिहिं दम अक्लेशा ॥६॥

(१०—राग वैशाख)

नगर-बाहिरे डोम्बी^१ तोहर कुटिका । छुह छुह जाइ सो बाभन-लटिका ।

अरे डोम्बी तोरे साथ करन न संग । विधूँण काण्ह कपाल-जोगि नंग ।

एकउ पदुम चौसठ पौखुरी । तँह चढि नाचै डोम्बि बापुरी ।

हे रे डोम्बी ! तोहिं पूछौं सद्भावे । आवै आय डोम्बी ! केकरि नावे ॥

तंत्री विकिर्न डोम्बी और चंगेरा । तोहर कारण छाडी नल पेरा ।

तँ रे डोम्बी में कपाली । तोहोंर कारण में लेलो हाडकै माली ॥

सरवर भांगि डोम्बी खाइ मृणाल । मारहुं डोम्बि लेई पार ॥१०॥

(११—राग पदमंजरी)

नारी शक्ति दृढ धरिके साटे । अनहद डमरु बजै वीर-नादे ॥

काण्ह कपाली जोगी पइठो आचारे । देह-नगरी बिहरै एकाकारे ॥

माली-काली-धंदा-नूपुर चरणे । रवि-शशि-कुंडल किंचउ आभरणे ॥

राग-द्वेष-मोहे लाई छार । परम-मोक्ष लिये मुक्ताहार ॥

भारे उसासु-ननद घरे साली । भातु मारि काण्ह भइल कपाली ॥११॥

^१ सुरति = बिल-मुकाप्रता

(१८—राग गडका)

तीन-मुग्रण मई बाहिअ हेलै । हँउ सूतेलि महासुह लीले ॥
 कहसनि डोम्बि तोहोंरि भामरि घाली । अन्ते कुलिण जण माँके कवाली ॥
 तई लो डोम्बी सअल बिटालिउ । काज ण कारण ससहर टालिउ ।
 केहों केहों तोंहोंरे विरया बोलइ । विदु जन लोअ तोरे कण्ठ न मेलइ ॥
 काण्हे गाइ तू कामचँडाली । डोम्बि तआगलि नाहि छिनाली ॥१८॥

(१९—राग भैरवी)

भव-णिब्याणे पड़इ माँदला । मण-पवण-वेणि करैउ कशाला ॥
 अअ जअ दुनुहि सह उछलिला । काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला ॥
 डोम्बि विवाहिअ अहारिउ आम । जउतुके किअ आणूतू धाम ॥
 अहणिसि सुरअ-पसंगे जअ । जोइणि जाले रअणि पोंहाअ ॥
 डोबिएँ संगे जोई रत्तो । खणह ण छाडअ सहज-उमत्तो ॥१९॥

(२०—राग पटभंजरी)

सुण घाह तयता पहारी । मोह-भँडार लइ सअल अहारी ॥
 घुमइ न चेवइ स-पर-विभागा । सहज-निदालु कअिहला लाँगा ॥
 चेअण ण चेअण भर निद गेला । सअल मुकल करि सुहे सुतेला ॥
 सुअने मई देखिल तिहुअण सुण । घोलिअ अवनागवण विहूण ॥
 साखि करिब जालंचरि-पाए । पाखि न चहइ मोरि पैडिआचाए ॥२०॥

(४२—राग कामोद)

चिअ सहजे सुण सँपुणा । काँचदियोऐँ मा होहि विसझा ॥
 मण कहसे काण्हा नाही । फरइ अणुदिष तिलोऐँ समाई ॥

(१८—राग गउड)

तीन भुवन मैं गयहैं हेलैं । मैं सूलनि महासुखें लीलैं ॥
 कंसन डोम्बि ! तोर भाभर आली । अन्त कुलीन जन-मध्ये कपाली ॥
 तैं रे डोम्बी ! सकल विटालें उ । कायें न कारण शशधर टालें उ ॥
 केहु केहु टोकहैं बरुआ बोलैं । ब्रह्म जन तो के कंठ न मेलैं ॥
 कण्हा गावैं तू काम-चंडाली । डोम्बी त आगे नाहिं छिनाली ॥

(१९—राग भैरवी)

भव - निर्वाणे पटहू माँदसा । मन-पवन दोळ करौं कशाला ॥
 'जय' 'जय' दुंदुभि शब्द उचरिला । कण्हे डोम्बि-विवाहे चलिसा ॥
 डोम्बि बियाहि अहारे उ जन्म । जौतुक कियउ अनुत्तर-धर्म ॥
 ग्रहनिशि सुरत-प्रसंगे जाय । जोगिनि-जाले रजनि विताय ॥
 डोम्बी-संग जोड रक्त । क्षण ना छाडैं सहजुन्मत ॥ १९ ॥

(२६—राग पटमंजरी)

शून्य बाहें तथता प्रहारिय । मोह-भंडार खेँइ सकल अहारी ॥
 सुतैं न चिन्तैं स्व-पर-विभंगा । सहज-निद्रालु कण्हिसा नंगा ॥
 चेतन न वेदन भर-नींदि गेला । 'सकल मुक्त करि सुखे सुतेला ॥
 स्वप्ने मैं देखल त्रिभुवन शून्य । घोरि के अवनारावन - विह्वल ॥
 साखि करब आसंधरपाद । पास न देखौं मोर पंडिताचार ॥ २६ ॥

(४२—राग कामोद)

चित्त सहजेहिं शून्य - संपूर्ण । स्कंध-वियोगे ना होहु विषण्ण ॥
 भनु कैसे कण्हा नाही । फिर अनुदिन तिलोक-समाई ॥

मूढा दिठ नाठ देखि कायर । भाँग तरंग कि सोखइ सागर ॥
 मूढ ! अछन्ते लोभण पेवखइ । दूव माँकेलउ अछन्ते न देखखइ ॥
 भव जाई न आनइ न एथु कोई । अइस भावे बिचसइ काण्हल जोई ॥४२॥

(४५—राग भत्तारी)

मण-तह पाँच इन्दि तसु साहा । आसा-बहुल पात फल बाहा ॥
 वर-गुरु-वधने^१ कुठारे^२ छिज्जअ । काण्ह भणइ तर पुण न उइजअ ॥
 बढइ सो तरु सुभासुभ पाणी । छेवइ बिदु-जन गुरु-परिभाणी ॥
 जो तरु छेवइ भेउ न जाणइ । सझि पछिआँ मुढ ! ना भव भाणइ ॥
 सुण्णा तरुवर गभण-कुठार । छेवइ सो तरु-मूल न डाल ॥४५॥

—वर्गपद^३

(५) वज्रगीति^४

कोत्तयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला ।
 धणे किपिट्टहो^५ वज्जइ, करुगेकि अई त रोला ॥
 तहि बल खज्जइ गाढ़े, भअ णा^६ पिज्जिअई ।
 हले कलिज्जल पणिअइ दुदुदुह वज्जिअई ॥
 चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई ॥
 मालइ-इवन सलील तहि भइ लाइअई ॥
 पैखण खेट करन्ते मुद्धामुद्ध न माणिअइ ॥
 निरे सुह अज्ज चढाविअइ जस नादि पणिअइ ॥
 मसअज कुन्दुर बट्टइ, डिडिम तहिं णा वज्जिअइ ॥

—वर्गपद^३

^१ J.D.L. Cal. XXX, p. 36 ^२ J.D.L. Cal. XXVIII, p. 36

मूढ ! दृष्ट नष्ट देखि कातर । भांग तरंग कि सोखै सागर ॥
 मूढ ! अछतै लोग न पेखै । दूष माँक घृत अछत न देखै ॥
 भव जाइ न आवै न ऐहिं कोई । ऐस भावहिं बिलसै काण्हल योगी ॥२४॥

(४५—राग भत्तारी)

मन तर पाँच इन्द्रि तसु साखा । आशा-बहुल पच-फल-बाहा ॥
 वरगुरु-वचन कुठारेहिं छीजे । कण्ह भनै तर पुनि न उपजे ॥
 बढै सो तरु शुभाशुभ पानी । छेवै विदु-अन गुरु-परिमाणी ॥
 जो तरु छेवै भेद न जानै । सड़ पड़े उयो मूढ ! न भव भानै ॥
 शून्या तरुवर गगन-कुठार । छेवै सो तरु-मूल न डार ॥

—चर्यापद

(५) वज्रगीति^१

कोल्लयि रे ठिअ, बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला ।
 बणे किपिट्टहो वज्जइ, करुणेकि अई न रोलर ॥
 तहि बल खज्जइ, गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई ।
 हूले कलिञ्जल पणिअइ दुवुदुर वज्जिअई ॥
 चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई ।
 मालइ-वैधन सलील तहि भर खाइअई ॥
 पेंखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ ।
 निरै सुह अज्ज चडाविअइ जस नावि पणिअइ ॥
 मलअज कुन्दुर बट्टइ, डिडिभ तहिं णा वज्जिअइ ॥

—चर्यापद

§ १३. गोरखनाथ (गोरक्षपा)

काल—८४५ (वैष्णव ८०६-४६) । जन्म—गोरखपुर(?) । कुल—
कृतियाँ—(१) गोरखवानी, (२) वायुतत्त्वोपदेश^१

१. आत्म-परिचय^२

(१) मछेन्द्र (मत्सेन्द्र)के शिष्य—

प्यंढे होइ तो मरै न कोई । ब्रह्मके देखै सब लोई ।

प्यंढ ब्रह्मके निरंतर वास । भगंत गोरख मछध्वंशका दास ॥ (२५।७०)

गुदड़ी जुग ध्यारि तैं आई । गुदड़ी सिध-साधिकां चलाई ।

गुदड़ीमे अतीतका वासा । भगंत गोरख मछध्वंशका दासा ॥ (६६।१६७)^३

(२) चौरासी सिद्धोंसे संबंध

भन मछिंद्रनाथ पवन हेस्वरनाथ चेतना चौरंगीनाथ ।

ग्यान श्रीगोरखनाथ । (पृष्ठ २०४)

नाद हमारै बाहै कवन । नाद बजाया तूटै पवन ।

अनहद सकद बाजत रहै । सिध-संकेत श्रीगोरख कहै ॥ (३७।१०६)

नौ नाथा नैं चौरासी सिधा, आसणधारी हूव ॥ (१३३।५)

आदिनाथ^४ नाती मछिंद्रनाथ पूता । अंब तोलै राखीले गोरख अवधूता ॥ (पृ० ६१)

^१ डाक्टर पीतांबरबल बरहवाले सम्पादित—हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग (संघत् १९६६) ^२ भोट-भाषानुवाद (तत्तज्जुर ४८।१५१)

^३ सब उद्धरण गोरखबाणी से पृष्ठ और पद्यांक

^४ ध का उच्चार ख और श दोनों होता है, यहां ख है ।

^५ "गोरखवानीकी भाषा ६वीं" सबी नही पंद्रहवीं-सोलहवीं की है ।

^६ जलंधरपाद (वे० पुरातत्त्व-सिंधवावली, पृ० १६६)

२. दर्शन (चौरासी सिद्धोंका)

(१) सहजयान

ध्वकि न बोलिबा ठबकि न चालिबा घीरे धोखा पाँख ।

गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरखराघ ॥ (११।२७)

गिरही सो जो गिरहै काया । अभि-अंतरकी त्याग माय ॥

सहज-सीलका धरै सरीर । सो गिरही गंगाका नीर ॥ (१७।४५)

निद्रा सुपनै बिन्दु कूँ हरे । पंथ चलतां आत्ममाँ भरै ।

बैठां षटपट ऊमां उपाधि । गोरख कहै पूता सहज-समाधि ॥ (७०।२१२)

जिहि घर चंद-सूर नहिँ ऊगै, तिहि घरि होसी उजियारा ।

तिहां जे आसण पूरी तौ सहजका भरौ पियाला मेरे जानी ॥ (६०।४)

सहज-पलाण पवन करि धोड़ा, सै लगाम धित चबका ।

चेतनि असवार ग्यान गुरु करि, और तजौ सब ठबका ॥ (१०३।३)

सहज गोरखनाथ बणिजे कराई, पंच बलद नौ गाई ।

सहज सुभावै वापर ल्याई, मोरे मन उड़ियानी आई ॥ (१०४।१)

भणत गोरखनाथ मछिन्द्रका पूता, एढा बणिज ना अरसी ।

करणी अपणी पार उतरणां, बचने लेणां साथी । (१०४।३)

काया गढ़ लेबा जुगै-जुग जीवा ॥टेका॥

काया गढ़ भीतरि नौ लथ लाई, जंत्र फिरै गढ़ लिया न जाई ।१।

ऊंचे नीचे परबत भिलमिल धाई, कौठड़ीका पाणी पूरण गढ़ जाई ।

इहां नहीं उहां नहीं त्रिकुटी-मंझारी, सहज-सुनि में रहति हमारी ।३।

आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, कायागढ़ जीतिले गोरख अवधूता ।४। (१४३।३६)

त्रिभुवन उसती गोरखनाथ डीठी ॥टेका॥

भारी अपणी जगाई ल्यौ भीरा,

जिनि भारी अपणीं ताकीं कहा करै खीरा ।१।

अपणीं कहै मे अथला बलिया,

ब्रह्मा विस्न महादेव खलिया ।२।

माती माती अपनी दसी दिसि धावै,

गोरखनाथ गाढ़ी पवन वेगि ल्यावै । (१३६।३)

अबधू सहज हंसका घेल भणीजै, सुनि हंसका बास ।

सहजै ही आकार निराकार होइसी, परम-ज्योति हंसका निवास । (१६१।४०)

अबधू सहज-सुनि उतपना आइ । समि सुनि सतगुरु बुझाइ ।

अतीत सुनिमै रह्या समाइ । परम-तत्व में कहूं समझाइ । (१६३।६२)

बांक न निकसै बूंद न डलके, सहजि अंगीठी भरि भरि राखै ।

सिध-समाधि योग-अभ्यासी, तब गुरु परजै सार्धै । (२१८।४४)

(२) मृन्मय-मार्ग

षायें भी मरियें अणषायें भी मरिये । गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये ।

मधि निरंतर कीजै बास । निहचल मनुषां धिर होइ सांस । (५१।१४६)

(३) अलख और निरंजन-तत्त्व—

घरबारी सो घरकी जाणै । बाहरि जाता भीतरि आणै ।

सरब निरंतरि काटै माया । सो घरबारी कहिये निरंजनकी काया । (१६।४४)

पंच तत्त ले सिधां मुडाया, तब भेंटि ले निरंजन-निराकार ।

मन मस्त हस्ती मिलाइ अबधू, तब लूटि ले अर्धे भंडार । (२७।७७)

अलेख लेखंत अदेष देखंत, अरस-परस ते दरस जाणी ।

सुनि गरजंत वाजंत नाद, अलेख लेखंत ते निज प्रवाणी । (३२।६१)

उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न ।

सोई निरंजन डाल न मूल, सर्वव्यापिक सुषम न अस्थूल । (३६।१११)

माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरंजन-निराकार ।

गुरु हमारै अतीत बोलिये, जिन किया पिण्डका उधार । (६७।२०२)

नाद-विन्द गांठि प्रवानां । कवण घटि जोति कवण अस्थानां ।

कहा निरंजन बासा करही । कहाँ काली नागनी मीढक घरही ॥ (१६६।१०)

कहाँ जलघर पवना मेला । उंद्र कहाँ बिलहया घेरा ।

सींसी नाद कहाँ जोगी पूरा । जीत्या संग्राम पुरिष भया सूर ॥ (१६६।११)

(४) शून्य और आकाशतत्त्व

आकाश-तत्त्व सदा-सिद्ध आण । तसि अभिप्रंतरि पद-निरबाण ।
 प्यंडे परचानै गुरमुखि जोइ । बाहुडि आवागवन न होइ ॥ (५७।१६८)
 जोगी सो जो राखै जोग । जिम्मा मन्त्री न करै भोग ।
 अंजन छोड़ि निरंजन रहै । ताकू गोरख योगी कहै ॥ (७३।२३०)
 सुनि ज माई सुनि ज बाप । सुनि निरंजन आपै आप ।
 सुनि के परचै भया सथीर । निहचल जोगी गहर-गंभीर ॥ (७३।२३१)
 अवधू मनका सुनि रूप, पवनका निरालंभ आकार ।
 दमकी अलेख दसा, साधिबा दसवै द्वार ॥ (१८७।८)
 अवधू हिरदा न होता तब सुनि रहिता मन ।
 नाभी न होती तब निराकार रहिता पवन ॥
 रूप न होता तब अकुसान रहिता सबद ।
 गगन न होता तब अंतरष रहिता शब्द ॥ (१८८।२८)
 स्वामी कौण तेज थै जोति पलटै । कौण सुनि थे बाबा फुरै ।
 कौण सुनि थै त्रिभुवन सार । कौण सुनि थै उतरिबा पार ॥ (१९५।६९)
 अवधू सुने आवै सुने जाइ । सुने चीया रहे समाइ ।
 सहज-सुनि मन-तन थिर रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥ (१९५।७८)
 अवधू सबद अनाहद सुरति सोचित । निरति निरालंभ लागै ब्रध ।
 दुवध्या भेटि सहजमें रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥ (१९६।८४)

(५) रहस्यवाद

सिद्धि-उत्पत्ती बेली प्रकास, मूल न थी, चढी आकास ।
 उरध गोढ़ कियौ विसतार, जाणनै जोली करै विचार । (१९९।१)
 भणत गोरखनाथ मछिंद्रना पूता, मारघो मूध भया अवधूता ।
 याहि हियाली जे कोई बूझै, ता जोगीको त्रिभुवन सूझै । (१९९।५)

गुरु जी ऐसा करम न कीजै, तायें अभी-महारस छीजै ॥ टेक ॥

दिवसै बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।

जाणि वृष्णि रे मूरिष लोया भरि-भरि बाघणि पोषै ॥

नदी तीरै विरवा नारी संगै पुरधा अलप-जीवनकी आशा ।

मनयै उपज मेर बिसि पड़ई तायें कंठ विनासा ॥

भोज भये अगमग पेट भया डीला, सिर बगुलाकी पैसियाँ ।

अभी-महारस बाघणी सोझा घोर मथन जैसी अस्त्रियाँ ॥

बोंघिनीको मिदिले बाघनीको विदिले बाघनी हमारी काया ।

बाघनी घोषि घोषि सुंदर बाये भणत गोरखराया । ३।

(१३७।४३)

बांधी बांधी बछरा पीओ पीओ धीर । कलि अजरावर होइ सरीर । टेक ।

आकासकी घेन बछा जाया । ता घेनकै पूछ न पाया । १।

बारह बछा सोलह गाई । घेन दुहावत रैन बिहाई । २।

अचरा न चरै घेन कटरा न घाई । पंच ग्वालियाँकी मारण घाई ।

माही घेनक दूध जु भीठा । पीवै गोरखनाथ गगन बईठा ॥ (१४७।५१।)

सौभलि राजा बोल्या रे अवधू । सुनै अनौपम वाणी जी ।

निरगुण नारी सूं नेह करंता । भबकै रंणि बिहाणी जी । टेक ।

ढाल न मूल पत्र नहि छाया । बिण अल पिंगुला सीचै जी ।

बिणही मढ़ीयां मंदला बाजै । यण विधि लोका रोझै जी । १।

चीटघां परबत डोल्या रे अवधू । गायां बाघ बिहारया जी ।

सुसलै समदा लहरि बनाई । मूया चीता मारया जी ॥

ऊझड़ि मारगि जाता रे अवधू । गुर बिभ नहिं प्रकासा जी ।

जीत्या गोरख अब नहीं हारै । समझि ररालै पासा जी । (१५३।५७।)

गोरख बालड़ा बोलै सतगुरु वाणी रे ।

जीवता न पररायौ तेन्हें अगनि न पांणीं रे ॥ टेक ॥

षीली दूभै भैसि बिरोलै, सामुड़ी पालनडै बहुड़ी हिंडोलै ॥१॥

कोयल भोरी आंघौ वास्यौ, गगन मछलड़ी बगलौ वास्यौ ॥२॥

करसन पाकू रखवालू बाबू, चरि गया मूचला पारधी बाबू ॥३॥

सींगी नादै जोगी पूरा, गोरखनाथ परन्या तिहाँ चंद न सूर ॥ (१५५।६०)

३-साधना और उलटवाँसी

(१) साधना

बैठा अवधू लोकी घूँटी, चलता अवधू पवनकी मूठी ।

सोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यंजरे सूवा ॥ (२५।७१)

दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइवा सुरति लुकाइवा कान ॥

नासिका अग्रे पवन लुकाइवा, तब रहि गया पद निर्वाण ॥ (२७।७५)

उलटघा पवना गगन समोद, तब बालरूप परतषि होइ ॥

उदै अहि अस्त हैम अहि पवन बेला, बँधिल हस्तिया निज साल बेला ॥ (३१।८८)

अहंकार तूटिवा निराकार फूटिवा, सोषीला गंग-जमनका पानी ॥

चंद-सूरज दोऊ सनमुषि राखीला, कहो हो अवधू तहाँकी सहिनाणी ॥

(३६।११३)

अवधू रवि अमावस चंद सु पड़िवा ॥ अरधका महारस ऊरव ले चढ़िवा ॥

गगन अस्थाने मन उनमन रहै ॥ ऐसा विचार मछिद्र कहै ॥ (१८८।१८)

घरतर पवना रहै निरंतरि ॥ महारस सीमै काया अभिभंतरि ॥

गोरख कहै अम्हे बंधन ग्रहिथा ॥ सिव-सक्ती ले निज घर रहिया ॥ (४५।१३०)

(२) उलटवाँसी

गगनि-मंडलि में गाय बिमार्ई कागद दही जमाया ॥

छाछि छाँड़ि पिडता पीनी सिधा भावण लाया ॥ (६६।१६६)

नाथ बोले अमृत वाणी बरिषैगी, कबली भीजैगा पाणी । टेक ।

गड़ि पड़रवा बाँधिले घूटा, चले दमामा बाजि ले ऊँटा । १।

कड़वाकी खाली पीपल बासै, मूसकै सबद बिलइया नासै । २।

चले बटावा थाकी बाट, सोवे बुकरिया ठीरे पाट । ३।

झुकि ले कूकुर भुकि ले चोर, काढ़े धणी पुकारे दोर । ४।

ऊजड़ पेड़ा नगर-मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी । ५।

मगरी परि चूल्हा धूंधाइ, पोचणहाराकी रोटी खाइ । ६।

कामिनि जलै अँगोठी तापै, बिच बैसंदर थरहर कापै । ७।

एक जु रक्षिया रक्षती आई, बहु बिबाई सासू जाई । ८।

नगरीकी पाणी कई आवै, जलटी चरचा गोरख गावै । (१४१।४७)

४-गोरखका संदेश

(१) रुढ़ि-खण्डन

अवूमि बूमि लै हो पंडिता, अकथ कथिलै कहाणी ।

सीसनवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैण विहाणी । (७२।२२२)

मेरा गुरु तीन छंद गावै,

ना जाणौ गुर कहाँ गैला, मुझ नींदड़ी न आवै ॥ टेक ॥

कृम्हुराकै घरि हाँसी आछै, अहीराके घरि साँडी ।

बभनाकै घरि राड़ी आछै, राड़ी, साँडी हाँडी । १।

राप्ताकै घरि सेल आछै, जंगल-मधे बेल ।

तेलीके घरि तेल आछै, तेल-बेल-सेल । २।

अहीराकै घरि महकी आछै, देवल-मधे ल्यंग ।

हाटी-मधे हीगै आछै, हीगै, ल्यंग, स्यंग । ३।

एकै सुन्नै नाना वणिर्वा, बहु भाति दिखलावै ।

भणत गोरख त्रिगुणी भावा, सतगुरु होइ लयावै ।

(१३६।४२)

संयम चित्तवो जुगत ग्रहार । न्यंदा तजौ जीवनका काल ।

छाड़ी तंत-भंत वेदंत । जंत्र गुटिका घात पण्ड ।

(१७०।४)

जड़ी-बूटीका नांव जिनि लेहु । राज-दुवार पाव जिनि देहु ।

थंभन मोहन वसिकरन छाड़ी आचाट । सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभकी वाट ।

(१७०।५)

तैण भहारस फिरौ जिनि देस । जटा भार बँधौ जिनि केस ।

रुष-विरुष-बाड़ी जिलि करो । कूवा-निवाण षोदि जिनि मरौ । (१७१।७)

छोड़ी बंद-वणज-व्यापार । पढ़िवा गुणिवा लोकाचार । (१७०।६)

पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप । जोग मांहि बिटंबी आप ।

जड़ी-बूटी भूलै मति कोइ । पहली रांड वैदकी होइ ।

जड़ी-बूटी भ्रमर जे करे । तौ वैद धनंतर काहे को मरे । (१७७।१७)

सोनै रुपै सीमै काज । तौ कत राजा छोड़ै राज ।

पसुवा होइ जपै नहिँ जाप । सो पसुवा भोंषि क्यों जात । (१७७।१८)

(२) राजा-प्रजाको समान देखना—

निसपती जोगी जानिवा कैसा । अगनी पाणी लोहा माने जैसा ।

राजा-प्रजा सम करि देष । तब जानिवा जोगी निसपतिका भेष । (४८।१३६)

(३) भोगमें योग

भग-मुधि ब्यंद अग्नि-मुष पारा । जो राखै सो गुरु हमारा । (४६।१४२)

षायें भी मरिये अणायें भी मरिये । गोरख कहँ पूता संजमि ही तरिये ।

मधि निरंतर कीजै बास । निहचल भनुवा धिर होइ साँस । (५१।१४६)

आओ देवी बैसो । द्वादस अंगुल पैसो

पैसत पैसत होइ सुष । तब जनम-मरनका जाइ दुष । (५३।१५५)

स्वामी काचीं बाई काचा जिंद । काची काया काचा विंद ।

क्यूँ करि पाके क्यूँ करि सीमै । काची अगनी नीर न पीजै ॥ (५४।१५६)

§ १४. टेंडण(तंति)पा

काल—८४५ (बेसपाल-विग्रहपाल ८०६-४६-५४) । देश—अवंतिनगर

(३३—राग पटमंजरी)

टालत (नगरत) मोर घर नाहि पडिवेधी ।

हाँडीत भात नाहि निति आवेशी ॥

वेङ्कस साप बड्हिल जाअ ।

दुहिल दुधु कि वेन्ते समाअ ॥

बलव बिआअल गविआ बाँभे ।

पिटहु दुहिअह ए तिनी साँभे ॥

ओ सो बुधी सोध नि-बुधी ।

जो सो मोर सोई साधी ।

निति सिआला सिहे सम जूअअ ।

देष्टण पाएर गीत बिरले बूअअ ॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-भारायणपाल ८५०-५४-६०) । देश—मगध ।

(१६—राग भैरवी)

तीनिए पाटे लागेलि अणहअ सन घण राजइ ।

ता सुनि मार भयंकर विसअ-मंडल सअल भाजइ ॥

भातेल नीअ-गएन्दा धावइ । निरंतर गअणैत तुते (रवि-ससि) धोलइ ॥

पाप-पुण्य वेणिग तोडिअ सिंकल मोडिअ सम्मा ठाणा ।

गअण-टाकली लागेलि रे चित्त पडहु णिबाणा ॥

महरस पाने भातेल रे तिहुअन सअल उएखी ।

पंच विसअ-नायक रे बिपल कोबि न देखी ॥

खर रवि-किरण सँतापे रे गअणज्जण जइ पइठा ।

अणन्ति भहिआ मइ एषु बुडन्ते किम्पि न दिठ ॥१६॥

—चर्यापद

§ १४. टेंडण(तंति)पा

(उज्जैन) : कुल—तंतधर (कोरी), सिद्ध (१३) । कृति—वसुयोग-भावना ।

(३३—राग पटमंजरी)

नगर-मौंभ मोर घर, नाहि पडोसी ।

हंडीते भात नाही नित्य श्रावेशी ॥

बेगेहिं साप बघिल जाय ।

कच्छू दूष कि मेटे समाय ॥

बरघ बियाइल गया बांभी ।

मेटेहि दूहिय तीनों सौकी ॥

जो सो बुद्धी सोह निबुद्धी ।

जो सो चोर सोई साहु ॥

नित्य सियारा सिद्ध से जुम्मे ।

टेंडणपा के गीति बिरलें बूम्मे ॥३३॥

§ १५. मही(महीघर)पा

कुल—शूद्र । कृति—शायतस्थ-बोहगीतिका ।

(१६—राग भैरवी)

तीन पाटे लागल अनहद-स्वन घन गाजै ।

तेहि सुनि मार भयंकर विषय-मंडल सकल भाजै ॥

मातल बिल-गयन्दा धावै, निरंतर गगनते तुष (रवि-शशि) घोलै ।

पाप-गुण्य द्वैत तोडि सौकल भरोडी सम्भा-यान ।

गगन टकटकी लागलि रे चित्त पडठ निर्वाण ॥

महारस पाने मातल रे त्रिभुवन सकल उपेक्षी ।

पंच विषय-नायकरे विपल काहु न देखी ॥

सर-रवि किरण संतापेहिं गगनांगण जाइ पडठा ।

भणै महीआ मै एहिं बूझत किछु न दीठा ॥१६॥

—वर्यापद

§ १६. भादे(भद्र)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०-५४-६०८) । देश—आवस्ती ।

(३५—राग मल्लारी)

एत काल हाँउ अखिअल स्वमोहे ।

एवेँ मइ बूझिल सवगुह-बोहे ॥

एवेँ चिअ-राअ मोकू णठा ।

गअण-समुदे टलिआ पइठा ॥

पेखमि वह दिह सबई सुअ ।

चिअविहुसे पाप न पुअ ॥

बाजुले दिल मो लखअ भणिआ ।

मइ अहारिल गअणत पणिआ ॥

भादे भणइ अभागे लइला ।

चिअ-राअ मइ अहार कइला ॥३५॥

—चर्यापिद

§ १७. धाम(धर्म)पा

काल—८७५ ई० (विग्रहपाल - नारायणपाल ८५०-५४-६०) ।

देश—विक्रमशिला (भागलपुर) । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१६) ।

(४७—राग गुजरी)

कम-कुलिश मोअे भमई लेली ।

समता-जोएँ जलिल चण्डाली ॥

डाह डोम्विघरे लागेलि आगी ।

ससहर लइ सिचहु पाणी ॥

§ १६. भादे(भद्र)पा

कुल—चित्रकार, सिद्ध (३२) । कृतियाँ—जर्मापद (गीति)

(३५—राग मल्हारी)

एतन काल हौं रलों स्वभोहे ।

अब मैं बुझलो सदगुरु-बोधे ॥

अब चित्त-राग मोरा नष्टा ।

गगन-समुद्रे टलिके पड़्या ॥

पेखी दश-दिशि सर्वहि शून्य ।

चित्त-बिहूने पाप न पुण्य ॥

बाजुल ने दीलो मोहि लक्ष्य भानी ।

मैं आहारिल गगनसे पानी ॥

आवे भनै अभागो लियेँ उ ।

चित्त-राग मैं आहार कियेँ उ ॥३५॥

—जर्मापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

कृतियाँ—कालि-भावना-मार्ग, सुगतबुद्धि-नीतिका, द्वेकार-चित्त-विबु-भावना-कम ।

(४७—राग गुजरी)

कमल-कुलिश माँके अमई लेली ।

समता-योगेहि ज्वलिल चँडाली ॥

डाह डोम्बि-धरे लागलि आगी ।

शशधर लेह सींचहु पानी ॥

णउ सरे आला धूम ण दीसइ ।

मेरु-सिहर लइ गअण पईसइ ॥

दाढ़इ हरि-हर-ब्रह्मण नाठा (भट्टा) ।

दाढ़इ नव-गुण-शासन पाठा (पट्टा) ॥

मणइ धाम फुट सेहु रे जाणी ।

परुचनाले उठे (ऊध) गेल पाणी ॥

—व्यापद

३ : दसवीं सदी

§ १८. देवसेन

काल—६३३ ई० । देश—धारा (मालवा)में रहे । कुल—जैन साधु ।

(१) सदाचार-उपदेश

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि, सुयणु पयासिउ जेण ।

अमिउ विसे वासस तमिण, जिम मरगउ कच्चेण ॥१॥

भइ आसारणउ थोळजमि, जासइ पुणु बहुत्तु ।

बइसाणरहें तिडिक्कडें, काणणु डहइ महन्तु ॥२॥

जुए घणहु ण हाणि पर, वयहें मि होइ विणासु ।

सगउ कटु ण डहइ पर, इयरहें डहइ हुयासु ॥३॥

बेसाहि सगइ धनिय घणु, तुटइ बंधउ मिन्तु ।

मुञ्चइ णउ सन्नइ गुणहें, जेसावरि पइसन्तु ॥४॥

भुक्कहें कूड-मुलाइयहें, चोरी भुक्की होइ ।

अह न वणिज्जहें छाडियहें, दाणु ण मगइ कोइ ॥५॥

मण-वय-कामहि दय करहि, जेम ण दुक्कइ पाउ ।

उरि सण्णाहि वडइण, अवसि न सगइ घाउ ॥६॥

नहिँ सरेँ ज्वाल धूम न दीसँ ।

मेरु-शिखर लेइ गगन पईसँ ॥

झाहँ हरि-हर-कहा भट्टा ।

आहँ नव-गुण-शासन पट्टा ॥

भने धाम फुर लेहु रे जानी ।

पंच नालेहिँ जटि गहल पानी ॥४७॥

—न्यापिद

३ : दसवीं सदी

§ १८. देवसेन

कृतियाँ—सात्वयधम्म-बोहा ।

(१) सदाचार-उपदेश

दुर्जन सुखियहु होहु जग, सुजन पकासेँज जेहि ।

अमृत विषे वासर तमसि, जिमि मकंत कांचेन ॥२॥

मद-आस्वादन थोडहु, नाशइ पुण्य बहुत ।

वैश्वानर चिंगारियउ, कानन बहै महत्त ॥२३॥

जुएँहि धनको हानि पुनि, धर्महु होत विनाश ।

लागो काठ न उहइ बर, अन्यहु उहइ हुताश ॥२८॥

वेष्यहि लागहिँ धनिक-धन, छूटइ वांछव-मित्र ।

मुंचइ नर सर्वहिँ गुणहिँ, वेश्या-घर पइसन्त ॥४०॥

मुंचै कूट-तुलादिते, चोरी-मूकती होइ ।

अथन वणिज्जहिँ छाँढ तो, दान न माँगइ कोइ ॥४२॥

मन-वच-कर्महिँ दया कर, जिमिना हुकइ पाप ।

उर सझाहे बाँधतो, अवशि न लागइ घाव ॥६०॥

भोगहँ करहि पमाणु जिय, इदिय म करिसि दम्प ।

हुँति न भल्ला पोसिया, दुखेँ काला सप्प ॥६५॥

लोह लखल विसु सणु मयणु, दुहु-भरणु पसु-भार ।

काँडि अणत्थइ पिडि-पडिइ, किमि तरहहि संसार ॥६७॥

एहु धम्मो ओ आयरइ, बंभणु सुद्धु'वि कोइ ।

सो सावड कि सावयहँ, अण्णु कि सिरिमणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

जइ गिहत्थ बाणेण विणु, जगिव भणिज्जइ कोइ ।

सा गिइत्थ पंखि वि इवइ, जेँ चर ताइवि होइ ॥८७॥

धम्म करउँ जइ होइ धणु, इहु दुध्वयणु म नोल्लि ।

हुक्कारउ जमभटतणउ, आवइ अज्जु कि कल्लि ॥८८॥

काहँ बहुत्तइ संपयहँ, जइ किविणहँ घर होइ ।

उयहि-गोरु खारेँ भरिउ, पाणिउ पियइ न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धम्मे सुहु पावेण बुहु, एक पसिद्धउ लोइ ।

तम्हा धम्मु समायरहि, जेहिथ इच्छिउ होइ ॥९०॥

काहँ बहुत्तइ जंपियइ, जं अप्पह पडिक्खल ।

काहँ मि परदु न तं करहि, एहजि धम्महु मूल ॥९०४॥

(४) धर्माचरण

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर, जं किज्जइ काएण ।

अहवा तं धणु उज्जलह, जं आवइ णाएण ॥९१३॥

ख्वहु उप्परि रह म करि, णयण णिवारइ जंत ।

ख्वासत्त पयंगडा, पेक्खइ दीवि पडंत ॥९२६॥

गुणवन्तह सह संगु करि, भल्लिम पावहि जेम ।

सुमण सुपत्त त्रिवज्जियउ, वरतर वुच्चइ केम ॥९४१॥

भोगहिं मात्रा करहु जिय, इन्द्रिय ना करु दपं ।

होत भला नहिं पोसिया, दूधे^२ काला सर्प ॥६५॥

लोह, लाख, विष-सन, मयन, दुष्ट-भरण पखु-भार ।

छांड़ि अनर्थहि पिड पडि, किमि तरिहै संसार ॥६७॥

एहि धर्महि जो आचरइ, काहूण, गूढ़हु कोइ ।

सो आवक कि आवकहिं, अन्य कि सिर-मणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

यदि गृहस्थ दानहि बिना, जगमें भणियत कोइ ।

तो गृहस्थ पंछिहु इवै, जे घर ताहुउ होइ ॥८७॥

धर्म करौ यदि होइ धन, ऐहु दुर्जन न बोल ।

हंकरउ जम-भदनते, आवइ आज कि कालि ॥८८॥

काहू बहुतहिं संपदाहि, यदि कृपणहिं घर होइ ।

उदधि-नीर खारे भरेंउ, पानिउ पियै न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धर्महि सुख पापहि दुख, एह प्रसिद्धउ लोक ।

ताते धर्म समाचरहु, जे हिय-वांछित होइ ॥१०१॥

काहू बहुते जल्पने, जो अपने प्रतिकूल ।

काहू दुख सो ना करइ, ऐहु जे धर्मको मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धर्म विशुद्ध सोइ पर, जो कीजइ कामेन ।

अथवा सो धन उज्ज्वल, जो आवइ स्थायेन ॥११६॥

रूपहि ऊपर रति न कर, नयन निवारहु जांत ।

रूपासक्त पतंगडा, पेखहु दीप पडन्त ॥१२६॥

गुणवाने^३ सह संग कर, भल्लो पावइ जेमु ।

सुमन-सुपवन-वर्जितउ,, वरतर कहियतु केमु ॥१४१॥

अण्णाएँ आवंति जिम, आवइ धरण ण जाइ ।

उम्मगो चल्लंत यहँ, कंटई मज्जइ पाउ ॥१४५॥

कूड-तुला-माण्डइहँ, हरि-करि-सर-विस-भेस ।

जो णच्चइ णटु पेखणउ, सो गिण्हइ बहु-वेस ॥१६२॥

दुल्लहु अहि मणुयत्तणउ, मोयहु पेरिउ जेण ।

लोह कंजि दुत्तर तरणि, थाव विदारिय तेण ॥२२१॥

§ १६. तिलोपा^१

काल—१६० ई० (राज्यपाल-गोपाल द्वि०-विग्रहपाल द्वि० १०८-४०-६०-८०) । देश—भिगुनगर (मगध) । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (२२)

(१) सहज-मार्ग

सहजे^२ भावाभाव ण पुच्छइ । सुण्ण करुण तहि समरस इच्छइ ॥२॥

मारहु चित्त णिबाणे^३ हणिआ । तिहुअण सुण्ण णिरंजन पलिआ ॥३॥

आइ-रहिअ एहु अन्तर-हिअ । वर-गुरु-पाअ अइअ कहिअ ॥६॥

बड़ ! अणँ लोअ-अगोअर तत्त, पंडिअ लोअ अगम्म ।

जो गुह पाअ पसण्ण, तहिँ की चित्त अगम्म ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

सअ-संवेअण तत्त-फल, तीलोपाअ भणन्ति ।

जो मण-गोअर पइठई, सो परमत्थ ण होन्ति ॥९॥

सहजे^४ चित्त विसोहहु चङ्गा । इह जम्महि सिवि मोक्खा भंगा ॥१०॥

अइअ-चित्त तइअरा, गउ तिहुअण वित्थार ।

करुणा फुल्लिअ फलधरा, णउ परता ऊआर ॥१२॥

^१ J.D.L. XXVIII, pp. 1—4

अन्याये आचइ यदि, आचइ धरेँउ न जाइ ।

उन्मार्गे चत्तन्त कहं, कंठक मंजइ पाउ ॥१४१॥

कूट-तुला-मानादि कहं, हरि-करि-स्वर-विष-मेष ।

जो नाचइ नट प्रेक्षणउ, सो गुण्हइ बहु-वेष ॥१४२॥

दुर्लभ सहि मनुजत्न कहं, भोगेहि प्रेरेँउ येन ।

लोह-लाई दुस्तर तरणि, नाव विगाडेँउ तेन ॥१४३॥

§ १६. तिलोपा

कृतियाँ—निवृत्तिभाषनाक्रम, करुणाभाषनाधिष्ठान, बोहा-कोष, महानुमोप-देश ।

(१) सहज-मार्ग

सहजे भावाभाव न पूछिय । शून्य-करण तेंह सम-रस इच्छिय ॥२॥

भारहु चित्त निर्वाणे हनिया । त्रिभुवन शून्य निरंजन पेलिया ॥३॥

आदि-रहित एहु अन्त-रहित । बर-गुरु-पाद भद्रय कथित ॥६॥

मूढ-जन-लोग-अगोचर तत्त्व, पंडित लोग-अगम्य ।

जो गुरुपाद प्रसन्न (हो), तेहि की चित्त-अगम्य ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

स्वक-संवेदन^१ तत्त्व-फल, तीलोषाव भगन्ति ।

जो मन-गोचर पइठै, सो परमार्थ न होन्ति ॥९॥

सहजे चित्त विशोधहु भंगा । इहें जन्महि सिद्धि मोक्षा भंगा ॥१०॥

अद्वय-चित्त तत्त्वरा, गउ त्रिभुवन विस्तार ।

करुणा फूली फलधरा, नहि परती उपकार ॥१२॥

^१ स्वकीय अनुभव

पर अप्पाण म भन्ति करु, सञ्जल गिरन्तर बुद्ध ।

तिहुअण णिम्मल परम-पउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सञ्जल णिञ्जल जो सञ्जलाचार । सुण्ण गिरंजन म करु विशार ॥१४॥

एहु स्रे अप्पा एहु जगु जो परिभावइ । णिम्मल चित्त सहाव सो कि बुज्झइ ॥१५॥

हँउ जग हँउ बुद्ध हँउ गिरंजन । हँउ अमणसिआर भव-भंजण ॥१६॥

मणहु भअवा ससम म अकई । दिवाराति सहजे राहीअइ ॥१७॥

जम्म-मरण मा करहु रे भन्ति । णिअ-चिअ तही गिरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तित्थ तपोवण म करहु सेवा । देह सुचीहि ण सन्ति पावा ॥१९॥

बम्हा-बिहुण-भहेसुर देवा । बोहिसत्त्व मा करहु सेवा ॥२०॥

देव म पूजहु तित्थ ण जावा । देवपुजाही मोक्ख ण पावा ॥२१॥

बुद्ध अराहुहु अविकल-भित्ते^१ । भव णिब्बाणे म करहु यित्ते^२ ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिम विस भक्खह, विसहि पलुता ।

तिम भव भुज्जइ भवहि ण जुत्ता ॥२४॥

खण आणंद भैउ जो जाणह । सो इह जम्महि जोइ भणिज्जइ ॥२८॥

हँउ सुण्ण जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण । णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण्ण ॥३४॥

जहि इच्छइ तहि जाउ मण, एत्थु ण किज्जइ भन्ति ।

अथ उषाडि आलोअणें, आणें होइ रे यित्ति ॥३५॥

—दोहाकोष^३

पर-आपा नः भ्रान्ति कर, सकल निरन्तर बुद्ध ।

त्रिभुवन निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल निचल जो सकलाचार । शून्य-निरंजन न कर विचार ॥१४॥

ऐह सो आपा ऐह जग जो परिभावे । निर्मल चित्त-स्वभाव सो का बुराई ॥१५॥

हौं जग हौं बुद्ध हौं निरंजन । हौं अ-भनसिंकार भव-भंजन ॥१६॥

भन भगवान् ख-सम भगवती । दिवा-रात्रे सहजे रहई ॥१७॥

जन्म-भरण न करहु रे भ्रान्ति । निज चित्त तहाँ निरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तीर्थ-तपोवन न करहु सेवा । देह शुची ना होई पाया ॥१९॥

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-देवा । बोधिसत्त्व ना करहु रे सेवा ॥२०॥

देव न पूजहु तीर्थ न जावा । देवपूजते भोक्ष न पावा ॥२१॥

बुद्ध अराधहु अ-विकल चित्ते । मय-निर्वाणे न करहु स्थित्वे ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिमि विष भक्षे विषहिं प्रलुप्ता ।

तिमि भव भोग भवहिं न युक्ता ॥२४॥

क्षण-आनंद भेद जो जानै । सो एहि जन्महिं जोगि भनीजै ॥२५॥

हौं शून्य जग शून्य त्रिभुवन शून्य । निर्मल-सहजे न पाप न पुण्य ॥२६॥

जैह इच्छै तैह जात भन, एहिं न कीजै भ्रान्ति ।

अधो अधारि अवलोकने, ध्याने होइ रे स्थिति ॥२७॥

—बोद्धाकोष

§ २०. पुष्पदंत (पुष्पयंत)

काल—६५६-७२ (राष्ट्रकूट कृष्ण^१ तृतीय सोह्रग^२ के समकालीन) । देश—ऊज या घोष्य (दिल्ली) में जन्म, मान्यखेट^३ (मालखेड़, हंवरबाब-वसिष्ठ) में रचना ।

१-आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्फंधावार (सेना-केम्प)में

चन्द-जुड़ भू-भंग-भीसु । तोडेपिणु चोड़होतणउ सीसु ।

भुवनेकराम रायाहिराउ । जहिं ग्रन्थहि तुङ्गि^४ महानुभाव ।

सं दीण दिण-धण-कणय-पयह । यहि परिभमंतु सैपाडि^५-गयह ।

भवहेरिय-खल-यणु गुण-महंतु । दियहेहिं पराक्षु पुष्पयंतु ।

हुगम दीहर-मंथेण रीणु । जव-यंदु जेस देहेण खीणु ।

तरु कुसुम-रेणु-रंजिय-समीरि । मायंद-गोछ-गोदलिय-कीरि ।

पंदण-वणि किर वीसमइ आम । तहिं निणि पुरिस संपत्त ताम ।

पणवेपिणु तेहिं पवुत्तु एंव । "ओ खंड-मलिय-पावावलेव ।

परिभमिर-भसर-रव-गुमगुमंति । किंकर णिवसहि पिज्जण-वणंति ।

करि सर बहिरिय-दिच्चक्कवाल । पइसरहि ण किं पुरवरि विसालि?"

^१ ६३६ में गद्दी पर बैठा । चोल-युवराज राजादित्यको ६४६ ई० में मार कर कुमारी तक सारे बक्षिण पर प्रभाव । इसके परमार श्रीहर्ष (मालव-राज सीयक), और कलचूरी भी आधीन साभक्त । ६६८ (?) में मृत्यु । अपने समय-का सबसे बड़ा भारतीय राजा ।

^२ सोह्रग, कृष्णका पुत्र, शासनकाल ६६८-७२ । ६७२ में मालवराज श्रीहर्ष (सीयक ६४६-७२, ब्रह्मपतिराज मुंजका पिता) ने मान्यखेटको ध्वस्त किया । राष्ट्रकूट-शक्ति (५७०-७२) समाप्त ।

^३ राष्ट्रकूट-राजधानी ८१५-६७२ ई०

^४ राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय

^५ मेलपाटी (उसरी-आर्काट)

§ २०. पुष्पदंत (पुष्पकयंत)

कुल—ब्राह्मण, दर्बारी कवि। कृतियाँ—‘महापुराण’ (तिसद्वि-महापुरिसगुणालं-कार), ‘जसहर चरित’ (यक्षोधर-चरित), ‘नायकुमार-चरित’ (नागकुमार-चरित)।

१-आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प)में

लक्ष्म-जुट भूमंग-भीष। तोड़े बियउ चोलहिंकेर शीर्ष।

भुवन्-एकराम राजाधिराज। जहँ आछै तुडिया महानुभाव।
सो दीन दत्त-धन-कनक-प्रवर। महि परिभ्रमंत मेपाडि नगर।

अवधीरिय खल-जन गुण-महंत। दिवसेहिं तहँ आयेउ पुष्पदन्त।
दुर्गम-दीरघ-मंथे ‘वतीर्ण’। नव-चंद्र जिमी देहेहिं क्षीण।

तरु-कुसुम-रेणु-रजित समीर। भाकंद-गुच्छ गोंदलिय कीर।
नंदनवन फुरि विश्रमै जहाँ। तब दोउ पुरुष आयेउ तहाँ।

प्रणमीया तेही कहैउ एम। ‘हे खंड-गलित-मापावलेप !
परिभ्रमत अमर-रव-गुगुमंत। क्योंकर निवसहु निर्जन-वनांत ?

करि सर बाहिर-दिक् चक्रवाल। पइसहु न क्यों पुर-वर-विद्याल ?”

‘भरत और नल दोनों पिता पुत्र (राजमंत्री) पुष्पदन्तके आश्रयवाला।

‘डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचन्द्र-विगम्बर-जैन-ग्रंथ-माला (बंबई)में संपादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द।

‘डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में संपादित १९३१ ई०

‘प्रो० हीराताल जैन द्वारा वेवेन्द्र-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में संपादित १९३३ ई०

‘हे

‘जबाया

तं सुगिवि ग्रणइ अहिमाण-मेरुं । "वरि खज्जइ गिरि-कंदरि-कसेरु ।

णउ कुज्जण-भउँहा-बंकियाइ । दीसंतु कलुस-भाबंकियाइ ।

घत्ता । वर णरवर ववलच्छिहे होउ, मा कुच्छिहे भरउ सोणि मुहणिग्गमे ।

खल-कुच्छिय-महु-वयणइ भिउडिय णयणइ म णिहालउ सूखगमे ॥३॥

चमराणिल उड्ढाविय-गुणाइ । अहिसेय-वोय-सुयणत्तणाइ ।

अविचेयइ दप्पुत्तालियाइ । मोहंधइ मारण-सीलियाइ ।

विससह जम्मइ जड रत्तियाइ । कि लच्छिइ बिउस-विरत्तियाइ ।

संपइ जणु णीरसु णिन्विसेसु । गुणवंतउ जहि सुरगुरुं वि वेसु ।

तहिं अम्हइ काणणु जि सरणु । अहिमाणे सहूव वरि होउ भरण ।"

..... पडिबयणु दिण्णु णायर-णरेहिं ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता । "जण-मण-तिमिरोसारण भय-तरु वारण, णिय-कुल-गअण-दिवायर ।

भो भो केसव-तणुरुह ! णव-सररुहु-मुहु कळ-रयण-रयणाअर ! ।

संभंड-संभवाळ-भित्ति । अणवरय-रइय-जिणणाहु-भत्ति ।

सुहत्तुंग-देव-कम-कमल-भसलु । णीसेस-सकल-विण्णाण-कुसलु ॥

पायय-कइ-कळ-रसाव उद्धु । संपीय सरासइ-सुरहि-दुद्धु ।

कमलच्छ अमच्छर सच्च-संधु । रण-भर-धुर-धरणुगुद्ध-खंधु ॥

सविलास-विलासिणि-हियय-येणु । सुपसिद्ध-महाकइ-कामधेणु ।

काणीण-दीण-परिपूरियासु । जस-पसर-पसाहिथ-देस-दिसासु ॥

पर-रमणि-परं-मुहु सुद्ध-सीलु । उणाय-मइ सुयणुद्धरण-सीलु ।

गुरु-यण-पय-पणविय-उत्तमंगु । सिरिदेवि-यंव-गम्भुग्भवंगु ॥

अण्णइय-तणय-तणुरुहु पसत्थु । हत्थिं व दाणोत्तिय-दीह-हत्थु ॥

दुळसण-सीह-संवाय-सरहु । ण वियाणहि कि णामेण भरहु ॥

सो सुनिय भनँ अभिमान-मेरु^१ । “वरु खाइय गिरि-कंदरे” कसेरु ।

नहिँ दुर्जन-भौहाँ-वंकिमाई । देखहुँ कलुष-भावांकिताई ।

घत्ता । वरु तरवर घवलक्षिम् होंउ, न कुक्षिहि, मरी शोणित मुँह निर्गमे^२ ।

खल-कुक्षित-प्रभु-वचना भृकुटित-नयना न निहारौं सूरुदग्गे ॥३॥

चमरानिलहीं उडेऊँ गुणाई । अभिषेक-घोई सुजनत्तनाई^३ ।

अविवेकहुँ दर्पोत्तालियाई । मोहांधताँ-मारण-शीलियाई ।

विषसँग जनमी जख रक्तियाइ । की लक्ष्मी विदुष-विरक्तियाइ ।

संप्रति जन नीरंस निविशे । गुणवंतउ^४ जहँ सुरगुच्छु वेष्ट ।

तहँ हमरेहिँ काननही शरणा । अभिमान-सहित वरु होहु मरणा ।”

..... । प्रतिउत्तर दियेउ नागर-नरेहिँ ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता । “जन मन-तिमिर-अपसारण भदतरु-वारण, निज-कुल-कमल-दिवाकर ।

हे हे केशव-तनुरुह-नख सररुह मुख काव्य रतन-रतनाकर !

ब्रह्मांड-मंडपारूढ-कीर्ति । अनवरत-रचित-जिननाथ-भक्ति ।

सुभतुंग-देव-कम-कमल-भ्रमर । निःशेष-सकल-विज्ञान-कुशल ।

प्राकृत-कवि-काव्य-रसावलुब्ध । संपीय सरस्वति-सुरभि-दुग्ध ।

कमलाक्ष धमत्सर सत्यसंध । रणभर-धुर-धरण-उद्घुष्ट-स्कंध ।

सविलास-विसारसिनि-हृदय-स्तेन । सुप्रसिद्ध-महाकवि-कामधेनु ।

कानीन-दीन-परिपूरिताश । यशप्रसर-प्रसाधित-दश-दिशास ।

पररभणि-पराङ्मुख शुद्धशील । उन्नत-मति सुजनोद्धरण-जील ।

गुरुजन-पद-प्रणमित-उत्तमांग । श्रीवेबि-अंग-गर्भोद्भवांग ।

अश्वत्थ-केर-तनुरुह प्रशस्त । हस्ति ‘व’ दानोल्लित-दीर्घहस्त ।

दुग्धसन-सिंह-संघात-शरभ । न विज्ञानसि का नाभही भरत ।

^१ पुष्पदंत

^२ सुजनता

^३ मणहीनउ

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंतु दिहु भरहेण केम । बाई-सरि-सरि-कल्लोल जेम ।

पुणु तासु तेण विरहउ पहानु । बर आबहौं अन्भागय विहाणु ।

संभासणु पिथ-वयणेहिं रम्मु । निम्मुक्क-डंभु णं परमघम्मु ।

“तुहुं आयउ णं गुण-भणि-णिहाणु । तुहुं आयउ णं पंकयहौं भाणु ।”

पुण एव भणेप्पिणु मणहराई । पहरीण-भौण-तणु-सुहयराई ।

वर-ग्हाण-विलेवण-भूसणाई । दिण्णई देवंगई निवसणाई ।

अञ्चंत-रसालई भोयणाई । गलियाई जाम कइवय-दिणाई ।

देवी-सुएण कइ भणिउ ताम । “भो पुप्फयंत ! ससिलिहिय-णाम !

णिय-सरि-विसेस-णिज्जिय-सुरिदु । गिरि-वीर-वीर भइरव-णरिदु ।

पई मणिउ वणिउ बीर-राउ । उप्पणउ जो मिच्छत-राउ ।

पच्छित तासु जइ करहि अण्णु । ता घडइ तुज्जु परलोय-कण्णु ।”

..... । ता जंपइ वर-वाया-विलासु ।

“भो देवी-णंदण जयसिरीह ! किं किञ्जइ कव्वु सुपुस्स-सीह ।

घसा । “णउ महु बुद्धि-परिगहू णउ सय-संगहू णउ कासुवि करेउ वलु ।

भणु किह करमि कइत्तणु ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुण-सय-संकुलु ।”

—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कौंडिण्ण-भोत्त-गह-दिणयरासु । वल्लह-णरिद-वर-महयरासु ।

गण्णोहो मंदिरि निवसंतु संतु । अहिभाग-भेरु कइ पुप्फ-यंतु ।

—ससहर-वरिउ (पृ० ३)

भणु भणु सिरिपंचमि-फलु गहीर । आयण्णाहिं गायकुमार-बीर ।

ता वल्लह-राय-महंतएण । कलि-विलरिय-दुरिय-कयंतएण ।

कौंडिण्ण-भोत्त-गह-ससहरेण । दालिह-कंद-कंदल-हरेण ।

वर-कव्व-रयण-रयणायरेण । लच्छी-पोमिणि-माणस-सरेण ।

कुंदव्व-भरह-दिय-तणुरुहेण ।

गण्णेण पवुत्तु महाणुमाउ ।

—गायकुमार-वरिउ (पृ० ४)

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंत दीस भरतेहिँ किमी । वापी-ससि-सर-कल्लोल जिमी ।

पुनि तासु तेहिँ विरचे प्रधान । घर आयेंहु बभ्रुगत विहान ।
संभाषण प्रिय-वचनेहिँ रम्य । निर्मुक्त-दंभ जनु परमधर्म ।

“तुहँ आयउ जनु गुण-मणि-निधान । तुहँ आयउ जनु पंकजहु भानु ।”
पुनि ऐस भनियई मनहराहँ । प्रहरीष भीत-तनु-सुखकराहँ ।

धर-स्नान-विलेपन-भूषणाहँ । दीनी देवांगहिँ निवसनाहँ ।
अत्यंत-रसालई भोजनाहँ । बीतेहु जिमि कतिपय-दिनाहँ ।

देवी-सुत कविहिँ भनेउ तब्य । “भो पुष्पदन्त ! शशि-लिखित नाम ।
निज-श्री-विशेष-निजित-सुरेन्द्र । गिरि-धीर वीर जैरव-नरेन्द्र ।

ते मानेंउ वणेंउ वीर-राज । उत्पादेंउ जो मिथ्यात्व-राग ।
प्रादिचत तासु यदि करसि आज । तो घटैं तोर परलोक-कार्य । . . .”

..... । तो जल्पे वरवाचा-विलास ।
“हे देवीनंदन जय-सिरीह ! का कीजै काव्य सुपुष्प-सीह ।

घत्ता । ना मम बुद्धि-परिग्रह न सत-संग्रह ना काहु केरेंउ बल ।
भनु किमि करौ कवित्वन न लहौ कीर्तन, जगहु पिशुन-शत-संकुल ॥”

—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)
कौञ्चिन्य-गोक-नभ-विनकरास । बल्लभ-नरेन्द्र-गृह-मख-करास ।

नान्यहु मंदिरे निवसंत संत । अभिमान-मेरु कवि पुष्पदन्त ।
—जसहर-चरित (पृ० ३)

भनु भनु श्री-यंचमि-फल गेभीर । आकर्णहिँ नागकुमार-वीर ।
तो बल्लभराय-महंतकेहिँ । कलि-विरलिय-दुरित-कृतांत केहिँ ।

कौञ्चिन्य-गोत्र-नभ-शशधरेहिँ । दारिद्र्य-कंद-कंदल-धरेहिँ ।
वर-काव्य-रतन-रतनाकरेहिँ । लक्ष्मी-पद्मिनि-मानससरेहिँ ।

कुंदें इव भरत द्विज-तनुधेहिँ ।
नाम्येहिँ प्रवृत्त महानुभाव ।

—नागकुमार-चरित (पृ० ४)

२-काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संख्या-वर्णन

अल्पमिह दिनेसरि जिह सउणा । तिह पंधिय धिय माणिय-सउणा ।

जिह फुरियउ दीवय-दितियउ । तिह कंताहरणह-दितियउ ।
जिह संभा-राएँ रंजियउ । तिह वेसा-राएँ रंजियउ ।

जिह भुवणुत्तउ संतावियउ । तिहैं चक्कुल्लुवि^१ संतावियउ ।
जिह दिसि-दिसि तिमिरहैं मिलियाहैं । तिह दिसि-दिसि जारइ मिलियाहैं ।

जिह रयणिहि कमलहैं मउलियाहैं । तिह विरहिणि-वथणहैं मउलियाहैं ।
जिह घरहैं कवाडहैं दिण्णाहैं । तिह कल्लह-संवहैं दिण्णाहैं ।

जिह चदे णिय-कर पसर किउ । तिह पिय-केसहिँ कर-पसर किउ ।
जिह कुवलय-कुसुमहैं वियसियहैं । तिह कीलय-मिहुणहैं वियसियहैं ।

जिह पीयहैं पाणहैं महुराहैं । तिह अहरहैं महु-रस-महुराहैं ।
जिह जिह गलति जामिणि-पहर । तिह तिह विइण्ण भउरइ पहर ।

जिह गहि सुक्कुग्गमु दरिसियउ । तिह चिडि सुक्कुग्गमु दरिसियउ ।
धसा । ता चक्क-उलहैं पंकयहैं तंब-किरण-पूरिय-भुवणोयह ।

विरयहैं गर-गारी-यणहैं जीविउ देतु समुगउ दिणयह ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

दिस-कालिदि-काल-गव-जसहर-पिहिय-गहंतरालओ ।

धुय-गय-गंड-मंडलुड्ढाविय-वल-भसा-लि-मेलओ ।
अकिरल-मुसल-सरिस-धिरधारा-वरिस-भरंत-भूयलो ।

हय-रवियर-पयाव-भसरुगय-तर तण-णील-सइलो ।
पहु-तडि^२-वडण-पडिय-वियडायल-रंजिय-सीह-दारुणो ।

गम्बिय-भत-मोर-गलकल-रव-पूरिय-सयल-काणणो ।

^१ चक्का-चकई

^२ तडित्

२-काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अस्तमे दिनेश्वरे^१ जिमि शकुना । तिमि पंथिक ठिउ माणिक शकुना ।

जिमि कुरियेउ दीपक-दीप्तिअऊ । तिमि कांताभरणहिं धीप्तिअऊ ।
जिमि संध्या-रागे^२ रंजियऊ । तिमि वेशा-रागे^३ रंजियऊ ।

जिमि भुवनल्लउ संतापियऊ । तिमि चक्रल्लू संतापियऊ ।
जिमि दिशि-दिशि तिमरहिं मिलियाई^४ । तिमि दिशि-दिशि जारहिं मिलियाई ।

जिमि रजनिहिं कमलिनि मुकुलिताई^५ । तिमि विरहिनि-वदनई मुकुलिताई ।
जिमि धरह कपाटउ दिग्राई^६ । तिमि वल्लभ-संपति दिशाई ।

जिमि चंदे^७ हि निज-कर-प्रसर-किये^८उ । तिमि पिय-केशहिं कर-प्रसर किये^९उ ।
जिमि कुवलय-कुसुमा विकसियऊ । तिमि कीरय-मिथुना विकसियऊ !

जिमि पीयै^{१०} पानहिं मधुराई^{११} । तिमि अघरह मधुरस-मधुराई^{१२} ।
जिमि जिमि बीतै^{१३} यामिनि-प्रहरा । तिमि तिमि विकीर्ण मृदु-रति-प्रहरा ।

जिमि नहिं शुक्रोदय दरसियऊ । तिमि चिडि शुक्रोद्गम दरसियऊ ।
घत्ता । तो चक्रकुलहें पंकजहें ताम्रकिरण-पूरित-भुवनोदर ।

बिरही नर-नारीजनहू जीवन देंत सम्-ऊगेउ दिनकर ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विश-कालिदि-काल-तबजलघर-छादित नभंतरालभा ।

धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविश^१ चल-मत्ता-लि-मेलभा ।

अगिरल-भुसल-सदृश धिर धारा वर्षे भरंत-भूतला ।

हृत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उदगत-तर कैंह नील शादला ।

षट् तडि^२ पतन-पतित-विकट-चल कुपित सिंह-दाहणा ।

नाचत मत्त-मोर-कलकल-रव-पूरित-सकल-कानना ।

गिरि-सरि-दरि-सरंत-सरसर-भय-बाणर-मुक्क-गीसणो ।

महियल-धुलिय-मिलिय-हुंदुह-सयवय-सालूर^१-भोसणो ।

घण-चिक्कल्ल-खोल्ल-खणि-खेइय-हरिण-सिंसिव-कय-वहो ।

वियसिय-णव-कलंब-कुसुमुगय-रय-पिजरिय-दिसिवहो ।

भुर-वइ-बाब-तोरणालंकिय-घण-करि-भरिय-णहहो ।

विवर-मुहोयरंत-जल-पवहारोसिय-अविस-विसहरो ॥

“पिय-पिय-पिय”-लवंत-वप्पीहिय-भगिय-तोय-विडुओ ।

सर-तीरल्ललंत-हंसावलि-भुणि-हल-बोल-संजुओ ■

जंपय-वूय-बार-वव-वंदण-चिंचिणि-पीणिपाजसो ।

वुटो भक्ति जस्स कालम्मि अएँ सुहयारि पाजसो ॥

भुग-कुलत्थ-कंगु-अव-कलव-तिलेसी-वीहि-भासया ।

फलभर-णविय-कणिस-कण-तंपड-णिवडिय-मुय-सहासया ॥

ववणय-भोय-भूमि-भव-भूरुह-सिरि-णरवइ-रमा सही ।

जाया विविह-धण-धुम-वेल्ली-भुम्म-पसाहणा मही ।

—आदिपुराण (२६-३०)

खंधावारह उप्परि अहणिसु । ता गायहिं वेसव्विउ पाउसु ।

मय-उलु तसइ रसइ बरिसइ धणु । पीयलु सामलु विरसइ मुरघणु ।

महि-णीहरिउ हरिउ बड्डइ तणु । पवसिय-पियहिं पियहिं तप्पइ मणु ।

फुल्ल-कलंब-तंबु दीसइ जणु । तिममइ तम्मइ भणि जूरइ जणु ।

सबि तळयडइ पडइ संजइ हरि । तरु कळयडइ फुडइ विहडइ गिरि ।

जलु परियलइ घुलइ धुम्मइ दरि । अहरय सरइ भरइ पूरे^२ सरि ।

जलु थलु सयलु जलुजि संजायउ । मग्गु अमग्गु ण किंपि वि णायउ ।

सरु कुसुम-सरु गिररिउ संघइ । विरहे^३ पंथिय पंथिय विघइ ।

—आदिपुराण (५० २४०)

^१ एक प्रकारका फंद

गिरि-सरि-दरि सरतः सरसर-भय-वानर मोचु विःस्वना ।

महियल घुलेउ-मिलेउ दुहुमि शतपत्र-शालूर-पोषणा ।
घन-कीचड़-सोल-खन-खेदित हरिन-शिलिव-कदंब-वहा ।

विकसित-नवकदंब-कुसुम-देगत्त-रज-पिंजरेउ दिशि-पथा ।
सुर-पति-चाप-तोरणालंकृत धन-करि-भरित नभ-थला ।

विवर-मुख-देरांत-जलप्रवह-ारोसेउ सविध-विषधरा ।
“पिय पिय पिय” लपत पपीहा, मांमेउ तोय-विदुआ ।

सरतीर-लेललंत-हंसावलि-ध्वनि-हलहल-संयुता ।
चंपक-खूत-वार-खल-खंदन-चिचिनि-श्रीणितायुषा ।

उठेउ भट्ट जासु कालेहिँ जो सुलकारि पावसा ।
मूंग-कुल्लि-कांगुन-जी-करोय-तिल-तीसी-धान-माषद्या ।

फल-भर नमेउ मँजरि कण लपट निबडेउ शुक सहस्रभा ।
व्यपगत-भोग भूमि-भव-भूरुह-श्री-नरपति-रमा-सखी ।

हुई विविध-धान्यद्रुम-वेली-गुल्म-प्रसाधना मही ।
—आदिपुराण (२६-३०)

स्कंधावारह^१ ऊपर अहनिश । तो नादहिँ विकारिया पावस ।

मृगकुल जसै-रसै वरसै घन । पीयल स्यामल विलसै सुर-धनु ।
महि नीलरिख हरित बाढे तनु । प्रवसित-प्रियहि पियहिँ तप्ये मन ।

फुल्लु फदंब ताम्र दीसै वन । तीमै तामै मणि मूरै जनु ।
तड़ि तड़तड़ै पडै रागे हरि । तरु कड़कड़ै फुटै बिहरै गिरि ।

जल धरिजलै चुरै घूमै दरि । अतिरय सरै भरै पूरै सरि ।
जल-थल सकल जलहिँ सं-जायेउ ॥ मार्ग-अमार्ग न कछुअहु जानेउ ॥

शर-कूसुम-सर नितांत साधे । विरहे पंथिक पंथिय बिधै ॥
—आदिपुराण (पृ० २४०)

३-भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

सीयल्ल-बेल्लि-तरुवर-गहणि । हिमवतहों दाहिण-गिरि-गहणि ।

जहिं वाघ-सीह-गण-गंडयाई । मय-मुग्गह-करि-भल्लू-सयाई ।
संवर-वेउल्लहैं रोहियाई । एणई जहिं पुल्लिहैं खोहियाई ।

जहिं संचरति बहु-मुग्गसाई । गत्ताई जाह् गिरु घग्घुसाई ।
जहिं परडा कोकंता भमंति । भिल्लिरि सज्जेल्लई गुमगुमंति ।

जहिं भिल्ल-मुल्लिदई गाहलाई । वीणंतई तरु-बेल्ली-हलाई ।
जहिं कुक्कुरंति साहामयाई^१ । भुल्लंतई तरु-साहा-गयाई ।

उड्डुणसीला तंबोल-लग्ग । जहिं हरि सज्जंता कहिं 'मि भग्ग ।
जहिं घुस्सरंत दाढा-कराल । सूलच्छहिं सहैं जुज्झंसि कोल ।

कंदुल्ल-गहर-गह्वभु जेत्यु । हरि-दुल्लिहैं जहिं दूसियउ पंथ ।
पंचालहिं यूणइ दारियाई । जहिं भिल्ली हरिणई भारियाई ।

जहिं गहिरई धारई परिभमंति । गिरु बायड-उल(ई) चुमचुमंति ।
जहिं वेस्लिहैं वेठिय तरुवराई । णं कोलहिं अवलंडण-पराई ।

—जसहर-वरिउ (पृ० ४०-४१)

सेणा-सेणाहिय,परियरिय । हिमवंतु घरेप्पिणु संचलिय ।

सोहइ गच्छंती पुव्वमुह । कुरुवंस-गाह-पत्थिय-पमुह ।
दीसइ सेलत्थलि काणणउं । महिसी-दुद'व साहा-घणउं

गाणा-भहिह-फल-रस-हरई । कत्थइ किलिगिलियई वाणरई ।
कत्थइ रहरतई सारसइ । कत्थइ तव-तत्तई तावसइ ।

कत्थइ भरभरियई णिज्झरई । कत्थइ जल-भरियई कंदरई ।
कत्थइ वीणिय बेल्ली-हलई । दिट्ठई मज्झंतई गाहलई ।

कत्थइ हरिणई उल्ललियाई । पुणु गोरी-गेयहु बलियाई ।

३-भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

शीतल्ल-बेलि तखर-गहना । हिमवंतहु दक्षिण-गिरि-गहना ।

जहँ व्याघ्र-सिंह-गज-नीड भाई । मृग दुग्रह करि-भाखू-खताई ।
साँभर बेकुल्ला रोहिताई । एणी जहँ पुलकित कूदियाई ।

जहँ संचरई बहु मृगुसाई । गतिहिं जहाँ निर घघसाई ।
जहँ परछा कोकता भ्रमंति । झिल्ली खच्चेले गुमगुमंति ।

जहँ भील-पुलिदा नाहराई । बीनता तरु-बल्ली-फलाई ।
जहँ कुक्करंति शाखाभृगाई । भूलता तरु-शाखा-गताई ।

उडुन-शीला तांबूल-लागु । जहँ हरि खादंता कतहुँ भागु ।
जहँ घुरघुरंति दाठा-कराल । शूलाक्षहिं संग जूझंति कोल ।

कंदुल्ल-गहर गर्वभा जहाँ । हरि हुल्लिहिं जहँ दुषियेउ पंथ ।
पंचासहु धुने विदारिताई । जहँ भीली हरिनिहिं मारियाई ।

जहँ गहिरै घारे परिभ्रमंति । नित बादल-कुलही चुमचुमंति ।
जहँ बेली-वेष्टित तरुवराई । जनु फीडै अकगुठन पराई ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेना सेनाधिप-परिचरिता । हिमवंत घरा-वन-संचलिता ।

सोहँ सो जाती पूर्वमुखा । कुखवंतनाथ-पाथिव-भमुखा ।
दीसँ शैल-स्थलि-काननऊ । महिषी दुग्ध इव शाखा-धनऊ ।

नाना महिरुह-फल-रस-धरई । कतहुँ किलकिलही वानरही ।
कतहुँ रसरक्ता सारसई । कतहुँ तप तपे तापसई ।

कतहुँ भरभरिया निर्भरई । कतहुँ जल-मरिया कंदरई ।
कतहुँ बीनै बेली-फलई । दीसँ भाजंता नाहरई ।

कतहुँ हरिना उल्ललियाई । पुनि गौरी-गेरुह बलियाई ।

कत्वइ हरि-गह-स्वकृतियई । करि-कुमुच्छलियई मोक्षियई ।

कत्वइ मुम्मइ जस्तिनि-मुनिउँ । खयरी-कर-वीणा रणरणिउँ ।

कत्वइ भसल-जलहिँ रणरणिउँ । कत्वइ सुएण किं किं भणिउँ ।

धत्ता । कत्वइ किणरहिँ गइज्जइ भवण-पियारउ ।

रिसइ-गाह-चरिउ फणि-गर-सुर-लोयहु सारउ ॥१॥

—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-संधव-कौंकण-कोसल । टक्क-हीर-कीर-खस-केरल ।

भंग-कलिंग-भंग-जालंधर । वच्छ-जवण-कुरु-गुज्जर-बब्बर ।

दविड-गउड-कण्णाड-वराड'वि । पारस-पारियाय-पुण्णाडवि ।

सुर-सुरट्ट-विदेहा लाड'वि । कौंग-वंग-मालव-पंचाल'वि ।

भागह-जट्ट-भौट्ट-गेवाल'वि । उड्ड-पुंड-हरिकुरु-भंगाल'वि ।

—आदिपुराण (पृ० ८८)

भुरसिधू सरिहिँ वेहलिय धरिवि, पइसरण करिवि ।

पुष्पावरेसु परितंडियाई, नइरट्टियाई ।

वेयड्ड गिरिहिँ मोइल्लयाई, सुधणिल्लयाई ॥

चंडाई मेच्छ-खंडाई ताई, दोसाहियाई ।

करवाले पिज्जिउ भज्ज-खंडु, पट्टविधि दंडु ।

मालव-भागह-वंग-गंग, कालिंग-कौंग ।

पारस-बब्बर-गुज्जर-वराड, कण्णाड-साड ।

आहीर-कीर-गंधार-गउड, गेवाल-चौड ।

चैईस-वेर-भर-ददुरडि, पंचाल-मंडि ।

कौंकण-केरल-कुद-कामरुव, सिंहल पट्ट ।

जालंधर-जायव-पारियाय, पिज्जिणिधि राय ।

पञ्चत-वासिणीसेस लेखि, गिय-मुह देखि ।

हेलाइ तिखंडावणि हरेखि, असि करि करेखि ।

—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

कतहूँ हरि-नख-भारियहूँ । करि-कुंभ उछरिया मौक्तिकाहूँ ।

कतहूँ सुनियै यक्षिणि-धुनिऊ । खेचरि-करे वीणा हनहनिऊ ।

कतहूँ अमर-कुल रुन-भुनिऊ । कतहूँ शुकेहिँ का का भनिऊ ।

जसा । कतहूँ किभरहिँ गाइऊ, धवण-पियारहूँ ।

ऋषभनाथ-चरित, फनि-नर-भुर-लोकहूँ सारऊ ।

—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सैधव-कोकण-कोसल । टक्क-ग्रहीर-कीर-खस-केरल ।

ग्रंग-कलिंग-गंग-जालंधर । वत्स-यवन-कुट-गुर्जर-बर्बर ।

द्रविड-गौड-कर्नाट-बराहड । पारस-पारिपात्र-मुन्नाड ।

सुर-सौराष्ट्र-विवेहा लाट । कोंग-बंग-मालव-वंधाल ।

मागध-जाट-भोट-नेपाल । उड़-पुड़-हरिकेल-भंगाल ।

—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिधु-सरिहिँ देहसिय धरव, प्रतिसरन करबी ।

पूर्वविरेहिँ परिसंस्थिताई, बैरस्थिताई ।

बेताड़ गिरिहिँ ओइल्लयाई, सुधनिल्लयाई ।

चंडाई म्लेच्छ-खंडाई ताई, दुःसाधियाई ।

करवाले जीतेउ आर्यखंड, प्रस्थापि दंड ।

मालव-मगध-गंग-गङ्गा-गंग, कालिंग-कोंग ।

पारस-बर्बर-गुर्जर, बराह, कर्नाट-लाट ।

आभीर-कीर-गंधार-गौड़, नेपाल-खोल ।

खेडीश-खेर-मर-बर्बुरिड, पंचाल-पंडि ।

कोंकण-केरल-कुट-कामरूप, सिंहल प्रभूय ।

जालंधर-यावध-पारिशात्र, जीतेहूँ राय ।

प्रत्यंतवासि निःशेष लेइ, निज मुद्राँ देइ ।

हेतहिँ तिरखंडावनि हरेइ, असि करे करेइ ।

—आदिपुराण (पृ० २३०-२३१)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

दित्यिण्णए जंवुदीवि भरहे । खर-किरण-करावलि-भूरि-भरहे ।

कोहेयउ गार्मि अस्थि देसु । णं वरणिऐं धरियउ विव्व वेसु ।

जहिं खलई जलाई स-विब्भमाई । णं कामिणि-कुलई स-विब्भमाई ।

भंगालई णं कुकुइत्तणाई । जहिं नील-गेत्त-णिद्धहिं तणाई ।

कुसुमिय-फलियहै जहिं उववणाई । णं महि-कामिणि-गव-जोव्वणाई ।

गोवाल-मुहालुंसिम-फलाई । जहिं भदुरई णं सुकयहो फलाई ।

मंशर-रोमंशण-नलिय-मांड । जहिं सुहिं णिसिण्ण गो-महिंसि-संड ।

जहै उज्जु-वणई रस-दंसिराई । णं पवण-वसेउ पणच्छिराई ।

जहै कण-भर-पणविम पक्क-सालि । जहिं दीसइ सयदलु सदलु सालि ।

जहिं कणिसु कीर-रिछोसि चुणइ । गह्वइ-सुयाहि पडिवयणु मणइ ।

छोक्करण-राव-रंजिय-मणेण । पहि पउ ण दिण्ण पंथिय-जणेण ।

जहिं दिण्ण कण्ण वणि मयउलेण । गोवाल-गेय-रंजिय-मणेण ।

जहिं जण-धण-कण-परिपुण्ण गाम । पुर-णयर-सुसीमाराम साम ।

घत्ता । रायउरु मणीहरु रयणंचिय घरु, तहिं पुरवरु पवणुद्धयहिं ।

खल-खिधहिं मिलियहिं गहयलि घुलियहिं, छिवइ व सगु सयंभुअहिं ।

जं छण्णउं सरसहिं उववणेहिं । णं विद्धउं वम्मह-मगणेहिं ।

कय-सइहिं कण्ण-सुहावएहिं । कणइ व सुर-हर-पारावएहिं ।

गय-वर-दाणोल्लिय वाहियालि । जहिं सोहइ चिरु पवसिय पिआलि ।

सर-हंसइ जहिं णेउर-रवेण । मउ चिक्कामंति जुवई-पहेण ।

जं णिय-भुयासि-वर-णिम्मलेण । धण्णुवि दुगउ परिहा-जलेण ।

पडिखलिय-वइरि-तोमर-भत्तेण । पंडुर-पायारि, णं जसेण ।

णं वेडिउ बहु-सोहग-भारु । णं पुंजीकय-संसार-सार ।

जहिं जिलुलिय-मरगय-तोरेणाई । खउदारई णं पउराणणाई ।

१ चर्चितचर्चन (जुगाली करना)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

विस्तीर्णं जंबुद्वीप-भरते । खरकिरण-करावलि भूरि भरित ।

यौधेय नाम है (एक) देश । जनु धरणी घारे^१ उ दिव्य-वेष ।
जहँ चले^२ जलाई स-विभ्रमाई । जनु कामिनि-कुलई स्व-विभ्रमाई ।

भृंगालै^३ जनु कुकविस्तनाई । जहँ नीलनेत्र-स्निग्धतनाई ।
कुसुमित-फलितहँ जहँ उपवनाई । जनु महि कामिनि नवयौवनाई ।

गोपाल-मुखा चुनिया फलाई । जहँ मधुरई सुकृतहू फलाई ।
मंथर-रोमंथन-चलित-गंड । जहँ सुख-निषण्ण गोमहिष-संड ।

जहँ द्रक्षु-वनई रस-दंशिराई । जनु पवन बसेउ पनच्चिराई ।
जहँ कण^४-भर-प्रनमी पक्वशालि । जहँ दीसै शतदल-सदल-शालि ।

जहँ मंजरि कीर-मंक्ती चुनै । गृहपति-सुताहिँ प्रतिबन्धन मनै ।
छोक्करत-राज-रंजित-मनेहिँ । पथ पद न दीन पंथिक-जनेहिँ ।

जहँ दीय कणं वने^५ भृंगकुलेहिँ । गोपाल-नीत-रंजित-मनेहिँ ।
जहँ जन-धन-कण-परिपूर्ण ग्राम । पुर-नगर-सुषीभाराम श्याम ।

घत्ता । राजपुर मनोहर रत्नांचित घर, तहँ पुरवर पवनोद्धतहिँ ।

चल-चिन्हहिँ^६ मिलिया नभतले घुरियाहिँ, ध्रुवे^७ हव सर्ग स्वयंभुजहिँ ॥३॥
जो छादित सरसेहिँ उपवनेहिँ । जनु विद्वे^८ उ मन्मथ-मार्गणेहिँ ।

कल-शब्दहिँ कणं-सुखावहेहिँ । कवणे^९ हव सुरघर-पारावतेहिँ ।
गज-वर-दानोल्लित-वाहिय-गलि । जहँ सोहँ चिर-प्रवसित-प्रियालि ।

सर-हंसहँ जहँ नूपुर-रवेहिँ । सृग चिक्कमंसि युवती-अभेहिँ ।
जो निज-भुज-सि-वर-निर्मलेहिँ । अन्यउ दुर्गह परिक्षा-जलेहिँ ।

प्रतिखलित-बैर-तोभर-भवेहिँ । पांडुर प्राकारा जनु यसेहिँ ।
जनु बेठे^{१०} उ बहु-सौभाग्य-भार ! जनु पुंजीकृत संसार-सार ।

जहँ विलुलित-भरकत-तोरणाई । चौद्वारहिँ जनु पीरावनाई ।

जहिं बबल-मंगलुच्छव-सराई । दु-ति-पंच-सप्त-भोमई^१ धराई ।

णव-कुंकुम-रस-छुटयाइयाई । विक्खित-दित-मोत्तिय-कणाई ।

गुरु-देव-पाय-पंकज-वसाई । जहिं सव्वई दिव्वई माणुसाई ।

सिरिमंतई संतई सुत्थियाई । अहिं कहि 'मि ग दीसहि दुत्थियाई ।

—असहर-चरित (पृ० ४, ५)

(४) मगधभूमि-वर्णन

खेडाम-गाम-पुरवर-विवित्तु । तहों दाहिणि दिसि थिउ भरह खेसु । *

तहिं मगह-देसु सुपसिद्ध अत्थि । जहिं कमल-रेणु-पंजरिय हत्थि ।

जहिं सुरवर-तछ-गंदण-वणाई । जहिं पक्क-सालि घण्णई तणाई ।

बथ-सय-हंसावलि-माणियाई । जहिं सीरसमाणई पाणियाई ।

जहिं कामघेणु-सम गोहणाई । घडदुद्धई जेहारोहणाई ।

जहिं सयल-जीव-कथ-भोसणाई । घण-कण-कणि-सालई करिसणाई

जहिं दक्खा-मंडवि दुहु सुयंति । यलपोभोवरि पंधिय सुयंति ।

जहिं हालिणि-कलरव-मोहियाई । पहि पहियई-हरिणा इव धियाई ।

पुंहुच्छु-वणई चउ-दिसु चलंति । जहिं महिस-सिंग-हय रस गलंति ।

जहिं मगहर-भरगय-हरिय-पिछ । मायंद-गोंछि गोंदलिय रिछ ।

वत्ता । तहिं पुरवर नामे रत्तागिहु, कणय-रण-कोडिहिं बडिउ ।

बलिबंड वरंतहों सुरवइहिं, नं सुर-णयर गयण-पडिउ ॥६॥

—नायकुमार-चरित (पृ० ६)

(५) सालव-ग्राम

एत्थत्थि अवंती नाम विसउ । महिवहु भुंजाविय जेण^१वि सउ ।

घत्ता । गंदंतहिं गामहिं विउलारामहिं, सरवरकमलहिं लच्छि-सही ।

गलकल-कैकधारहिं हंसहिं मोरहिं, मंडिय जेत्यु सुहाइ मही ॥२०॥

* धो-सीन-पाँच-सात तल्लेवाले (मकान)

जहँ घन-भंगल-तेसव-सराहँ । दुइ-पंच-सप्त-भूमिक घराहँ ।

नव-कुंकुम-रस-छट-आरुणाहँ । विस्तरिय-दीप्त-भौवितक-कणाहँ ।

गुरु-देव-पादपंकज-वशाहँ । जहँ सबै दिव्य मानुषाहँ ।

श्रीमन्तहिँ संतहिँ सुस्थिताहँ । जहँ कतहुँ न दीसै दुःस्थिताहँ ।

—जसहर-चरित (पृ० ४, ५)

(४) मगध भूमि-वर्णन

खेड़ाज-ग्राम-पुरवर-विचित्र । तहँ दक्षिणदिशि ठिठ भरत-ओत्र ।

तहँ मगध-देश सुपसिद्ध अस्ति । जहँ कमल-रेणु-पिञ्जरित हस्ति ।

जहँ सुरवर-तरु-नंदनबनाहँ । जहँ पक्व-शालि धान्यहिँ तनाहँ ।

वज्र-शत-हंसावलि-भाणिकाहँ । जहँ क्षीरसमाना पानियाहँ ।

जहँ कामधेनु-सम गोधनाहँ । घट-दूधी स्नेहारोधनाहँ ।

जहँ सकल-जीव-कृत-पोषणाहँ । घन-कण-कणियांहँ कर्षणाहँ ।

जहँ द्राक्षामंडपे^१ दुध-मुचंति । स्थलपयोपरि पंथिक सोवंति ।

जहँ हालिनि^२ कल-रव-मोहिताहँ । पथे^३ पंथिक हरिन इव ठिताहँ ।

पुंहु-इक्षु-वना चौदिशि चलंति । जहँ महिष शृंग-हत रस गिरंति ।

जहँ मतहर-भरकत-हरित-पिच्छ । माकंद-गुच्छ वधिता वृक्ष ।

घत्ता । तहँ पुरवर नामे राजगृह, कनक-रतन-कोटिहिँ गढेऊ ।

मलिवंद-धरंतह सुरपतिहँ, जनु सुर-नगर गगन पड़ेऊ ॥६॥

—गायकुमार-चरित (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

इहँ अहँ अश्वती नाम विषय । महि बहु भोगेउ अहिहि सबय ।

घत्ता । नंदतेहिँ ग्रामेहिँ विपुलारामेहिँ, सरवर-कमलेहिँ लक्ष्मि-सखी ।

कलकल-केकारेहिँ हंसेहिँ मोरेहिँ, मंडित यत्र सुहाइ मही ॥२०॥

^१ तनाहँ = केरी

^२ कल-मंजरी

^३ हलवाहेकी बहु

जहिं नुमचुमंति केयार-कीर । वर-कलम-सालि-सुरहिय-समीर ।

जहिं गोउलाई पउ विनिकरंति । पुंडुज्यु^१-दंड-खंडई चरंति ।

जहिं बसहु-मुक्क-हेवकार-धीर । जीहा-विलिहिय-पंदिणि-सरीर ।

जहिं मंथर-गवणई माहिसाई । दह-रमण्डू^२विय-सारसाई ।

काहलिय^३-वंस-रव-रतियाउ । बहुअउ घर कम्मि गुत्तियाउ ।

सकैय-कुडुंगण-पत्तियाउ । जहिं भीणउ विरहिं तत्तियाउ ।

जहिं ह्वालिणि-रुख-णिवद्ध-वक्खु । सीमावडु ण मुअइ कोवि जक्खु ।

झिम्मइ जहिं ऐवहि पवासिएहिं । दहि कूर खीर धिउ देसिएहिं ।

पव-पालियाइ जहिं बालियाइ । पाणिउ भिंगार-पणालियाइ ।

दितिऐं मोहिउ णिर पडिय-विंदु । जंगउ दक्खालि^४वि वयण-चंदु ।

जहिं चउपमाई तोसिम-मणाई । वण्णइ चरंति णहु पुणु तिणाई ।

उज्जेणि गाम तहिं गयरि अत्थि । जहिं पाणि पसारइ मत्त-हत्थि ।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४-सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ । बंधवहु मी संचारिज्जइ ।

जिह अलि-गंधे गउ संधारहु । तिह रज्जेण जीउ तं वारहु ।

भउ-सामंत-मंति-कय-भायउ । चित्तिज्जंतउ सव्वु परायउ ।

तंडुल-पसयहु कारणि राणा । णरइ पडंति काई अ-वियाणा ।

इज्जतल रज्जु^५लि दुक्खु गुणक्कउ । जइ सुहु कि ताऐं मुक्कउ ।

—आदिपुराण (पृ० २६५)

^१ लाल लाल और मोटे गन्ने

^२ शंभू (बालीनुमा कलिका बाबा)

जहँ चुमचुमति केदार-क्षीर । वर-कलम-शालि-भुरभित-समीर ।

जहँ गोकुलाई पथ विकसरति । पुङ्-ईल-दंड खंडहिं चरति ।

जहँ वृषभ मुक्त-हों ककाड-धीर । जीभा-विलिहित-नंदिनि-शरीर ।

जहँ मंथर गमनै माहिषाई । हृद-रमण-उड्डायउ सारसाई ।

काहली वंशि-रव-रक्तियाउ । वधुआ घरकमें गुप्तियाउ ।

संकैत-कुडध-गण-पंक्तियाउ । जहँ भीनउ विरहे तप्तियाउ ।

जहँ हालिनि-रूप-निबद्ध-धनु । सीमावट न मुवँ कोद यक्ष ।

जबै जहँ ऐस प्रवासिनेहिं । दधि-गूड-क्षीर-धिउ-हुत्सएहिं ।

प्रप-यालिकाहिं जहँ बालिकाहिं । पानिय-भुंगार-प्रणालिकाहिं ।

देतिअँ मोहेँउ अति पथिकवृन्द । चंगा द्राक्षालिब वदनध्वन्द ।

जहँ चौपदाई तोषित-मनाई । आन्यै चरति नहि पुनि तृणाई ।

उज्जेति नाम तहँ नगरि अस्ति । जहँ पाणि प्रसारै मत्त-हस्ति ।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४-सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

राज्यहि कारणे पितु मारिज्जै । बांधवहँ (पुनि) संचारिज्जै ।

जिमि अलि-गंधे गउ संहारा । तिमि राज्येहि जीवितजै आरा ।

भट-सामंत-मंत्रि-कृत भायउ । चित्तीयंतउ सब उपरागउ ।

तंडुल-पसरहँ कारणे राना । नरक पडति काई अ-विजाना ।

आरहु राज्यहु दुःख-गुरूकउ । मदी सुख का तेही मूकउ ।

—आदिपुराण (पृ० २६५)

(२) राज-दर्बार^१

अत्याग-भूमि^२ गज भणि विसण्ण । कणय-मय-रयण-विट्टरि गिसण्ण ।
 दो-वासई चमरई बहु पडंति । बहु-दुक्ख-सहासई णं घटंति ।
 सह-मंडवि खुज्जय-वावणाइ । णच्चंतइ णिह कोहुवाणाई ।
 बीणा-वंसई गेयई भुणंति । वेयालिय फफावय पुणंति ।
 श्याई जइवि णिह सुहयराई । बहु पुणु सुविरत्तहो^३ दुहयराई ।
 पोत्थय-वायणु आदत्त सरसु । मण-सवणहूँ जं जणि जणइ हरिसु ।
 तहिँ अवसरिँ पडिहारि बरेण । कणय-मय-दंड-मंडिय-करेण ।
 पइसारिय भड-सामंत-मंति । अणवरय भभइ जगि जाह किति ।
 पय-जुयलु णविठ बहु णरचरेहि । मउडग-कोटि-चुविय-अरेहि ।
 अवलोइय णर-वइ भई णवंत । पडियावयाई णावइ कुमिंत ।
 गोविट्ठि-णिबिट्ठ गरिद सब्ब । णिविडत्थवंत णं सुकइ-कव्व ।

—असहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

काम-भोग-सुह-रस-वसहो^४ । तहु वसुमइहि काई वणिज्जइ ।
 जं जं चितइ किपि मणे । तं तं सयलु^५ वि खणि संपज्जइ ॥
 जक्ख-मंको दढं वल्लहालिणं । मालई-मालिया कुकुमालेवणं ।
 उंचओ मंचओ चारु-सेज्जा-यलं । आवरोहारि सोभ्हं यणाणं थलं ।
 उण्हयं भोगेण तुप्प-धारा-हरं । रत्तओ कंबलो छणरंथं घरं ।
 पुक्कपुणेण सब्बं पि संजुत्तयं । सीय-यालम्मि तेणेरिसं भुत्तयं ।
 चंदणं चंदपाया पिया णेहली । मल्लिया-दामयं तार-हारावल्ली ।
 दाहिणो मंथरो मारुओ सीयलो । रुक्ख-कीलाणिओ पल्लदो कोमलो ।
 धल्लरी-मंडवो पोमजुत्तो सरो । वीयणं दोलणालीणओ सीयरो ।
 थद्ध-थद्धं दहि सीययं पाणियं । उण्हयालम्मि तेणेरिसं माणियं ॥

(२) राज-दर्बार

आस्थान^१-भूमि गड मन-विषण्ण । कनकमय-रत्न-विस्तर-निषण्ण ।

दो पासे^२हि चमरा मुहु पडंति । बहु-दुःख सहसै^३ जनु छडंति ।
सभ-मंडपे^४ कुब्जा-वामनाइ । नाचतै अतिकोटावनाइ^५ ।

वीणा-वंशिहि गीतहि श्रवन्ति । बैतालिक फंफावै स्तुवन्ति ।
एताइ^६ यदपि बहु सुख-कराई । मुहु पुनि सुविरक्तह दुखकराई ।

पुस्तक-वाचन आरभै^७उ सरस । मन-श्रवहै जनु जने^८ जनै हरष ।
तेहि अवसर प्रतिहारे^९हिं बरेहिं । कनकमय-दंड-मंडित-करेहिं ।

पइसारेउ भट-सामंत-मंशि । अनवरत भ्रमै जग जाह कीर्ति ।
पद-युगल नभै^{१०}उ मुहु नरवराहिं । मुकुटाग्र-कोटि-चुंवित-धराहिं ।

अवलोकै^{११}उ नरपति मोहिं नमंत । आ-मडिई^{१२} न्याहै कुमित्र ।
गोष्ठीहिं निविष्ट नरेन्द्र सव । निविडार्थवत जनु सुकवि-काव्य ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

कामभोग-सुख-रस-वसहु, तेहि वसुमतिहिं किमि वर्णिज्जै ।

जो जो चितै कछु मने, सो सो सकलहु क्षणे^१ संपज्जै ॥
यक्षपको(?)^२दुठ वल्लभालिगन । मालती-मालिका कुंकुमालेपन ।

ऊँचओ मंचओ चाह-शय्यातल । आवरीहारि सूक्ष्म स्तनाहूँ तल ।
उष्णओ भोजना तोपि धाराधर । रक्तओ कंबलो बंद-रंध्र धर ।

पूर्वपुण्येहिं सब हि संयुक्तक । शीतकालेहि तेहि ईदृश भुक्तक ।
चंदनी चंद्रपादा प्रिया स्नेहिली । मल्लिका-दामक तार-हाराबली ।

दाहिने मंथरो मास्तो शीतलो । वृक्षक्रीडानियो पल्लवो कोमलो ।
वल्लरी-मंडपो पद्म-युक्तो सरो । दीजना-दोलना नीरको शीकरो ।

गाढ-गाढ बही शीतल पानिय । उष्णकाले हि तेहिं ईदृश मानिय ।

फुल्लियासा-कयंबोह-धूलीरओ । मत्त-भाऊर-वंदस्स केथारओ ।

पीर-धारा मुयंतंबु-वाह्जम्फुणी । संगया सूहवा पासि सीमंतिणी ।
गिणालं मंवरं गिक्कयं भूयलं । धावमाणं रयालं पणाली-जलं ।

इट्टु-गोद्दी-विसिट्ठेहिं विण्णाययं । दिव्व-मंघव्वयं कव्वयं पाययं ।
विज्जु-भाला-फुरंतं णहं दिप्पहं । तस्स मेहागमे तं पि सोक्खावहं ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेसा-बाजार)

वेसा-वाडहं भत्ति पइट्टउ । मयरकेउ पुरवेसहिं दिट्टउ ।

कावि वेस चितइ गय-सुण्णा । ए थण एयहो णहहिं ण भिण्णा ।
काजि वेस चितइ किं वड्ढियं । पीत्तालय एएण ण कइडियं ।

कावि वेस चितइ किं हारे । कंठु ण छिण्णउ एण कुमारे ।
कावि वेस अहरग्गु सम्पपइ । भिज्जइ क्षिज्जइ तप्पइ कंपइ ।

कावि वेस रह-सलिले सिचिय । वेवइ वलइ धुलइ रोमंचिय । . . .
धत्ता । ता वीणा-कलरव-भासिणिए देवदत्तए रायविलासिणिए ।

हिय-उल्लए कामदेउ ठयिउ कंय-मंजलि-हत्थे विण्णविउ ॥१॥
“परमेसर ! काहण्णु विमप्पहि । जिह मणु तिह घर-मंगणु चप्पहि ।

तं णिसुणिभि उवयरियउ तेत्तहं । तं तहे रमणिहे मंदिरु जेतहे ।
आणु दिण्णु णिसण्णउ रयणिहिं । णिव्वत्तिय-भज्जण-भूसण-विहिं ।

भोयणु भुत्तउ भत्ता-भुत्तउ । सरसु कइदे कव्वु व उत्तउ ।
कामे कामिणि भणिय हसेप्पिणु ।

—गायकुमार-धरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-धर्म

समवयस-कुरर-सहं चलिउ जाव । पारंभिय थुइ णग्गुविहिं ताव ।

णन्वन्ति विलासिणि गीउ रम्म । गायण गायंतिहिं सुक्किय-कम्म ।
गय णंदण-वणि मंडव-दुवार । वर-तोरण-मंडिउ रयण-फार ।

तहिं किउ जं जोग्गु पुरोहिण । आमारु कुमगाणि रोहिण ।

फूल-आशा कदंब-बोध-बूली-रजो । मस्त-मायूर-वृन्दों को केकारवो ।

नीरघारा मुचंत-अंबुवाह-द्वुनी । संगता सूद्धवा पास सीमंतिनी ।
निर्गल मंदिर दिक्किथं भूतलं । धावमानं रजालं प्रणाली-जलं ।

दृष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिं विद्याचयं । दिव्यगंधर्वकं कावियं पाययं ।
विज्जुमाला-फुरंतं नमं दिक्प्रभं । तासु मेघागमे सोऽसौ सौख्यावहं ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिं भट्ट पइठेँउ । मकरकेतु-पुरवेशहिं देखेँउ ।

कोइ वेश्य चिंतै गति-शून्या । ए थस एतहैं नखेँहि न भिन्ना ।
कोइ वेश्य चिंतै का नादिय । नीलालक एतेहिं न कादिय ।

कोइ वेश्य चिन्ता की हारेँ । कंठ न छिन्देँउ एहिं कुमारेँ ।
कोइ वेश्य अशरास ससपेँ । भिज्जै-खोभै-तापै-कपेँ ।

कोइ वेश्य रति-सलिलेँ सीँचिय । वेपेँ बलै घुरै रोमांचिय ।
धत्ता । तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्तआ राज-विलासिनिया ।

हिय-उल्लस्य कामदेव आपेँउ कृत-प्रांजलि-हाथेँ विज्ञापिय ॥१॥
“परमेश्वर ! कारुण्य-वियापै । जेँहि भन तेँहि घर-आंगन आपै ।”

सो सुनिया उपकरियउ तेँतहिं । सो तेँहि रमणिहिं मंदिर जेँतहिं ।
अन्यो धीनु निषण्णउ रजनिहिं । पूरावेँउ मज्जन-भूषण-विधि ।

भोजन भुक्तउ मात्रायुक्तउ । सरस कवीन्द्रेँ काव्य'ध उक्तउ ।
कामेँ कामिनि भनियो हंसिके ।

—शायकुमार-चरित (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

सभवधस-कुमार-संग ले बलेँउ जब्ब । प्रारंभेउ स्तुति नगुडिहिं तब्ब ।

नाचंति विलासिनि गीत रम्य । गायन गायंती सुकृत-कर्म ।
गड नंदनवन-मंडप-द्वार । धरतीरण-मंडित , रतन-स्फार ।

तहें किउ जो योग्य पुरोहितहीँ । आचार कुमार्ग-निरोधिह्यहीँ ।

सुपहृदुड मंडव-मज्झि जाम । धरु दिट्ठुड सज्जण-जणहिं ताम ।

चउरिइ^१ णिविट्ठु कंदप्प-मुत्ति । पासेहि णिवेसिय तासु पत्ति ।

अगगइ पयक्खु किउ घूमकेउ । किउ होमु द्वुणेप्पिणु तिब्ब-तेउ ।

अम्मय-मइ पाणि करेण गहिउ । सीयारु पमेल्लिउ ताहु अहिउ ।

तहो^२ दिण्ण कण्ण विरइउ विवाहु । सम्भेहिं उच्चरिउ "साहु साहु" ।

णवयारिवि मायारि कण्ण सहिउ । णिगण्ड वरु एहु विवाहु कहिउ ।

—जसहर-वरिउ (पृ० २१)

(ग) रानिवोका जीवन

क'वि अलय-तिलय देविहि करइ । क'वि आदंसणु अगगइ धरइ ।

क'वि अप्पइ वर-रयणाहरणु । क'वि लिप्पइ कुंकुमेण धरणु ।

क'वि धन्वइ गायइ महुर-सर । क'वि पारंभइ विणोउ अवर ।

क'वि परिरक्खइ णिसियासि करी । क'वि वारि परिट्ठिय दंडधरी ।

अक्खणउ कावि किपि कहइ । दिण्णउ^३ कणइल्लु कावि दहइ ।

क'वि वार वार विणएँ णवइ । क'वि सुरसरि-सर-सलिलहिं णवइ ।

क'वि मालउ चेलिउ उज्जलउ । डोयइ सब-लहणु सुपरिमलउ ।

—आदिपुराण (पृ० ३६)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

साहि धरणि मरुएवि भठारी । जाहि रुव-सिदि अइ-गरुधारी ।

अमरहँ पंतिइ पय-पणवंतिइ । लंघियाइँ अम्हइँ णहयंतिइ ।

कमयलराएँ काहँ गविट्ठु । एम णाहँ णेउरहिं पधुट्ठु ।

पण्हिहि रत्तउ चित्तु पदंसिउँ । अंगुलियहिं सरसत्तु पयासिउँ ।

अंगुट्ठणइह जं गूढइँ । गुप्फहँ तं किर पिसुणइँ मूढइँ ।

शीरोमउ विसिरिउ नट्टुलियउ । मसिणउ सोहियाउ उज्जलियउ ।

अंजउ कमहाणिइ ओहरियउ । दिट्ठु जं खल-मित्तहँ किरियउ ।

सु-पईठेउ मंडप-माँझ जख्ख । वर देखेँउ सज्जन-जनेहिँ तन्न ।

चचरे^१ निविष्ट कंबपं-मूर्ति । पासेहिँ निवेसेउ तासु पत्नि ।
आवेँहिँ प्रदक्षणेँउ धूमकेतु । किउ होम होमावन तीव्र-सेज ।

अमृतमय-पाणि करेहिँ गहेँउ । शीत्कार प्रमेलत^२ स रहिँ अहिउ ।
तहँ दियउ कन्याँ विरचेँउ विवाह । सर्वेहिँ उज्ज्वरेँउ 'साधु साधु' ।

नवकारिहु मायेर कन्याँ-सहित । निर्-गाउ वर एहु विवाह कथित ।

—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

कोई मलय-तिलक देविहिँ करई । कोई आरसिहीँ आगे धरेँई ।

कोई अपने वर-रतनाभरना । कोई लेपै कुंकुमहीँ चरणा ।
कोई नाचै गावै मधुर-स्वरा । कोई प्रारंभे विनोद अपरा ।

कोई परि-रक्षै निशित-नासि करी । कोई द्वारे परि-ठिउ दंडवरी ।
आस्थानहु कोई किछू कहई । दीनेँउ कनइल्लु^३ कोई बहई ।

कोई बार बार विलये नमई । कोई सुरसरि-सर-सलिलेहिँ स्नपई ।
कोई झालउ चोलिउ उज्ज्वलउ । धोवै सब सहण^४ सुपरिमलउ ।

—आदिपुराण (पृ० ३६)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि धरनि मरुदेवि भटारी^५ । जाहि रूपखी अति गुस्कारी ।

अमरन् पंक्तिहिँ पद-अणमंतिह । लंघायऊ हमरो नख-पंक्तिह ।
कमलल रागे काहू गवेषिउ । ऐहि न्याई^६ नूपुरेहि प्रघोषिउ ।

पाँणिहिँ रक्तउ चित्त प्रदर्शै । अंगुलिधहिँ सरलत्व प्रकाशिउ ।
अंगुठ-उन्नति ही जिमि गूढा । गुल्फउ सो फुर पिशुना मूढा ।

नी-रोमउ विमिरिउ वत्तुलियउ । मसुणउ सोहिधांउ अंगुलियउ ।
जंघउ कमहानी अव-चरियऊ । दीसेँउ जनु खल-मित्रहँ किरियउ ।

^१ खोबती

^२ कर्ण-शूल

^३ सहेंगा (१)

^४ भटारिका=भटारानी

गूढहै गरवइ-भंता भासइ । कायरणाई व रह्य-समासहै ।
 भिविड-संवि-बंनहै णं कव्वहै । देविहि जण्हुयाई^१ अइमव्वहै ।
 ऊर्य-खंभ-गराहिब-वमणहु । तोरण खंभाई^२ व रह-भवणहु ।
 जेण स-सुर-गरु तिहुयणु जित्तउ । कामतच्चु जं देवहिं वुत्तउ ।
 दिण्ण थत्ति तहु सोणी विवहु । किं वण्णमि भरुयत्तु नियं बहु ।
 घत्ता । गंभीर गाहि तहि मज्झु किमु, उयरु स-तुच्छउ विट्टु मई ।
 संसगावसे गुणु कासु हुउ, जो णवि जायउ जम्मि सहै ॥१५॥
 तिवली-सोवाणेहिं चडेप्पिणु । रोमावलि-कुहिणी लंघेप्पिणु ।
 सिहिण-गिरिदारोहण-दोरइ । लग्गहु वम्महु मोत्तिय-हारइ ।
 पिय-वसियरणु वसइ भुय-भूसइ । सुइ-सोहगु जाहि हत्ययलइ ।
 जेह-बंघु मणि-बंघि परिट्टिउ । लायण्णे^३ समुद्धु णं संठिउ ।
 जाहि तणउं तं जणिय-वियारउं । महुरउ इयरउ केरउ सारउ ।
 कंठलीह णउ कंबु पावइ । पर-सास-ऊरिउ कहै जीवइ ।
 णियउ भिविट्टउ जिय-ससि-कंतिहि । घोयहि धवलहि गाई पवालउ ।
 अहर-बिबु रेहइ रायालउ । मुक्तावलियहि भाई पवालउ ।
 अम्हहै ठाइ कयाइ णं समुहु । उज्जुहु णासावंसु वि दुम्मुहु ।
 भउंहुउं वंक्त्तणु^४ वि ण सहियउ । णयणहिं जपि^५ व कण्हु कहियउ ।
 णिसि-विणि ससि रवि गयण विलंविथ । विणि^६ वि गंडयलइ पडिनिविंथ ।
 कुंडल-सिरि वहंति धवल-च्छिहि । जिण-जणगियहि सलक्खण-कुच्छिहि ।
 कुडिलासय भाल-यलि गिरंतर । मुह-कमलहु घुलंति णं महुयर ।
 अवह^७ वि ताहै भारु बिंदरेउ । मुह-ससहर-भएण णं तसरउ ।
 तरुणिहे पिट्ठि पट्टउ दीसइ । कुसुम-रिक्ख-मीसियउ बिहासइ ।

—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

गूढा नरपति-संभा भाषा । व्याकरणहिँ इव रचित-समासा ।
निविड-संधि^१-बंध जनु काव्या । देवि जाहूवी इव अतिभव्या ।

ऊह-संभ नराधिप-दमनहँ । तोरण-संभा इव रति-यवनहँ ।
जातेँ स-सुर-नर-त्रिभुवन जीतउ । कामतत्त्व जो देवेँहिँ उक्तउ ।

दीन थाप तेँहिँ श्रोणीबिबहु । का वरनौ गरुडत्त्व चित्तबहु ।
घत्ता । गंभीर नाभि तहिँ माँझ कृश, उदर स-तुच्छउ देखु मई ।

संसर्ग बसे गुण कासु हुयेउ, जो नहिँ जायेउ जन्मतेँई^२ ॥१५॥
शिवली-सोपानेहिँ चढेविय । रोमावलि केँहुनी लंघेविय ।

स्तनक-गिरीन्द्रारोहण-डोरा । लागहु मन्मथ मौक्तिकहारा ।
प्रिय-वशिकरण वसै भुज-मूलहिँ । शुचि सौभाग्य जाहिँ हृत्पतलहिँ ।

स्नेहबंध मणिबंध परिट-ठिउ । लावण्य समुद्र ना सं-ठिउ ।
जाहिकेर सो जनित-विकारा । मधुरउ इतरहु-केरउ खारा ।

कंठलीहिँ नहिँ कंबू पावै । पर-स्वासा-पूरित किमि जीवै ।
निकट-निविष्टउ जित-शशि-कान्तिहिँ । धोवै धवलहिँ न्याई प्रवालहिँ ।

अधर-बिब रोषै रागासउ । मुक्तावलियहिँ न्याई प्रवालउ ।
हमरे ठहर कदाचि न संमुख । ऋजुहु नासा-बंधउ दुमुख ।

भौँहउ बंकपनहु नहिँ सहियउ । नयनहिँ जल्पिय कण्हँ कहियउ ।
निशि-दिन रवि-शशि गगने लंबिउ । दोऊ गंद-तलैँ प्रतिबिंबउ ।

कुंडल-श्री वहंत धवलाक्षिहिँ । जिन-जननियेहिँ स-लक्षण-कुक्षिहिँ ।
कुटिलासक भालतले निरंतर । मुखकमलहु घुरंति जनु मधुकर ।

अवरउ ताहँ भार-विवरेरउ । मुख-शशधर-भरेहिँ जन तमसउ^३ ।
तसणिहिँ पृष्ठ पईठेउ दीसै । कुसम-ऋक्ष-मिश्रितउ विभासै ।

—आदिपुराण (५० ३१-३२)

^१ संध (अपभ्रंश काव्योंमें संधि और कड़वका कम होता है)

^२ संघकार

राएँ गड निध-सिविरहु तरंतु । . . . पत्तउ गुरसरि-जल-मञ्ज-ठाणु ।

जोयवि गंगहि सारसहें जुयलु । जोयइ कंतहि थण-कलस-जुयलु ।

जोयवि गंगहि सुललिय-तरंग । जोयइ कंतहि तिवली-तरंग ।

जोयवि गंगहि आवत्त-भवेणु । जोयइ कंतहि बर-णाहि-रमणु ।

जोयवि गंगहि पम्फुल-कमलु । जोयइ कंतहि पिउ-वयण-कमलु ।

जोयवि गंगहि वियरंत मच्छ । जोयइ कंतहि चल-दीहरच्छ ।

जोयवि गंगहि भोत्तियहु पति । जोयइ कंतहि सिध-दसण-पति ।

जोयवि गंगहि मत्तालि-माल । जोयइ कंतहि धम्मेल्ल णीस ।

घत्ता । णिय-गेहिणि वम्मह-वाहिणि, देवि सुलोयण जेही ।

मंदाइणि षण-सुह-दाइणि, दीसइ राएँ तेही ॥७॥

—आदिपुराण (पृ० ४६)

(क) नारी-मख-शिक्ष—

णिय वणिगा कणय-उरहों मयच्छि । दिट्ठा वरेण णं मयणलच्छि ।

जो कंतहु गह-यसि दिट्ठु राउ । मुहु मानइ सो गह-यर-णिहाउ ।

चारसु गहहें एए कहंति । अंगुट्ठय परमुण्णय वहंति ।

गुप्फहें गूढत्तणु जं धरंति । णं भुअणु जिणहु मंतुं व करंति ।

अंध-जुयलउ गेउर-दुएण । वणिज्जइ णं घोसे^१ दुएण ।

वगइ वम्महु बहु-विग्गहेण । जण्ठुय संधाएँ परिग्गहेण ।

ऊरु-यंभहिं रइयर अणेण । रेहइ मणि-रसणा^१ तोरणेण ।

कडियल-मरुयत्तणु तं पहाणु । जं धरिया मयण-णिहाण-ठाणु ।

मणि चित्तवंतु सय-खंडु जाहि । सुच्छोयरि किह गंभीर-णाहि ।

सो सिय ससि-वयणहे^१ तिवलि-भंग । लायण-जलहों णावइ तरंग ।

वण-थइ दत्तणु परमाण णासु । सुय-जुयलउ कामुय-कंठ-यासु ।

गीवहे^१ गइवेयउ हिय-हारि । बद्धउ चोरुं व रुवावहारि ।

अहसलउ वम्मह-रस-णिवासु । दंतहि जिज्जिउ भोत्तिय-विलासु ।

^१ काची (करधनी) = कटिका आभूषण

राय गऊ निज शिविरेहिँ तुरंत । . . . । पायउ सुरसरि-जल-मौक्त धान ।

जोयउ गंगहिँ सारंसहें युगल । जोवें कांता-स्तन-कलश-युगल
जोयउ गंगहिँ सुललित-तरंग । जोवें कांता-त्रिवली-तरंग ।

जोयउ गंगहिँ आवतं-भ्रमण । जोवें कांता-वर-नाभि-रमण ।
जोयउ गंगहिँ प्रफुल्ल कमल । जोवें कांता-प्रियवदन-कमल ।

जोयउ गंगहिँ विचरंत भच्छ । जोवें कान्ता-चल-दीर्घ-अक्ष ।
जोयउ गंगहिँ मोतियहु पाँति । जोवें कान्ता-सित-दशन-पाँति ।

जोयउ गंगहिँ मत्तालिमाल । जोवें कान्ता-धम्मिल्ल^१-नील ।
घत्ता । निज-गेहिनि मन्मथ-बाहिनि, देवि सुलोचन जैसी ।

मंदाकिनि जन-सुख-दायिनि, दीसै राजहिँ तैसी ॥७॥

—आदिपुराण (पृ० २६)

(क) नारी-नख-शिल—

निज वर्ण कनक-उरहोँ मुगाक्षि । दीसति वरेहिँ जिमि मदन-लक्ष्मि ।

जो कंतह नभ-तल देखु राव । मुहु भावें सो नभचर-निधाव ।
चारुत्व नभहें ईहें कहति । अंगुठुक-परमुन्नत वहति ।

गुल्फा गूढतन जो धरति । जनु भुवन-विजय मंत्र इव करति ।
जंघा-मुगलउ नूपुर-द्वयेहिँ । वर्णिज्जै जनु घोषे ह्वयेहिँ ।

बलौ मन्मथ बहु-विग्रहेहिँ । जानू संधान-परिग्रहेहिँ ।
ऊरु-थंभहिँ रतिघर ऐहीहिँ । राजै मणि-रसना-तोरणेहिँ ।

कटितल गरुतन सो प्रधान । जनु धरिय मदन-निधान-धान ।
मणि चितवत शतखंड जाह । तुच्छोदरि कहै गंभीर नाभि ।

शेषिय शशिवदनहें त्रिवलि-भंग । लावण्य जलहें नविही तरंग ।
स्तन-कठिनत्वहु परमान-नाश । भुज-भुगलउ कामुक-कंठपाश ।

ग्रीवहें गतिवेगउ हृदयहारि । बलउ चोर इव रूपग्रहारि ।
पद्मरत्नउ मन्मथ-रस-निवास । दतेहिँ जीतेँउ मौक्तिक-विलास ।

घत्ता । जह भउहाँ कुडिलत्तणेण, णर सुरवणुस्सेण पह्थमय ।

तो पुणु वि काहै कुडिलत्तणहो, सुंदरि-सिरि घम्मिल्ल-गय ॥१७॥

—गायकुमार-चरि (पृ० १२)

(घ) क्षुपिता नायिका—

‘हेट्टामुह बहू वरेण भणिया । किं हुइ तुहूँ मलिणाणणिया ।

घणु सोहइ एक्काइ विज्जुलइ । वणु सोहइ एक्काइ कोइलइ ।

इह सोहमि हुँ एक्काइ पहुँ । गुरु-वयणु करेवउ तोवि मई ।

भा रुसहि सज्जण-वच्छलिइ । अलि-णील-कुडिल-भउँ-कोतलिइ ।

ते वयणे रोस-णियत्तणउँ । जायउँ तहि रम्मु पेम्मु घणउँ ।

वप्पिल संपाइउ रमण-वसा । तडि-रय-तडि-वेयहु तणिय ससा ।

सल-णयण-भुयल-णिज्जिय-हरिणि । रइकता मयणवई तसणि ।

—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

ते णव वंशव सहूँ परिवारे । सोउ करंति दुक्ख-वित्त्यारे । . . .

सा सिवएवि रुयइ परमेसरि । “हा देवर ! पर-भउ-गय-केसरि ।

हा किं जीविउँ तिणु परिणियउँ । कोमल-वउ ह्वय-वहि किं हुणियउँ ।

हा पयाइ किं किउँ पेसुण्णउँ । हा किं पुरि-परिभमहुँ ण दिण्णउँ ।

हा कुल-धवल कौव विद्धंसिउ । हा जय-सिरि विलासु किं णिरसिउ ।

हा पहुँ विणु सोहइ ण धरेणु । चंद-विवज्जिउँ णं गयणंगणु ।

हा पहुँ विणु दुक्खे पुरु रुण्णउँ । हा पहुँ विणु माणिणि-मणु सुण्णउँ ।

हा पहुँ विणु को हाळ धणंतरि । को कीलइ सरहसुं व सरवरि ।

पहुँ विणु को जण-दिट्ठिउ पीणइ । कंदुय-कील देव को जाणइ ।

हा पहुँ विणु को एवहिं सुहउ । पहुँ आपेक्खवि मयणु वि इहउ ।

घसा । यदि भीह्रीं-कूटिलतनेहिं, तर सु-धनु रहेहिं प्रभामय ।

तो पुनिहु काई कूटिलतनहीं, सुंदरि श्री-धम्मिल्ल-गत ॥१७॥

—णायकुमार-चरित (पृ० १२)

(घ) कुपिता नायिका—

हेट्टामुंह बधु बरेहिं भनियौ । “का बुइ तुहूँ मलिनाननिया ।

घन सोहूँ एकइ विज्जुसई । वन सोहूँ एकइ कोइलई ।

ऐंहिं सोहीं मैं एकइ तुहईं । गुरुवधन करेवउ तोउ मईं ।

ना रुसहु सज्जन-वत्सलिई । अलि-नील-कूटिल-भी-कुत्तलिई ।

तव वदने रौषयित्तनऊ । जायउ तहूँ रम्य-प्रेम-घनऊ ।

बप्पिल सं-पायेउ रमण-वशा ! तडि-रज-तडि-वेगहूँकेर स्वसा ।

चल-नयन-मुगल-निर्जित-हरिनी । रतिकंता मदनवती तरुणी ।”

—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

सो नव-बांधव-संग परिवारे । सोउ करति दुःख विस्तारे ।

सा शिवदेवि रौंवे परमेश्वरि । “हा देवर ! परभट-नाज-केसरि ।

हा का जीवित तुण परिगणियउ । कोमल-वय हुतवहे का होमियउ ।

हा प्र-जाइ का किउ पैशुन्यउ । हा का पुरि-परिभ्रमउ न दीनेउ ।

हा कुल-धवल कैस विध्वसेउ । हा जयश्री विलास का निरसेउ ।

हा तैं विनु सोहूँ न धरांगन । चंद्र-विवर्जित जनु गगनांगन ।

हा तैं विनु दुःखे पुर रछउ । हा तैं विनु भानिनि-मन सुअउ ।

हा तैं विनु को हार बनलहे । को श्रीई सरहंस'ब सरवरे ।

तैं विनु को जतदृष्टिहिं प्रीणै । कंदुक-श्रीढ देव ! को जानै ।

हा तैं विनु को ऐसो सुअउ । तैं आपेक्षिय मदनउ दूखउ ।

हा पई विणु गिय-गोत-ससंकहु । को भुय-बलु समुह-विजय-कहु ।

हा पई विणु सुणुजई हियउल्लई । को रक्खइ मेरउ कळउल्लई ।

छार-रासि हूयउ पविलोयउ । एव बंधुवग्गे सो सोइउ ।

पंजलीहिं मीणावलि-माणुई । धादवि सव्वहिं दिणुजई पाणिजई ।

—उत्तरपुराण (५० ३४)

(५) युद्ध

छुडु गज्जिय गुरु-संगाम-भेरि । नं भुक्खिय तिहु-यण गिलिखि मारि ।

छुडु गिगउ भुय-बलि साहिमाणि । छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि ।

छुडु काले नीणिय दीहु-जीहु । पसरिय माणुस-मंसासणीहु ।

थिय सोयवास जीविय-गिरीहु । डोल्लिय गिरि रंजिय गहणि सीहु ।

छुडु भद-भारे दलहलिय बरणि । छुडु पहरण-फुरणे हरिउ तरणि ।

छुडु चंदबलाई पलोइयाई । छुडु उहयवसाई पधावियाई ।

छुडु मच्छर-वरियई बड्ढियाई । छुडु कोसहु खगहिं कड्ढियाई ।

छुडु चक्कई हत्युगभियाई । छुडु सेल्लई भिच्चहिं भीमयाई ।

छुडु कौतई धरियई समुहाई । घूमवई जायई दिम्मुहाई ।

छुडु मुट्टि-णिवेसिय लउठि-दंठ । छुडु पुंसुज्ज-गुणि गिहिय कंड ।

छुडु गय कायर थरहरिय-प्राण । छुडु डोइय संदण नं विमाण ।

छुडु भैठ-वरण-चोइय-मथंग । छुडु आसवार-बाहिय-सुरंग ।

वत्ता । छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णई जाम हणति परोप्पह ।

—आदिपुराण (५० २८८)

जयसिरि^१-रामालिगण-सुद्धई । एक्कमेक्क पहरतहं कुद्धई ।

असि-संधट्टणि उट्टिउ हुयवट्ट । कडकडंतु सोसिउ सोणिय-दहु ।

दसवि दिसा सई सेण पलिउई । पक्खर-चमरई बिभई छतई ।

ता पळिवक्ख-महर-भय-तट्टुई । महुमहबलु दस-दिसि सह णट्टुई ।

^१ कृष्ण-वरासंघका युद्ध

हा तै^१ विनु निजभोज-शशांकहु । को भुज-बल-समुद्र-विजयांकहु ।

हा तै^१ विनु सुखउ हृदयुल्लउ । को राखै मेरो कढयल्लउ ।
क्षार-राशि होयउ प्र-विलोकउ । इमि वंधू-वर्गे सो सोयउ ।

प्रांजलीहि^१ भीनावलि-मानिउ । स्नाइब सर्वहि^१ दिअउ पानिउ ।

—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

यदि गर्जिय गुरु-संग्राम-भेरि । जनु भुक्खिय त्रिभुवन गिलवि भारि ।

यदि निर्-गल भुजबले^१ साभिमान । यदि एतहि^१ आयउ चक्रपाणि ।
यदि काले^१ लेलिय दीर्घ-जीह । पसरिय मानुष-मांसाश^१ नीह ।

ठिय लोकपाल जीवित-निरीह । डोलिय गिरि गर्जिय गहने^१ सीह ।
यदि भटभारे^१ दलदलिय धरणि । यदि प्रहरण-फुरणे हरे^१ उ तरणि ।

यदि चंद्र-बलाई प्रलोकिताई । यदि उभय-बलाई प्रधाविताई ।

यदि मत्सर-चरितहैं बढियाई । यदि कोपहैं लङ्गह कढियाई ।
यदि चक्रे^१ हाण-उट्टाइयाई । यदि सेलहैं भृत्येहि^१ भ्रमियाई ।

यदि कुन्तहैं धरियहैं संमुलाई । धूमंघा जावै^१ दिग्मुखाई ।
यदि मुष्टि-निवेशिय जउरि-दंड । यदि पुंख-उज्-ज्यागुणे^१ निहित-कांड ।

यदि गज कायर धरहरिय प्राण । यदि डोइय स्पंदन जनु विमान ।
यदि मेंठ^१-चरण-चोदित-मतंग । यदि आसवार-चालिय-तुरंग ।

घत्ता । यदि यदि कारणे वसुमतिहि, सेनइ जन्व हनंसि परस्पर ।

—आदिपुराण (पृ० २८८)

जय-श्री-रामा-लिंगन-सुखहैं । एक-एक प्रहरंतहैं कुठहैं ।

असि-संघटने^१ उट्ठै^१ उ हुसवहैं । कडकडंत शोषै^१ उ शोणित-बह ।
दसउ दिशागई तेहि^१ प्रलिप्तहैं । पक्षर-जमरै^१ चिन्हैं छत्रहैं ।

सो प्रतिपक्ष-प्रहर-भय-वस्तउ । मधुमय-बल दशदिशि पथ नष्टउ ।

पोरिस-गुण-विभाविय-वासउ । “हणु” भणंतु सहै घाइउ केसउ ।

परहरि तुरय-रहिण संचूरइ । सारइ दारइ मारइ जूरइ ।
धीरइ ह्मकारइ पञ्चारइ । हणइ वणइ विहणइ विणिवारइ ।

दमइ रमइ परिभमइ पयट्टइ । संबट्टइ लोट्टइ आवट्टइ ।
सरइ धरइ अमहरइ न संचइ । खंचइ कुंचइ लुंचइ वंचइ ।

उल्लालइ बालइ अप्फालइ । रूसइ दूसइ पीलइ हूलइ ।
ईहइ संखोहइ आवाहइ । रोहइ मोहइ जोहइ साहइ ।

अंत ललंतहैं गाढहैं ताढइ । मंड-मुंड-खंडोहहैं पाढइ ।
वेढइ उब्बेढइ संवाणइ । रक्खइ भुक्खारीणहैं पीणइ ।

वगइ रंगइ गिगइ पविसइ । दलइ मलइ उल्ललइ न बीसइ ।
घसा । कुस-पास-विलुंचइ ह्य-वरहैं, गल-गिज्जउं तोढइ गयवरहैं ।

वर-धीर रणंगणि पडिखलइ । मंडलियहैं रमण-मउढ दलइ ॥८॥

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्धवंत बहुमच्छरो भडो । हत्थि-खंभ-हत्थो महाभडो ।

धरण-धार-वासिय-धरायलो । धाईयो भुया-धुलिय-मयगलो ।
ता कयतेहि तेग दारुणं । परियलंत-वण-सहिर-सारुणं ।

मलिय-दलिय-पडिखलिय-संदणं । निविड-गय-घडा-बीड-महणं ।
अरिदमणु पधायउ साहिमाणु । “हणु हणु” भणंतु कड्डिवि किवानु ।

—पायकुमार-चरित (पृ० ४७-४८)

संगाम-मेरीहिं, नं पलयमारीहिं । भुअणं गसंतीहिं, गहिरं रसंतीहिं ।

सण्णइ-कुडाइ; उद्धइ-चिघाइ । उक्कइ-तोणाहैं, गुण-गिहिय-वाणाहैं
करि-खडिय-जोहाहैं, चल-चामरोहाहैं । छतंधयाराहैं, पसरिय-वियाराहैं ।

वाहिय-तुरंगाहैं, सोइय-मयंगाहैं । चल-धुलि-कविलाहैं, कपूर-थवलाहैं ।
मयणाहि-कसणाहैं, कय-वइरि-वसणाहैं । मंड-धुणिवाराहैं, रह-दिण-बाराहैं ।

रोसाव उण्णाहैं, चलियाहैं सेण्णाहैं । तिहुअण-रईसस्स, अंतर-णरिन्दस्स ।

पौरुष-गुण-बीभावित-वासव । “हन” भनंत स्वं धायेंउ केशव ।

नरहरि तुरग-रथेहिं संचूरै । सारै दारै मारै जूरै ।
धीरै हनकारै प्रष्-चारै । हनै वनै विघुनै विनिवारै ।

दमै रमै परिभ्रमै-प्रवतै । संचट्टै लोटै आवतै ।
सरै वरै अपहरै न संचै । खंचै कुंचै नोचै वंचै ।

उल्लालै बालै आस्फालै । रुषै दूषै पीडै हूलै ।
ईहै संक्षोभै आवाधै । रोषै मोहै जोषै साधै ।

अंत ललतै गाढै ताडै । रुड-मुंड-खंडोचै पाटै ।
वेठै उद्वेठै संदानै । रक्खै भूखापीडिय प्रीणै ।

बल्लै रंगै निर्-गं प्रविशै । दलै मलै उल्ललै न दीसै ।
घत्ता । कुशपाशउ नोचै हयवरहै, गलगिज्जउं तोडै गजवरहै ।

वरवीर-रणगने प्रतिस्खलै । मण्डलिकहै रत्नमुकुट दलै ॥८॥

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्-धौवंत बहुमत्सरा भटा । हस्ति-खंभ-हस्ता महाभटा ।

चरन-चार-चालित-धरातला । धायऊ भुजा-तुलित-मदकला ।
तो कृतान्तेहिं तेहि दारुण । परिचलंत-अण-रुधिर-सारुण ।

मलिय दलिय प्रति-स्खलिय स्यंदन । निविड-गजघटा-पीठ-मदंन ।
अरिदमन प्रधायउ साभिमान । “हन हन” भनंत काठे कृपाण ।

—गायकुमार-चरित (पृ० ४७-४८)

संग्राम-भेरिहिं जनु प्रलय-मारोहिं । भुवनहैं वसंतीहिं, गंभिर-रसंतीहिं ।

सन्नद्ध-कुद्धाई उध्वोर्ध्व चिन्ह्हाई । उपवद्ध-तूणाई, गुण-निहित-वाणाई ।
करि-वडिय-योधाई बल-चामरोधाई । छत्र-धकाराहिं, प्रसरिय विकाराहिं ।

चालिय तुरंगाई, चोदिय मतंगाई । चूल-धूलि-कपिलाई, कर्पूर-धवलाई ।
मृगनाभि-कुण्ठाई, कृत-वरि-वसनाई । भट-दुर्विवाराई, रथे दीय-धाराई ।

रोषावपूर्णाई, जलिताई सेनाई । त्रिभुवन-रतीशाह, अन्तर-नरेन्दाह ।

दुग्गावहारेण, जण-पाय-भारेण । धरणी'वि संचलइ, मंदह'वि टलटलइ ।

जलणिहि'व भलभलइ, बिसहृषवि चलचलइ ।

जिगि-जिगिय खगगई, णिहलिय मगगई ।
समरेक-बिताई, गिरि-गयद-पताई । सुकयाई फलियाई, मिताई मिलियाई । . .

घसा । प्रायउ चंडप-पजोउ, अरिवम्मु'वि सण्णज्भइ ।

धीय ण देह महंतु, बलवंते' सह जुज्भइ ॥५॥

सण्णज्भंतु भणइ भडु वच्चमि । अज्जु वइरि-सीसे' रणु अच्चमि ।

कइडिवि अज्जु वइरि-वण-सोणिउ । वइठउ असिवरे' मेरउ' पाणिउ ।

कोवि भणइ उज्जुय-पय देप्पिणु । पिसुण-कव्वु पहु-पूरउ लुणेप्पिणु । . . .

कोवि भणइ लइ सत्थइ' सिक्खिउ । अज्जु वराणणे' हउ' रणे' दिक्खिउ । . .

कीवि भणइ खल वेसावाडउ' । साउ अज्जु सिव हियउ महारउ ।

सामिहे' केरउ रिणु आवगउ । कोवि भणइ महू वट्टइ लगगउ ।

खट्टा-मरणे काई करेसिमि । कोवि भणइ सर-सयणे' मरेसिमि ।

मड-मुह-मुक्क-हक्क-लल्लक्कई । भोसिय-सुक्क-सक्क-चंदक्कहि' ।

वज्ज-मुट्ठि-वूरिय-सीसक्कई । उर-यल-भरिय-फुरिय-चल-चक्कई ।

सुरकामिणि-अण-गयण-णिरिक्कई । विजयलच्छि-सुर-गणिय-मिरिक्कई । . . .

—नायकुमार-वरिउ (५० ७४-७५)

(६) इस्ति-युद्ध-क्रीडा

बावंतु दंत कइ करि धिवई । आलिगइ सव्वंगई खिवइ ।

भणु रक्खइ मेलेप्पिणु दमइ । पुणु हुक्कइ चउपासहिं भमइ ।

स-रयणु-वट्ट-रयण-विहूसणहु । अणुहरइ हत्थि कामिणि जणहु ।

बलु चतु-चरणंतरि पइसरइ । हक्कइ हुंकारइ 'णीसरइ ।

संघइ असंघइ कुंभयलु । पावइ पुच्छुप्पलु वच्छयलु ।

दस-दिसिहिं 'वि हिइइ कुंजरहु । पहु विज्जु-पुंजु णं जलहरहु ।

दुर्ग-पहारेहिं, जन पाद-भारेहिं । घरणीउ संचलै, मंदरहु टलटलै ।
जलनिधित भलभलै, विषघरउ चलचलै ।

जिगजिगिय खड्गाहै, निर्दलिय मार्गाहै ।
सम-एक-चित्ताहै गिरि-नगर प्राप्ताहै । सुकृताहै फलिताहै मित्राहै मिलिताहै । . .
घरता । आयउ चंडप्रजोत, अरिचर्मउ सशद्धई ।

धीर्यो न देह महंत, बलवर्ते संग जुझई ॥५॥
“सशद्धहु” भनंत भट बचौ” । आज वैरि-सीशे रण अचौ” ।

काढनि आज वैरि-वण-सोणित । काढहु असिवर मेरहु पाणित ।
कोइ भनै “अज्जुअ पद देख्य । पिशुन-काव्य प्रभु-पुरव लुनेविय ।”

कोइ भनै “खेइ शस्त्रहैं सीखेउ । आज वरानने” हौ” रण” देखेउ ।” . . .
कोइ भनै “सल बेस्या-वाटउ । साउ आज सोंइ हृदय हमारउ ।

स्वामिहिं केरउ अण आवगाउ” । कोइ भनै “मै” वाटे लग्गउ ।
खाटे मरने काहैं करीहौ” । कोइ भनै “शर-शयन मरीहौ” ।” . . .

भट-मुंह मुंच हाँक-सलकारहैं । भीषित शुक्र-शक्र-चंद्राकहैं ।
वज्र-मुष्टि भूरिय शीशवकहैं । उर-सल भरिय फुरिय चस-चकहैं ।

सुर-कामिनि-जन-नयन-निरीक्षै” । विजय-लक्ष्मि सुर गनिय पुलकै” ।
—गायकुमार-चरित (पृ० ७४-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दाबंत दंत कर करि देखई । आलिंग सवांगहैं जुवई ।

मन राखै मेलियई दमई । पुनि छूकै चौपासे भ्रमई ।
स-रथन-बहुरतन-विभूषणही” । भनुहरै हस्ति कामिनि जनही” ।

चलु चतु-चरणांतर पइसरई । हक्कै हुंकारै निःसरई ।
संघै आसंघै कुम्भ-तलू । पावै पुच्छोत्पल-वसतलू ।

दशदिशहिंहु हिंडै कुंजरू । प्रभु-विज्जु-पुंज जनु जलघररू ।

णिम्महृद् गहीर-सरेण सरु । रंगंतु धरेइ करेण करु ।

आकुन्विय-तणु वंचण-कुसलु । अक्कवि'वि कमेण दसण-मुसलु ।

बलिष्ठा बलेण णिब्बूढ-जलु । जुज्जेप्पिणु सुइरु महंत-जलु ।

—आदिपुराण (पृ० ३६)

५-धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

बणि-वाणिज्जारउ जाणियउं । किसियरु हलधारउ भाणियउ ।

सो सोत्तिउ जो ण दुट्ठु भणइ । सो सोत्तिउ जो णउ पसु हणइ ।

सो सोत्तिउ जो हियएण सुइ । सो सोत्तिउ जो परमत्थ-रइ ।

सो सोत्तिउ जो' ण मास गसइ । सो सोत्तिउ जो ण सुयणि भसइ ।

सो सोत्तिउ जो जणु पहि थवइ । सो सोत्तिउ जो सुतवे' तवइ ।

सो सोत्तिउ जो संतहुं णवइ । सो सोत्तिउ जो ण मिच्छु चवइ ।

सो सोत्तिउ जो ण भज्जु पियइ । सो सोत्तिउ जो वारइ कुगइ ।

सो सोत्तिउ जो जिण-देसियउ । पण्णा-सतिकिरियहिं भूसियउ ।

घत्ता । जो तिल-कप्पासई दब्बविसेसई, हुणिवि देव गह पीणइ ।

पसु-जीव ण मारइ मारय वारइ, पसु अप्पु'वि समु जाणइ ॥६॥

—उत्तरपुराण (पृ० ३०६-१०)

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

सहि जगह भयाउल असिय-रासि । भहरउ-अहिणासि सञ्चगासि ।

सहि भमइ भिक्ख अरु देइ सिक्ख । अणुगयहै जणहै कुल-भग्ग-दिक्ख ।

बहु-सिक्खहिं सहियउ डंभवारि । धरि धरि हिंडइ हुंकारकारि ।

सिरि टोप्पी दिण्णर वण्ण-वण्ण । सा भंयवि संठिय दोण्णि कण्ण ।

अंगुल-दुत्तीस-परिमाणु दंडु । हत्थे' उप्फालिवि गहइ चंडु ।

गलि जोग-वट्ठु सज्जिउ विचित्तु । पाउडिय जुम्मू पई दिण्णु वित्तु ।

निर्मयें गँभीर स्वरेहिँ सरा । रंगत घरेइ करेहिँ करा ।

आकुंचित-तनु वंचन-कुशला । आक्रमेउ कर्मैहिँ दशन-मुसला ।

बलिना बलेन निर्यूह-बला । जुज्झैबिउ स्वरै महंत-बला ।

—आदिपुराण (पृ० ३६)

५-धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौल ?

बनिय-बनिजारउ जानियऊँ । कृषिकर-हलधारउ भानियऊँ ।

सो श्रोत्रिय जो न दुष्ट मनई । सो श्रोत्रिय जो ना पशु हनई ।

सो श्रोत्रिय जो हृदयेहिँ शुची । सो श्रोत्रिय जो परमार्थ-रुची ।

सो श्रोत्रिय जो न मांस ग्रसई । सो श्रोत्रिय जो न सुजनें भवई ।

सो श्रोत्रिय जो जन पथे थपई । सो श्रोत्रिय जो सुतपे तपई ।

सो श्रोत्रिय जो सन्तहें नमई । सो श्रोत्रिय जो न मिथ्य बोलइ ।

सो श्रोत्रिय जो न भय पिवइ । सो श्रोत्रिय जो वारै कुगती ।

सो श्रोत्रिय जो जिन-देशितऊ । प्रज्ञा-सत्किरियहिँ भूषितऊ ।

भत्ता । जो तिल-कम्पासैं द्रव्य-विशेषैं, हृत्तिथ देव-ग्रह प्रीणई ।

पशु-जीव न मारै मारत वारै, पर-आपन सम जानई ॥६॥

—उत्तरपुराण

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहें जगहैं भयाकुल शलिक-राशि । भैरव अभि-नामी सर्वभ्रांति ।

तहें धर्म भिक्ष अरु देइ शिक्ष । अनुगतहें जनहें कुल-भार्ग-दीक्ष ।

बहु-शिक्षहिँ संहितउ दंभधारि । धर-धर हिंडै हुंकार-कारि ।

शिरे टोपी दीतेहु वणं-वणं । ताहि भंगेउ संठिय दोउ कर्ण ।

अंगुल-वृत्तिस-परिमाण दंड । हाथे उत्फालिधि गहेंउ चंड ।

गले योगपट्ट साजेउ विचित्र । पावडी-युग्म पद दियो दीप्त ।

तह-तह-तह-तह-तह-तहिय सिंगु । सिंगभु जेवि किउ तेण चंगु ।

अप्पि अप्पहो^१ माहप्पु दप्पु । अण-उच्छिउ जंपइ थुणइ अप्पु ।

“महु पुरउ पसप्पिय जुय चयारि । हँउ जरहँ ण विप्पमि कप्प-चारि ।

णल-णद्धस-वेणु-मंघाय जेवि । महि भुंजिमि अवरहँ गयइ तेवि ।

महँ दिट्ठ राम-रावण-भिडंत । संगाम-रंगि णिसियर पडंत ।

महँ दिट्ठ जुहिट्ठिलु बंधु-सहित । दुज्जोहणु ण करइ विण्हु^१-कहित ।

हँउ चिरजीविउ मा करहु भंति । हँउ सयलहँ लोयहँ करमि संति ।

हँउ थंभमि रविहि विमाण अंतु । चंदस्स जोण्ह छाथमि तुरंत ।

सब्बल विज्जल महु विप्फुरंति । वहु तंत-मंत अगइ सरंति ।^१

पेसियल महुस्सल गुण-वरिहु । गउ तेण भइरवाणहु दिट्ठु ।

“आएसु करेविणु” भणइ मंति । “तुहँ दंसणि रायहो होइ संति” ।

सिगूचउ गउ जहिँ ठिउ णरवरिहु । सह-भज्जि परिट्ठिउ णं उविहु ।

दिट्ठल जोईसइ णरवरेण । सीहासणु मेस्सिर हासिरेण ।

संमुहु जाएविणु धरणि पडिउ । दंडुव्व दंडपडिवाइ गडिउ ।

आसीसिउ णरवइ भइरवेण । “हँउ भइरव तुट्ठउ णियमणेण ।”

उच्चासणि बइसाविमि तुरंतु । ससहणहँ लगु तहो पइ पडंतु ।

“तुहँ देव ! सिट्ठि-संहार-कारि । तुहँ जोईसइ कुल-मग-चारि ।

तुहँ चिरजीविउ जं हुवउ किपि । पयउहि जं होसइ कज्जु तंमि ।

तुहँ महु उप्परि साणंद भाउ । वियरहि हो सामि महापसाउ ।^१

घरा । जोईसइ मणि तुट्ठउ चितइ, “दुट्ठउ हंदिय-सुहु महु पुज्जइ ।

जं जं उहेसमि तं भुंजेसमि ‘आएसहु संपज्जइ ॥६॥

ता चवइ जोइ “महु सयल रिद्धि । विप्फुरइ खणंतरि विज्ज-सिद्धि ।

हउँ हरण-करण-कारण-समत्थु । हउँ पथहु धरायलि गुण-पसत्थु ।

जं जं तुहँ मगहि किपि वत्थु । तं तं हउँ देमि महापयत्थु ।”

पप्फुल्ल वथणु ता चवइ राउ । “महु खेवरत्त करिवि हिय-खाउ ।”

तड़-तड़-तड़-तड़-तड़तड़िय भृंग ! भृंगाग्र छेदि किउ तेन अंग ।

आपुहिं आपन माहात्म्य-दर्प ! अन-पूर्व्हेंउ जल्प स्तुवै आप ।
“मम समुह्रां बीतेउ युग चतारि हौं जरौं न, ठहरौं कल्पधारि ।

नल-नहूष-वेषु-भंथात जोउ । महि भुंजिय औरेंउ गयउ सोउ ।
मैं दीखु राम-रावण-भिड़ंत । संग्राम-रंगें निशिचर पड़ंत ।

मैं दीखु युधिष्ठिर बंधु-सहित । दुर्योधन न करै विष्णु-कथित ।
हौं चिरजीवी ना करहु भ्रांति । हौं सकलहैं शोकहैं करौं शांति ।

हौं धाम्ही रविहि विमान-यंत्र । चंद्रह ज्योत्स्ना छादीं तुरंत ।
सर्वा विधा^१ मम विस्फुरति । बहु तंत्र-मंत्र आगे सरंति ।”

प्रेषेंक महल्लक गुण-गरिष्ट । गउ सोउ भैरवानंद दृष्ट ।
“आयसु करेबी” भनै मंत्रि । “तब दर्शने” राजह होइ शांति ।”

शीघ्रें गउ जहैं ठिउ नर-वरेंद्र । सभ-मांझ बईठो जनु उपेंद्र ।
दीखेंउ योगीश्वर नरवरही । सिंहासन मेलेउ^२ रमसरही ।

संमुख जाईय धरणि पडेउ । दंड^३ व दंड-प्रतिपात नटेउ ।
आशीषेंउ नरपति भैरवेहिं । “हौं भैरव तुष्टउं निज-मनेहिं ।”

उच्चासनें बैसायो तुरंत । श्लाघही लागु तहें पद-पबंध ।
“तुहें देव ! सृष्टि-संहार-कारि । तुहें योगीश्वर कृष्णमार्ग-चारि ।

तुहें चिरजीवी जो दुओ किछुउ । प्रकटहु जो होइहि कार्य सोउ ।”
तुहें मम ऊपर सानंद भाव । विचरहु हौंहु स्वामि-महाप्रसाद ।”

धत्ता ! योगीश्वर भनै तुष्टउ चितै, दुष्टउ इंद्रियसुख मोहिं पूज्यइ ।
जो जो उदेसौ सो भोगेबौ, आदेशहु संपद्यइ ॥६॥

तब बंदै योगि “मोहिं सकल ऋद्धि । विस्फुरे क्षणंतरे विद्यासिद्धि ।
हौं हरन-करन-कारन-समर्थ । हौं प्रथित वरातले गुण-प्रशस्त ।

जो जो तू माँग कोइ वस्तु । सो सो हौ देवें महापदार्थ ।”
प्रफुल्ल-वदन तब बंदै राव । “मभ खेचरत्व करव हिये छाव ।”

“तुह खेवरत्तु” हउं करमि वप्प ! परमोवएसु जइ गिज्जियप्प ।

भो भो णिव-कुल-कुवलय-मयंक ! दुव्वार-वइरि-वारण असंक ।
भा णिसुणहि णिय-परिवार-वयणु । णिस्सके लब्भइ गयण-गमणु ।

जइ देवि पुज्ज आगमिण उत । जइ जुयल-जुयल जीवेहिं जुत्त ।
णहयर अलयर अलयर अणेय । पसु-पक्खि-मिहूण बहु-वण्ण-भेय ।

जइ णर-मिहूणुल्लउ अवय-पुण्णु । देवी-मंडउ तुहं करहिं पुण्णु ।
तुह एम करंतहो वलिवाहाणु । हउं तूस भित्तु चंडियसमाणु ।

ता तुज्ज होइ खेयरिय-सत्ति । विज्जाहर सेविहिं अतुल-सत्ति ।
तुह खग्गि वसइ जयसिरि सछाय । अमरत्तु होइ तह अजर काय ।”
छेल-मिहूण-सूयरा । रोक्क-हरिण-कुंजरा ।

वाल-वसह-रामहा । मेस-महिंस-रोसहा ।
घोड-करह-भल्लुया । सीह-सरह-गंडया ।

वग्घ-ससय-चित्तया । एवं बहु-चउप्पया ।
कंक-कुरर-मौरया । हंस-बलम-चउरया ।

धूय-सरह-काउला । कोडि-पूस-कोइला
कुम्म-मयर-गोहूया । गाभ-भसय-रोहूया ।

जीव सयल जाणिया । तीएँ पुरउ आणिया । . .
कडिवद्ध-चल-वीरिया-वंचिघ-जालाई । कर-धरिय-विण्णुरिय-कत्तिय-कवालाई !

पायडिय-णिय-गुरुकमारुद्ध-लिगाई । कुल-धोसमय चम्म-पच्छाइ अंगाइ ।
मूहा विसेसेण दूरं गमंताई । पय-अग्घरोलीहिं वव-वव-ववंताई ।

कह-कह-कहंताई सवियार-बेसाई । भुक्कट्टु हासाई भंगडिय-केसाई ।
अहिं विविह-भेयाई कउलाई मिलियाई । कीलंति डड्ढरई अट्ठंग-वलियाई ।

जहिं करड-पटहाई वज्जंति वज्जाई । इट्ठाई मिट्ठाई पिज्जंति मज्जाई ।
छिज्जंति सीसाई णिवंडंति मीसाई । रस-वस-विमीसाई खज्जंति मांसाई ।

गिज्जंति रोयाई चामुंड-चंडाई । गहिरुण तुंडेण दंडस्स खंडाई ।

तोहि खेचरत्व हीं करीं बाबू । परभोपदेश यदि निर्विकल्प ।

हे हे निजकुल-कुवलय-भृगांक । दुर्वार-वैरि-वारत-अशंक ।

मति-सुनिही निज-परिवार-वचन । निःशंके लब्धे गगन-नामन ।

यदि देवि पूजु आगमे उक्त । यदि युगल-युगल-जीवेहिं युक्त ।
तभचर-थलचर-जलचर अनेक । पशु-पक्षि-मिथुन बहु-वर्णभेद ।

यदि नर-मिथुनल्लो बयव-पूर्ण । देवी-मंडप तुहें कराहि पूर्ण ।
तुहें ऐस करंतह बलि-विधान । हो तूष मित्र ! चंडी-समान ।

तब तोहिं होइ खेचरी-शक्ति । विद्याधर सेवहिं अतुल-शक्ति ।
तब छद्मे बसे जयश्री सखात् । अमरत्व होइ तिमि अजर-काय ।''
शेरि-मिथुन-शूकरा । रोज-हरिन-कुंजरा ।

बाल-वृषभ-रासभा । मेघ-महिष-रोसहा ।
घोड-करभ-भल्लुआ । सिंह-शरभ-मैंडभा ।

बाघ-शशक-चित्तभा । एहि विष चतुष्पदा ।
कांक-भुरुर-मोरभा । हंस-बलक-चतुरका ।

धूच-भरट-काउला । कोटि-पूत-कोइला ।
कूर्म-मकर-गोहभा । गाम्भ-भषक-रोहभा ।

जीव सकल जानिया । तेहिं समुख आनिया ।...
कटिबद्ध-चल-वीरिया-चिन्ह-जासाहैं । कर भरिय विस्फुरित-कृतिक-कपालाहैं ।
प्राकटिय निज गुण-क्रमारूढ लिंगाहैं । कुल-बोध-मद-वर्म प्रख्यादि अंगाहैं ।
मुद्रा-विशेषेहिं दूर नमंताहैं । पद-धर्मरोलीहिं घब-घब-घबंताहैं ।

कह-कह-कहंताहैं सविकार-वेषाहैं । मुक्त-ट्टहासाहैं भंपडिय केशाहैं ।
अहं विविध-भेदाहैं कौलाहैं मिसिताहैं । क्रीडति ढङ्ढरै अष्टांग-बलियाहैं ।

अहं करब-पटहाहैं बाजंति दायाहैं । इष्टाहैं मिष्टाहैं पीयंति मन्दाहैं ।
छिद्यन्त शीशाहैं निपतंति भीषाहैं । रस-वश-विमिश्राहैं स्नायंत मांसाहैं ।

गीयंत गीताहैं चामुंड-चंडाहैं । गहियाउ तुंडेहिं रंडाइ खंडाहैं ।

दुष्मेच्छ-रत्नच्छ-विच्छोह-दाहणित । णच्चंति जोड़णित साहणित ढाहणित ।

पसु-रुहिर-जल-सित-यंगण-पएसम्मि । पसु-दीह-जीहा-दल'च्चण-विसेसम्मि ।

पसु-अट्टि-कथ-पिट्ट-रंगावलिलम्मि । पसु-सेल्ल-पज्जतिय-दीवय-जुइल्लम्मि । . . .

—जसहर-चरित (पृ० ६-१३)

६-कृष्ण-सीला

(१) गोपियोंके साथ

दुवई । घूलीघूसरेण दर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा ।

कीला-रस-वसेण गोवालय-गोवी-हियय-हारिणा ॥

रंगतेण रमत-रमते । मंथउ धरित भमतु अणते ।

मंदीरउ तोडिबि आ-वट्टिउ । अद्धविरोलिउ दहिउ पलोट्टिउ ।

कावि गोवि गोविंदहु लग्गी । एण महारी मंथणि भग्गी ।

एयहि मोल्लु देउ आलिगणु । णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु ।

काहि'बि गोविहि पंडुह चेलउ । हरि-तणु तेए जायउ कालउ ।

मूढ जलेण काई पक्खालइ । णिय-जडत्तु सहियहिं दक्खालइ ।

यण्णरसिच्छिउ छायावतउ । मायहिं समुहें परिधावतउ ।

महिउ-सिलंकउ हरिणा-धरियउ । णं कर-णिचंधणाउ णीसरियउ ।

दोहउ दोहण-हत्थु समीरइ । मुह मुह माहव कीलिउ पूरइ ।

कत्यइ अंगण-भवणा-लुद्धउ । वालवच्छु वालेण णिरुद्धउ ।

गुंजा-भेदुय-रहय-पओए । मेल्लाबिउ दुक्खेहिं जसोए ।

कत्यइ सोणिय-पिट्टु' णिरिक्खउ । कण्हे कंसहु णं जसु भक्खिउ ।

धत्ता । पसरिय-कर-यलेहिं सहंतिहिं सुइ-सुइकारिणिहिं ।

अदिइ णियडि यिए धरयम्मु ण लग्गइ णारिहिं ॥६॥ . . .

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

दुष्प्रेक्ष्य-रन्ताक्ष-विच्छोभ-दायिनिउ । नाचति योगिनिउ शाकिनिउ ङाइनिउ ।

पशु-रुधिर-जल-सिक्त-प्रांगण-प्रदेशेहिं । पशु-दीर्घजिह्वा-दलार्चन-विशेषेहिं ।
पशु-अस्थि-कुत-पिष्ट-रंगावलिल्लहिं । पशु-तैल-प्रज्वलित-दीपक-द्युसिल्लहिं ।...

—जसहर-चरित (पृ० ६-१३)

६-कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

द्विषही । घूली-बूखेहिं वर-मुक्त-गरेहिं तेहि मुरारिही ।

क्रीडा-रस-बधेहिं गोपालक-गोपी-हृदय-हारिही ।

रंगतेहिं रमंत-रमते । पंचम्र धरिउ भ्रमंत अनंत ।

मंदीरउ^१ तोडिय आ-वट्टिउं । अर्घ-विशोनिय दक्षिण पलोट्टिउं ।

कोइ गोपि गोविंदहु लागी । “इनहिं हमारी मंथनि भांगी ।

एतहुं मोल देउ आसिगन । ना तो न आवहु मम आंगन ।”

कोइहु गोपिहि पांडुरु चोली । हरि तनु तेही जायउ काली ।

मूढ जलेहिं काई प्रकालें । निज-जडत्व सखियन देखारवें ।

स्तन्य-रसि-त्थिर आयावंतउ । मातहिं समुझ परिधावंतउ ।

महिष-शृंगहू हरिही धरियउ । न कर-निबंधनाउ नीसरियउ ।

दोहहु दोहन-हाथ समीरें । मुदि मुदि माधव क्रीडिउ पूरें ।

कतहुं आंगन-भवन-गलुब्धउ । बाल-वत्स बालेहिं निरुद्धउ ।

गुंजा-गुच्छक-रचित प्रयोगें । भेल्लाखिउ दुःखेहिं यथोदे^२ ।

कतहुं वैनू-पिंड निरेखेउ । कृष्णें कंसहु जनु यथा भक्षेउ ।

घसा । प्रसरित करतलेहिं शब्दतिहिं शुचि-सुखकारिणिही ।

मद्विइ निकट स्त्री घरइ न लागै नारिही ॥६॥

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

(२) पूतना-लीला

जाणिइ अरिदरि, ता तहिँ अवसरि । कंसाएसे, माया-वेसे ।

बल मायाविणि, धाइय जोइणि । बच्छर-बाउलु, गय तं गोउलु ।

जयसिरि-तण्डहु, णव-महु कण्डहु । पासि पवण्णी, भक्ति णिसण्णी ।

पभणइ पूयण, "हे महसूयण । पिय-गरुडद्वय, भाउ धणद्वय ।
हुड्ड-रसिल्लउ, पियहि यणुल्लउ ।" तं आयणिवि^१, अंगउ मणिवि ।

बुय-पय-मंडुरि, वयणु पयोहरि । हरिणा णिहियउँ, राहुं गहियउँ ।
णं ससि-मंडलु, सोहइ अणयलु । सुरहिय परिमलु, णं णीलुप्पलु ।

सिय-कलसुप्परि, विभिउ मणि हरि । कहुएँ खीरे, जाणिय कीरे ।
"जणणि ण मेरी, विप्पियगारी । जीविय-हारिणि, रक्खसि वइरिणि ।

अज्जु^२जि मारमि, पलउ समारमि ।" इय चित्तं, रोसु वहंतं ।
माण महंतं, भिउहि करतं । लच्छीकतं, देवि अणंतं ।

दंतहिँ पीडिय मुट्ठिइ ताडिय । दिट्ठिइ तज्जिय, यामे^३ णिज्जिय ।
अणुवि णं मुखी, णहुहिँ विलुक्की । खलहि रसंतहि, सुण्णु हसंतहि ।

भीमे^४ बाले, कयकल्लोले । लोहिउँ सोसिउँ, पलु आकरिसिउँ ।
दाणव-सारी, भणइ भडारी । "हिय-रहिरासव, मुइ मुइ केसव ।

णंदाणंदण, भेल्लि अणदण । कंसु ण सेवमि, रोसुण दावमि ।
जहिँ तुहँ अच्छहि, कील-समिच्छहि । तहिँ णउ पइसमि, छलु ण गवेसमि ।"

धत्ता । इय खंति कलुणु कह, कहव गोविंदे^५ मुखी ।

गय देवय कहिँमि, णणु णंद-णिवासि ण दुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

बुबइ । वर-काहलिय-वंस-रव-वहिरए, साइय मेय-रस-सए ।

रोमयंत - धक्क - गो - महिसि - उल - सोहिय - पएसए ॥

(२) पूतना-लीला

जानिय अरिवर, सो तेहि अवसर । कंसादेशें, मायावेषें ।

बल-भायाविनि, धाइय जोगिनि । बत्सर बाबल, गड सो गोकुल ।

जयश्री-तूष्णहैं, नवमय कृष्णहैं । पास प्रवर्णी, भट्ट निवण्णी ।

प्रभनै पूतन, "हे मधुसूदन ! प्रिय गड्डध्वज, आउ बनध्वज ।

दूध-रसिल्लउ, पियहु स्तनुल्लउ ।" . . सो आकर्णिय, चंगा मानिय ।

चुव-भय-पांडुर, बदन-भयोधर । हरिही^१ निहितउ, राहुँहि गहियउ ।

जनु शशि-मंडल, सोहैं स्तनतल । सुरभित परिभल, जनु नीलोत्पल ।

सित-कलशोपरि, विस्मेउ मनै^२ हरि । कहुये क्षीरै^३, जानिय बीरै^४ ।

जननि न मेरी, विप्रियकारी । जोवित-हारिणि, राक्षसि वीरिणि ।

आजुहि मारौ^५, प्रलय समारौ^६ ।" इमि चिंतता, रोष बहंता ।

मान महंता, भृकुटि करंता । लक्ष्मीकंता, देव अनंता ।

दांतहिं पीडिय, मुट्ठिहिं ताडिय । दृष्टिईं तजिय, स्थामे^७ जीतिय ।

भनहु न मुक्की^८, नभहिं वि-लुक्की । खलहिं रसतहिं, शून्य हसतहिं ।

भीमा बाला, किउ कल्लोला । लोहिउ शोषै^९उ, बल आकषै^{१०}उ ।

दानव सारी, भनै भटारी । "हिय-शुभिरासव, भुइ भुइ केशव ।

नंदानंदन, छोडु जनादन । कंस न सेवी, रोष न देवी^{११} ।

जहैं तुहैं आछहिं^{१२}, कीडा-इच्छहिं । तहैं ना पइसौं, छल न गवेषौं ।"

घसा । इमि रोवति करुण कथ, कहब गोविंदे मुक्की^{१३} ।

गह देवत कहैहि, पुनि नंद-निवास न दुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बन्धन

द्विपदी । वर-काहलिय-वंशि-रव-बधिरए, गाइय गीत-रस-सए ।

रोमंचंत थाक^१ गो-माहिषि-कुल-शोभित-प्रदेशए ॥

मण्णहिं पुणु दिणि, तहिं णिय-पंगणि । जण-मणहारी, रमइ मुरारी ।

घोटइ खीरं, सोटइ णीरं । भंजइ कुंभं, पेल्लइ डिभं ।

छंडइ महियं, चक्खइ दहियं । कट्ठइ चिन्चि, धरइ चलन्चि ।

इच्छइ कोलं, करइ दुवालि । तहिं अवसरए, कीलाणिरसु ।

बुबइ । मरु-हय-महोत्सेहिं पहि चम्पिउ गट्ठ-तुरय चूरिओ ।

अवइ उइल्लमि पइ बद्धउ जाणहुं बालू मारिओ ॥

धाइय तासु जसोय विसंठुल । कर-यल-जुयल-पिडिय-चल-यण-यल ।

बद्धउ उक्खलु मेल्लिवि चलिउ । महु जीविण जियहिं सिसु बोलिउ ।

फणि-गर-सुरहंमि अइ सइयउ । हरि-मुहि कुंवि वि कडियल लइयउ ।

किं सरेण किं तुरए दट्ठउ । मायइ सयलु अंगु परिमट्ठउ ।

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गई

महाराष्ट्रि धरि धरि यण्णिज्जइ । नंद-गोट्टि पत्थिवहु कहिज्जइ ।

तहु देवइ मायरि उक्कंठिय । पुत्तसिणेहे सणु विणु संठिय ।

गो मुहु-कुवउ सहउ चउत्थी । लोयहु मिसु मंजिवि बीसत्थी ।

चलिय नंद-गोट्टलि सहूँ पाहे । सट्ठु रोहिणि-सुएण चंदाहे ।

घसा । मायइ महु-महणु बहु गोबहूँ मज्झि णिरिक्खिउ ।

वय-परिवेठियउ कलहंसु जेम ओलक्खिउ ॥१३॥

आयउ सिसु कीला-रय-रंगिउ । हलहरेण दिट्ठिइ आलिगिउ ।

भुय-जुयलउ पसरंतु णिरुद्धउ । जायउ हरिसे अंगु सिणिद्धउ ।

चित्तिवि तेण कंस-येसुण्णउ । आलिगणु देतेण ण दिण्णउ ।

गाढ-सिणेह-वसेण णवंतइ । घाणाविय रसोइ गुणवंतइ ।

गंध-फुल्ल-दीवउ संजोइउ । गोयणु मिट्ठउ मायइ ढोइउ ।

अल्लय-दल-वहि-ओल्लिय-कूरहि । मंडय-पूरणेहिं धियपूरहि ।

णाणा-अक्ख-विसेसहिं जुत्तउ । सरसु भावि भूणाहे भुत्तउ ।

अन्यहि पुनि दिन, तहैं निज प्रांगने । जन-भय-हारी, रमै मुरारी ।

घोटै क्षीरं, लोटै नीरं । भंगै कुंभं, पेल्लै डिभं ।

छाटै महियं, चाखै दहियं । काढै चींचीं, धरै चल-निचि ।

इच्छै केलि, करै दुवारि । तैहि अघसरए, श्रीडा निरते । . . .

द्विपवी । मरुहत-महिस्त्रेहिं पथि चापेउ गदह तुरग चूरिया ।^१

अवर ओखलिहिं तै बांधेउ, जानहु बाल भारिया ॥

बाइय ताहें यशोद विसंस्थुल^१ । करतल-युगल-छाँकि चल-स्तनतल ।

“बांधेउ ओखलि मेल्लिय घालेउ । मम जीवनहिं जियै शिष्टु” बोलेउ ।

फणि-नर-मुरहँहु अतिशय यउ । हरि-मुख चुंबी कटितल लहयउ ।

की खरेहिं की तुरगे देखेउ । भातइ सकल-अंग परिमवेउ । . . .

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गई

भदुरापुरि घर घर बणिज्जै । नंद-गोष्ठे पाथिवहँ कहिज्जै ।

तहँ देवकी माता उत्कंडिषं । पुत्र सिनेहें अण विनु संठिय ।

गोमुख-कूप उत्सवइ चतुर्थी । लोकहँ भिस मंडिय विश्वस्ती ।

चलिय नंद-गोकुल-संग नाथे । संग रोहिणि-सुतेहिं चद्रामे^१ ।

बसा । मायइ मधुमथन बहु गोपहँ भाँक निरेखियऊ ।

वत परिवेठियउ, कलहंस-जिमि ओलख-लियऊ ॥१३॥

भाइय शिष्टु श्रीडा-रज-रंगिउ । हलधरेहिं देखिय आलिगउ ।

भुज-युगलउ पसरत निरुद्धउ । जायउ हवै अंग सिनिगवउ ।

चितिय सोइ कंस-पैशुन्यउ^१ । आलिगन दैतऊ न दिअउ ।

गाढ - सिनेह - वशेहिं नमसै । लें आइय रसोइ गुणवंतै ।

गंध-फूल-दीपउ संजोयउ । भोजन मिटुउ माये देयउ ।

अस्तयदल-दधि ओल्लिय गूढहिं । मंझ-पूरणेहिं धृतपूरहिं ।

नाना भक्ष्य-विक्रमेहिं युक्तउ । सरस भावे भू-नाथे भुक्तउ ।

(५) गोवर्धन-धारण

जलु गलइ, भलभलइ । दरि भरइ, सरि सरइ ।

तडपडइ, तडि पडइ । गिरि फुडइ, सिहि णडइ ।

मरु भलइ, तरु घुलइ । जलु यलु'वि, गोउलु'वि ।

णिग रसिउ, भय-तसिउ । थरहरइ, किरमरइ ।

जाव ताव, थिर भाव-। धीरेण, धीरेण ।

सर-लच्छि-जयलच्छि-तण्हेण, कह्हेण ।

सुर घुइण, भुय-जुइण । वित्थरिउ, उद्धरिउ ।

महिहरइ, दिहियइउ । तम जडिउं, पायडिउं ।

महि-विवरु, फणि-णियरु । फुफ्फुइ, विसु भुयइ ।

परिघुलइ, जलवलइ । तरुणाई, हरिणाई ।

तट्टाई, णट्टाई । कायरई, बणयरई ।

हिंसास-चंडाल-चंडाई, कंडाई ।

तावसई, परवसई । दरियाई जरियाई ।

घत्ता । गो-वद्धण-परेण गो-गोमि-णिभाइ व जोइउ ।

गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उल्लाइयउ ॥१६॥ . . .

(६) कालिय-दमन

वहरि जसोयहि पुत्तु, इय कसे' मणि परिधिण्णउ ।

कमलाहरणु रउदु ते', णंदहु पेसणु दिण्णउं ॥ ध्रुवकं ॥

सिहि-बुल्लि-भूउ, गउ राय-दूउ । ते' भणिउ णंदु, मा होहि मंदु ।

जहिं गरल-गाहि, णिवसइ महाहि । जउणा सरंतु, तं तुहें तुरंतु ।

जायवि अपेण, कय-जण-रवेण । छाणाहि वराई, इन्दीवराई ।

ता णंदु कणइ, सिर-कमलु घुणइ । जहिं दीण-सरणु, तहिं बुक्कु' मरणु ।

(५) गोवर्धन-धारण

जल गलै भलभलै । दरि भरै, सरि सरै ।

तड़तड़ै तड़ि पड़ै । गिरि फुटै शिखि नटै ।

मरु चलै तब घुरै । जल-थलहु, गोकुलहु ।

अतिरसित भय-असित । अरथरै किलमिलै ।

जाव ताव स्थिर भाव, वीरेहिं वीरेहिं ।

सर - लक्ष्मि - अयलक्ष्मि - तूष्णेहिं कृष्णेहिं ।

सुर-स्तुतिहिं भुजयुगहिं, विस्तारेउ उखारेउ ।

महिघरउ दिशिचरउ, तम जडेउ प्राकटेउ ।

महि-विवर फणि-निकर, फुफ्फुवै शिष मुचै ।

परि-घुरै चलवलै, तरुणाई हरिनाई ।

तत्-स्याहै नष्टाहै, कातरहै वनचरहै ।

पडियाहै रडियाहै, क्षिप्ताहै त्यक्ताहै । हिंसाल-चंङ्गाल-वंडाहै काण्वाहै ।

तापसै परचसै, दारिताहै जीणाहै ।

घत्ता । गो-वर्धन परेहि गो-गोपिणिं^१ भार इव-जोयउ ।

गिरि गोवर्धनउ गोवर्धनेहिं ऊँचाइयउ ॥६॥

(६) कालिय-दमन

वैरि यशोदापुत्र, ऐहु कंसह मने परि-आइयउ ।

कमलाहरण रजद्र तै, नंदह प्रेषण दीनेऊ ॥ ध्रुवक ॥

शिखि चुशकि भूत, गउ राजद्रुत । सो मनेउ "नंद ! ना होहु मंद ।

जहै गरले-ग्राहि, निवसै महाहि । जमुना सरत तहै तुहै तुरंत ।

जायवि जवेहिं कृत-जन-रवेहिं । आनहि वराई इन्दीवराई ।

तब नंद अंदै, शिरकमल धुनै । जहै दीन शरण, तहै दुनकु भरन ।

जहिँ राउ हणइ, अण्णाउ कुणइ । किं बरइ अण्णु, तहिँ विगय-मण्णु ।

हुँ काहँ करमि, लइ जामि भरमि । फणि सुट्ठु चंडु, तं कमल-संडु ।

को करिण छिवइ, को भेंप भिवइ । धंगधगबगंति, हुयवहि जलंति ।

उप्पण-सोय, कंदइ जसोय । “महु एक्कु पुत्तु, अहिमुहि णिहित्त ।

मा मरउ बालु, महुँ गिलउँ कालु ।” इय आ तसंति, दीहर ससंति ।

पियरहुँ रसंति, ता विहिय संति । अलिकाय-कंति, रणधीरु मंसि ।

पभणइ उबिंछु^१, “णिहणवि फणिंदु । णलिणाहँ हरमि, जलकील करमि ।”

धत्ता । इय भाणिवि कब्हु संप्राइउ जउणा सरवर ।

उब्भउ-फड-विसहंगु भमं-पासु बाव धाइउ विसहर ॥१॥

णं कंस-कोव-हुयवहहु धूमु । णं गइ-तरणी-कडि-सुस-दाम ।

णं ताहि जि केरउ जल-तरंगु । णं कालमेहु दीही कयंगु ।

सिय-बाठा-विज्जुलियहिँ फुरंतु । चल-जमल-जीहु विस-लव मुयंतु ।

हरि सउहुँ फडंगुलि रयण पक्खु । पसरिउ जमेण कइ धाय-दक्खु ।

णं दंठ-दागु सर-सिरिउ मुक्कु । गइ-वेयउ कण्हहुँ पासि लुक्कु ।

फणि फुप्फुयंतु चल जुज्झ-लोलु । णं तिमिरहु मिलियउ तिमिर-लोलु ।

दीसइ हरि देहि भसलल-कालु । णं अंजण-गिरिवरि णव-तमालु ।

तणु-कंति-परज्जिय-घण-तमासु । णक्खइँ फुरंति पुरिसोत्तमासु ।

सिरि माणिककइँ विसहर-वरामु । दीसंतइँ वेंति ‘व देहणासु ।

तंबेहिँ कुसुम-मणि-यरहिँ तंबु । णं सरि वेत्तिहि पल्लउ पलंबु ।

अहि घुलिउ अंगि महुसूयणासु । णं कत्थूरी-रेहा-विलासु ।

धत्ता । विसहर-घोलिर-देहु, सरि भमंतु रेहइ हरि ।

कच्छालंकिउ तुंगु, णं मयभत्तउ दिस-करि ॥२॥ . . .

जहँ राव हुनै, अन्याय करै । की धरै अन्य तहँ विगत-भन्यु ।

हौँ काहँ करौँ, लेई जाउँ मरौँ । फणि अतिव चंड, सो कमल-खंड ।

को करेँहिँ छुवै, को भय देवै । धगधगघगंत हुतवह, ज्वलंत ।

उत्पन्न-शोक कंदै यशोद । "मम एकपुत्र अहिमुख नि-क्षिप्त ।

ना भरख बाल, मैं गिरौँ काल ।" इमि त्रसंति दीरघ स्वसंति ।

पियरहिँ रसंति तो विहित-शांति । अलिकाय-कांति रणवीर मति ।

प्रभनै उपेन्द्र निहूनब फणींद्र । नलिनाहँ हरौँ, जलक्रीड करौँ ।

घत्ता । इमि भनिय कृष्ण (तहँ) गयक यमुना-सरिवर ।

उद्धूट-फण-विकटांग यमपाश इव धायेँ उ विषधर ॥१॥

जनु कंस-कोप-हुतवहह बूम । जनु नदि-तौंणी-कटि-सूत्रदाम ।

जनु ताहिय केरउ जलतरंग । जनु कालमेष दीर्घीकृतरंग ।

सित-दाढा विज्जुलियहिँ फुरंत । चल-यम-जीभ विषलव मुचंत ।

हरि सँमुहँ फणागुलि-रतन-नक्ख । पसरैँ उ जमहीँ कर घात-दक्ष ।

जनु दंडदान सर-श्रीहिँ मुखक । जा वेगहिँ कृष्णहँ पास दुक्क ।

फण फुफुवंत चल मुद्धलोल । जनु तिमिरहँ मिलियौ तिमिर मोल ।

दीसँ हरि तहँ भसल^१ कुल-काल । जनु अंजन-गिरिवरैँ नवत-माल ।

तनु-कांति-पराजिय घन-त भास । नक्खैँ^२ फुरंति पुख्योत्तमास . . ॥

शिर माणिक्यहिँ विषधर-वराहँ । दीसंतैँ दैति^३ देह-नाश ।

ताम्रेहिँ कुसुम-मणि-करहिँ ताम्र । जनु सरैँ वेत्तिहिँ प्रलंब ।

अहि धूरेँ उ अंग मधुसूदनाहँ । जनु कस्तूरी-रोवा-विलास ।

घत्ता । विषधर-शोलिर देह, शिर भ्रमंत राजैँ हरि ।

कक्षालंकृत तुंग-जनु मदमत्त उ दिश-करि ॥२॥ . . .

(७) कृष्ण-महिमा

कण्ठेण समानसं कोवि पुत्तु । संजणसं जणणि विहविय-सत्तु ;

दुधर-भर-रण-धुर-दिण्ण-संघु । उद्धरिय जेण निवडंत वंघु ।

भंजिवि नियलहं गय-वर-गईह । सहुं माणिणीइ पोमावईह ।

कइवय दिमहहिं रइ-कीलिरीहिं । बोलाविउ पडु गोवालिणीहिं ।

७-कविका संदेश

“संगुत्तउं पई माहव सुहिल्लु । कालिदितोरि मेरउं कडिल्लु ।

एवहिं महरा-कामिणिहिं रत्तु । महुं उपरि दीसहि अथिर चित्तु ।”

कवि भणइ “दहिस मंथंतिथाइ । तुहुं मई धरियउ उब्भंतिथाइ ।

लवणीय-लित्तु कइ तुज्झ लम्पु ॥ कवि भणइ पलोयइ मज्झु मग्गु ।

“तुहुं गिसि णारायण सुयहिं णाहिं । आसिगिस अवरहिं गोवियाहिं ।

सो सुवरहि किं ण पत्तण-वंघु । संकेय-कुडंगुड्डीणु रिछु ।”

घत्ता । कवि भणइ “णासंतु उद्धरिवि स्त्रीर-भंगारउ ।

किं बीसरियउ अज्जु जं मई सित्तु भडारउ ॥ १० ॥

इय गोवी-यण-वयणाईं सुणंतु । कीलइ परमेसरु वरहसंतु ।

संभासित्तु मेत्तिवि गव्व-भाउ । “इह जम्मइ महुं तुहुं ताय ताउ ।

परिपालित्तु धण-धण्णेण^१ जाइ । बीसरमि ण लणु भि जसोय माइ ।

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८६)

(१) गरीबी

वक्कल-गिवसणु कंदर-मंदिरु । वण-हल-भोयणु वर तं सुंदरु ।

वर दासिहु सरीरहु दंडणु । णस पुरिसह अहिमाण-विहंडणु ।

पर-पथ-रय-बूसर किंकर-सारि । असुहाविणि णं पात्तस-सिरि-हरि ।

गिव-गडिहार-दंड-संघट्टणु । को विसहइ केरण उर-सोट्टणु ।

(७) कृष्ण-महिमा

कृष्णेहिँ समानो कोई पुत्र । संजनेँउ जननि विद्वविय शत्रु ।

दुर्धर-भर-रणधुर दीनु खंभ । उदरिय जेहिँ विपतंत बंधु ।

भंजवि नियरैँ गजवर-गईह । सम्मननीहिँ पद्यावतीह ।

कतिपय-दिवसैँ रति श्रीडिरीहिँ । बोलावेढ प्रभु गोपालिनीहि ।

७-कविका संदेश

“संगुप्तउ तैँ माधव सुहिल्ल । कालदि तीरेँ मेरउ करिल्ल ।

अम्बहिँ मथुरा कामिनिहिँ रक्त । मम ऊपर दीसैँ अधिर-चित्त ।”

कोई भनैँ “दही मयंतियाई । तुहुँ मोहिँ धरियउ उद्भ्रंतियाई ।

नवनीत-लिप्त कर तोहिँ लाग ।” कोई भनैँ विलोके मध्य मार्ग ।

“तुहुँ निशि वारायण सुतहिँ नाहिँ । आलिगेँउ अपरहिँ गोपियाहिँ ।

सो-सुकरहिँ की न प्रद्युम्न-बंधु । संकेत-कुडंग-उड्डीत रिछैँ ।

घत्ता । कोई भनैँ “नाशत उदरिय श्रीर-भृंगारउ ।

की विसरियउ आज, जो मैँ सिंचु भटारउ” ॥१०॥

एहु गोपीजन वचनहँ सुनंत । कीडैँ परमेश्वर दर हसंत ।

संभाषेँउ मेलिय गर्वभाव । “ऐँहि जन्महुँ मम तव ताप ताउ ।

परिगालेँउ स्तन-स्तन्येहिँ जाहि । विसरौँ न क्षणहुँ यशोद माइ ।”.....

—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(७) गरीबी

वल्कल निवसन कंदर मंदिर । वन-फल भोजन वर सो सुंदर ।

वर दारिद्र शरीरहुँ दंडन । तहिँ पुखह अभिमान-बिखंडन ।

परपद-रज-धूसर-किंकर-सर । अ-सौँ हावनि जनु पावस-धी-धर ।

नूप-प्रतिहार-दंड-संघटन । को विसहैँ करेहिँ उर-लोटन ।

को खोयइ मुँहु भूमंगालउ । कि हरिसिउ कि रोसेँ कालउ ।

पहु आसणु सहइ धिदुत्तणु । पविरल-दंसणु णिण्णेहत्तणु ।
भोणेँ षहु भहु संतिह कामर । अज्जवु वसु पंडियउ पलाविस ।

—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(२) नीति-वचन

ओ रसंतु वरिसइ सो णव-वणु । जं वंकरे दीसइ तं सुरवणु ।

ओ गिरि दलइ चलइ साविज्जुल । चंचरीय-चुंविय कोभलदल ।

—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे षट् बहिरे गीयं । ऊसर-छेत्ते बवियं बीयं ।

संदे^१ लग्गं तवणि-कडक्खं । लदण-विहीणं विविहं भक्खं ।

अण्णारेँ^२ सिब्बं तव चरणं । बल-सामत्थ-विहीणे सरणं ।

असमाहिल्ले सल्लेहणयं । णिद्धण-मणुए णव-जोव्वणयं ।

णिम्मोइल्ले^३ संचिय-दविणं । णिण्णेहे वर-भाणिणि-रमणं ।

अविथ अपत्ते दिण्णं दाणं । मोह-रयंघे घम्म-वस्साणं ।

—जसहर-चरित (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहइ जलहर सुर-वणु-छाधएँ । सोहइ णर-वर सच्चएँ वायएँ ।

सोहइ कइ-यणु कहएँ सुबद्धएँ । सोहइ साहउ विज्जएँ सिद्धएँ ।

सोहइ भुणि-वरिदु मण-सुद्धिएँ । सोहइ महि-वइ णिम्मल-बुद्धिएँ ।

सोहइ मंति मंतविहि दिट्ठिएँ । सोहइ किकर असि-वर-लट्ठिएँ ।

सोहइ पाजसु सास-समिद्धएँ । सोहइ बिहउ स-परियण-रिद्धिएँ ।

सोहइ माणुसु गुण-संपत्तिएँ । सोहइ कज्जारंभु समत्तिएँ ।

सोहइ भहिरुह कुसुमिय-साहए । सोहइ सुहहु सुपोरिस-राहएँ ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

को जोबै मुख भूभंगलक । की हूँउ की रोषे कालउ ।

प्रभु आसष लहै वृष्टत्वन । प्रविरल दर्शन निःस्नेहत्वन ।

मोने जह भट अंतिहैं कायर । आर्जव पक्षु पंडितउ पलायिर ।

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८६)

(२) नीति-वचन

जो रसंत भरिसइ सो नवयन । जो बंकउ घीसैं सो सुरधनु ।

जो गिरि दलैं चलैं सो विज्जुल । अंचरीक-मुदित कोमल-दल । . .

—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे बाटउ बहिरे गीत । ऊसर खेतै बीजब बीज ।

बड़े लग्गा तरुणि-कटाक्ष । लवण-बिहीना विविधा भक्ष ।

अज्ञाने तीक्ष्ण तपचरनं । बल-सामर्थ्य-बिहीने शरणं ।

असमाधिल्ले सल्लेखनय^१ । निर्धनमनुजे नवयौवनय ।

निर्भोगिल्ले संचित-द्रविणं । निर्नेहै वर-मानिनि-रमणं ।

अपि अपात्रे दिक्षं धानं । मोह-रजांघ्रे धमस्थानं ।

—जसहर-चरित (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहै जलधर सुरधनु-छायएँ । सोहै नरवर साँचहि वाचएँ ।

सोहै कवि-जन कथइ सुबद्ध । सोहै साधक बिद्यहि सिद्ध ।

सोहै मुनिवरेन्द्र मन-सुद्धिएँ । सोहै महिपति निर्मल-बुद्धिएँ ।

सोहै मंत्री मंत्रविधि दृष्टिएँ । सोहै किकर असिबर-लद्धिएँ ।

सोहै पावस सस्थ-समुद्धिएँ । सोहै विभव स्वपरिजन-ऋद्धिएँ ।

सोहै मानुष गुण-संपत्तिएँ । सोहै कार्यारंभ समाप्तिएँ ।

सोहै महिरुह कुसुमित-शाखैं । सोहै सुभट सु-पीरुष-राखएँ ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(४) दर्शन-वेदान्त

“किं लण-विणासि किं णिच्चु एक्कु । किं देहत्तुवि कम्मेण सुक्क ।

किं णिच्चेयणु चेयण-सरुउ । किं चउभूयहँ संजोय-भूउ ।

किं णिग्गुणु णिक्कल्लु णिव्वियारि । किं कम्महँ कारउ किं अकारि ।

ईसर-वैसण किं रय-वैसेण । संसरइ देव ! संसारिकेण ।

परमाणु-मेत्तु किं सच्चगामि । अण्णउ कहँउ भणु भुक्कण-सामि ।”

..... । “जइ” लण-विणासि अण्णउ णिरुत्त ।

तो किं जाणइ णिहियउँ णिहाणु । वरिसहँ सएवि णिहिदव्वठाणु ।

णिच्चहु किर कहँ उप्पत्ति मच्चु । जणइ जणु रइ-संपडु, असच्चु ।

जइ एक्कु जि तह को सग्गि सोक्खु । अणुहुजइ णरइ महँतु वुक्ख ।

जइ भूय-वियारु भणंति भाउ । तो फिर किं लब्भइ मइ-विहाव ।

णिक्किरियहु कहँ करणइ हवँति । कहि पयइ-बंधु जुत्ति वि थवँति ।

जइ सिद-वसु हिडइ भूय-सत्थु । तो कम्म-कंडु सयलु वि णिरत्थु ।

घत्ता । जइ अणुमेत्तउ जीवो एहउ । तो सज्जीवउ किह करि देहउ ॥७॥

—उत्तरपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

माणुस-सरीरु दुह-पोट्टलउ । धायेउ धायेउ ग्रह-विट्टलउ ।

वासिउ वासिउ णउ सुरहि मलु । पोसिउ पोसिउ णउ घरइ वलु ।

तोसिउ तोसिउ णउ अण्णणउ । मोसिउ मोसिउ घरभायणउ ।

भूसिउ भूसिउ ण सुहावणउ । मंडिउ मंडिउ भीसाक्कणउ ।

वोल्लिउ वोल्लिउ दुक्खदणउ । चच्चिउ चच्चिउ विल्लिसावणउ ।

मंतिउ मंतिउ मरणहोँ तपइ । दिक्खिउ दिक्खिउ साहहुँ भसइ ।

सिक्खिउ सिक्खिउ वि ण गुणि रमइ । दुक्खिउ दुक्खिउ वि ण उवसमइ ।

वारिउ वारिउ वि पाउ करइ । पेरिउ पेरिउ वि ण घम्मि चरइ ।

(४) दर्शन-वेदान्त

“की^१ क्षण-विनाशि की वित्य एक । की देहस्थल कर्महिं मुक्त ।

की निश्चेतन चेतन-स्वरूप । की चतु-भूतहैं संयोग-भूत ।
की निर्गुण निष्कल निर्विकार । की कर्महैं कारक की अ-कार ।

* ईश्वर-वसेहिं की रज-वशेहिं । संसरै देव ! संसारिकेहिं ।
परमाणु-भात्र की सर्वगामि । आत्मा कहै उ, भनु भुवन-स्वामि ?”

..... । “यदि क्षण-विनाशि आत्मा कहिय ।
तो की जानै निहितउ निधान । बरह प्रतेउ निधि द्रव्य थान ।

नित्यहु फुर कहै उत्पत्ति-मृत्यु । जल्प यदि रज-लंपट असत्य ।
यदि एकै ता को सगै सौख्य । ग्रनुभोग नरके महंत दुःख ।

यदि भूत-विकार भनंत भाव । तो फुर की लक्ष्म मति-विभाव ।
निष्कियहु कहै करणेहिं भवति । कहै प्रजावंधु युक्तिउ थपति ।

यदि शिव-वश हिंडै भूत-सत्य । तो कर्मकांड सकलहु निरर्थ ।
घत्ता । यदि अणुमात्रे जीव एही । तो सज्जीवउ कहै करै देही ॥७॥

—आदिपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

मानुष-शरीर दुख-पोटलऊ । धोयो धोयो अति चिटलऊ^१ ।

वासेउ वासेउ ना सुरभि मलू । पोसेउ पोसेउ ना बरै बलू ।
तोषेउ तोषेउ ना आपनऊ । मोषेउ मोषेउ घर भायनऊ ।

भूषेउ भूषेउ न सोहावनऊ । मंडेउ मंडेउ भीषानऊ ।
बोलेउ बोलेउ दुःखावनऊ । चबेउ चबेउ चिरियावनऊ ।

मंत्रेउ मंत्रेउ मरणहै असई । दीक्षेउ दीक्षेउ साधुहिं भषई ।
शिक्षेउ शिक्षेउ न गुणे रमई । दुःखेउ दुःखेउ ना उपशमई ।

वारेंउ वारेंउ हू पाप करै । प्रेरेंउ प्रेरेंउ हू न धर्म चरै ।

अब्भंगिउ^१ अब्भंगिउ फरिसु । रुक्खिउ रुक्खिउ भामइ-सरिसु ।

मलियउँ मलियउँ बाएँ धुलइ । सिंचिउ सिंचिउ पिंसि जलइ ।

सोसिउ सोसिउ सिंभि गलइ । पच्छिउ पच्छिउ कुट्टहँ मिलइ ।

चम्मे बद्धु 'वि कालि सइइ । रुक्खिउ रुक्खिउ जममुहि पइइ ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अतेउरु अतेउरु हणइ । खय-कालहोँ आयहोँ कि कुणइ ।

सण्णाहु-कय तहोँ कि करइ । छत्ते छायहु कि उवयरइ ।

णउ कहिँ भि मरण-दिणे उव्वरइ । चमराणिनु सासाणिनु धरइ ।

सुहु राय-पट्ट-बंधे बसइ । कि आउ-निबधणु णउ ल्हसई ।

ण रहेहिँ रहिज्जइ जमहु बहु । कि मणुयहँ लग्गउ रज्जगहु ।

होइवि जाइवि सहससि किहु । रायसणु संभाराउ जिहु ।

—गायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

आहिल्ल ते मिल्ल ते भूअ ते लल्ल । ते पंगु ते कुंट बहिरंथ ते मंट ।

ते काण काणीण धण-हीण ते कीण । कुहरीण बल-खीण ।

णिककाम णिद्धाम णिच्छाम णिण्णाम । णित्तेय णिप्पाण चंडाल ते पाण ।

ते डोब कल्लाल मंच्छंधि णीवाल । दाढाल ते कोल ते सीह-सद्दूल ।

ते सिंगि वियराल ते गह-पहराल । ते पक्खि पिंछाल ।

ते सप्प रत्तच्छ मंसासिणो मच्छ । छिण्णइँ रंधणइँ बंधणइँ वंचणइँ ।

लुंचणइँ खंचणइँ कुंचणइँ लुट्ठणइँ । कुट्ठणइँ घट्ठणइँ वट्ठणइँ ।

पजलणइँ पीलणइँ हुलणइँ चालणइँ । तलणइँ दलणइँ मलणइँ मिलणइँ ।

निरएसु गरएसु मणुएसु रुक्खेसु । दुक्खाहँ भुंजति सर्गं कहं जंति ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

अभ्यंगे'उ अभ्यंगे'उ पखा । रोके'उ रोके'उ आअइ-सरिसा ।

मलिये'उ मलिये'उ बाते' बुलाई । सिचे'उ सिचे'उ पिते' जलाई ।

शोषे'उ शोषे'उ स्लेष्माहिं गलाई । पाछे'उ पाछे'उ कुष्टहूँ मिलई ।

चर्म बढइ काले सड़ई । रक्षिय रक्षिय यम-मुखे' पड़ई ।

—जसहर-चरित (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतःपुर अंतः उर हुनई । अय-कालह आयउ की करई ।

ससाहकृत तहु की करई । छत्ते छायाउ की उपकरई ।

ना कतहुँ मरन-दिन ऊबरइ । चमरानिल स्वासा-निल घरइ ।

सुख राजपट्ट-बंधे बसई । की आयु निबंधन ना हूसई ।

न रयेहिं रहिज्जे यमहुँ बहू । की मनुजहुँ लागउ राज्य-ग्रहू ।

होइब जाइब सहसाहि किमि । राजत्वन संभ्याराग-जिमि ।

—गायकुमार-चरित (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बहेल्ल^१ ते भिल्ल ते मूक सो बल्ल^२ । ते पंगु ते कुंड वधिर^३ न्व ते मंड ।

ते कानाँ कनीन धन-हीन ते दीन । दुखरीन बलहीन ।

निकाम निधाम नि-छाम नि-नाम । नि-तेज नि-प्राण चँडाल ते प्राण ।

ते डोम कलाल मछंधि नि-वाल^४ । दडाल ते^५ कोल ते सी^६ह-शदूल ।

ते भृंगी विकराल ते नम-यथराल । ते पक्षि पिछाल ।

ते सर्प रक्ताक्ष मांसाशिन माच्छ । छिन्दने^७ रंधने^८ बंधने^९ वंचने^{१०} ।

लुंचने^{११} खंचने^{१२} कुंचने^{१३} लुटने^{१४} । कूटने^{१५} घटने^{१६} बटने^{१७} ।

प्रोलने^{१८} पीडने^{१९} हूलने^{२०} चालने^{२१} । तलनाई दलनाई मलनाई गिलनाई ।

तियकेनारके मनुजे औ वृक्षे । दुःखाई भुंजति स्वर्ग कहाँ जांति ।

—जसहर-चरित (पृ० ३४)

(=) साम्यवादी उत्तर-कुरु^१ द्वीप

घसा । गिन्नु जि उच्छवु गिन्नु दिहि, गिन्नु जि तणु तारुणु गवल्लउ ।

भोय - भूमिरुह - भाणुसहैं, जं जं दीसइ तं ■ भल्लउ ।

ण दुज्जणु दूतिय सज्जण-वासु । ण सासु ण सोसु ण रोसु ण दोसु ।

ण छिक ण जिभणु णालसु दिट्ठु । ण णिदं ण जेत-णिमीलणु सुट्ठु ।

ण रत्ति ण वासरु धंतु ण घम्मु । ण इट्ठ-विग्रोउ ण कुच्छिय कम्म ।

अधाति ण भन्नु ण चित्तु ण दीणु । कयाइ कहिपि सरोरु ण भीणु ।

पुरीस-विसणु ण मुल-यवाहु । ण लालु ण सिभु ण पित्ति वि ढाहु ।

ण रोउ ण सोउ ण सेउ विसाउ । किल्लेसु ण दासु ण कोइवि शउ ।

सुरूक सुलक्खण भाणव दिव्व । अगळ सुभन्न सम्माण जि सन्न ।

सुहाउ विणीसउ सासु सुयंघु । कलेवरि वज्ज समट्ठिय-बंधु ।

ति-पल्ल-ममाणु थिराउ-णिबंधु । करीसर केसरि तेमिह वंधु ।

ण चोर ण मारि ण धोर वसणु । अहो कुरु-भूमि निसंसइ सणु ।

—उत्तरपुराण (पृ० ४०६-१०)

§ २१. शान्तिपा

(कलिकाल-सर्वज्ञ रत्नाकरशान्ति) । काल—१००० ई०

(विग्रहपाल-महीपाल ६६०-८८-१०३८) ।

(रहस्यवाद)

(राग रामजी)

सग-संवेग्रण-सरूप विग्रारे^२ अलवस लख ण जाइ ।

जे जे उजुवाटे गेला^३ अण्ण वाटे भइला सोइ ॥

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु द्वीप

घत्ता । नित्यहिं उत्सव नित्य देहि, नित्यहिं तनु साख्य नवल्ल ।

भोग-भूमि रह मानुषहै, जो जो दीसैं सो सो भल्ल ।

न दुर्जन-दूषित सज्जन-वास । न खास न शोष न रोष न दोष ।

न छीक न जम्मा न आलस दृष्ट । न निद्र न नेत्र विमीलन सुष्ट ।

न राति न वासर बंद न धाम । न दृष्ट-वियोग न कुक्षिय काम ।

भयासि न मृत्यु न चिंत न दीन । कदापि कहुँहु शरीर न भीन^१ ।

पुत्री-विसर्ग न मूत्रप्रवाह । न लाल न श्लेष्म न पित्तह डाह ।

न रोग न शोक न सेतु विषाद । किस्सेष न दाश न कोउह शत्र ।

सुरूप सुलक्षण भान दिव्य । अगर्व सुभव्य समानहिं सर्व ।

मुखाहं विनीसैं बवास सुगंध । कलेकरे^२ बध्न समस्त्रिय बंध ।

त्रिपल प्रमाण धिरामु-निबंध । करीषवर केसरि तेहुअज बंधु ।

न चोर न मार न घोर उपसर्ग^३ । अहो कस भूमि निसंशय स्वर्ग ।

—उत्तरपुराण (पृ० ४०६-१०)

§ २१. शान्तिपा

वेश—सगंध । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१२), राजगुरु ।

कृति—सुखदुःखद्वय-परित्यागदृष्टि ।

(रहस्यवाद)

(१५—राग रामकी)

स्वसंवेदन स्वरूप विचारे । अलख लखो ना जाई ।

जो जो ऋजुवाटे गइला, अन्यवाटे भइला सोई ॥

कायकूट न बुजिझ भूडहि उजुवाट संसारा ।

(मदुअरेहि एक अन्न राजहि कणकधारा ।)

माआ मोह समुह घन्त बुज्झसि ताहा ।

आगे णव नभेला दीसइ भन्ति न पुच्छसि णाहा ॥

सूनापान्तर ऊह न दीसइ, भान्ति न वासने जान्ते ।

एषा अट्ट भह्मसिज्झि सिज्झइ उजुवाटे जाअन्ते ॥

धाम दाहिण दो बाटा छाडी भान्ति बोलथेउ सकेलिय ।

घाट न शुक्क सडतडि न होइ आखे^१ बुज्झिअ वाट जाइउ ॥ १५ ॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुणि धुणि अंशूहि अंशू । अंशू धुणि धुणि गिरवर सेसू ।

तउ से हेतुअ न पाविअइ । सान्ति भणइ किं स भाविअइ ॥

तुला धुणि धुणि सुणो आहारिय । पुण लइअ अप्पण चटारिय ।

बहल बड ! दुइ भाग न दीसअ । भान्ति भणइ वालग न पइसइ ।

काज न कारण न एहु जुगती । सअ-संवेअण बोलथि^१ सान्ती ॥ २६ ॥

—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

काल १००० । वेवा—राजस्थान (?) । कुल—जैन साधु । कृतिया—

(१) ज्ञान-समाधि

ओ जाया भाणगियरे, कम्म-कलंक डहेवि ।

णिच्च-गिरंजण-पाणमय ते परमप्प णवेवि ॥ १ ॥

ते हैंउ वंदउ सिद्ध-गण, अच्छहि^१ जे वि हवंत ।

परम-समाहि-महगियरे, कम्म-धणई हूणंत ॥ ३ ॥

कार्यरूप ना बूझैं मूढहिं ऋजु बाटा संसारा ।

मधु-करहिं एक भक्ष्य , राजहिं कनकधारा ॥

मायामोह समुद्रहिं अन्त न बूझसि याहा ।

आगे (न) नाव नभेला दीसै, भ्रान्तिहिं पूछसि न नाथा ॥

धून्य-प्रान्तर उह न दीसै भ्रान्ति न वासने जाये ।

एही अष्ट महासिद्धि सिद्धै, ऋजुवाटेही जाये ॥

बार्ये दहिन दो बाट छाडी भ्रान्ति बोलेउ संकेरिय ।

वाटे न शुल्क सरतरी न होइ, आँखि बुझिवाट जाइय ॥१५॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुनि धुनि रेशहि रेशा । धुनि धुनि निरवर शेष ।

तउ सो हेतु न पाइयइ । शान्ति भनै की सो भविषइ ।

तुल धुनि धुनि धून्ये धारेउ । पुनि लेइय आपन चट्टारिउ ।

अदुत मूढ़ ! बुझ भाग न दीसै । शान्ति भनै बालाग्र न पइसै ।

कार्य न कारण न एहु जुगती । स्वक-संवेदन बोलै भ्रान्ती ॥२६॥

—वर्षापद

§ २२. योगीन्दु (जोइन्दु)

परमात्म-प्रकाश बोहा, योगसार-बोहा ।

(१) ज्ञान-समाधि

जे जायेउ ध्यानाग्नियेहिं, कर्म-कलंक उहाइ ।

नित्य-निरंजन-ज्ञानमय, ते परमात्म नमाभि ॥१॥

तिन हीं वन्दौ सिद्धगण, रहे जीउ होवन्त ।

परम-समाधि भहान्नियेहिं, कर्मन्धनहिं होमन्त ॥३॥

^१ ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित (श्री राघवचंद्र जैन-शास्त्र-माला १०, बम्बई १९३०)

भावि पणविवि पञ्चगुर, सिरि-जोइहु-जिणाउ ।

मट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करे विणु भाउ ॥८॥

गउ संसारि वसंतहँ, सामिय काल अणंतु ।

पर महे किपि न पत्तु सुहु, दुक्खुजि पत्तु भहेतु ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

तिहुयण-वंधिउ सिद्धि-गउ, हरि-हर भायहिँ जोजि ।

लक्ख, अलक्खे" धरिवि थिरु, मुणि परमण्णउ सोजि ॥१६॥

णिच्चु गिरंजणु णाणभउ, परमाणंद-सहाउ ।

जो एहउ सो संतु सिउ, तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥

जो गिय-भाउ न परिहरइ, जो पर-भाउ न लेइ ।

जाणइ सयलुधि गिच्चु पर, सो सिउ संतु हवेइ ॥१८॥

जासु न वण्णु न गंधु रसु, जासु न सदुहु ण फासु ।

जासु न जम्मणु मरणु णवि, गाउ गिरंजणु तासु ॥१९॥

जासु न कोहु न मोहु मउ, जासु न भाय न माणु ।

जासु न ठाणु न माणु जिय, सोजि गिरंजणु जाणु ॥२०॥

अत्थि ण पुण्णु न पाउ जसु, अत्थि न हरिसु विसाउ ।

अत्थि न एक्कुवि दोसु जसु, सोजि गिरंजणु भाउ ॥२१॥

जासु न धारणु धेउ णवि, जासु न जंतु न मंतु ।

जासु न मंडलु मुह णवि, सो मुणि देउ अणंतु ॥२२॥

(३) आत्मा

हँउ गोरउ हँउ सामसउ, हँजि विभिण्णउ वण्णु ।

हँउ तणु-अंगउ थूलु हउ, एहउ मूढउ मण्णु ॥८०॥

हँउ वर वंभणु वइसु हँउ, हँउ सत्तिउ हँउ सेसु ।

पुरिसु णउंसउ इत्थि हउ, मण्णइ मूढु विसेसु ॥८१॥

अप्पा भोरउ किण्हु णवि, अप्पा रत्त न होइ ।

अप्पा सुद्धमु वि थूलु णवि, पाणिउ जाणे" जोइ ॥८६॥

भावहिँ प्रणवों पंचगुरु, श्री योगीन्दु जिनाव ।

भट्टप्रभाकर दीनबे'उ, निर्मल करिके भाव ॥८॥
गयउ संसार बसंतहीँ, स्वामी काल अनन्त ।

पर मैं किछु पायउं न सुख, दुःखह पायउं महन्त ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

त्रिभुवन-अदित सिद्धिगत, हरि-हर ध्यावें जेहि ।

लक्ष्य अलक्ष्ये धरिधि धिर, मुनि परमात्मा सोइ ॥१६॥

नित्य निरंजन ज्ञानमय, परमानंद स्वभाव ।

जो ऐसो सो शान्त शिव, तासु मनिज्जै भाव ॥१७॥

जो निज भाव न परिहरै, जो परभाव न लेइ ।

जानै सकलउ नित्य पर, सो शिव शान्त हबैइ ॥१८॥

जासु न वर्ण न गंध रस, जासु न शब्द न स्पर्श ।

जासु न जन्म न मरणहू, नाम निरंजन तासु ॥१९॥

जासु न क्रोध न मोह भद्र, जासु न माय न भान ।

जासु न भान न ध्यान जिय, सोइ निरंजन जान ॥२०॥

अहं न पुण्य न पाप जसु, अहं न हर्ष विषाद ।

अहं न एकहु दोष जसु, सोइ निरंजन भाव ॥२१॥

जासु न धारण ध्येय नहिँ, जासु न यंत्र न मंत्र ।

जासु न मंडल मुद्र नहिँ, सो माँनु देव अनन्त ॥२२॥

(३) आत्मा

हौं गोरो हौं सामलो, हौं हि विभिन्नउ वर्ण ।

हौं तनु-अंगों स्थूल हौं, ऐसो मूढे सन्त ॥८०॥

हौं वर-ब्राह्मण वैश्य हौं, हौं क्षत्रिय हौं शेष ।

पुरुष नपुंसक इस्त्रि हौं, मानै भूढ विशेष ॥८१॥

आत्मा गोरा कृष्ण नहिँ, आत्मा रक्त न होइ ।

आत्मा सूक्ष्महु स्थूल नहिँ, ज्ञानी ज्ञाने जोइ ॥८२॥

अप्या पंडित मुखु णवि, णवि ईसर णवि णीसु ।

तरुणउ बूढउ बालु णवि, अण्णुवि कम्म-विसेसु ॥६१॥

पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु, भम्माधम्मु वि काउ ।

एक्कुवि अप्या होह णवि, भेल्लिवि चेषण-माउ ॥६२॥

अण्णु जि तित्थु म आहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म सेवि ।

अण्णुजि देउ म चित्ति तुहुँ, अप्या विभलु मएवि ॥६३॥

अप्या णिय-भण णिम्मलउ, णियमे वसइ ण जासु ।

सत्थ-पुराणइँ तव-वरणु, मुखुवि करहिँ कि तासु ॥६४॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जे दिट्ठेँ तुहुँति सहु, कम्मइँ पुब्ब कियाइँ ।

सो पर जाणहि जोइया, देहि वसंतु ण काइँ ॥६५॥

देहा-देवलि जो वसइ, देउ अणाइ-अणंतु ।

केवल णाण-फुरंत-तणु, सो परमप्पु णिभंतु ॥६६॥

देहेँ वसंतुवि णवि छिवइ, णियमेँ देहुवि सोजि ।

देहेँ छिप्पइ जोवि णवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥६७॥

जसु अन्नंतारि जगु वसइ, जग-अन्नंतारि जोजि ।

जगिजि वसंतुवि जगु जिणवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥६८॥

जसु परमत्थेँ बंधु णवि, जोइया णवि संसार ।

सो परमप्पउ जाणि तुहुँ, मणि भित्तिवि ववहार ॥६९॥

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ, बंधु ण मोक्खु करेइ ।

जिउ परमत्थेँ जोइया, जिणवर एउँ भणेइ ॥७०॥

छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ, जोइया एहु सरीर ।

अप्या भावहिँ णिम्मलउ, जि पावहिँ भवतीर ॥७१॥

जोइया अथेँ जाणिएँण, जगु जाणियउ हवेइ ।

अप्पहुँ केरइ भावउइ, बिबिउ जेण वसेइ ॥७२॥

आत्मा पंडित मूर्ख नहीं, नहि ईश्वर न अनीश ।

तरण बूढ़ बालहु नहीं, अन्यहु कर्मविशेष ॥६१॥

पृथ्पुत्र पापुत्र काल नभ, धर्माधर्महु काय ।

एकहु आत्मा होइ नहीं, छडि ऐक चेतनमात्र ॥६२॥

अन्यहि तीर्थ न जाहि जिय, अन्यहिं गुरुहिं न सेव ।

अन्यहिं देव न चित तुहुं, छाडि एक किमलात्माहिं ॥६३॥

आत्मा निजमन निर्मले, नियमेहिं वसे न जासु ।

शास्त्र-पुराणहु तप-चरण, मोक्ष कि करिहै तासु ॥६४॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जेहि देखे दृष्टे तुरत, कर्मा पूर्वकृताई ।

सो धर जानहि जोगिया, वेह वसंत कि नाहि ॥२७॥

देह-देवले जो वसे, देव अनादि अनन्त ।

केवल ज्ञान-फुरंत-तनु, स परमात्म निभ्रान्त ॥३३॥

वेह वसंतहु नहि छुबै, नियमेहिं देहे जोइ ।

देहे छिप्यो जोइ नहीं, माँनु परमात्मा सोइ ॥३४॥

जासु भीतरे जग वसै, जगत्-भीतरे जोइ ।

जगहिं वसंतहु जग जोँ नहीं, माँनु परमात्मा सोइ ॥४१॥

जसु परमार्थे बंध नहीं, जोगी ! नहीं संसार ।

तहि परमात्मा जान तुम, मन छाडी व्यवहार ॥४६॥

नहि उपजै नाही मरै, बंध न मोक्ष करेइ ।

जिउ परमार्थे जोगिया, जिनवर ऐस मनसि ॥६८॥

छीजहु भीजहु जाहु क्षय, जोगी एहु शरीर ।

आपा भावै निर्मलहिं, जेहि पावे अवतीर ॥७२॥

जोगी ! आपा जानिये, जग जानियत हबेइ ।

आत्मा केरी भावनहि, विवित येन वसेइ ॥६९॥

अप्पु पयासइ अप्पु पर, जिम अंबरि रवि-राउ ।

जोइय एत्थु म भंति करि, एहउ वत्थु-सहाव ॥१०१॥

तारा-यणु जलि बिबियउ, निम्मलि दीसइ जेम ।

अप्पएँ निम्मलि बिबियउ, लोयालोउ 'वि तेम ॥१०२॥

सो पर बुच्चइ सोउ पर, जसु मइ तित्थु वसेइ ।

जहिँ मइ तहिँ गइ जीवहँजि, नियमेँ जेण हुवेइ ॥१११॥

रहिँ मइ तहिँ गइ जीव तुहँ, मरणु वि जेण लहेहि ।

तेँ परबंमु मुए वि मँहु, मा पर-दब्बि करेहि ॥११२॥

बइ गिविसद्धवि कुवि करइ, परमप्पइ अणुराउ ।

अग्गि-कणी जिम कट्टगिरि, इहइ असेसु'वि पाउ ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेत्तिलवि सयल अवक्कली, जिय निच्चिंतउ होइ ।

चित्तु निवेसहि परमपएँ, देउ निरंजणु जोइ ॥११५॥

जोइय निय-मणि निम्मलएँ, पर दीसइ सिउ संतु ।

अंबरि निम्मलि घण-रहिँएँ, भाणु जिजेम फुरेतु ॥११६॥

असु हरिणच्छी हियवउएँ, तसु णवि बंभु बियारि ।

एक्कहि केम समंति बढ, वे खंडा पडियारि ॥११७॥

निय-मणि निम्मलि णाणियहँ, निवसइ देउ अणाइ ।

हंसा सरवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाइ ॥११८॥

देउ प देउलेँ णवि सिलएँ, णवि लिप्पइ णवि चित्ति ।

असउ निरंजणु णाणमउ, सिउ संठिउ सम-चित्ति ॥११९॥

हरि-हर बंभुवि जिणवरवि, मुणि-वर-विदवि भव्व ।

परम-निरंजणि मणु धरिवि, मुक्खुजि भायहिँ सब्ब ॥१२१॥

मुत्ति-दिहूणउ णाणमउ, परमाणंदु-सहाउ ।

जियमि जोइय अप्पु मुणि, निन्नु निरंजणु भाउ ॥१२४॥

ओ णवि मण्णइ जीउ समु, पुण्णुवि पाउवि दोइ ।

सो चिर कुक्खु सहंतु जिय, मोहहिँ हिंइ लोइ ॥१७८॥

आत्म प्रकाश आत्म पर, जिमि अंबरे रवि-राग ।

जोगी ! इहाँ न भ्रान्ति करु, एही वस्तु-स्वभाव ॥१०१॥

तारागण जले बिबित, निर्मल दीस जेमि ।

आत्महि निर्मल बिबित, लोकालोकउ तेमि ॥१०२॥

सो पर कहियत लोक पर, जसु मति तहाँ वसेइ ।

अहँ मति तहँ गति जीव की, नियमेहि क्योँकि हवेइ ॥१११॥

अहँ मति तहँ गति जीव तुहँ, मरणउ क्योँकि लभेइ ।

ता परब्रह्महि छाडि जनि, मति परद्रव्य करेइ ॥११२॥

अदि निमिषाद्वैत कोइ करे, परमात्महि अनुराग ।

अग्नि कणी जिमि काठे गिरि, बहेँ अशेषहि पाप ॥११४॥

(५) निरंजन-योग :

भेली सकल अपेक्षडी, जिव निश्चिन्ता होइ ।

चित्त निवेश परमपदे, देव निरंजन जोइ ॥११५॥

जोगी ! निजमन निर्मले, पर दीस शिव शान्त ।

अंबरे निर्मल घनरहित, भानू जेमि फुरन्त ॥११६॥

जसु हरिणाक्षी हृदयमें, तासु न ब्रह्म विचार ।

एकहिँ मूढ ! समाप किमि, दो लङ्गा प्रतिकारि ॥१२१॥

निजमन निर्मले आनि के, निवसे देव अनादि ।

हंसा सरवर लीन जिमि, मोहिँ ऐसहि प्रतिभाति ॥१२२॥

देव न देवले नहि शिलहिँ, नहि लेप्य नहि चित्र ।

अक्षय निरंजन ज्ञानमय, शिव समक्षिते चित्त ॥१२३॥

हरि-हर ब्रह्महु जिनवरहु, मुनिवर वृन्दहु-भव्य ।

परम-निरंजने मन घरी, मोक्षहि ध्यावँ सर्व ॥१३१॥

भुक्तिविहीना ज्ञानमय, परमानन्द स्वभाव ।

नियमेहिँ जोगी ! आप मनु, नित्य निरंजन भव ॥१४१॥

जो नहिँ मानै जीव सम, पुण्यहु पापहुँ दोष ।

सो फिर दुःख सहत जिव, भोहेहिँ हिँबे लोक ॥१७८॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निदा

देवहैं सत्थहैं मुणिवरहैं, भतिऐं पुण्णु हवेइ ।

कम्म-क्खउ पुणि होइ णवि, अज्जउ सति भणेइ ॥१८४॥

देउ गिरंजणु ईउ भणइ, णणि मुक्खे ण भंति ।

णाणविहीणा जीवडा, चिरु संसार भमंति ॥१८५॥

सत्थ पढंतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।

देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥१८६॥

तित्थहैं तित्थु ममत्तहैं, भूढहैं मोक्खु ण होइ ।

भाण-विवज्जिउ जेण जिय, मुणिवर होइ ण सोइ ॥१८७॥

चेत्ता-चेत्ती-पुत्थियहिं, तूसइ भूढु णिभंतु ।

एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहैं हेउ मुणंतु ॥१८८॥

भल्लाहेंवि पासंति गुण, जहैं संसग्ग खलेहिं ।

वइसाणर लोहहैं मिलिउ, ते पिट्ठियइ घणेहिं ॥१८९॥

रुवि परंया सद्धि मय, गय फासहि पासंति ।

अलि-उल गंधहिं मच्छ रसि, किम अणुराज करंति ॥१९०॥

देउणु देउवि सत्थु गुरु, तित्थुवि वेउ वि कब्बु ।

वच्छु जु दीसै कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥१९१॥

(७) शून्य-ध्यान

पंचहैं पायकु वसि करहु, जेण होंति वसि अण्ण ।

मूल विणट्ठइ तरुवरहैं, अवसइ सुक्कहिं पण्ण ॥१९२॥

सुण्णजें पउं भायंतहैं, वसि वसि जोइय जाहैं ।

समरसि-भाउ परेण सहु, पुण्णुवि पाउ ण जाहैं ॥१९३॥

उज्जस वसिय जो करइ, वसिया करइ जु सुण्ण ।

वलि किज्जजेंतसु जोइयहिं, जासु ण पाउ ण पुण्ण ॥१९४॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देव-शास्त्र-मुनिवरन की, भक्तिहिं पुष्प हवेइ ।

कर्मक्षय पुनि होइ नहिं, मारज शान्ति भनेइ ॥१८४॥

देव निरंजन यों मने, ज्ञानेहिं मोक्ष न भान्ति ।

ज्ञानविहीना जीबडा, चिर संसार भ्रमति ॥१८५॥

शास्त्र पठतौ होइ जड, जो न हनेइ विकल्प ।

देह बसंतउ निर्मलउ, नहि भाने परमात्म ॥२०६॥

तीर्थहिं तीर्थ भ्रमन्तकहिं, मूढहिं मोक्ष न होइ ।

ज्ञानविवर्जित जो कि जिव, मुनिवर होइ न सोइ ॥२०८॥

चैला-चैली-पोथियहिं, तूषे मूढ निभ्रान्त ।

एतहिं लज्जे शानियउ, बंधन हेतु बुझन्त ॥२११॥

भलन केरहु नही गुण, जहूँ संसर्ग खलेहिं ।

बैश्वानर लोहहिं मिल्लेउ, तेहि पिट्टियइ घनेहिं ॥२३३॥

रूपे पतंगा शब्दे मृग, गज स्पर्श नाशति ।

अलिकुल गन्धे, मत्स्य रसे, किमि अनुराग करति ॥२३५॥

देवल देवउ शास्त्र गुरु, तीर्थहु वेदहु काव्य ।

वृक्ष जो बीसै कुसुमित, इंधन होइहै सर्व ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पंच नाग्रकन वध करहु, जेन होहिं वध अन्य ।

मूल विनष्टे तखरहि, अवशि सूखिहै पर्ण ॥२६३॥

शून्य पदहिं व्यायन्तहै, बलि बलि जोगिय जावै ।

समरसभाव परेन सहै, पुष्प पाप ना जाहि ॥२८२॥

उबसा बसिया जो करै, बसिया करै जो शून्य ।

बलि जाऊँ तेहि जोगियहिं, जासु न पाप न पुष्प ॥२८३॥

णास-विणिगाउ सौसडा, अंवरि जेत्यु विलाइ ।

तुहुइ मोह तडति तहिं, मणु अत्यवणहें जाइ ॥२८५॥

मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुहुइ सासु-गिसासु ।

केवल-गाणु वि परिणमइ, अंवरि जाहें गिवासु ॥२८६॥

घोर करंतुं वि तव-चरण, सयल वि सत्य मुणंतु ।

परम-समाहि-विवज्जियउ, णवि देक्खइ सिउ संतु ॥३१४॥

जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-वंभुवि बुद्ध ।

परम-पवासु भणति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्ध ॥३२३॥

—परमात्मप्रकाश^१

(८) योग-भावना

संसारहें भयभीयहें, मोक्खहें लालसयाहें ।

अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एककमणाहें ॥३॥

णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु, विण्हु बुद्धु शिव संतु ।

सो परमप्पा जिण भणिउ, एहुउ जाणि णिभंतु ॥६॥

जो परमप्पा सो जि हउं, जो हेंउ सो परमप्पु ।

इउ जाणे विणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२२॥

जाव ॥ भवहि जीव तुहुं, णिम्मल अप्प-सहाउ ।

ताव ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिं भावइ तहि जाउ ॥२७॥

मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।

देहा देवलि देउ जिणि, सो बुज्झहि समचित्ति ॥४४॥

धम्मु ण पदियहें होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियहें ।

धम्मु ण मट्ठिय-पएसि, धम्मु ण मत्थालुंचियहें ॥४७॥

बेहुइ मण विसयहें रमइ, तिमि जइ अप्प मुणेइ ।

जोइ भणइ हो जोइयहु, लहु णिब्बाणु सहेइ ॥५०॥

नासहिँ निकस्य ससिद्धा^१, अंबर जहाँ बिलाइ ।

टूटै मोह तुरंत तहँ, मन अस्तमने जाइ ॥२८५॥

मोह बिलाये मन मरै, टूटै स्वास-निश्वास ।

केवल ज्ञानहु परिणमै, अंबर जासु निवास ॥२८६॥

घोर करन्ते तपचरण, सकलहु शास्त्र जॉनन्त ।

परम समाधि विवर्जित, नहिँ देखै शिव-शान्त ॥३१४॥

जो परमात्मा परम-पद, हरि-हर-ब्रह्मा-बुद्ध ।

परमप्रकाश भनति मुनि, सो जिन-देव विबुद्ध ॥३२३॥

—परमात्मप्रकाश

(८) योग-भावना

संसारहँ भयमीत जे, मोक्ष लालसा जाहि ।

आत्मा-संबोधन कियल, दोहा एकमनाहि ॥३॥

निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु बुद्ध शिव शान्त ।

सो परमात्मा जिन भन्यो, एहड़ जानु निभ्रान्त ॥६॥

जो परमात्मा सोइ हौं, जो हौं सो परमात्म ।

एह जाने विनु जोगिया, अन्य न करहु विकल्प ॥२२॥

जो न भावै जीव तुहँ, निर्मल आत्मस्वभाव ।

तौ न लहै शिवगमनहिँ, अहँ भावै तहँ जाव ॥२७॥

मूढ ! देवले देव नहिँ, शिलहिँ लेप्य नहिँ चित्रे^२ ।

देह देवले देव जिन, सो बूझै समचित्त ॥४४॥

धर्म न पढिया होइ, धर्म न पोषा पिच्छियहिँ ।

धर्म न मठप्रवेश, धर्म न भाषा-लुंचियहिँ ॥४७॥

जैसे मन विषयहिँ रमै, तिमि यदि आत्म लगेइ ।

योगि भनै हे योगियो, तुरत निबाण लहेइ ॥५०॥

भासहिं अन्धन्तरहँ, जे जोदहिं असरीर ।

बहुकि^१ जन्मि न संभवहिं, पियहिं न जणणी-खीर ॥६०॥

जो जिण सो हउ सोजि हँउ, एहउ भाउ गिभंतु ।

मोक्षहँ कारण जोइया, अण्णु न तंतु न मंतु ॥७५॥

जो सम-सुख-निलीणु बहु, पुण पुण अप्पु मुण्डे ।

कम्मबखउ करि सोवि फुडु, सहु पिब्बाणु लहेइ ॥८२॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो सिउसंकरु विण्हु सो, सो रुह^२वि सो बुद्ध ।

सो जिणु ईसर बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्ध ॥१०५॥

एकहि लक्खण-तविसयउ, जो पर गिक्कलु देउ ।

देहहँ मज्झहिं सो वसइ, तासु न विज्जइ भेउ ॥१०६॥

—योगसार

§ २३. रामसिंह

काल—१००० ई० (?) । शैली—राजपूताना (?) । कुल—जैन साधु ।

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

अप्पायतउ जोजि सुहु, तेण जि करि संतोसु ।

पर सुह बड़ ! वितंतहं, हियइ न फिट्ठइ सोसु ॥२॥

जं सुहु विसय परंमुहउ, गिय अप्पा भायंतु ।

तं सुहु इंदु बि गजक लहइ, देविहिं कोकि रमंतु ॥३॥

घर वासउ मा जाणि जिय, दुक्किय वासुउ ऐहु ।

पासु कपते मंडियउ, अविचल णवि संदेहु ॥१२॥

नासाग्रे अम्यन्तरहिं, जे जावै अक्षरीर ।

बहुनि जन्म ना संभवै, पिबै न जननी-क्षीर ॥६०॥

जो जिन सो ही सोइही, एही भाव निभ्रान्त ।

मोक्षई कारण जोगिया, अन्य न तंत्र न मंत्र ॥६१॥

जो शम-सुख-निशीन बहु, पुनि पुनि आत्म भनेइ ।

कर्मक्षय करि सोइ फुर, तुरत निवाण लहेइ ॥६३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो शिव-शंकर विष्णु सो, सो रुद्र सो बुद्ध ।

सो जिन ईश्वर ब्रह्मा सो, सो अनंत-सो सिद्ध ॥१०५॥

ऐसे लक्षण-लक्षितउ, जो पर निष्कल देव ।

देह-मध्यही सो बसै, तासु नहीं है भेद ॥१०६॥

—योगसार

§ २३. रामसिंह

कृति—पाहुन-बोहा^१

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

आत्मायसउ जोहि सुख, तेनहि कर सन्तोष ।

पर सुख चिन्तत भूढ़ रे, हृदय न छूटइ सोच ॥१॥

जो सुख विषय-पराइमुख, निज आत्मा ध्यायन्त ।

जो सुख इन्दुहु ना लहइ, देवन् कोटि रमन्त ॥३॥

घरवास हु न जानु जिय, दुष्कृत-वासहु एहु ।

पाश कृतातिहि फेंकियउ, अविचल नहि संदेह ॥१२॥

^१ करंजा जैन-ग्रंथमाला, करंजा (वरार)

सपि मुक्की कंचुलिय, जं विसु तं ण मुएइ ।

भोय न भाउ न परिहरइ, लिंगगहणु करेइ ॥१५॥

अधिरेण थिरा महलेण जिम्मला णिगुणेण गुणसारा ।

काएण जा विडप्पइ सा किरिया किण कायब्बा ॥१६॥

वर विसु विसहरु वर जलणु, वर सोविउ वणवासु ।

णज जिणधम्म-परम्महुउ मित्थत्तिय सहवासु ॥१७॥

हउं गोरउं हउं सामलउ हउं मि विभिण्णउ वणि ।

हउं तणु-अंगउ यूलु हउं एहउ जीव म मणि ॥१८॥

(२) निरंजन-साधना

वण्ण-विहूणउ णाणमउ, जो भावइ सब्भाउ ।

संतु णिरंजणु सो जि सिउ तहिं किज्जइ अणुराउ ॥१९॥

उपलाणहि ओइय करहुलउ, दावणु ओढहि जिम चरइ ।

असु घल्लइ णिरामहें गयउ, मणु सो किम मुहु जगिरइ करइ ॥२०॥

पंच वलहण रक्खियहें, गंदणवणु ण गघोसि ।

अप्पु ण जाणिउ ण वि पर'वि, एमइ पव्व इओसि ॥२१॥

पंचहि बाहिरु गेहउउ, हलि सहि लग्गु पियस्स ।

तासु न दीसइ आगमणु, जो खलु मिलिउ परस्स ॥२२॥

मणु जाणइ उवएसउउ, जहिं सोवेइ अचंतु ।

अचित्तहो चित्तु जो मेलवइ, सो पुणु होइ णिर्वित्तु ॥२३॥

वट्टडिया अणुलगयहें, अगगइ ओयंताहें ।

कंटउ भग्गइ पाउ जइ, मज्जउ दोसु ण ताहें ॥२४॥

मणु मिलियउ परमेसरहो, परमेसर जि मणस्स ।

विणि' वि समरसि हुइ रहिय, पुंज चढावउं कस्स ॥२५॥

देहादेवलि जो वसइ, सत्तिहि सहियउ देउ ।

को तहिं ओइय सन्तसिउ, भिग्घु गनेसहिं भेउ ॥२६॥

सर्पहिं सोची केंचुली, जो विष सो न मुंचेइ ।

भोगहि भाव न परिहरइ, भेस-ग्रहण करेइ ॥१५॥

अधिरेहिं थिरा मइलेहिं निर्मला निर्गुणहिं गुणसारा ।

कायेहि जा बढइ सा क्रिया कीन कर्तव्या ॥१६॥

वर विष, विषधर वर ज्वलन, वर सेजिब वनपास ।

ना जिन-धर्म-पराङ्मुख, भिख्याइय-सहवास ॥२०॥

हौ गोरा, हौं प्यामला, हौंहि विभिन्नो वर्ण —।

हौं तनु-अंगो, स्थूल हौं, एहुं जीव न मान ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वर्ण-विहूनहिं ज्ञानमय, जो भावइ सद्भाव ।

संत निरंजन सोइ शिव, तहिं कीजइ अनुराग ॥३८॥

उत्पला नहीं जोइ करि कला दामहिं छोडी जमि चरइ ।

जस अक्षय निरामहिं गमउमन, सो किमि वह जगरति करइ ॥४२॥

पाँच करइ न राखियउ, नन्दन-वन न गयोसि ।

आत्म न जानेउ नापि पर, एवैहैं अन्नज्योसि ॥४४॥

पंचहिं बहिर नेहड़ा, हे सखि लगेउ पियेहिं ।

तासु न दीसइ आगमन, जो खल मिलेउ परेहि ॥४५॥

मन जानइ उपदेसइहिं, जहैं सोवई अचिन्त ।

अचिते चित्त जो मेलवइ, सो पुनि होइ निचिन्त ॥४६॥

बटिया अनुसरतन्तहे, आगे जोयन्ताहैं ।

काँटा लागइ पाय यदि, लागहु दोष न ताह ॥४७॥

मन मिलिया परमेश्वरहिं, परमेश्वरहु मनाहिं ।

दोऊ समरस रहैं रहेउ, पूज चढ़ाउँ काहिं । ॥४८॥

देह-देवसे जो बसइ, शक्ति सहितो देव ।

को तहैं जोगी ! शक्ति-शिव, शीघ्र गनेसहु भेद ॥५३॥

सिव विणु सन्ति ण वावरइ, सिउ पुणु सन्ति-विहीणु ।

बोहिँ' मि जाणहिँ सयलु जगु, बुज्झइ मोह-विलीणु ॥५५॥

अब्भित्तर चित्ति वे मइलियइ, बाहिरि काइं तवेण ।

चित्ति णिरंजणु कोवि घरि, मुच्चहि जेम मलेण ॥५६॥

देह महेली एह वढ ! तउ सत्ता वइ नाम ।

चित्तु णिरंजणु परिणसिहुँ, समरसि होइण जाम ॥५७॥

सइ मिसिया सह विह डिया जोइय, कम्मणि भंति ।

तरल सहावहिँ पयियहिँ, अण्णु कि गाम वसंति ॥५८॥

(३) पाखंड-खंडन

वक्खाणडा करंतु बुहु, अप्पि ण दिण्णुणु चित्तु ।

कणहिँ जि रहिउ पयालु जिम, पर संगहिउ वहुत्तु ॥५९॥

पंडिय पंडिय पंडिया, कणु छंडिवि तुस कंडिया ।

अत्थे गंथे तुट्ठोसि, परभत्थु ण जाणहि भूढोसि ॥६०॥

अक्खरहेहिँ जि गन्विद्या, कारणु तेण मुणंति ।

वंस-विहत्था डोम जिम, परहत्थडा धुणंति ॥६१॥

बहुयइ पडियइ मूढपर, तालू सुक्कइ जेण ।

एक्कुजि अक्खर तं पढहु, सिवपुरि गम्मइ जेण ॥६२॥

हुउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसंगु ।

एकहिँ अंगि वसंतयहँ, मिलिउ ण अंगहिँ अंगु ॥६३॥

मूलु छंडि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभासि ।

चीरुणु वुणणहँ जाइ वढ ! विणु डहियई' कपासि ॥६४॥

छह वंसण वंचइ पडिय, भणहँ ण फिट्ठिय भंति ।

एक्कु वेउ अह भेउ किउं, तेण ण मोक्खहँ जंति ॥६५॥

हलि सहि काइं करइ सो दप्पणु । जहिँ पडिबिंदु ण वीसइ अप्पणु ॥

धंघवालु मो जगु पडिहासइ । घरि अच्चंतु ण घरवइ दीसइ ॥६६॥

शिव बिनु शक्ति न व्यापरेह, शिव पुनि शक्ति-विहीन ।

दोजहिं जाने सकल जग, भूमि मोह-विलीन ॥१५॥

अन्तहि चित्तहि महसियहि, बाहिर काह तपेहि ।

चित्ते निरंजन कोइ बह, मुंचहि जिमी मलेहि ॥१६॥

देह मेहरिया एह मूढ, तोहिं सतावइ ताब ।

चित्त निरंजन परहिं सों, समरस होइ न जाव ॥१७॥

स्वयं मिलेउ, स्वयं वीछुडेउ, योगी ! कमं न आन्ति ।

तरल स्वभावहि पथिकही, अन्य कि गाँव वसन्ति ॥१८॥

(३) पाखंड-खंडन

व्याख्यानड़ा करन्त बहु, आत्महि दियउ न चित्त ।

कणहिउ रहित पुग्राल जिमि, पर संग्रहेउ बहुत्त ॥१९॥

पंडित पंडित पंडिता, कण छाडेउ तुष कूटिया ।

अर्थहिं ग्रंथहिं तुष्टोसि, परमार्थ न जानइ मूढोसि ॥२०॥

अक्षरडेहिं जे गविथा, कारण ते न जॉनंत ।

बांस-बिहूनो डोम जिमि, पर हाथळा घुनंत ॥२१॥

बहुतहि पढिया मूढ पर, सालू सुखइ जेहिं ।

एकइ अक्षर सो पढहु, शिवपुर जावे जेहिं ॥२२॥

हौं सगुणी प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण, निस्तंग ।

एकहि अंक वसंतहुँ, मिलेउ न अंगहि अंग ॥२३॥

भूल छोटि जो डाल चढ़ि, कहें तेहि योगाभ्यास ।

चीर न बीनेउ जाइ मुढ़, किनु ओटिया कपास ॥२४॥

खटदर्शन घंघे पढी, मतहिं न टूटी आन्ति ।

एक देव छ भेद किय, ताते मोक्ष न यान्ति ॥२५॥

हे सखि ! काह करिय सो दर्पण । जहें प्रतिबिंब न दीसइ आपन ॥

धंधवाल मोहि जग प्रतिभासइ । घर अछते जा घरपति दीसइ ॥२६॥

असु जीवतहँ भणु सुवउ, पंचेन्द्रियहिँ समाणु ।

सो जाणिञ्जइ मोक्कलउ, लदउ पहु णिव्वाणु ॥१२३॥

मुंडिय मुंडिय मुंडिया । सिर मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया ।

चित्तहँ मुंडण जि कियउ । संसारहँ संडणु ति कियउ ॥१२५॥

पोत्था पढाणि मोक्खु कहँ, मणुवि असुद्धउ जासु ।

बहुवारउ लुद्धउ णवइ, मूलठिउ हरिणासु ॥१४५॥

सल्ला णवि षासंति गुण, जहिँ सहु संगु सलेहिँ ।

वइसाणर लोहहँ मिलिउ, पिट्टिञ्जइ सघणेहिँ ॥१४८॥

मुंडु मुंडाएवि सिक्ख भरि, धम्महँ बढी आस ।

णवरि कुटुंबउ मेलियउ, छुट्टु मिलिया परास ॥१५३॥

खे पडिया जे पडिया, जाहिँ मि माण मरट्टु ।

ते महिलाणहि पिडि-पडिय, भमियहँ जेम घरट्टु ॥१५६॥

देवसि पाहुणु तित्थि जलु, पुत्थिहँ सन्वइ कब्बु ।

वत्थुज दोसइ कुसुमियउ, इंधणु होसइ सब्बु ॥१६१॥

तित्थिहँ तित्थ भमंतयहँ, किण्णेहा फल हूव ।

बाहिर सुद्धउ पाणियहँ, अग्निमतइ किम हूव ॥१६२॥

तित्थिहँ तित्थ भमेहि वढ ! धोमउ चम्मु जलेण ।

एहु मणु किम धाएसि तुहुँ, महलउ पाव-भलेण ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

अं लिहिउ ण पुच्छिउ कहूव जाइ । कहियउ कासु वि णउ चित्ति ठाइ ।

अह गुरु उवएसे चित्ति ठाइ । तं तेम धरंतिहि कहिँ मि ठाइ ॥१६६॥

वे भंजेविणु एक्कु किउ, मणहं ण चारिय विस्ति ।

तहि गुरुपहि हउं सिस्तिणी, अण्णहि करमि ण लत्ति ॥१७४॥

भगइ पच्छइ दहदिहहि, जहि जोवउ तहि सोइ ।

ता महु पिट्ठिय भंतडी, धवत्तणु पुच्छइ कोइ ॥१७५॥

जासु जीवनहि मनु सुयो, पंचेन्द्रियहिँ समान ।

सो जानीयइ मोचलउ, लाहेँउ पथनिर्वाण ॥१२३॥

मुँडिया-मुँडिया-मुँडिया, सिर भूँडेउ चित्त न मूँडिया ।

चित्तहिँ मुँडन जिन कियउ, संसारहिँ खंडन तिन कियो ॥१२४॥

पोथा पढ़नी मोलकहँ मनहिँ असुद्धउ जास ।

बथकारक लुब्धक नवै, मूले ठिय हरिणास ॥१२५॥

भल न काह नाशइ गुण, जहँ लह संग खलेहि ।

जैववानर सोहहिँ मिलेँउ, पिट्टीयत सुघनेहिँ ॥१२६॥

मूँड मुँडाइवि सीख अरि, धर्महिँ बाँधी घास ।

न निक कुटुंबहिँ छोडियह, छोड फेँकान पराश ॥१२७॥

जे पढ़िया, जे पंडिया, जेहिँ कि मान मर्याद ।

ते मेहरी पिंडहिँ पड़ी, अमियत जेभ घरट्ट ॥१२८॥

देवल पाहन तीर्थ जल, पोथिहिँ सर्वहिँ काव्य ।

वस्तु जो दीसइ कुसुमित, इंधन होइहै सर्व ॥१२९॥

तीर्थहिँ तीर्थ अमंतयहँ, किछु नाहीँ फल होत ।

बाहिर सुद्धो पानियहँ, अभ्यन्तर किमि होख ॥१३०॥

तिस्थई तित्य अमेँउ मूढ, धोयेँउ चाम जलेहि ।

एहु मन किमि धोयेसि सुहँ, मदलउ पाप-मलेहि ॥१३१॥

(४) गुरु-महिमा

जो सिलेँउ न पूछेँउ कहुँ पि जाइ, कहियउ काहुँपि न चित्त ठाइ ।

अय गुरु-उपदेसे चित्तु ठाइ, सो तिमि धारंतोहिँ कहुँपि ठाइ ॥१३२॥

दो भंजाविय एक किय, मनहिँ न चारी वेलि ।

तेहिँ गुरुवाहिँ हउँ शिष्यणी, अन्यहिँ करउँ न लाल ॥१३३॥

भागैहिँ, पाछैहिँ, बसदिसिहिँ, जहँ जोवउँ तहँ सोइ ॥

सो मम काटी भ्रांतजी, अवश न पूछिय कोइ ॥१३४॥

मूढा जोवइ देवसई, सोयहिं जाई कियाई ।

वेह न पिच्छइ अप्पणिय, जहिं सिउ-संतु डियाई ॥१८०॥

बामिय किय अरु दाहिणिय, मज्झई बहई गिराम ।

तहिं गामठा^१ जु जोगवइ, अबर वसाइव गाम ॥१८१॥

अप्पा परहै न मेलवज, आवागमणु न भगु ।

तुस कबंतहै कालु गज, तंडुलु हत्थि न लगु ॥१८२॥

उब्बस बसिया जो करइ, बसिया करइ न सुणु ।

बलि किज्जइ तसु जोइयहि, जासु न पाउ न पुणु ॥१८३॥

(५) संततंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंतु न तंतु न घेउ न धारणु । अवि उच्छासह किज्जइ कारणु ॥

एमइ परम सुक्खु मुणि सुब्बइ । एही गलगल कासु न रुक्खइ ॥२०६॥

जे पंथेहि न गम्मइ वे-मुहु सूर्इ न सिज्जए कया ।

विणि न हुंति अयाणा इंदिय सोक्खं च मोक्खं च ॥२१३॥

बावविवादा जे करहिं, जाहिं न फिट्ठिय भंति ।

जे रत्ता गर पावियई, ते गुप्पंति भमंति ॥२१७॥

कालहिं पवणहि रवि, ससिहिं-चहु एकठई वासु ।

हुई तुहि पुच्छई जोइया, पहिले कासु विणासु ॥२१९॥

—पाहुड-बोहा

§ २४. धनपाल

काल—१००० ई० (?) । देश—माएसर (गुजरात ?) । कुल—बाकइ

१-कवि-परिचय

बसिवि धरासमि हल्लुत्तालि । बिरइउ एउ चरित भणवालि ।

बिहि खंडहि बावीसहिं सन्धिहिं । परिचितिय निय हेउनिबंविहिं ।

^१ राजस्थानी और गुजराती

भूदा ! जोवह देवलहँ, लोगहि जाहि कियाह ।

देह न पेखइ आपणी, जहँ शिव-संत दित्ताह ॥१८०॥

बामे कियेँउ अरु बाहिने, भाँकिय बहइ निराम ।

तहँ गामऐँ जो जोगपति ! अवर बसावइ ग्राम ॥१८१॥

आत्मा परहि न मैलियउ, आवागमन न भाग ।

तुष कूँटसे काल गउ, संजुल हाथ न लाग ॥१८२॥

उज्जह बसिया जो करइ, बसिया करइ जो सुन्न ।

बलिहारी तेहि जोगियाहि, जासु न पाप न पुन्न ॥१८३॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंत्र न संत्र न ध्येय न धारण । नापि उक्तासहि कीजिय कारण ॥

हमिहि परम-सुख मुनि सोवइ । एही गडबड कासु न रूचइ ॥२०६॥

दो पंथहि न गमियइ पंथा, दो भूँह सुई न सीइय कंथा ।

दोउ न होहि अजाना ! इन्द्रिय-सुख अरु मोक्षहू ॥२१३॥

वाद-विवाद जे करहि, जाह न फाटी आन्ति ।

जे रक्ता गोपायित, ते गोप्यन्त अमन्ति ॥२१७॥

कालहि पवनहि रविशशिहि, चहु एकहुइ वास ।

हउँ तोहि पूछउ जोगिया, पहिले कासु बिनाश ॥२१९॥

—पाहुव-दोहा

§ २४. धनपाल

वैश्य । कृति—भविसयल कहूँ (भविष्यवत-कथा)

१-कवि-परिचय

वसिय गृहाश्रमे हल्लुत्ताले, विरचेँउ एउ चरित धनपालेई ।

दुइ खंड बईसहिँ संधिहि, परिवर्तिय निजहेतु-निबन्धहि ।

घत्ता । घक्कड नगिनंसि माएसरहों समुब्भविण ।

घणसिरिदेवि-सुएण, विरडड सरसइ-संभविण ।

—भविसयत्त-कहा पृ० १४८

२-भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल' देश

एह भरहसित्ति सुन्दर पणसु । कुरु-जांगल नामि मही विलेसु ।

वणिज्जइ संपय काई तासु । जहिँ निचसइ जणु अमुणिय पयासु ।

आरामछित्तघरवित्ति विद्धु । परिपक्ककलमि - गोहण - समिद्धु ।

जहिँ पुरई पवड्डिय कलयलाई । घम्मत्य-काम संचिय फलाई ।

जहिँ मिठुणई मयण-परव्वसाई । अवतुप्प तुपरिवड्डिया रसाई ।

उवमोय मोय-सुह सेवयाई । गामई कुक्कुड संडे बयाई ।

जहि जलई 'कयावि न सुसियाइ । मयरंद-रेणुवामीसियाई ।

जहिँ सरई कमल-पहू-तंबिराई । कारंड-हंस-वय-चुंबिराई ।

जहिँ पधिय तत्तु छायाहिँ भमंति । जत्यत्यभियई तहिँ णिसि गमंति ।

धामर विवड्डि बयणई णियंति । पुंडुच्छु-रसई लीलई पियंति ।

—वही पृ० २, ३

(२) गज (इस्तिना)-पुर

घत्ता । तहिँ गयउरु पाउं पट्टणु, जणजणियच्छरिऊ ।

णं गयणु मुएणि सगखंडु महि अवयरिऊ ॥

तं गयउरु को वण्णणहंसमत्थु । जं वुहइह मंडलु णं पसत्थु ।

जं भुत्तु मळड-कुंडसघरेहिँ । मेहे सराइ बहु-गरवरेहिँ ।

महवा चक्केसत्तु जित्थु आसि । जे' भुत्त वसुंधरि जेम दासि ।

पुणु सणकुमानु णिहिरयणवासु । खवसंडवसुह सुह सायिसालु ।

घत्ता : जक्कड बनिक-वंशे^१ माएसरहें समुझवेहिं ।

वनश्रीदेवि भुतेहिं विरचेउ सरस्वतिसंभवे^२ हिं ॥

—अविसयत्तकहा पृ० १४८

२—भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल देश

एहु भरत-क्षेत्रे^३ सुंदर प्रदेश । कुरुजंगल नामे महि-विक्षेप ।

वानिज्ये संपत्ति काई तासु । जहें निवसे जन अमुनिय-प्रयास ।

आराम-क्षेत्र - धरवित्त - वृद्ध । परिपक्वकलम - गोधन - समृद्ध ।

जहें पुरे^४ प्रवक्षिय कलकलाई । धर्मार्थ-काम-संचित-फलाई ।

जहें मिथुनै मदन-परव्वशाई । अवतुप्तेउ पाकरके रसाई ।

उपभोग - भोग - सुख - सेवयाई । ग्रामो कुक्कुट - संसेवयाई ।

जहें जलै^५ कदापि न शोषियाई । मकरंद-रेणुवा-मिश्रिताई ।

जहें सरहिं कमल-प्रभ-ताम्रकाई । कारंड-हंस-चय-चुंविताई ।

जहें अधिक तप्त छायाहिं भ्रमति । यत्र अस्त मिया तहें निशि भ्रमति ।

पामर विदग्धे^६ वचनै नियंति । पुंड्र-इक्षु-रसे^७ लीलै^८ पिवंति ।

—वही पृ० २,३

(२) गज पुर^१

घत्ता । तहें गजपुर^२ नामे पट्टन, जन-जनिता^३ श्वरिऊ ।

जनु गगन मुंचिय स्वर्ग-खंड, महि अवतरिऊ ॥

सो गजपुर को वर्णन-समर्थ । जो पुहुमिह मंडन जनु प्रशस्त ।

जो भुक्तु मुकुट-कुंडल-धरेहिं । मेघेश्वरादि-बहु-नरवरेहिं । . . .

मधवा चक्रेशत यत्र आसि^४ । जेहि भुक्तु वसुंधर जेम दासि ।

पुनि सनकुमार निशिरतन-पाल । छै खंड वसुध शुभ स्वामिसाल । . .

^१ हस्तिनापुर

^२ ये

जहँ अण्णवि नर नरवइ महंत । सम्पापवग्गवर सुहई पत्त ।

जसु कारणि गिय-मुहि तंडवेहिं । कुहसेत्ति भिडिउ कुह-पंडवेहिं ।

बसा । जहिं तुंग तवंगि संठिउ संख-कुंद-भवलू ।

जणु सुसुवि उद्धु देखइ गंगाणइहिं जलु ॥

—वही पृ० ३

३-वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरिउ गमण-सामग्गि पयासिय । सुइ-सत्थत्थवंत संभासिय ।

जाणाविउ भूवाल-गरिदहो । समइ परिट्टिउ सण्णणविदहो ।

हह-मग्गि कुल-सील-णिउत्तहँ । घोषण^१ दिण्ण पुरउ वणिउत्तहँ ।

“चल्लउ जो चल्लइ कयविज्जे” । बंधुअत्तु संचलिउ वणिज्जे” ।

साहुभाणि वणिउत्तहँ चाहइ । अघणहँ भंडुल्लइ संबाहइ ।”

तं गिसुणेवि पभाय-पत्तहँ । मत्तिउ थोव-विहव-वणिउत्तहँ ।

“अहो” पुर-जण-भण-गयणाणंदणु । सेवहो वणवइ-सेट्ठिहिं णंदणु ।

पइसहु अंतरेउ सहुँआएँ । अवासि लज्झि होइ ववसाएँ ।

वणि-तणुहह-रहसेण समागय । सज्जिय करह-वसह-महिसह सय ।”

—वही पृ० १६-१७

(२) अविष्यदत्तकी माँका विरोध

माह महल्ल महुज्जम विज्जे” । बंधुअत्तु संचलिउ वणिज्जे” ।

तेण समाण मईमि जाइव्वउ । तं वोहित्यु तीरि लाइव्वउ ।

देसंतर-पवासु माणिव्वउ । गियपुण्णहँ पमाणु आणिव्वउ ।

दयिदायत्तु जइवि विलसिव्वउ । तो पुरिसि ववसाउ करिव्वउ ।

तं गिसुणेवि सगग्गिर-वयणी । भणइँ जणेरि जलहिय-गयणी ।

हा इउ पुत्त ! काहँ पइँ जंपिउ । सिविणंतरिणि णाहिँ महु अंपिउ ।

^१ दुगडुमी पिटवाई=घोषणा की

जहँ ग्रन्थउ नर नरपति भहंत । स्वर्गपिकं घर सुखहिं प्राप्त ।

जसु कारणेँ निज-सुखेँ तांडवेहिं । कुदक्षेत्र भिडेँउ कुद-पांडवेहिं ।
घसा । जहँ तुंग तपांगेँ सँ-ठिउ, शंख-कुन्द-धवल ।

जनु सूती ऊर्ध्व देवइ, गंगानदिह जल ॥

—वही पृ० ३

३-वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरत गमन-सामग्रि प्रकाशिय । शुचि-सार्थ-अर्थवंत संभाषिय ।

जनवायउ भूपाल-नरेन्द्रहँ । समयहँ पूछेँउ सज्जन-वृन्दहँ ।
झाट-मार्ग-कुल-शील-नियुक्तहँ । घोषण दीन पुरहँ वणि-पुत्रहँ ।

“चल्लो, जो चल्लै ऋय-वेँचे । बंधुदत्त संचलेउ वनिज्जे ।
साधु मानि वणिपुत्तहँ चाहै । अ—धनहँ भंडुलइ सं-बाहै^१ ।”

सो सुनियाहि प्रमाद-अयुक्तहँ । मंत्रेउँ थोड़-विभव-वणिपुत्रहँ ।

“अहो पुर-जन-मन-नयन-नंदना । सेवहु धनपति-श्रेष्ठिहिं नंदन ।

पइसहु अंतरेउ सहुआये^२ । अवशि लक्षि होई व्यवसाये^३ ।
वणि-तनुइ रभसेहि^४ समा-गउ । साजेँउ करम-वृषभ-महिषइ सौ ।

—वही पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी मौका विरोध

“माइ ! महल्ल-महोद्यम-विद्ये^१ । बंधुदत्त सं-चलेउ वनिज्जे^२ ।

तेही संगेँ हमहँ जाइब्बो । सो बोद्धित-सीरे^३ साइब्बो ।
देशांतर-प्रवास मानिब्बो । निज-पुण्यहँ प्रमाण जानिब्बो ।

वैद्यायत यदपि विलसिब्बउ । तहँ पुर व्यवसाय करिब्बउ ।”
सो सुनियाहि सगद्गद-वदनी । मनै जनेरि^४ जलादित-नयनी ।

हा ई पुत्र ! काह तै^५ जल्येउ । स्वप्नंतरेउ नाहिं भोहिं जल्येउ ।

एक अकारणि कुविय-वियप्पे । विण्णु अणंतु दाहु तउ वप्पे ।

अण्णुवि पई देसंतर अंतहो । को भहु सरणु हियइ पणलंतहो ।

अण्णुवि लेण समउ तउ अंतहो । पिब्बुइ खणु'वि णाहिं महुचित्तहो ।

धरता । को जाणइ कण्ण महाविसइ, अणुदिणु दुम्भइ मोहियई ।

सम-विसम-सहावहिं अंतरई, दुट्ठसवत्ति'हि दोहियई ॥

एककुमिक्कु बवसाउ करंतहो । समसाहिद्विउ भंडु भरंतहो ।

विहि पडिकूलु अम्ह पडिसक्कइ । अत्थहो छेउ करिबि को भक्कइ ।

एक-दब्ब-अहिलास-विचित्तइ । को जाणई दाइयहो चरित्तइ ।

जइ सक्क दुट्ठत्तणु भासइ । बंधुअत्तु सल वयणहिं पासइ ।

ओ तउ करइ अमंगलु जंतहो । मूलु'वि जाइ लाहु चितंतहो ।

जंपइ भामहु महुरकसाएँ । "चंगउ वुत्तु पुत्त ! कमलाएँ ।

अम्हह एत्तु-वसंतहो तेहउ । को'वि ण मित्तु पहाणु सणेहउ ।

बंधुअत्तु पुरमज्जि सइत्तउ । राउलि सण्णमाणु धणयत्तउ ।

धरता । जइ-जणणि-वयण विस-विस-भणइ, दाइय-मच्छइ मणि वहुई ।

तो तुम्हहो अम्हहो सयणहमि, वंचिवि कुलि परिहउ करई ॥"

भविसयत्तु विहसेविणु जंपइ । "तुम्हहो भीरत्तणिण समप्पइ ।

अइयारि वामोहु ण किज्जइ । समवय-जणि पोळत्तणु हिज्जइ ।

अइणएण जणि कायर वुच्चइ । अइभएण जइ-तच्छिअँ मुच्चइ ।

अइमएण दप्पुम्भहु णावइ । अइधिएण भोयणु'वि ण भावइ ।

मइरुवि तिय-रयणु विणासइ । अइयारि सब्हो गुणु पासइ ।

जइ बवसाइ दाउ णउ दिज्जइ । तो णायरहो भज्जि लज्जिज्जइ ।

जइ सो कहव सवत्तिहि जायउ । तो'वि ताय्हो सरीरि संभूयउ ।

एक्कु सरीर जाउ विहि भायहिं । तहिं किर काई राख-वेयारहिं ।

एक अकारण कुपित विकल्पे । दीन अनंत-दाह तब बापे ।

अन्यउ ते^१ वेशान्तर जातह । को मम शरण हृदय-प्रज्वलंतह ।

अन्यउ तेहि^२ संग तब जातह । निवृ^३त्ति^४ कणहु नाहि ममचित्तह ।

घस्रा । को जानै कर्ण-महाविषह^५, अनुदिन दुर्मति-मोहितह^६ ।

सम-विषम स्वभावहि^७ अंतरह^८, दुष्ट सीतियह^९ दोहितह^{१०} ॥

एकमेक व्यवसाय करंतह^{११} । सम-साभेही^{१२} भांड भरंतह^{१३} ।

विधि-प्रतिकूल समर-प्रतिसक्क^{१४} । अर्थह^{१५} छेद करवि को सकक^{१६} ।

एक द्रव्य-अभिलाष-विचिना । को जानै दैवयह^{१७} चरित्रा ।

यदि स्वरूप दुष्टत्वउ भासै । वंधुदत्त खल-वचनहि^{१८} वासै ।

जो तब करै अमंगल जातह । मूलउ जाइ लाभ चितंतह^{१९} ।”

जपै मामह^{२०} मथुरकलाये^{२१} । “जंगउ उक्त पुत्र ! कमलाये^{२२} ।

हमरे हर्हा वसंतह^{२३} तेही । कोउ न मित्र प्रधान सिनेही ।

बंधुदत्त पुर-माँभ स्वयत्तउ । राजले^{२४} सर्वमान धनदत्तउ ।

घस्रा । यदि जननि-वचन-विष-विषमगति, दर्शित मत्सर मने^{२५} वहई ।

तो तुम्ह^{२६}ह^{२७} हम्भ^{२८}ह^{२९} स्वजनहउ, वंचिय कुले^{३०} परिभव करई ।”

भविष्यत्त विहसि जल्पियई । “तुम्ह^{३१}ह^{३२}ही भीस्ता-समर्पियई ।

अतिचारे व्यामोह न किज्जै । सम-वय-जने^{३३} प्रौढत्वं हीज्जै^{३४} ।

अतिगमने जने^{३५} कायर उज्जै^{३६} । अतिभयेहि^{३७} जयलक्ष्मी मुजै^{३८} ।

अतिमदेहि^{३९} दर्पो^{४०} झूट नावै । अतिघिचेहि^{४१} भोजनउ न भावै ।

अतिरूपे^{४२} तिय-रतन विनाशै । अतिचारे^{४३} सव्यंउ गुण नाशै ।

यदि व्यवसाय दाव ना दिज्जै । तो नागरह^{४४} माँभ लज्जिज्जै ।

यदि सो कहव सीतीको जायो । तोपि तातह^{४५} शरीर-संभूतो ।

एक शरीर जाउ दोउ भाई^{४६} । तह^{४७} फुर काई^{४८} राग-विचारी ।

अण्णु'वि तहिँ कुल-सील-निउसहँ । होसहिँ पंच-सयई वणिउसहँ । . . .

अण्णु'वि अम्हह तेण समाणु । किपि ण पुव्व-विरोह-विहाणु ।
घत्ता । मं माइ चित्तु कायस करहि, फुडु कम्मई कम्महु कारणु ।
खुट्टइ जीविज्जइ जेम णवि, तेम असुट्टइ नउ मरणु ।”

—वही पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता । जोञ्जण-विधार-रस-अस-असरि, सो सूरउ सो पंडियउ ।

अस-सम्मणवयणुल्लावणहिँ, जो परतियहिँ ण खंडियउ ॥१८॥

पुरिसि पुरिसिज्जउ पालिज्जउ । परधणु परकलत्तु णउ लिज्जउ ।

तं धणु जं अकिणसिय-धम्मे^१ । लब्भइ पुव्वकिंय-सुह-कम्मे^२ ।

तं कलत्तु परिओसिय-यत्तउ । जं सुहि पाणिग्गहणि विद्धत्तउ ।

णिय-मणि जेण संक उप्पज्जइ । मरणंति^३वि ण कम्मु तं किज्जइ ।

अण्णु-वि अणमि पुत्त ! परमत्थे^४ । जइवि होहि परिपुण्ण महत्थे^५ ।

तरुणि तरल लोयण मणि भाविउ । पट्ट-सम्माण-दाण गुण गाविउ ।

तहिँमि कालि अम्हहिँ सुमरिज्जहि । एकवार भट्ट दंसणु दिज्जहि ।

पर-अणु पायधूलि मणिज्जहि । परकलत्तु भई समउ गणिज्जहि ।

—वही पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाई)की यात्रा

अगोथ दिसई मलहंति जंति । कुदजंगलु महिमंडलु मुग्रंति ।

संवंति वियण-काणण-पलंब । पुर-गाम-खेड-कज्जड-मखंब ।

जउगानइ सलितु समुत्तरेवि । जल-दुगई थल-दुगई सरेवि ।

अन्न-देस-भासई नियंत । रयणायरे^१ बेला-उलइ पत्त ।

लक्खिउ समुद्धु जल-लव-गहीरु । सप्पुरिसु^२व थिरु गंभीरु धीरु ।

आसीविसो^३व विस-विसम-सीलु । बेला-महल्ल कल्लोल-लीलु ।

अन्यउ तहें कुल-शील-सँयुक्ता । होइहैं पंचशता वणिपुत्रा । . . .

अन्यउ हम्मउ तेहि समाना । किछुउ न पूर्व-विरोध-विधाना ।

वृत्ता । मति मा ! चित्त कातर करहि, फुर कर्मइ कर्महैं कारण ।

सुदृइ^१ जीविज्जं जेम नहिं, तेम अखुदृइ ना मरण ।”

—वही^१ पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

धत्ता : “यौवन-विकार-रस-वश- प्रसर, सो शूरा सो पंडित ।

अल-मन्य-वचनोत्तापएहिं, जो परतियाहिं न खंडित ॥१॥

पुरुषें पुरुषत्वउ पालिब्वउ । परवन-कलत्र नाहीं लिब्वउ ।

सो धन ओ अविनाशिय धर्म । लब्धे पूर्वकृत-शुभकर्में ।

सो कलत्र परि-शोषित-गात्रउ । जो सुखें पाणिग्रहण विहितउ ।

निज मनें जाते शंक उत्पज्जे । मरतेहैं न कर्म सो किज्जे ।

अन्यउ भनउँ पुत्र ! परमार्था । यदपि होइ परिपूर्ण महार्था ।

तरुणि-तरल-लोचन मनें भाविउ । प्रभु-सम्मान-दान-गुण गाविउ ।

तेहँउ काल मोहिहिं सुमरिज्जे । एक दार मोहिं दर्शन दिज्जे ।

परवन पाद-धूलि भलिज्जे । परलत्र मोहिं सम गणिज्जे ।

—वही^१ पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

आग्नेय दिशहिं खोडंति जाति । कुरुजंगल महिमंडल भुंचंति ।

लंघंति विजन-कानन-प्रलंब । पुर-ग्राम-खेड-कब्बड-मडेप ।

यमुना नदि सलिल सम-उत्तरेउ । जल-दुर्गहिं थल-दुर्गहिं सरेउ ।

अन्यान्य-देश-भाषहिं, नियत । रत्नाकर-बेलाकुलहिं प्राप्त ।

लक्ष्मैउ समुद्र जल-लव-गंभीर । सत्पुरुष 'व थिर गंभीर धीर ।

आशीविष इव विष-विषम-शील । बेला-महल्ल-कल्लोल-शील ।

दिष्टुई विरलई वेलावलाई । कय-विक्कय-रय-वयणाउलाई ।

धम्मत्थ-कामकखिर सुहाई । सुवियइह-वयण विलयाभुहाई ।

तहि थाइवि जलजंतई कियाई । परिहरिबि वसह-भहिसय-सयाई ।

जलजंता कम्मंतरु करेवि । करणइह पियवयणहिं संवरेवि ।

वहणहिं^१ आरुह महापहाण । वणिवरहैं सयई पंचहिं समाण ।

—बहो पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घसा । निज्जावयवयणुज्जुअमुहई, किखवई णं भइई ।

सचत्तइ रयणामरहो जलि, खरपवणाहय-धय-वइई ॥

दिह-ववई जिह मत्सर-गणाई । गिल्लोहई जिह मुणिवर-मणाई ।

णिब्भणणई जिह सज्जण-हियाई । अकियत्थई जिह दुज्जण-कियाई ।

वहणई वहंति जलहर-रउहि । दुत्तरि अत्थाहि महासमुदि ।

संघंतई दीवंतर-यलाई । पिक्खंति विविह कोऊहलाई ।

इय लीलई वच्चंताहैं ताहैं । उच्छाह-सन्ति-विककम पराहैं ।

दुप्पवणे घणतरुवर-समीवे । वहणई लग्गई मयणाय-दीवे ।

कल्लोल-बोल-जलरव वमाले । असगाह-गाह गहणंतराले ।

तीरंतरे जं सघट्ट पोय । उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय ॥

घसा । तं वयणु सुणिवि णायर-जणहु, नं सिरि वज्जंदहु पडिऊ ।

वोहितइ लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुदि चडिऊ ॥ २५ ॥

प्रमुक्के कुमारे दुरायारिएहिं । अभोहे जलोहे वहंतेहिं तेहिं ।

थियं विभियं त वणिदाण बिद । वियप्पाउरं करयलुगिण्ण-भुदं ।

अहो सुंदर होइ एयाण कज्जं । अगम्मं पि गंतूण खइ अखज्जं ।

गयं निप्पलं ताम सव्वं वणिज्जं । छुंयं अम्ह गोत्तम्मि लज्जावणिज्जं ।

वीसैं विपुलैं वेलाकुलाई । अय - विक्रय - रत्न - वचनाकुलाई ।

धर्मार्थ-काम-कांक्षी सुखाई । सुविदग्ध-वचन बनिला-मुखाई ।

तहैं थाये उँ जलपोतहिं केताहिं । परिहुरेउ वृषभ-माहिष-शताहिं ।

जलपोता कर्मतिर करेउ । करनैं प्रियवचनहिं संवरेउ ।

वहनैं आरुठ महाप्रधान । वणि-वरहैं शतहैं-पंचहिं समान ।

—वही पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घरसा । विद्या-अय-वचन ऋजुकमुखा, की खला, नाना भटई ।

संचल्ली रत्नाकर जले, खर-पवनाहत-ध्वज-पटई ॥

दृढ बंधाई जिमि मल्लर'-गणाई । निर्लोभी जिमि मुनिवर-मनाई ।

निर-भिन्ना जिमि सज्जन-हिमाइ । अकृतार्था जिमि दुर्जन-क्रिडाई ।

वहनैं वहंति जलघर-रुडर । दुस्तर अथाह महासमुद्र ।

लंघंता द्वीपांतर-शलाई । पेखंता विविध कुतूहलाई ।

इमि लीलैं वांचत तांह तांह । उत्साह-शक्ति-विक्रम-पराह ।

दुष्-सबले घन-तरुवर-समीपे । प्रवहण लागे उ मैन्याकदीपे ।

कल्लोल-बोल-जल-रव-भ्रमरे । असंख ग्राह ग्राह गहन-तराले ।

तीरंतरे ओ संधट्ट पोत । उत्तरे उ तरी-प्रमुखादि लोग । . . .

घरसा । सो वचन सुनिय नागरजनहु, अनु शिरे वज्रबंद पबेऊ ।

बोहितेहिं लेह दुराश खल, गहिर महासमुद्र चढेऊ ॥ २५ ॥

प्रमूचे कुभारे दुराचारियेहि । अमोघे जलोघे वहंतेहि तेहि ।

ठिग्या विस्मिता सो वणीन्द्रान-वृन्दा । विकल्पातुरा करतलो इगीर्ण-मुद्रा ।

“अहो सुंदरो होह एह न काजा । अगम्याह गन्तु अखचाउ लाया ।

अगो निष्कला एह सर्व्या वनिज्या । छुयो अमह गोत्रेहुं लज्जाखनीया ।

ण जता ण वित्तं ण मित्तं ण गेहं । ण धम्मं ण कम्मं ॥ जीयं ण देहं ।

ण पुत्तं कलत्तं ण इट्ठं पि दिट्ठं । गयं गयज्जरे^१ द्वरवेसे पइट्ठं ।

सयं जाह नूणं अहम्मेण धम्मं । विणट्ठेण धम्मेण सज्जं अकम्मं ।

कयं दुक्कियं दोहएण हएण । सुहायारभट्ठेण दुट्ठेण एणं ।

अणिट्ठं कणिट्ठं भुगं सम्पहाये^२ । समुदे रज्जे सयं तुम्ह जाये^३ ।

—वहीं पृ० २२, २३

४-सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता ! एसहि बहुमासहो आगमणु, एत्तहि पियपुत्त-समागमणु ।

परमोच्छवि रोमंचिय भुवहो, मुहु वियसिउ धणयत्तहो^१ सुवहो ॥८॥

जिम तित्थु तेम पंचहि सएहि । किय भवण सोह निव्वुइ गएहि ।

घरि-घरि मंगलइ पघोसियाई । घरिघरि मिहुणइ परिओसियाई ।

घरिघरि तोरणई पसाहियाई । घरिघरि सयणइ अप्पाहियाई ।

घरिघरि बहुचंदण-छडय दिअ । मरु-कुंज-वणअ-दवणय-पइअ ।

घरिघरि सरेणु-रइ-पिजरीउ । सोहंति चूयतरु-मंजरीउ ।

घरिघरि चन्वरि कोऊहूलाई । घरिघरि अंदोलथ सोहूलाई ।

घरिघरि कय-वत्थाहरण सोह । घरिघरि आरछ-महाजसोह ।

घरिघरि सरुव-रंजिय-मणाइ । जुवइहि जोइयइ सदप्पणाइ ।

घत्ता ! घरिघरि जलमंगलकलस किय, घरिघरि घरदेवय अवयरिया ।

घरिघरि सिंगार-वेसुं धरिकि, नज्जिउ वर-जुवइहि उत्थरिवि ॥९॥

तं गयलर सो पउर-समागमु । सो सियपक्खु वसंतहो आगमु ।

ताइ निरंतराई चुअ वणई । ताइ धवलपुंजवियइ भवणई ।

न यात्रा न वित्ती न मित्रो न गेहो । न धर्मो न कर्मो न जीवो न देहो ।

न पुत्रो कलत्रो न इष्टोऽदृष्टो । गयउ गजपुरे दूरदेशे पइठौ ।

क्षयो होइ निश्चय अघर्महि धर्मो । विनष्टेहि धर्महि सर्वो अकर्मो ।

करैँउ दुष्कृत दोहकेहि हतेहि । शुभाचारअष्टेहि दुष्टेहि एहि ।

अनिष्टो कनिष्टो भुजो संप्रहाइ । समुद्र रउद्रे क्षयो तुम्ह जाइ ।

—वही पृ० २, २३

४-सामंती वणिकसमाज

(१) वसन्त-वर्णन

घत्ता । इतहू मधुमासह आगमनू । इतहू प्रियपुत्र-समागमनू ।

परमोत्सवे^१ रोमांचित-भुजहू । मुह विकसिउ घनवत्सह सुतहू ॥८॥

जिम सीर्य तेमि पंचहु शतेहिं । कियउ भवन सोह निर्वृति-गतेहिं ।

घरघर भंगलइ प्रघोषिताहैं । घरघर मिथुनै परितोषिताइ ।

घरघर तोरणै प्रसाधिताहैं । घरघर स्वजन अल्पाधिकाहैं ।

घरघर बहुचंदन-छटा दीन । मरु-कुन्द-नय-दवना-प्रकीर्ण ।

घरघर स-रेणु^१-रज-पिंजरीउ । सोहंति चूत तह-मंजरीउ ।

घरघर चर्चरि कौतूहलाहैं । घरघर अंदोलै सोहलाहैं ।

घरघर कृत-वास्त्राभरण सोह । घरघर आरब्ध महायशोध ।

घरघर स्वरूप-रंजित-मनाहैं । युवती जोवै^१ (मूँह) दर्पणाहैं ।

घत्ता । घरघल जल-भंगल-कलश किय, घरघर देवय अवतदिगार ।

घरघर शृंगारवेष घरेँऊ, नाषेउ वरमुवतिहिं लच्छलिया ॥९॥

सो गजपुर सो पौरसमागम । सो सित-पक्ष वसंतहैं आगम ।

सोई निरंतराहैं चूत-वनई^१ । सोइ धवलपुंजविषई भवनहैं ।

^१ पटधात, सौर्गाधिक चूर्ण

सो बहु परिमलदूठ वण-सूरज । पिय-सुह-सीयलु दाहिण मारुज ।

सो पुर-सोह कासु उवमिज्जइ । जा पिकखवि सुर हमिरइ दिज्जइ ।

जहिं छज्जाण-मुरइ सुहसंचिय । दाहिणपवन पहय-कुसुमंचिय ।

जहिं मरुकुंद-कुसुम संबलियउ । दवणय-मंजरीउ नव हरियउ ।

जहिं आयंभिर फूलप लासउ । सोहइ नाइ पलितु हुवासउ ।

जहिं बहु रस-विसेस-वस-कमलइ । बहु-कुसुमइ धुणंति भमर-उलइ ।

घत्ता । जहिं मालइ-कुसुमामोयरउ, चुंभंतु भमइ वणि महुअरऊ ।

अइमुत्तए'वि जहि रइ करइ, सो वरवसंतु को न सरई ॥१०॥

—वहीं पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दिट्ठि कुमारि वियणि सोवणघरि । लच्छि नाई नव-कमल-दलंतरि ।

जिण-सासणि छज्जीव दया इव । पंडिय-अरणि सुगइ वरिभाइव ।

मुहुभारइण मलय-वणराइव । सिंहलदीवि रयणविख्याइव ।

सोहइ दप्पणि कील करंती । चिहुर-तरंग-मंग विवरंती ।

सो फलिहंतरेण सा पिकखइ । सावि दासु आगमणु न लक्खइ ।

घत्ता । नं वम्मह भल्लि विघण-सील जुवाण-जणि ।

तहि पिकखवि कंति, विभिउ भक्ति कुमारमणि ॥१॥

उप्पल दल-दीहर-पायहिं । नह-मणि-किरण-करंबिय-छायहिं ।

जंक्षीस्य गुज्जंतर पासई । सुणियत्यई णिभीण परिवासई ।

पोतंतर उन्निध पयासई । तं विहसंति पिहिय परिहासई ।

वियदू नियंन-निनु सोहिल्लउ । देहइ अद्दाइइ कळिल्लउ ।

रोमानलि वलि अंगि विहावइ । मिय पिपीलि-रिछोलि'व नावइ ।

रसणादाम निबंधणु सोहइ । किकिणरणभणंतु अणु खोहइ ।

संसजक्कसु कडियलु फिसु मज्जइ । नज्जइ करयल मुट्ठिहि गिज्जउ ।

तिवलि-तरंगई नाही-मंठलु । न आवत्ता-इहु महाजलु ।

सो बहुपरिमलाढ्य-वन-तूर्यज । प्रिय-सुख-शीतल-दक्षिणमास्तु ।

सो पुर-शोभाँ कासु 'पमिज्जै । जा पेखिय सुर अचरण दिज्जै ।

जहँ उद्यानपुरे सुख-संचित । दक्षिण-यवन-प्रहृत-कुसुमंचित ।

जहँ मरु-कुंद-कुसुम संचलियउ । दवना-मंजरीउ नव-हिलियउ ।

जहँ आताअहु फुलपलाशउ । सोहँ न्याहँ प्रदीप्त-हुताशउ ।

जहँ-अहुरस विशेष-भाव कमलई । बहुकुसुमै धुनति अमरकुसई ।

घत्ता । जहँ भालति-कुसुमामोदरत, चुंबत अमै वने मधुकरऊ ।

अतिमुक्तएउ जहँ रति करई, सो वर-वसंत को न स्मरई ॥१०॥

—वहीं पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दीक्ष कुमारि विजने सोवनघरे । लक्ष्मि न्याहँ नवकमल-वलंतरे ।

जिन-शासने छै जीव-दया इव । पंखित मरने सुगति-वरिमा इव ।

मुख-मास्ते मलय-वन-राजिव । सिंहलद्वीपे रतन-विख्यातिव ।

सोहँ दर्पणे क्रीडाँ करंती । चिकुर-तरंग-भंग विवरंती ।

सो स्फटिकांतरेहिँ तहिँ पेखइ । सापि तासु आगमन न लखइ ।

घत्ता । जनु मन्मथ-भल्ल-निधानशील युवान-जने ।

ताहि पेखिय कांति, विस्मेउ भट्ट कुमार मने ॥१॥

उत्पलदल-श्रीरघ-पायहिँ । नख-भणि-किरण-करंवि-छायहिँ ।

जंघ-खरु-गुह्यान्तर-पासई । सुनिवसिते मीन परिवारसई ।

पोतांतर-उद्भिन्न-अयासई । तेहिँ वह संति पिहित-परिहास ।

विकट-नितब-बिब सोहिलउ । राज अर्द्धोअर्द्ध कटित्सउ ।

रोमावलि बलि अंगे विभावै । थिउ पिपीलि-रेखा इव नावै ।

रसना-दाम-निबंधन सोहै । किकिणि रण-भणंत मन क्षीमै ।

सम-वक्कर कटितट कुश-मध्यउ । आवे करतल-मुष्टिहु ग्राह्यउ ।

त्रिबलि-तरंगइ नाभीमंडल । तनु आवंता ऋद्धि-महाजल ।

पीणुअय-निविडई धणवट्टई । निम्बिबई हारावलि धट्टई ।

मालइ-माला कोमल-बाहुड । रमण-कडय-केऊर-सणाहुड ।

सरलंगुलि सुरेह कोमल कर । संभा-वयव नाई नहुसविर ।

रमणाहरण विहूसिय कंठि । वेलासिरि'व उयहि-उवकंठि ।

फिउ अपमाणु णिउत्तु मुहुल्लउ । अहरउ नावइ दाडिम-हुल्लउ ।

उत्तुगि' तिकखगो' नासि । पच्छभेण'व अमुणिय सासे' ।

कशिहि' कुंडल-जुअ-गंडयलिहि' । नयणिहि' दीह-कसण-वसधवलिहि' ।

भउहा-जुअसएण सुविहत्ते' । भालयलेण अद्ध-ससिपत्ते' ।

महुपिय-पेसल महुसालावि । सिह आवंचिय केस-कलावि ।

सो पिकलेनि अणोदमखे' । अख्खेरइ विन्मम संभूवे' ।

बोलाविय नायइ-परिहासई । भणहर-कामुक्कोवण-भासई ।

"हे सालूर' पवर-सीवर-अणि । अच्छहि' काई इत्थु वज्जिय जणि ।

कारणु काई नयर ज सुअउं । मठ-विहार-देहरहि' रक्खउं ।

राणउ कवणु आसि इह राजलि । धय-तोरण-भणि-संभ-रमाउलि ।"

तं निसुणेबि सलज्जिय-वयणी । थिय हिट्टामुह पगलिय-नयणी ।

मइल-कवोल कज्जला-मीसिय । नियकुल-देवसाई मं भीसिय ।

घत्ता । वरइत्तु पुत्तिवट्ट लउतणउ, मुहकमलु निहालहि' करि विणउ ।

लइ जत्तु पक्खालहि लोयणई, मं चिर करि दुक्खुकोयणई ॥

—वही पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निय-पुत्त-विट्ठलु पिक्खवि अतुलु महानिहउ ।

वट्ठिउ सिंगारु पइ परिहरिउ, परिहरिविणउ ॥

कमलई पुत्त-पयाष फुरंतिए' । लइउ दिव्वु आहरणु तुरंतिए ।

वद्धु कडिल्लि अलक्खिय नामउ । उप्परि पीडिउं रसणादामउ ।

पीनोन्नत-निविडहैं स्तनवट्टे^१ । निर्भिदे^२ हारावलि ठट्टे^३ ।

मालति-माला - कोमल - बाहुड । रतन - कटक - केयूर - सनाथड ।
सरलांगुलि-सुरेख कोमल कर । सन्ध्या^४ वधव न्याहैं नभ-तामर ।

रतनाभरण - विभूषित कंठे । बेलाश्री^५ व उदधि - उपकंठे ।
किउ अपमान अनूप-मुखल्लउ । अधरउ नावइ दाडिम-फुल्लउ ।

उत्तुंगे तीक्ष्णाग्रे नासे^६ । प्रच्छन्ने^७ हिं^८ 'व अज्ञात श्वासे^९ ।
कर्णे कुंडल-युग गण्ड-स्थले । नयनेहिं दीर्घ-कृष्ण-चल-घमले ।

भौंहा युगलएहिं सुविभक्ते । भाल-जलेहिं अर्ध-शशि-पत्रे ।
मधु-प्रिय-पेशल-भधुरालापे^{१०} । शिर आच्छादिय केश-कलापे^{११} ।

सो पेलिया अनूपमरूपा । अप्सराहैं विभ्रमसं-भूता ।
बोलेरु नागर-परिहासइ^{१२} । मनहर-कामु-त्कोपन-भाषहैं ।

"हे मालूर प्रवर-पीवर-भनि ! आछेहिं^{१३} काहू इहां वर्जित-जने^{१४} ।
कारन काहैं नगर जो सूना । मठ-विहार-देवलहिं रमना ।

राना कवन आसि^{१५} एहि राउले^{१६} । ध्वज-तोरण-मणिलंभ समाकुले^{१७} ।"
सो सुनियाउ सलज्जिय-वदनी । थिउ हेट्टामुख पघरिय-नयनी ।

महल-कपोल कज्जला-मिश्रिय । निजकुलदेवताहैं जनु भीषिय ।
घत्ता । वरदात पुत्रियहू तवकेरउ, मुखकमल-निहारहिं करि दिनय ।

लेहैं जल पक्खारैं लोचनहैं, जनु चिर करि दुःखुत्कोचनइ ॥
—वही पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निज पुत्र विदग्धता पेखि, अनुल महाविभव ।

वाटे^{१८}उ शृंगार पति परिहरे^{१९}उ गउ ॥
कमला पुत्र-प्रताप स्फुरतिऐं । सये^{२०}उ दिव्य-आभरण तुरतिऐं ।

बाँधु कटिल्लि अलक्षित-नामउ । ऊमर पीडे^{२१}उ रसनादामउ ।

मुक्कड किंकिणीउ नउ संकिउ । भरिबि रयण-कंचुकउ तउक्किउ ।

मुद्ध मराल-जुयलि किउ छन्नउ । कंबुकंड कंबलिए रवन्नउ ।

पीण-घणत्थण-मंडल-हारि । सिरु धम्मिल्ल-कुसुम-पण्मारि ।

कम्महिं कुंडसाइ आइद्धई । उप्परि वेडियाई पहिचिधई ।

पुरिउ रयण-बूहु मणि-वल्लयहो । दिसई केउरई बाहु-ल्लयहो ।

अंगुलीय मणि मुज्जावत्तउ । कीसहिं अंगुलीहिं पक्खित्तउ ।

पय-मणिवट्टय नेउर-जुयलउ । सुह-संजनिय महुर-रव-मुहलउ ।

जंधाजुयलि रयण पज्जत्तउ । कडियलि रसण-कणय-कडि-सुत्तउ ।

मुहि मणि-बूडहो कंकण जुयलउ । सोहिउ अट्टहारि वच्छयलउ ।

एमाहरणु लेवि सविसेसि । थिय नंदणहो बियडि परिओसि ।

—वही पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घसा । तो बुच्चइ अहर पुरतियई णिवसंतिहि तउतणई धरि ।

उप्पाइय केणमि भंति पडु, था सा कहि मं हियइ धरि ॥७॥

तुहें पुरवरहों सव्व-साहारणु । जाणहिं कज्जाकज्ज-विमारणु ।

अवर णिरारिउ विप्पियमारउ । सुहिपउ होइ संगु तुम्हारउ ।

सेविज्जंति विचित्त सणेहउ । मंछूहु तुहें जिण अम्मिबि एहउ ।

तो वरइत्ति वुत्तु अवंकउ^१ । को सक्कइ तउ करिवि कलंकउ ।

हउमि णाहि तउ विप्पिय-मारउ । जाणहिं तुहें जि संगु अम्हारउ ।

अवर ण जाणमि काइमि कारणु । जाउ असत्थ पियम्म निवारणु ।

केम कंतिपडें मणिण कलंकमि । खणमित्तु^२ बि देक्खणहें न सक्कमि ।

मज-वलंति णिघंतहो णयणई । अणशमऊ करंति तव वयणइ ।

घसा । अच्छंतु ताम पियविप्पियई, एककंणिवि म रइ करहि ।

परियाणिवि एही कज्जई, ज जाणहिं त मणि धरहि ॥८॥

मुक्तउ किणीउ ना शकेउ । भरिउ रतन-कंचुकउ तइकउ ।

मूर्ध मराल-युगले किउ छत्रउ । कंचुकठ-कदलिऐ रमसउ ।
पीन-धन-स्तनमडल-हारे । शिर-धम्मिल-कुसुम-प्रभ-भारे ।

कर्णहिं कुंडलाई आयइ । ऊपर बेठियाई प्रभ-चिन्है ।
पूरेउ रतन-चूड मणि-बलयहो । दीनी केयूरई बाहुलतहो ।

अंगुलीय-मणि मुंजावतउ । वीसहिं अंगुलीहि प्रक्षिप्तउ ।
पद-मणि-बद्धेउ नूपुर-युगलउ । सुख-संजनित मबुर-रव-मुखरउ ।

जंघा-युगले रतन-प्रज्-जुत्तउ । कटितले रसक-कमक-कटिसूत्रउ ।
मुखे मणि-चूडहो कंकण-युगलउ । सोहेउ अर्धहार वक्षतलउ ।

ए आभरण लेइ सविशेषे । ठिय नंदनहो विकट परितोषे ।

—वही पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

अज्ञा । तो बोले अघरफुरंतियई, निवसंतिहि तवकेर धरे ।

उत्पादिय कैसेहुँ भ्रान्ति प्रभु, या सा काहि न हृदय धरे ॥७॥
तव पुरखरहो सर्व-साधारण । जानै कार्याकार्य-विचारन ।

केवल अत्यन्त विप्रिय-कारउ । सुहृदउ होइ संग तुम्हारउ ।
सेविज्जई विवित्र-सनेहुइ । भत्सर तोहि न जन्मेउ एहुइ ।

तो बरयातो बोल अवंकउ । को सकै तव करव कलंकउ ।
होहु नाहि तव विप्रिय-कारउ । जानै तुहुँहु संग हम्मारउ ।

केवल न जानौ काहुउ कारण । जाउ अस्वस्थ प्रियम्भनिवारण ।
केम कांति तेई मनेहिं कलंकउ । क्षणमात्रउ देखवहु न सकउ ।

मद चलति देखते नयनई । अनरामउ करंति तव वदनई ।

अज्ञो । रहै ताहि प्रिय-विप्रियई, एकांगनेहु न रति करहि ।

परि-जानिय ऐहि कार्यगती, जो जानहि सो मने धरहि ॥८॥

गिसुणिवि तासु परम्मुह जयणई । मुहुँ मउलिउ जलभरियई जयणई ।

हियवइ निब्बर मणु सम्मारिउ । "दुक्खु दुक्खु" पुणु मणु साहारिउ ।
विय गरुआहिमाणि मणु लाइवि । मच्छरु माणु मरट्टु पमाइवि ।

णउ पहसई णउ तणुसिगारइ ।
णउ केणवि सट्ठु जयण-कउक्खइ । णउ कासुवि गुणदोसई अक्खई ।

तोवि ताहँ धरवइ ण सुहावइ । अवसेरतु पुणुवि बोल्तावइ ।
अक्खहिँ काई एत्थु दुक्कदिरि । णीसरु कंति जाहि पियमदिरि ।

त दुव्वयण वासु असहंती । णिग्गय परिमणु आउच्छंती ।

—वही पृ० १०-११

५-सामन्त-समाज

(१) राजद्वार, राजांगण

रायगणंगणि पयडिवि दूदुहोँ दुक्करिउ ।

तं निमुणहु जेम भविसयसि-जसु वित्थरिउ ।
दाइथ दुप्पपंचु आयन्निवि । माण-कसाय-सल्लु भणिमन्निवि ।

हरियत्तहोँ संकेउ समासिवि । कमलदलच्छि लच्छि संवासिवि ।
नियय जणेरि ययण संपेसिवि । पुव्वावर संकेउ गवेसिवि ।

बहु नवल्ल पाहुइहँ समारिवि । चदप्पहुँ जिणवर जयकारिवि ।
निगउ वणिवरिदु पट्टवारहोँ । भइयइ-निवह-विसम-संचारहोँ ।

जहिँ गय गुलगुलंति पिहु जंगम । हिलिहिलंति तुक्सार-तुरंगम ।
जहिँ मंडलिय सक्क-सामंतहँ । निवडिय कणयदंडु पइसंतहँ ।

गलइ माणु अहिमाणु न पुज्जइ । निय-सच्छंद-लील नउ जुज्जइ ।
जहिँ अक्-भोहुँ जहु जालंधर । मारुअ-उक्क-कीर-खस-बक्खर ।

मरु-वेयंग-कुंग-बेराडवि । गुक्खर-गोइ-लाड-कभाडवि ।

इय एमाइ अउव्व-जसुंचर । अवसर पडिवालंति महानर ।

सुनिया तासु परामुख-वचन । मुख मुकुलेँ उ जल भरिख नयन ।

हिमवइ निर्भर मन संभारेँ उ । “दुःख दुःख” पुनि मन संभारेँ उ ।
ठिउ गरुषाभिमान मन लाइय । मत्सर-मान-दर्प प्र-मार्जेँ उ ।

ना प्रहसै ना तनु शृगारै । ।
ना काहुहिँ सँग नयन कटाक्ष । नहि कासुउँ गुण-दोष आसै ।

तोहु ताहँ घरपति न सोँहावै । अपमानैँ पुनिहू बोलावै ।
“अछहिँ काहँ इहाँ दुष्-कंदिरे” । नीसरु कांत ! जाहि प्रियमंदिरे ।”

सो दुर्वचन-वास असहैसी । निर्-गउ परिजन आ-भूछंती ।

—वही पृ० १०-११

५-सामन्त-समाज

(१) राजद्वार राजांगण

राजांगण जाई प्रकटिउ दुष्टहँ दुश्चरितू ।

सो सुनहु जिमि भविषदत्त-यश विस्तरिउ ॥

दर्शिय दुष्प्रपंच आकर्णिय । मान-कषाय-शत्रु मनेँ मानिय ।

हरिदत्तहोँ संकेत समासेँ उ । कमलदलाक्षि-लक्ष्मि संवासेँ उ ।

निजहिँ अनेरि-वचन संप्रेषिय । पूर्वापर संकेत गवेषिय ।

बहु नवलस पाहुँरहँ सँभारिय । चंद्रप्रभ-जिनवर जयकारिय ।

निर्-गउ वणि-वरेंद्र प्रभु-द्वारहोँ । भट-ठट-निवह-विषम-संचारहोँ ।

जहँ गज गुलगुलंति पृथु जंगम । हिलहिलंति तूषार-गुरंगम ।

जहँ मडलियेँ शक्र-सामन्तहँ । वारेउ कनकदंड पडसंतहँ ।

गले मान अभिमान न पुज्जै । निज-स्वच्छंद लील ना जुज्जै ।

जहँवाँ भोट-अहु-जालंधर । मारुद-टक्क-कीर-सस-बर्बर ।

भरुवे - अंग - कुंग - बैराटउ । गुर्जर - गौड - लाट - कर्नाटउ ।

ई एताइँ अपूर्व-वसुंधर । अवसर प्रतिपालंति महानर ।

घत्ता । सामंत-सार्थेहिं अं सेविज्जइ रत्तिदिणु ।
तं रायदुवार पिक्खिक्खि कासु न सुट्ठइ मणु ॥

—वही पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता । चिन्हई दरिसंतु महत्तरई, सज्जन-जण-हियवड भरइ ।
आणंद गंदि-कलमल-खेण, उज्झासाल पईसरइ ॥
सहिदि तेण गुतु वयण गिउत्ति^१ । परभागम-कल-गुण-संजुत्ति ।
पुणि अक्खर संकेय-कयत्थे^२ । बहु वायरण-सइ-सत्थ-त्थे^३ ।
सयसकला-कलाव-परियाणिय । अवगाहण-सत्तिण लहु जाणिय ।
जोइस-मंत-संत बहु-भेयई^४ । धणु-विआण वाण-गुण-खेयई^५ ।
विविहाउइई विविह-संवरणई^६ । रणि हत्थापहत्थ-वावरणई^७ ।
दिण पहर पडिपहर पमुक्कइ^८ । लक्खण-चलण-चंचला हुक्कई^९ ।
मल्लजुज्ज आदगण-संयइ^{१०} । ढोक्कर-कत्तरि करण पवंचई^{११} ।
गय-तुरंग-परिवाहण संयइ^{१२} । सारासार-परिक्खण भयइ^{१३} ।
घत्ता । एमाइ किसिद्धई अण्णहिंमि अंगउ गुणिहिं तासु बरिउ ।
जिण महिम पुज्ज दाणोच्छविण उज्झासालहिं णीसरउ ॥२॥
उज्झासाल मुएँवि घर आयहो^{१४} । थिर-गंभीर-गुणिहिं विक्खायहो^{१५} ।

—वही पृ० ८

(३) युद्ध (भविष्यदत्तका)

पठमउं पहरंतएँ सामिसालि । परिअमिय विसम-भंडण-करालि ।
भइयडु अप्पं परिहोइ जाम । पाइक्कहो^१ पसर न होइ ताम ।
तं मंतिहु वयण सुणेवि तेण । अवलोइय नर हरिसियभुएण ।
दिट्ठई सम्माणई जोह जाम । पाइक्कहो^२ पसर न होइ ताम ।

^१ ग्रहण करते हैं

घत्ता । सामंत घते^१हिं जो सेविज्जै रात्रिदिन ।
सो राजदुवारहैं पेक्षि कासु न सुट्टै मन ॥

—वही पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता । चिन्हैं दर्शन्त महत्तरहिं, सज्जन-जन-हृदयउ भरै ।
ग्रानन्दनदि-कलकल-रवेहिं^१, पाध्या-शाला^१ पईसरै ॥
तहाँ तेहिं गुरुवचन-नियुक्ते । परमागम-कलों-गुण-संयुक्ते ।
पुनि अक्षर-संकेत-कृतार्थे । बहु व्याकरण-शब्द-शास्त्रार्थे ।
सकल-कला-कलाप-परिजानिय । अक्काहन शक्तिऐं बहु जानिय ।
ज्योतिष-मंत्र-तंत्र बहुभेदई । धनु-विज्ञान बाण-गुण-खेदई ।
विविध-आयुधई विविध-संवरणै^२ । रणै^३ हस्त-पहस्त व्यापारणै^४ ।
दीनु प्रहर प्रतिप्रहर प्रमुंचई । लक्षण-चलन-चंचला-हुकई ।
मल्लयुद्ध आदलगन संचई । ढोक्कर-कर्तैरि-करन प्रपंचई ।
गज-तुरंग-परिवाहन संज्ञई । मारासार-परीक्षण^५ गिसई ।
घत्ता । एताई विशिष्टई, अन्यहैंउ अंगउ, गुणैहिं तासु वरिऊ ।
जिन-महिम-पूज-दानोत्सवै^६हिं, पाध्याशालहिं नीसरिऊ ।
पाध्याशाल मुंघि घर आयउ । धिर-गोभीर-गुणै^७हिं निरुपायउ ।

—वही पृ० ८

(३) युद्ध (भविष्यवत्सका)

प्रथमचें प्रहरंतउ स्वामिशाल । परिअमिय विषम-भंडन करास ।
भट-ऊट आपा-गरिहोइ जाहैं । पायकहों^१ पसर न होइ ताहैं ।
सो मंजिहु वचन सुनीय तेहिं । अवलोकैंउ तर हर्षित-भुजेहिं ।
दुष्टै^२ सम्मानै^३ घोष जाहैं । पाइकहों^४ पसर न होइ ताहैं ।

^१ उपाध्यायशाला, पाठशाळा

पसरइ साकेय-नरिद-सिन्धु । रोमंच उच्च कंचुअ पवन्तु ।

हरि-खर-खुर-रवि खोणी खणंतु । गमपय पहारि घरदरमलंतु ।

“हणु मारि मारि” कलयल करालु । सभद थद भड-थडव भालु ।

तं निर्देवि सधणु अहिमुहं चलंतु । घाइउ कुरु साहणु पडिसलंतु ।

घसा । कलयल-गंभीरई दिअसररीरई, हय-रणभेरि-भयंकरई ।

कुरुषोयणवल्लहं अणिहय-भल्लहं भिडियई वलई समच्छरई” ॥

बुझई । सो हरि-खर-खुरग-संघट्टि छाडउ रणु अतीरणे ।

• णं भड-मच्छरगि-संधुक्कण धूमतमंघयारणे ॥

धूसीरउ गयधंगणु भरंतु । उट्टिउ जगु अंधारउ करंतु ।

नउ दीसइ अप्पु न पर स-सग्गु । न गहंडु न तुरउ न गयणमग्गु ।

तेहवि काले अविसेट्ट-मोह । हुंकारहु पहर मुअंति जोह ।

किवि आहणंति दिसि बहु मुणेवि । गय-गज्जिउ हय-हिंसिउ सुणेवि ।

किवि कोकिवि पडिसइहो चलंति । असि-मुट्टिए निय-लोयण मलंति ।

घावंतु कोवि अहिवाहिमाणु । गयदंतहिं भिन्नु अपिच्छमाणु ।

कल्यइ पहराउर^१ अयसमोह । गयचड पयट्ट निहणंति जोह ।

रउ नट्टु विहिंडिउ भडबलेण । महि मुट्टिय वण-सोणिय-जलेण ।

घसा । तो गय-घड पिल्लिउ सुहडहिं मिल्लिउ अवक्कपरि कप्परियतणु ।

सरजालो मालिउ पहर करालिउ, ममरावसिं भमिउ रणु ॥

बुझई । तो इक्कवयकव-यंगुरणहिं सुहडहिं नारसिंहहिं ।

दड-दाडा-कराल-मुह-भासुर लोललनंत जीहाहिं ॥१॥

खज्जंतु भमिउ करवट्ट सिन्धु । ओसार निविड गयघडहिं दिन्नु ।

तेहइ वि कालि सोंडीर-वीर । पहरंति सुहड संगाम-वीर ।

केणवि कासुवि असिघाउ दिन्नु । उरु सिह स-सग्गु भुअ-दंडु छिन्नु ।

असि वाहइ कोवि गलढ सेसु । हत्येण घरेवि पडंतु सीसु ।

पसरै साकेत-नरेन्द्र शीर्ण । रोमांच उन्व-कंधुक प्रवेरण ।

हरि-खर-खुर-रवे^१ क्षीणी खनंत । गजपदप्रहरे^२ धर दरदरंत ।

“हन, मार, मार” कलकल-कराल । सभ्रद्ध दह भटठटह^३ माल ।

सो निजहु स-धनु अभिमुख चलंत । धाये^४ कुरु-साधन^५ प्रतिसलंत ।

घत्ता । कलकल-गंभीरहैं, दीणंशरीरहैं, हृत-रणभेरि-भयंकरहैं ।

कुरुजनवल्लभ, अनिहृत-मल्लहैं, मिडियै^६ बलहैं समत्सरहैं ॥

द्विपदी । तो हरि-खार-खुराप्र-संघट्टे^७, छाड़उ रणुअतोरणे ।

जनु भट-मत्सर-‘ग्न-संधुक्षण धूमतम^८ ग्वया रणे ॥

धूली-रज गगनांगणे^९ भरंत । उट्ठेउ जग-अंधारउ करंत ।

ना दीसै आपु न पर स-खज्ज^{१०} । न गयंद न तुरग न गगन-मार्ग ।

तेहिह काले अ-विसृष्ट-मोह । हुंकारहु “प्रहर” मुंचंति योध ।

केउ आ-हनति दिशि-बधु मानेह । गज-गर्जन हय-हिन्हिन सुनेह ।

केउ कोकिउ प्रतिशब्दहु वदंति । असि-मुष्टिहैं निज-लोचन मलंति ।

धावंत कोइ अधिकाभिमान । गजदंतहैं भिन्दु आपृच्छमान ।

कतहैं प्रहरातुर अयश-मोह । गजघट-प्रवृत्त नि-हनंति योध ।

रज नष्टउ हिंडिउ भटबलेहैं । महि मुद्रिय नृण-शोणित-ज जेहैं ।

घत्ता । गजघट पेल्से^{११}उ सुभदेहैं मिल्ले^{१२}उ, अपरोपरि कर्परिय तनू ।

शरजालो मालेउ, प्रहर करालेउ, अमरावत्त^{१३} भमे^{१४}उ रणू ॥

द्विपदी । तो एकहिं एक प्रागुरणहि सुभटहिं नरसिंहहिं ।

‘दूह बंधा-कराल मुख-भासुर लोलललंत जीमहिं ॥

खाद्यंत अमिउ कर-वाहै-शीर्ण । ओसार नित्रिउ गजघटहिं विभ्र ।

तेहिह काल शौंडीर-प्रवीर । प्रहरंति सुभट संग्राम-धीर ।

केहुउ काहुहिं असिघाउ दिष । उरु-शिर स-खज्ज मुजदंड छिन्न ।

असि वाहै कोउ गलाध-शेष । हाथेहिं घरेउ पबंत-सीस ।

केणवि आरोडिउ संवकसु । बंचेवि फरसु कुतेण भिषु ।

केणवि रणि तज्जिउ एक्कवाउ । विज्जाहर करणि दिनु घाउ ।

केणवि दुक्कंतु लसंतु जोडु । दोखंडिवि पाडिउ नारसीहु ।

कत्थइ कहु आविय गयहें पंति । परिभमिय सुहउ सीसहें दलंति ।

कत्थइ पहराउर दुस्तिवार । हिंडिय^१ तुरंग पडि आसवार ।

कत्थइ सरोहु वण सोणियंघु । सुरहिउ करि नरकेसरिहि लंघु ।

एहइ वट्टंतए रणि असक्कि । मंतणउं जाउ सहिवाल चक्कि ।

“यहो ! अन्धइ हु कादें निरावसन्न । कुखइहि ओ^२सारिय लंबकन्न ।

भंछुहु दुज्जउ भूवाल राउ । दीसइ धणपइ-सुउ वहु-पसाउ” ।

तं मंतवयणु हियवइ वरेवि । उट्टिय सयलवि समहरु करेवि ।

घत्ता । महिवइ सामंतिहिं समरि भिडंतिहिं कुरुवइ साहणु ओसरिउ ।

दिठ पहर करालिउ समरस-जालिउ, रणमहि भिल्लिवि नीसरिउ ॥१५॥

बुधई । भग्गइ साभि सिन्धि पइसंतए पसरिवि निययमंडले ।

निरु खलमलिय गाम-पुर-पट्टण, तहिं कुरुभूमि-जंगले ॥

—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीं सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००६-४२) ।

१-तैलप-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पञ्चान्ताप

इणि राजिई नहु काजु, भोज-भुणागर तूह विणु ।

काठ दिवारउ आज, जिम जरई भोजइ भिर्नु ॥

^१ भटका फिरता ह

काहुहि आलोडे'उ लंबकर्ण । बंवाई परशु-कुलेहिं भिन्न ।

काहुहिं रणे' तर्जे'उ एक बाव । बिद्याधर-कर्णे दिन्न धाव ।

काहुहि दुक्कंत ललंत जीभ । दोखंडउ पाते'उ नारसीह ।

कतहूँ कउ आकी गजहूँ पंक्ति । परिभमिय सुभट शीशै' दलंति ।

कतहूँ प्रहरानुर दुर्निवार । हिंडिय तुरंग, पडिया सवार ।

कतहूँ सरोष वण-शोणित'न्ध । सुरभिउ करि नरकेसरिहि खंध ।

ऐसे'हैं होवते रणे' असक्के' । मंत्रण हुई महिपाल-चक्र ।

“भहो ! आछे काहूँ निरावसन्न । कुरुपतिहिं ओसारे'उ लंबकर्ण ।

निश्चय दुर्जय भूपाल राव । दीसैं धनपति-सुत बहु-प्रसाद ।”

सो मंत्रिद्वन्द्व हृदयहिं घरेइ । उद्विय सकलउ समहर करेइ ।

घत्ता । महिपति सामंतहिं समर-भिडंतहिं, कुरुपति-साधन अपसरैऊ ।

दूह-प्रहरकरालउ, समर-सज्जाले'उ, रण-महि, मेलिय नीसरैऊ ॥ १५ ॥

हिपदी । भागै स्वामि शीर्ष पइसंतएँ पसरैइ निजय-मंडले ।

अति-खलबलिय ग्राम-पुर-दृपत, तहूँ कुरुभूमि-जंगले ॥

—बही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीं सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००६-४२) ।

१-तैलप'-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पञ्चात्तरप

एहि राजहिं नहिं काज, भोज गुणगर साहि विनु ।

काठ दिवारउ आज, जिमि जाई भोजहूँ मिलौ ॥

सामिय अतिहिं अजाणु, जं इण परिबोलइ हियइ ।

जाण्वा एहु प्रमाणु, कीधउँ जं न कयत्थियइ ॥

—'प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! अम्हारी सीष, कीजइ अवगणिअइ नहीं ।

तू चालंती भीष, इणि मंत्रिहिं हुस्यइ सही ॥

हलियउँ रायइ राजु, तई वइठइ मई लंघियइ ।

ए पुणि वडउँ अकाजु, तू जाणे मालव-सणी ॥

सामी मुह तउ वीनवइ, ए छेहलउ जुहार ।

अम्ह आइसु हिय सीसि, तुह पडतउँ देखू छार ॥

—प्र० चि० पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख भँगवाना

भोली तुटुवि किं न मुअ, किं हुउ न छारइ पुंजु !

हिण्डइ दोरी दोरियउ, जिम मंकइ तिम मुंज ॥

चित्ति विसाउ न चितियइ, रयणाथर गुण-पुंजु ।

जिम जिम वायइ विहिपइहु, तिम नार्चिअइ मुंजु ।

सायर षाई लंकगहु, गढवइ दसशिर राउ ।

अग्य षई सो मंजि गउ, मुंज म करिसि विसाउ ॥

गय गय रह गय तुरयगय, पायक्कडानि भिच्च ।

सगगट्टिय करि मंतणउँ, महता रुदाइच्च ॥

—प्र० चि०, पृ० २३

स्वामिय अलिहि अजान, जो इन पर बोलै हिय ।

जान्या एहु प्रमाण, कीचीं जो न कदथियह ॥

—प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! हमारी सीख, कीजे श्रीगनियै नहीं ।

तू चालंती भीख, इन मंत्रिहिं होइह सखी ॥

रुलियउ राजहैं राज, तैं बइठै मैं लंघियह ।

ए पुनि बडो अकज, तू जाने मालव-धनी ॥

स्वामी मुखते वीनवै, यह पाछिउ जुहार ।

मोहिं आयसु हिय शीश तुहु, पढतो देखूँ छार ॥

—प्र० चि०, पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

भोली टुट्टी की न मुअ, कि हुअ न छारह पुंज ।

हिडै^१ डोरी डोरियउ, जिमि भकंट तिमि मुंज ॥

चित्तैं विषाद न चितियह, रतनाकर गुण-मुंज ।

जिमि जिमि बाजे विधि-पटह, तिमि ना चिज्जै मुंज ॥

सागर सार्हैं लंक-गढ़, गढपति दश-धिर राव ।

आय्य क्षयी सो भंजि गर, मुंज ! न करहि विषाद ॥

गयै गज रथ गयै तुरग गयै पायकडानउ भृत्य ।

सगैं ठिठ करि मंत्रणां, महता रुद्रादित्य ॥

—प्र० चि०, पृ० २३

^१ घूमता है, भटकता है

२—सुखी कुटुंब

भोली मुन्वि म गळु करि, पिक्खवि पहु-हवाई ।

चउदह-सई छटुत्तरई, मुंजह गयह गयाई ॥

भ्यारि बइल्ला घेनु दुइ, मिट्ठा-बुली नारि ।

काहू मुंज कुडंनियहूँ, गयवर बज्जहई वारि ॥

—प्र० चि०, पृ० २४

३—दासी-प्रेम-निंदा

दासिहिं नेह न होइ, नाना निरही जाणियइ ।

राउ मुंजेसर जोइ, घरिघरि भिक्खु भमाडियइ ॥^१

वेसा छंछि बडायती, जे दासिहिं रच्चंति ।

ते नर मुंजनरिन्द-जिम, परिभव घणा सहंति ॥

—प्र० चि०, पृ० २४

४—नीति-वाक्य

जे थक्का गोला नई, हूँ बलि कीजूं ताह ।

मुंज न दिट्ठउ विहलिक, रिद्धि न दिट्ठ सलाहें ॥

जा भति पच्छइ सम्पजइ, सा भति पहिली होइ ।

मुंज भणइ मुणालवइ, बिघन न वेढइ कोइ ॥

—प्र० चि०, पृ० २४

५—वैराग्य

कसु कर रे पुत्त कलस धी कसु कर रे करसण वाडी ।

एकला आइबो एकला जाहबो हाथ-पग बेहु झाडी ॥

—प्रबंधचिंतामणि, पृ० ५१

२-सुखी कुटुंब

भोली मुग्धे ! न गवं कर, पेखेँवि प्रति-रूपाई ।

चौदहसै छेहतरा, मुंजह गजह गताई ॥

भारि बइल्ला घेनु दुइ, भिट्ठा-बोली नारि ।

काह मुंज ! कुटुंबियहँ, गज-वर बाँधे द्वारि ॥

—प्र० चि०, पृ० २४

३-दासी-प्रेम-निंदा

दासिहिँ स्नेह न होइ, नाना निरखी जानियह ।

राख मुँजेस्वर जोइ, घर-घर भीख भ्रमावह ॥

बेसा छाडि बढायती, जे दासिहिँ रंजति ।

ते नर मुंज-नरेन्द्र जिमि, परिभव घना सहति ॥

—प्र० चि०, पृ० २४

४-नीति-वाक्य

जे थाके गोदा नदी, हौं बलि कीजौं ताह ।

मुंज न देखेउ बिहरियउ, ऋद्धि न दीसु सलाह ॥

जा मति पाछे कपजै, सा मति पहिले होइ ।

मुंज भनै भृणालवति, बिघन न बाढे कोइ ॥

—प्र० चि०, पृ० २४

५-वैराग्य

कासुकर रे पुत्र-कलत्र-धी कासुकर रे कर्षण-वाढी ।

एकले आइव एकले जाइव हाय-भग दोनौं भाडी ॥

—प्रबंध चिंतामणि, पृ० ५१

§ २६. अब्दुर्रहमान^१

काल—१०१० ई० । देश—मुल्तान । कुल—जुलाहा (भीरसेन । भीरहसन)

१-परिचय

अगुराइयरयिहह कामिय-मणहह, मयण मणह-पह-दीवयरो ।

विरहिणिमइरद्वउ सुणहु विमुद्वउ, रसियह रस-संजीवयरो ॥२२॥

अइणेहिण भासिउ रइमइवासिउ, सबणसकुलियह अभिय सरो ।

लह लिहइ वियवखणु अत्वह लवखणु, सुरइ-संगि जु विअइव-नरो ॥२३॥

२-प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पत्रिकाको रोकती हे)

धम्मिलउ मुनकमुह, विज्जंभइ अरु अंगु मोढई ।

विरहानलि संतविअ, ससइ दीह कर-साह तोढई ॥

इअ मुद्वह विलवंतियह महि चलणेहि छिहंतु ।

अद्वुड्डीणउ तिणि पहिउ पहि जोयउ पवहंतु ॥२२॥

तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ-उक्कंसिरिया,

मंथर-भय सरलाइवि उतावलि बलिया ।

तह मणहर चलंतिय चंचलरमणभरि,

धुववि सिसिय रसणावलि किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥

तं जं मेहस ठवइ गंठि णिट्ठुर सुहय,

तुडिय ताव धूलावलि णवसर-हारलय ।

सा तिथि किंवि संवरिणि चइवि किंवि संचरिया,

णेउर चरण-विलगिगवि तह पहि पंखुडिया ॥२७॥

^१ पञ्चाए लि पद्मो पुण्यपसिद्धो य भिच्छे वेसो स्थि ।

तह विसए संभूओ आरहो भीरसेणस्स ॥३॥

§ २६. अब्दुर्रहमान

पुस्त अब्दुहमान) (आरह) । कृति—संवेह-रासय (संवेह-रासक), शृंगारी कवि ।

१-परिचय

अनुरागी-रतिधर कामी-मनहर, भदनमभा पय-दीपकरो ।

विरहिणि-भकरध्वज सुनहु विशुद्ध रसिकन रस संजीवकरो ॥२२॥

अतिस्नेहहिं भाषेँ रतिमतिवासित, अवण-शङ्कुलिहिं अमृतसरो ।

जये लिखे विचक्षण अर्थहिं लक्षण, सुरति-संगेँ जो विदग्ध-नरो ॥२३॥

२-प्रोषितपत्तिकाका संदेश

(प्रोषितपत्तिका पथिक को रोकती है)

केशभुक्तमुख जँभाये अरु अंग मोढई ।

विरहानले संतपिय, स्वसै वीर्य-कर-शास्त्र तोढई ॥

इमि मुग्धा विलपंती महिहिं चरणेहिं झुवन्ती ।

अर्घोद्विग्ना सा पथिक पथेँ ओयउ चलतो ॥२५॥

तहि पथिकहिं पेखिया प्रियहिं उत्कठितिका,

मंथर-गाति सरलाइय उत्तावलि अलिया ।

तिमि मनहर चलन्ती चंचलरमणभरी,

छुटी खिसकि रसमावलि, किंकिणि-रव पसरै ॥२६॥

ता मेखलहिं राखि गांठेँ निष्ठुर सुभगा,

टुटी तबहिं स्यूलावलि नव-सर-हार-सता ।

बहु तेहिं किछुक उठाइ किछुक तजि संचलिता,

नूपुर चरण लपटिया इमि पथि आ-गहिया ॥२७॥

तहू तणयो कुलकमलो पाइय कब्बेसु गीय विसयेसु ।

अब्दुहमान पसिद्धो संनेह्य रासय रइयं ॥४॥

—संदेशरासक (भारतीय विद्या (बंबई) मार्च १९४२ ई०)

पडिउटिय सविनकस-ससज्जिर संभसिमा,
 तउ सय सच्छ गियसण मुखहवि बससिया ।
 तं संवरि अणुसरिय पहिय पावयणमणा,
 फुडवि थित कुप्पास विलगिय दर सिहणा ॥२८॥
 छायेती कह कह व सलज्जिर गिय करही,
 कणय-कलस भंपती नं इंदीवरही ।
 तो आसन्न पडुत सगगिर-गिरवमणी,
 कियउ सद्दु सविलासु करुण दीहरनयणी ॥२९॥
 ठाहि ठाहि गिमिसदु सुथिर अवहारि मणु,
 पिसुणि किपि जं जंपउ हियइ पसिज्जि सणु ।
 एय वयण आयनि पहिउ कोऊहसिउ,
 गेय निअत्तउ तासु कमदु'वि णहु बलियउ ॥३०॥
 गाहा तं निसुणेविणु राय-मराल-गइ,
 चलणंगुट्टि भरति सलज्जिर उत्तिहइ ।
 लउ पंघिउ कणयंगि तत्थ बोलावियउ,
 "कहि जाइसि हिव पहिय कहैं व तुह आइयउ" ॥४१॥
 "णयरणामु सामोरु सरोरुहदलनयणी,
 गायर-जन-संपुसु हरिस ससिहरवयणी ।
 बवल-तुंग-पायारिहिं तिउरिहि मंडियउ,
 णहु दीसइ कइ मुखु सयलु अणु पंडियउ ॥४२॥
 तवण-तित्थु चाउहिसि मियच्छि बलाणियइ,
 मूलत्थाणु^१ सुपसिउउ महियलि जाणियइ ।
 तिह हुंउउ हउं इक्किण लेहउ पेसियउ,
 संभाइत्तइ वच्चउ पडु-आएसियउ" ॥४३॥

^१ मूलतान (मूलस्थान=मूलभाष ?)

पडि उट्ठी सविलक्ष सलज्जिल संभ्रमिया,
 तब सित-स्वच्छ-वसन मूर्धहिँ लसिया ।
 ठाँकि ताहि अनुसरी पथिक-मिलन-मनसा,
 पटी कंचुकी क्षुद्र-छिद्र सहँ भलक कुचा ॥२८॥
 हाँकती कैसहँ सलज्जिल निज-करहीँ,
 कमक-कलश भाँपती मनहुँ हँदीबरहीँ ।
 नियरे पुनः पहुँचि सगद्गद-गिर-बदनी,
 कहेँउ शब्द-सविलास करण-दीरघ-नयनी ॥२९॥
 "ठहर ठहर निमिषार्ध सुधिर अवधारु मने,
 सुनु जो किछु मैँ भाखीँ हियहिँ एसीजु क्षणे ।"
 एह वचन सुनि पुनि पथिक कौतूहलियउ,
 तुरतहिँ लौटेँउ तासु पदार्थउ ना चलियउ ॥३०॥
 गाथा ताहि सुनाइय, राज-भराल-गती,
 चरणांगुष्ठहिँ भूमि संलज्जिलसोँ खनती ।
 हमि पथिकहिँ .कनकांगि वहाँ बोलाइयऊ,
 "कहँ जाइस हे पथिक ! कहाँसे आइयऊ" ॥३१॥
 "नगर नाम सामोरु^१ सरोरुहदलनयनी !
 नागरजनसंपूर्ण अहँ शशिघरबदनी !
 बवल-तुंग-आकारेँहिँ त्रिपुरेँहिँ मंडितऊ,
 नहिँ दीसै कोँइ भूखँ सकल जन पंडितऊ ॥३२॥
 तपन-तीर्थ औदिसहिँ मृगाक्षि ! बखानियई,
 मूलतान सुप्रसिद्धउ महितलेँ आनियई ।
 कहँते मोहिँ केहु लेख देख भेजावियऊ,
 संभातहिँ मैँ जाउँ प्रभूप्रेषियत हूँ ॥३३॥

एय अयण आयअनि सिधुम्भववयणी,
 ससिवि सासु दीहुन्दउ सलिलुम्भवनयणी ।
 तोहि करंगुलि करुण सगंगिर-गिर पसरु,
 जालंवरि व समोरिण मूँष थरहरिय चिर ॥६६॥
 रहवि सगदूधु फुसानि नयण पुण जज्जरिउ,
 “खंभाइसहैं णामि पहिय तनु जज्जरिउ ।
 तह मह अख्खइ पाहु बिरह-उल्हावयर,
 अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिदयर ॥६७॥
 पउ मोढनि निमिसिद्धु पहिय जइ दय करही,
 कहउँ किपि संदेसउ पिय तुच्छकस्तरी” ।
 पहिउ भणइ “कणयंगि ! कहह कि हसयण,
 भिज्जंती गिर दीसहि उज्ज्वलमियनयण” ॥६८॥
 “असु णिगामि रेणुकरहि, कीअ ण विरहदवेण ।
 किम विज्जइ संदेसउउ, तसु णिट्ठुरइ भणेण ॥६९॥
 असु पवसंत ण पवसिआ, भुइअ विओइ ण जासु,
 सज्जिज्जउ संदेसउउ, दिती पहिय पियासु” ॥७०॥
 सज्जवि पंथिय जइ रहउं, हिअउ न धरणउ जाइ ।
 गाह पठिज्जसु इक्क पिय, कर लेविणु मन्नाइ ॥७१॥
 सुह विरहपहर संचूरिआइ, बिहडंति जं न अंगाई ।
 तं अज्ज-कल-संघटण-ओसहे गाह लगंति ॥७२॥
 कहवि इय गाह पंथिय ! मन्नाएवि पित ।
 दोहा पंचकहिज्जसु, गुरुविणएण सैंउ ॥७४॥
 पिअ-विरहानस संतविउ, जइ वच्चइ सुरजोइ ।
 तुअ छडिनि हिय अट्टियह, तं परिवारि ण होइ ॥७५॥
 कंत जू तइ हिअयट्टियह, विरह विडंबइ काउ ।
 सप्पुरिसह मरणाअहिउ, परपरिहव-संताउ ॥७६॥

एह वमन काने सुनि सिधू-झरवदनी,

लेह दीर्घाणि-निश्वास सलिलसंभववदनी ।

फोकि करंगुलि करुण सगदगद-गिरा कही,

मुग्धा बातेहिँ कदली जिमि बहुराय रही ॥६६॥

रोइ अणार्द्धहिँ पोँछि नमन पुनि बोसियऊ,

“सम्मातहिँ को नाम पथिक ! तनु अर्जरिऊ ।

तहँ भम आछै नाथ विरह-उल्लासकर,

अधिक कास चलि गयउ, न आयउ निर्देयर ॥६७॥

पद मोड़हु निमिषार्ध पथिक ! यदि दया करी,

कहीँ किमपि संदेश प्रियहिँ तुच्छाकरहीँ !”

पथिक भनै “कन्तकांगि ! कहहु किमि रुदिययनी,

सिन्ना दीसै बहु उद्विग्निल मृगनयनी” ॥६८॥

“जेहिँ निहसे अस्मोत्कर, कीय न विरहदवेहिँ ,

किमि दीर्घ संदेसड़ा, तौसु निष्ठुरहिँ अनेहिँ ॥६९॥

जासु प्रवास न प्रवसिया, मुई वियोग न जेहि ।

लज्जीअउँ संदेसउउ, देती पथिक ! प्रियेहिँ ॥७०॥

सज्जिय पथिक ! यदि रहौँ, हियहु न धारिय जाइ ।

गाथा पठियहु एक प्रिय, कर रहि लेहु बनाइ ॥७१॥

‘सब विरहचोटहिँ चूरचूर’ नष्ट ओ ता अंग हुये ।

सो आजकल-मिलन-उत्सहेहिँ नाथ ठहरे हुये ॥७२॥

कहियउ ऐह गाथा पथिक, मनायो प्रिय ।

दोहा पाँच कहीओ, बहुविनयेहिँ सह ॥७३॥

प्रिय-विरहानल संतपित, यदि जाओ सुर-लोक ।

तौहिँ छाड़ी हृदयस्थितहँ, सो पुनि नीक न होइ ॥७४॥

कन्त ! ओ तौहिँ हृदयस्थितहँ, विरह पराजै काहु ।

सत्पुरुषहिँ भारणाधिक, पर-परिभव-संताप ॥७५॥

गहघड़ परिहसु कि न सहउ, पइ पोरिस-निलएण ।

जिहि अंगिहि तू विलसियउ, ते दह्य विरहेण ॥७७॥

विरह-परिगह छावडइ, पहराविउ निरवक्खि ।

तुट्टी देह न हउ हियउ, सुअ संभागिय पिक्खि ॥७८॥

मह न समत्थिम विरहसउ, ता अछहु बिलवन्ति ।

पालीरुअ पमाण पर, धन सामिहि घुम्मन्ति ॥७९॥

संदेसइउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ ।

जो काणंगुलि मूँदइउ, सो बाहडी सभाइ ॥८०॥

लहसिउ अंसु उदसिउ, अंगु विसुलिय अलय,

हुय उच्चिर वमण सलिय विवरीय गय ।

कुंकुम कणय-सरिच्छ कंति कसिणा वरिया,

हुइय मुंअ तुय विरहि गिसायर गिसियरियो" ॥८१॥

पहिउ भणइ "पडिउंजि जाउ ससिहरवयणी,

अहवा किंवि कहणिज्जसु महु कहु मियनयणी" ।

"कहउ पहिय ! कि न कहउ कहिसु कि कहिययण,

जिण किय एह अवत्थ गेहरइ-रहिय-यण ॥८२॥

जिणि हउ विरहह कुहरि एव करि छल्लिया,

अत्थलोहि अकयत्थि इकल्लिय मिल्लिया ।

संदेसइउ सवित्थर तुहु उतावसउ,

कहिय पहिय ! पिय गाह वत्थु तह डोमिलउ ॥८३॥

पिअ-विरह-विघोए संगमसोए, दिवस-रयणि भूरंत मणे,

जिरु अंगु सुसंतह बाह फुसंतह, अप्पह गिइय किंपि भणे ।

उसु सुयण निवेसिय भाइण पेसिय, मोहवसण दोलंत खणे,

मह साइम वक्खर हरि गउ तक्खर, जाउ सरणि कसु पहिय ! भणे" ।

इहु डोमिलउ भणेविणु निसितम-हरवयणी,

हुइय गिभिस गिप्फंद सरोरुहदलवयणी ।

गरुओ परिभव किन सही, तोहिँ पौरुष-निलयहिँ ।

जेहि भंगेहिँ तु बिलासियो, सो डाहेँ उ विरहेँहिँ ॥७७॥
विरह-परिग्रह देहरिहिँ, प्रहरेउ निरपेक्षि ।

टूटी देह न हनेँ उ हृदय- तुव संमानहिँ पेखि ॥७८॥
मैं न समर्था विरह-संगे, सो रहऊँ बिलपन्ति ।

पालिय रूप प्रमाण पुनि, वनि स्वामीहिँ धुमन्ति ॥७९॥
संदेसहो सविस्तरो, पर मोहिँ कहेँ उ न जाइ ।

जो कनगुरिया मूंदळी, सो बाँहडी सभाइ ॥८०॥
हृसेँ उ तेज उहसेँ उ अंग विलरिय अलके,

हुअ फिक्कफिक्क वदन स्थलित-विपरीत-गती ।
कुंकुम-कनक-सदृश कान्ति कलुषावृत्तिया,

हुइ मुग्धा तुव विरहेँ निशाचर निशिचरिया ॥८१॥
पथिक भनेँ "तैं" भेजू जाउँ शशिधरवदनी,

अथवा किछु कथनीय सोँ मोहिँ कहूँ मृगनयनी ॥८२॥
"कहौँ" पथिक ! कि न कहौँ, कछु की कहँकहिया,

जिन किय एहु अवस्थ नेहरतिरहतिआ ॥८३॥
जिन हीँ विरहकुहरेँ इमि करि छड़िया,

अर्थलोमि अकृतार्थ इकस्ती मुंबड़िया ॥
संदेसहो सविस्तर, तुहुँ उतावलऊ,

कहेँहुँ पथिक प्रिय गाथों वस्तु तहें डोमिसऊ ॥८४॥
प्रिय-विरह-विशोगे संगम-शोके, दिवस-रजनि भूरंत मने,

अति-अंग सुखन्तहें बाण्पाशु बहतहें आपुहिँ निर्दय किमपि भने ।
तसु सुजन निवेशिय, भावहिँ पेखिय मोहवशेन बोलंत क्षणे,

मम स्वामिय वक्तर हरि गउ तस्कर, जाउँ शरण काँसु पथिक ! भनेँ ॥८५॥
एहु डोमिलउ भनी पुनि निशितम-हरवदनी,

हुई निमिष निष्पन्द सरोरुहदलनयनी ।

गहू किहू कहइ व पिक्सइ जं पुणु अवह जणु,
चिति भित्ति नं सिहिय मुंघ सज्जविय सणु ॥६६॥

पहिउ मणइ थिह होहि “धीर, आसासि खणु,
लइवि वरक्किय ससिसउनु फंसहि वयणु” ।

तत्स वयणु आयभि, विरहभर-भज्जरिया,
सइ अंचलु मुहु पुंछिउ, तह व सलज्जरिया ॥६८॥

“जइ अंकु उग्यसइ राय पुणि रंगियइ,
अह निभेहउ अंगु, होइ आभंगियइ ।

अह हारिज्जइ दविणु, जिणिवि पुणु भिट्ठियइ,
पिय विरतु हुइ चित्त, पहिय ! किम बट्ठियइ ॥१०१॥

कहि न सवित्थर सक्कउं मयणाउहवहिया,
इय अवत्थ अम्हारिय कंतइ सिंघ कहिया ।

अंगभंगि गिर अणरइ, उज्जगउ णिसिहि,
बिहलंघलगय मग, जलंतिहि आलसिहि ॥१०५॥

धम्मिल्लइ संवरणु न वणु कुसुमहिं रइउ,
कज्जलु गलइ कबोलिहि, जं नयणिहि धरिउं ।

जं पिया आसा संगिहि अंगिहिं पलु चइइ,
विरह-हुयासि अलक्किउ तं पडिलिउ अइइ ॥१०६॥

सुन्नगरइ जिम भइ हियउ, पिय-उक्कंसि करेइ ।
विरह-हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिंचेइ” ॥१०८॥

पहिउ भणइ “पहि जंत अमंगलु मह म करि,
रुयवि रुयवि पुणरुत्त बाहू संवरिनि धरि” ।

“पहिय ! होउ तुह इच्छ अज्ज सिज्जउ गमणु,
मइ न रुधु विरहगि धूम लोयण सवणु ॥१०९॥

संघउ हुवइ सुणेनि अंगु रोमंचियउ,
जेय पिम्म परिवडिउ पहिउ मणि रंजियउ ।

ना किछ कहै न पेसै जो पुनि अवर जनहीं,
 चित्र-मिति जिमि लिखित मुग्धों सच्चाइय क्षणहीं ॥६६॥
 पथिक भनै "धीर होहि धीर आखासु क्षणहिं,
 साउँ लेइ वराकिय शशिसँपूर्ण पौछहु वदना ।"
 तासु वचन आकर्ण विरह-भर-भंजलिया,
 लैइ अंचल मुख पौछु तहँहि सलज्जलिया ॥६७॥
 "यदि अंबर छोड़हि रंग किनु रंगिअई,
 जो निस्नेहउ अंग होइ अभ्यंगिअई ।
 जो शरिज्जइ धनहिं, जितवि पुनि भेटिअई,
 प्रिय विरक्त हूँ चित्त पथिक ! किमि करियई ॥१०१॥
 कहि न सविस्तर सकौ मदनमुध-वधितहु,
 ऐह अवस्थ हम्मारिय कंतहिं सब कहियहु ।
 अंग-भंग बहु भरती, उज्जगौ निशिहीं,
 क्षिधिलक्षितगति मगहिं, चलन्ती आलसही ॥१०५॥
 केशनकर संवरण न घन-कुसुमहिं रचउँ,
 काजल बहै कपोलहिं जो नयनहिं धरउँ ।
 जो प्रिय-आशा संगेहिं अंगे मौस षटै,
 विरहहुताशे भलक्केउ सो दुगुनोउ भटै ॥१०६॥
 सोनारहिं जिमि भम हृदय, प्रिय-उत्कंठि करेइ ।
 विरहहुताशे बहन लागि, आशाजस सिंचेइ ॥१०७॥
 पथिक भनै "पथि जात अमंगल भम न कर,
 रोइ रोइ पुनि रुदन-अश्रु लेहु रोकि भर ।"
 "पथिक ! होहु तव दृष्ट आज सिद्धहु गमनू,
 मै न रोयो विरहाग्नि-धूम लोचनस्रवणू ॥१०८॥
 संधहु दुआ मुनीइ, अंग रोमांचितऊ,
 नही प्रेम परि-पडेउ पथिक मने रंचितऊ ।

तह अपइ भियनयणि सुणिहि धीरयसु लणु,
 किहु पुच्छहु ससिबदणि ! पयासहि फुड बयणु ॥१२१॥

पव-वणरिह-वि-गगय निम्मल फुरह कर,
 सरयरयणि पच्चबखु भरतउ अभिय-बर ।

तह चंदह जिण णत्थ पियह संजणिम सुहु,
 कइयसणि विरहणिधूमि भंपियउ मुहु ॥१२२॥

३-श्रुत-वर्णन

(१) मीम्भ-वर्णन

"गव निम्हागमि पहिय ! णाहु जं पविसयउ,
 करवि करंजुलि सुहसमूह मह णिवसियउ ।

तसु अणु-अंवि पलुटि विरह हवि तविय तणु,
 बलिवि पत्त गिय-भुयणि विसंठलु-विहल-मणु ॥१३०॥

तह अणरइ रणरणउ असुहु असहंतियहँ,
 दुस्सहु मलय-समीरणु मयणा-कंतियहँ ।

विसमभाल भलकंत जलंतिय तिब्बयर,
 महियलि वण-तिण-दहण तवंतिय तरणि-कर ॥१३१॥

जम-जीहइ णं चंचलु गहयसु सहलहइ,
 तउतउयउ धर तिउइ ण तेयह भर सहइ ।

अइउन्हउ वोमयलि पहंजणु जं बहइ,
 तं भंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥

हरियंदणु सिसिरत्णु उवरि, जं लेवियउ,
 तं सिहणह परितवइ अहिउ अहिसेवियउ ।

ठविय विविह विनवंतिय अह तह हारलय,
 कुसुम माल तिनि मुथइ, भाल तउ छइ सभय ॥१३३॥

तब बोलै "मृगनयनि ! मुनहु घोरयहु क्षण,
 किछु पूछउँ शशिवदनि ! प्रकाशहिं स्फुट वचन ॥१२१॥
 नव-दन-रेख-विनिर्गत निमल फुरै करो,
 शरद-रजनि प्रत्यक्ष भरतउ अमृत-भरो ।
 तेहि चन्दहिं जयनाथं प्रियहिं संजनित सुखो,
 कबहिं लागि विरहाग्नि-बूम आपियउ मुखो" ॥१२२॥

३-श्वतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"नव-ग्रीष्मागमे" पथिक ! नाथ जब प्रवसितऊ,
 करव करांजलि सुख-समूह मम निवसितऊ ।
 तसु पाछही" लउटि विरह-अगि-तपित-तना,
 तबहिं आइ निजभवन विसंस्थूल-विकल-मना" ।
 तिमि अनरसि-रणरणक-असुख असहंतियही",
 दुस्तह मलय-समीरण मदनाकान्तियही" ।
 विषमज्वाल अलकंत ज्वलंतिय तीव्रतरा,
 महियल वन-तृण-दहन तपते तरणिकरा ॥१३१॥
 यमजिह्वा जिमि चंचल नभतल लहलहई,
 तड़तड़तड़ धरौं करै न तेजोभर सहई ।
 अतिउष्णउ व्योमतले" प्रमंजन जो कहई,
 सो अंखण विरहहिं भंग परसेउ दहई ॥१३२॥
 हरिचंदन शीतार्थ उपरि जो लेपितऊ,
 सो स्तनकहिं परितपे अहेउ अहि-सेवितऊ ।
 ययी विविधि बिलपंतिय जो सहै हार-लता,
 कुसुममाल तेउ भुँचै ज्वाल तब दूइ सभया" ॥१३५॥

(२) वर्षा-वर्णन

इम तवियउ बहु गिभु कहवि मह बोसियउ,

पहिय ! पत्तु पुण पाउमु धिहु, न पत्तु पिउ ।

बलविसि धोरंधार पवन्नउ गस्यभरु,

गयणि गुहिरु बुरहुरइ, सरोसउ अंबुहर ॥१३६॥

बगु मिल्हवि सलिलहह, तर-सिहरहि चडिउ,

तंडव करिवि सिंहहिहि, बरसिहरिहि रडिउ ।

सलिलहि वर सालूरिहि, फरसिउ रसिउ सरि,

कलयलु किउ कलयंठिहि, चडि चूयह-सिहरि ॥१४४॥

मच्छरमय संचडिउ रनि गोयंगणहि,

मणहर रमियइ नाहु रंगि गोयंगणिहि ।

हरियाउलु घरवसउ कयंबिण महमहिउ,

कियउ भंगु अंगंगि अणंगिण मह अहिउ ॥१४६॥

भंपवि तम बहसिण दसह दिसि छावउ अंबर,

उन्नवियउ धुरहुरइ धोर घण-किसपादंबुह ।

पहह मणि पहवल्लिय तरल तडयडिनि तडक्कइ,

ददुदुररडणु रउदुदु सबुदु कुवि सहवि न सकइ ।

निबड-निरंतर नीरहर दुहर धर वारोहभर,

कि सहउ पहिय-सिहरद्वियइ दुसहउ कोइल रसइ सर ॥१४८॥

जामिणि न वयणिज्ज तुअ, तं तिहुयणि णहु माइ ।

डुक्खिहि होइ चउगुणी, किज्जइ सुहसंगइ ॥१५६॥

(३) शरद-वर्णन

इम बिलवती कहव दिण पाइउ,

गेउ गिरंत पडतह पाइउ ।

पिय-अणुराइ रणिअ रमणीयव,

मिज्जइ पहिय ! मुणिय अरमणीयव ॥१५७॥

(२) वर्षा-वर्णन

“हमि तपिअउ बहु ग्रीष्म सकौ” कस बोलियऊ,
 पथिक ! आव पुनि पावस ठीठ न आवि पियऊ ।
 चौदिसि घोरघार छाव गउ गरुअ-भरो,
 गमन-कुहर घुरघुरे सरोषउ अंबुधरो ॥१३६॥
 बक छाडिय सलिलहृद तरु-शिखरहिं बढेऊ,
 तांडव करिय शिखंडिहि वरशिखरे रटेऊ ।
 सलिलेहिं वर शालूरेहि परसेउ रसेउ स्वरेहि,
 कलकल किउ कलकांडहिं चहिं आमहि शिखरे ॥१४४॥
 मन्धरभय आ-पडेऊ ठाँव गाई-गणही,
 मनहर रमिअइ नाथ रगे गोपांगनही ।
 हरियावस धरावलस कदम्बन महमहिऊ,
 कियउ भंग अंगांग अनंगेहिं मम अतिहू ॥१४६॥
 भाँपी तम-बढ़ली दसहु दिशि छाई अंबर,
 उटुविउ घुरघुरा घोर घन कुष्माण्डंबर ।
 नभहि मार्ग नभबल्ली तरल तड़तड़ै तड़ककै,
 दर्दुर रटन कठोर शब्द कोइ सहउ न सक्के ।
 निपट निरंतर नीरधर दुर्घर घर धारोषभर,
 किमि सहौ पथिक ! शिखरस्थितहुं कोइल रसे स्वर ॥१४८॥
 यामिनि ! जो वचनीय सुव, सो त्रिभुवन न अमाइ ।
 दुक्खिहिं होई चीगुनो, छीज सुख-संगाहिं ॥१५६॥

(३) शरद-वर्णन

इमि मिलपति पछिम दिन पायउ,
 गीति गयंत पठंतहु प्राकृत ।
 त्रिय-अनुरागि रजनि रमणीया,
 गीयइ पथिक ! जानि अरमणीया ॥१५७॥

दक्षिण-भग्नु गियंतह भक्तिहिं,

दिट्ठु अदित्थिरि सिउ मह भक्तिहि ।

मुणियउ पाउसु परिगमिअउ,

विउ परएसि रहिउ गहु रमिअउ ॥१५६॥

गय विहरवि बलाहय गयणिहिं,

मणहर रिक्ख पलोहय रयणिहि ।

हुयउ वासु छम्मयलि फणिंदह,

फुरिय जुन्ह निसि निम्मल चंदह ॥१६०॥

सोहइ सलिलु सरिहिं समयत्तिहिं,

बिविह तरंग तरंगिणि जंतिहि ।

जं हय हीय गिभि णवसरयह,

तं पुण सोह चडी णव-सरयह ॥१६१॥

वदपिलय बवल संल-संकासिहिं,

सोहइ सरह तीर संकासिहि ।

णिम्मलणीर सरिहिं पवहंतिहिं,

तउ रेहंति बिहंगम-पंतिहिं ॥१६२॥

पडिबिबउ दरसिज्जइ विमलहिं,

कदमभार पमुक्किउ सलिलहिं ।

सहमि ण कुंज सदु सरयागमि,

सरमि भरालगामि गहु तग्गमि ॥१६४॥

अच्छइ जिह नारिहिं नर रमिरइ,

सोहइ तरह तीर तिह भमिरइ ।

बालय वर जुवाण खिलंतय,

दीसइ घरिघरि पडहु वजंतय ॥१७४॥

दारय कुंडवाल तंडव करि,

भमहि रच्छि वामंतय सुंदर ।

दक्षिण-मार्ग देखन्ती भक्तिहि,

देखे अगस्थ ऋषी मै भट्टिहि ।

जानेउ सो पावसहि गमायउ,

प्रिय परदेश रहेउ ना रमियउ ॥१५६॥

गड फाटियइ बलाहक गगनेहि,

मनहर तारक लोकिय रजनिहि ।

दृयो कास भूमितले फणीन्द्रा,

फुरिय जुन्ह निशि निर्मल चन्द्रा ॥१६०॥

सोहै खलिल सरन शतपत्रेहि,

विविध तरंग तरंगिहि जातेहि ।

जो हत हति श्रीमे नवसरसहि,

सा पुनि शोभां चढी नवसरसहि ॥१६१॥

धवलित धवल-शंख-संकाशेहि,

सोहै सरहि तीर संकाशेहि ।

निर्मलनीर सरित प्रवहन्तेहि,

तट शोभन्त विहंगम-पातिहि ॥१६३॥

प्रतिबिंबउ दरसीयत विमले,

कदमभार - प्रमुंचित सलिले ।

सही न कौच-शब्द शरदागमे,

भरी मरालागम नहि ताकी ॥१६४॥

आछै जहै नारिहि नर रमिया,

सोहै सरहि तीर तेहि अमिया ।

बालक-वर-युवान खेत्सन्ते,

दीसै घर - घर पटह बजन्ते ॥१७४॥

शरफ कुंडवाल तांजव करि,

अमहि रख्ये वादता सुंदर ।

सोहइ सिज्ज तरुणि अण सत्पिहि,

धरि-धरि समियइ रेह परिपिहि ॥१७५॥

दिंसिय गिसि दीवालिष दीवय,

णवससिरेह-सरिस करि . सीमय ।

मंडिय भुवण तरुण जोइकसहि,

महिलिय दिति सलाइय अक्खिहि ॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तह कंसिरि अणियति, णिमंतो विसि पसर,

लइ कुक्कउ कोसिल्लि हिमंतु तुसारभर ।

हुइय अणायर । सीयल, भुवणिहि पहिथ जल,

उत्तारिय सत्थरहु सयल कंदुदल ॥१८६॥

सेरंधिहि अणसार ण चंदणु पीसयइ,

अहरक ओला लंकिहि मयणु समीसियइ ।

सीहंडिहि बज्जियउ घुसिणु तणि लेवियइ,

चंपएलु मियणाहिण सरिसउ सेवियइ ॥१८७॥

धुइज्जइ तह अगर घुसिणु तणि लाइयइ,

गाढउ निवडालिगणु अंगि सुहाइयइ ।

अन्नइ दिवसइ सन्निहि अंगुलमत्त हुय,

महु इक्कह परि पहिय ! णिवेहिय वड्ड-जुय ॥१८८॥

हेमंति कंस विलवंतियइ, जइ पलुट्टि नासासिहसि ।

तं तइय मुक्ख खल पाइ. मइ, मुइय विज्ज किं आविहसि ॥१८९॥

(५) शिशिर-वर्णन

इम कट्टिहिं मइ गभिउ पहिय ! हेमंत-रिउ,

सिसिर पडुत्तउ घुत्तु णाहु दूरंतरिउ ।

उट्टिउ भल्लइ गयणि खरफरसु पक्खिहय,

तिणि सूडिय भडि करि ओरस तहि हय गय ॥१९०॥

सोहै शय्य तरुणि-जन साथे,

घर - घर सोहै रेख प्रलप्यै ॥१७५॥

दीयत निशिहिँ दिवाली दीये,

नव-शिखि-रेख-सदृश कर लीये ।

मंजित भुवन तरुण ज्योतिष्कहिँ,

महिला देहिँ सलाई आलिहिँ ॥१७६॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तिमि उत्कंठि निरन्तर पेखै दिशि पसरी,

ले दूकेँउ आतुरिहिँ हिमंतु तुषारमरी ।

हुयउ अनादर-शीतल भुवने पथिक ! जल,

अपसारिय सत्यरेहिँ सकल पद्मनउ दल ॥१८६॥

सैरंधी अनसार न चंदन पीसैही,

अधर कपोलालंकृत मदन समिश्रैही ।

श्रीलंडेहिँ विवर्जित कुंकुम लेपियही,

अम्य-तैल मुगनाभि सह सेवियही ॥१८७॥

बूँइज्जै तहँ अगर कुंकुम तन लाइयई,

गाढउ निपटालिगन अंगे सुहाइयई ।

अन्यहिँ दिवसहिँ सन्निधि अंगुलिमात्र हुआ,

मै एकै पर पथिक ! निवेशिय ब्रह्मयुगा ॥१८८॥

हेमन्ते कन्त ! विलपंतिय, यदि न लवटि आश्वासिही ।

तालैही मूर्ख ! लल ! पापि ! मोही, मरे बैद्य कि आइयही ॥१८९॥

(५) शिशिर-वर्णन

हमि कष्टेहिँ भम गयउ, पथिक ! हेमन्त-ऋतू,

शिशिर पहुँचैउ धूर्त, नाथ दूरन्तरितू ।

उठेँउ झलझ गगने, खर-मरुष पवन-हतेउ,

तेहिँ छूटेँउ भरि करि असेष तहँ रूप भिटेँउ ॥१९०॥

छाद्य-फुल्ल-फल-रहिय असेविय सउणियण,
 तिमिरंतरिय दिसाय तुहिण घूइण भरिण ।
 भग भग पंथियह न पविसिहि हिमडरिण,
 उज्जाणहँ ढंखर छत्र सोसिय कुसुमवण ॥१६३॥
 मत्तमुक्क संठविठवि बहुगंधक्करिसु,
 पिज्जह अट्ठावट्ठ रसियहि इक्ख-रसु ।
 कूंद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नय-अणिया,
 गियसत्थरि पलुटंसि केवि सीमंतिगिया ॥१६४॥
 केवि दिति रिउणाहह उप्पत्तिहि दिणहि,
 गियवल्लह करि केवि जंति सिज्जासणिहि ।
 इत्थंतरि पुण पहिय ! सिज्ज इक्कल्लियइ,
 पिउ पेसिउ मण दूअउ, पिम्म-गहिल्लियइ ॥१६५॥
 मह घणु दुक्खु सहप्पि मुणवि मणु पेसिउ दूअउ,
 गाहु न आणिउ तेण सु पुणु तत्थव रय दूअउ ।
 एम भमंतह सुअहियअ जं रयणि विहाणिय,
 अणिरइ कीयइ कम्म अवनसु मणि पच्छुसाणिय ।
 मइ दिअु हियउ णहु पत्तुपिउ, हुई उवम इहु कहु कवण !
 सिपत्थि गइय उवाडयणि, पिक्ख हुराविय णिअ सवण ॥१६६॥

(६) वसंत-वर्णन

गयउ सिसिरु वणतिण दहंतु, महमास मणोहर इत्थ पत्तु ।
 गिरि-मलय-समीरणु णिर सरंतु, मयणगि-विऊयह विप्फुरंतु ॥२००॥
 बहु विविहराइ घण-मणहरेहिँ, सिय सावरत्त-मुप्फंवरैहि ।
 पंगुरणिहिँ चच्चिउ तणु विचित्तु, मिलि सहियहिँगेउ गिरंति णित्तु ॥२०२॥
 महमहिउ अंगि बहु-गंधमोउ, णं तरणि पमुक्कउ सिसिर-सोउ ।
 तं पिक्खवि मइ मज्झहि सहीण, लंकोउउ पठिउ नववल्लहीण ॥२०३॥

छाय-फूल-फल-रहित असेवित शकुनि-जनेहिं,
 तिमिरान्तरित दिशाहिं तुहिन - धूआ - भरिया ।
 मार्ग भागु पंथिकन न प्रवसहिं हिमवरिया,
 उद्यानहु ढंखर - सम सुखेँउ कुसुम-वन ॥१६३॥
 मानमुक्त संघपेँउ वहुत - गंधोत्कर्ष,
 पीवेँ अर्धोच्छिष्ट रसिक(जन) इक्षु-रस ।
 कुन्द - चतुर्थि महोत्सवेँ पीनोषत - अनिया,
 निज सेजहिं पलोँटंति कोइ सीमन्तनिया ॥१६४॥
 कोइ देहिं ऋतुनाथहु उत्पत्तिहि दिनही,
 निज-वल्लभ करि केलि जाई शय्यासनही ।
 ऐहि समये पुनि पथिक ! सेज एकलियई,
 प्रियेँ पठयेँउ मन - दूतउ, प्रेम-नाहिलियई ॥१६५॥
 मैँ वनि दुःख-सहाय समुझि मन प्रेवेँउ दूतहु,
 नाथ न आनेउ तिति सो पुनि तहैवेँ रत हूयो ।
 इमिहिं भ्रमन्तहिं शून्यहृदय जो रजनि विहानी,
 अनसोचे किय कर्म अदशि मन पच्छतानी ।
 मैँ दियउ हृदय ना प्राप्त प्रिय, हुइ उपमा ऐहु कहू कवन ।
 प्रृंगाणं गई गदही (सो पुनि), पेखु हराई निज अवण ॥१६६॥

(६) वसंत-वर्णन

गल शिशिर वन-तृण-दहत, मधुमास मनोहर इहो प्राप्त ।
 गिरिमलय-समीरण बहु वहंत, मदनाग्नि वियोगिहुं विस्फुरंत ॥२००॥
 बहु विविध-राग-धन-मनहरेहिं, सित-सर्वरक्त-पुष्पांवरेहिं ।
 पंगुरणेहिं चंचित तनु विचित्र, मिलि सखियाँ गावेँ गीत नित्य ॥२०२॥
 महमहेँउ अंगेँ बहु गंधमोद, जिमि तरणि प्रमुँखेँउ शिशिर-शोक ।
 सो पेखिय मैँ मध्ये सखीन, लंकोडउ पढेँउ नव-वल्लभीन ॥२०३॥

फिसुयह-कसिण घणरत्तवास, पञ्चक्ख पलासइ धुय-मसास^१ ।

सवि दुस्सह हूय पहुंजणेण, संजणिउ असुहवि सुहुंजणेण ॥२०६॥

निवहंत रेणु घर पिंजरीहि, अहिययर तविय णवमंजरीहि ।

मरु सियलु वाइ भहि सीयलंतु, णहु जणइ सीउ णं खिवइ तंतु ॥२१०॥

जसु नामु अलिककउ कहइ लोउ, णहु हरइ खणद्ध असोउ सोउ ।

कंदप्पदप्पि संतविय अंगि, सांहरइ णाहु ण आसहर अंगि ॥२११॥

खणु मुणिउ दुसहु जम-कालपासु, वर-कुसुमिहि सोहिउ दस दिसासु ।

गय णिवउ णिरंतर गयणि चूय, णवमंजरि तत्थ वसंत हूय ॥२१५॥

जल-रहिय मेहु संतविअ काइ, किम कोइल कलरउ सहण जाइ ।

रमणी-यण रत्थिहि परिभमंति, तूरा-रवि तिहुयण वाहिरंति ॥२१८॥

चच्चिरिहि गेउ हूणि करिवि तालु, नञ्चीयइ अउण्व वसंत-कालु ।

घण-निविड-हार परिसिल्लरीहिं, कणभुण-रउ मेहुल-किकिणीहिं ॥२१९॥

जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय !

मणहुक्खालअियह मयण-अगिय विरहिणि पलित्तिहि,

तं फरसउ मिल्लि तुहु विणय-मंगि पभणिज्ज भत्तिहि ।

तिम जंपिय जिम कुवइ णहु, तं पभणिय अं चुत्तु ।

आसीसिवि वर-कामिणिहि, उवट्ठाऊ पडिउत्त^२ ॥२२२॥

तं पहुंजिवि चलिय दीहण्डि, अइ-तुरिय,

इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरसिय,

आसन्न पहाउरिउ दिट्ठु णाहु तिणि भत्ति हरसिय ।

जेम अचित्तिउ कज्जु तसु, सिद्धु खणद्धि महंतु ।

सेम पडंत सुणंतयह, जयउ अणाइ-अणंतु ॥२२३॥

^१ “धुतपलास पलाशवनं पुरः”—माघ कवि

किंशुकहि कृष्ण घनरक्तवर्ण, प्रत्यक्ष परासी^१ घृत परास ।

सब दुःसह हुआ प्रमंजनेहिं, संजनेउ असुख हि सुहंजनेहिं ॥२०६॥

भूईं पड़ती रेणू पिंजरीहिं, अधिकतर तपी नवमंजरीहिं ।

मर शितल वही महि शीतलल, न होइ क्षीत न नशे ताप ॥२१०॥

जसु नाम अलीक कहै लोक, ना हरे क्षणाद्धं यशोक शोक ।

कंदर्प-दर्प-संतपित अंग, साहोरै नाथान सहकार अंग ॥२११॥

क्षण बुझेउ दुसह यम-कालपाश, बरकुसुमहिं सोहै दश-दिशासु ।

गये^२ निविड-निरंतर-नागने^३ चूत, नवमंजरि तहाँ बसन्त हूअ ॥२१५॥

जल-रहित मेघ सन्तपे^४ काय, किमि कोइल कल-रव सहैउ जाय ।

रमणी-गण रथ्ये^५हिं परिभ्रमंति, तूरी-रव त्रिभुवन बधिरयंति ॥२१८॥

चावरिहिं शीत-ध्वनि करिय ताल, नाचीय अपूर्य-वसंत-काल ।

घन-निविड-हार परिवेष्टितेहि, कनकन-रव मेसल-किंकिणीहिं ॥२१९॥

यदि अनक्षर कहे^६उ पधिक ! भे^७ ।

घनदुःखपूर्ण मदनाग्नि बिरहेहिं प्रलिप्ता,

सो पुरुष छोडि विनयमार्ग-मत मणितहु ।

तिमि बोलेहु जिमि कोपु नाहि, सो बोलेहु जो युक्त ।^८

आशीषिय बरकामनिहिं, वट्टोही विनियुक्त ॥२२२॥

तेहिं पठाइ चली दीर्घाक्षि अति तुरतै^९,

ऐहि बिच दिश दक्षिण तेहि याम दरसी,

पास रोकि पय दीठेउ नाथ, (तिय) भट हर्षिय ।

जिमि अचितहु कार्य तसु सिमैउ क्षणार्ध महन्त ।

तैस पढ़त सुनन्तयहै, जयतु अनादि अनन्त ॥२२३॥

§ २७. बळ्वर

काल—१०५० ई० (कर्ण कलचूरी १०४०-७० ई०) । वेश—त्रिपुरी

१-जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

सिध बिट्ठी किज्जइ, जीआ लिज्जइ, वाला बुद्धा कपंता ।

बह पच्छा बाअह, लग्गे काअह, सब्बा दीसा संपंता ।

जइ जइहा रुसइ, चित्ता हासइ, पेटे अग्गी थप्पीआ ।

कर पाआ मंभणि, किज्जे भित्तरि, अप्पा-अप्पी लुवकीआ ॥१६५॥ (५४५)

ताव बुद्धि ताव सुद्धि, ताव दाण ताव माण, ताव गब्ब,

जाव जाव हत्थ गच्च, विज्जु-रेह-रंग णाइ, एक दब्ब ।

एत्थ भंत अप्प-दोस, देव-रोस होइ गट्ठ, सोइ सब्ब;

कोइ बुद्धि कोइ सुद्धि, कोइ दाण कोइ माण, कोइ गब्ब ॥१६६॥ (५४४)

(२) सुखी जीवन

पुत्त पवित्त बहुत्त घणा, भस्ति कटुविणि सुद्ध मणा ।

हक्क तरासइ भिन्व-गणा, को कर बळ्वर सग मणा ॥१६५॥ (४०५)

सुधम्म-चित्ता गुणवन्त-पुत्ता, सुकम्म-रत्ता विणआ कलत्ता ।

विसुद्ध-देहा धणवन्त-गेहा, कुणंति के बळ्वर सग-गेहा ॥१६७॥ (४३०)

सो भाणिअ पुणवन्त, जासु भत्त पंडिअ तणय ।

जासु धरिणि गुणवन्ति, सोवि पुहवि सगह णिलअ ॥१७१॥ (२७६)

उच्चउ छाअण विमल घरा, तरुणी धरिणि विणअपरा ।

वित्तक पूरल मुद्दहरा, वरिसा समआ सुवसकरा ॥१७४॥ (२८३)

१ "प्राकृत पेंगल" चन्द्रमोहन घोष द्वारा Biblico thica Indica (1902) में संपादित । जिन कवित्तार्योंमें बळ्वरका नाम नहीं, वह बळ्वरकी हैं, इसमें

§ २७. बम्बर

(चेबी) । फुल—(कर्मका दर्बारी कवि) । कृतियाँ—स्फुट कवितायें”

१—जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

शीत वृष्टी कीजिय, जीवा जीजिय, बाला-बूढ़ा कंपता ।

वह पछुवाँ बाता, लागे कामहँ, सर्वा दिशा भीपता ।

यदि आढा रुबै, चित्ता ह्रासै, पेटे अग्नी अष्पीया ।

कर-पादा संहारि, कीजँ भीतरि, आपा-अप्पी लुक्कीया ॥१६५॥

तो सों बुढ़ी तौलो शुढ़ी, तौ सों दाना तौलो माना, तौलो गर्वा ।

जौलो जौलो हाथे नाचै, बिज्जूरैसारंगी न्याई, एका द्रव्या ।

एही बीच आत्मदोषे, देव-रोषे होइ नष्ट, सोइ सर्व ।

कोई बुद्धि कोई सुद्धि, कोई दान कोई मान, कोई गर्व ॥१६६॥

(२) सुखी जीवन

पुत्र पवित्र बहूत बना, भक्ता कुटुंबिनि शुद्ध-मना ।

हकि असई भृत्य-गणा, को करे बम्बर स्वर्गे मना ॥१६७॥

स्वधर्म-चित्ता गुणवन्त पुत्रा, सुकर्म-रक्ता विवता कलत्रा ।

विशुद्ध-देहा धनवन्त-गेहा, करति के बम्बर स्वर्ग-नेहा ॥१६७॥

सो मानिय पुणवन्त, जासु भक्त-पंडित तनय ।

जासु धरनि गुणवन्ति, सोउ पृष्ठमि स्वर्गह निसय ॥१६८॥

कैची छाजन वि-मल धरा, तरुणी धरनी विनयपरा ।

वित्तके पूरल मूँदधरा, वर्षा समया सुखकरा ॥१६९॥

पिम्प-भक्ति पिम्प, गुणवंत सुम्प ।

• धण-जुस कर, बहु-सुख-कर ॥४४॥ (३६२)

गुण जासु सुद्धा, बहु कम्पमुद्धा ।

धरे वित्त अग्या, मही तासु सग्या ॥४५॥ (३६८)

कमल-गमणि, अमिन्न-वमणि ।

तरुणि धरणि, मिलइ सुपुणि ॥४६॥ (३७१)

गुरुजण-भक्तउ, बहुगुण-जुसउ ।

जसु जिअ पुसउ, सउ पुणवंतउ ॥४७॥ (३७४)

श्रीनर-भक्ता रंभम-भक्ता, गाइक धित्ता दुध-सँजुता ।

मोइल-मच्छा नालिय-मच्छा, दिज्जइ कंता स्ता पुणवंता ॥४८॥ (४०३)

२-सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा^१ स्त्री

भोहर कविला उच्चा निम्बला, मग्ग्या पिम्बला गेता जुम्बला ।

रक्खला वमणा दंता बिरला, केते जिविला ताका पिम्बला ॥४९॥ (४०८)

(२) नारी-सौंदर्य

रे धणि ! मत्त-मशंगज-भामिणि, खंजण-लोअणि चंदमुही ।

चंचल जो अब्बण जात न जाणहि, छइल समप्पहि काइ णही ॥१३२॥ (२२७)

सुंदरि गुज्जरि णारि, लोअण दीह-विसारि ।

पीण-पओहर-भार, लोअिअ मोत्तिअ-हार ॥१७८॥ (२८६)

हरिण-सरिस्सा णअणा, कमल-सरिस्सा वमणा ।

जुवअण-चित्ता-हरिणी, पिय-सहि ! दिट्ठा तरुणी ॥७६॥ (३८६)

सल-कमल-गमणिआ, खलिअ-धण-वसणिआ ।

हंसइ पर-णिअलिआ, असइ धुअ बहुलिआ ॥८३॥ (३१३)

प्रिय-भक्त प्रिया गुणवंत सुता ।

धनवंत धरा, बहु सुख-करा ॥४४॥

गुणा जासु शुद्धा, वधू रूप-मुग्धा ।

धरे वित्त जग्गा, मही तासु स्वर्गा ॥४५॥

कमल - नयनि, अमिय - वयनि ।

तरुणि धरनि, मिले सुपुणि ॥४७॥

गुरुजन - भक्तउ, बहुगुण - युक्तउ ।

जसु जिय पुत्रउ, सोई गुणवंतउ ॥४६॥

ओगरी^१-भक्ता रंभा-पत्रा, गायके^२ धीवा दुग्ध-संयुक्ता ।

मांगुर-मञ्छा नालिय-शाका, दीजे कांता खाँड^३ पुणवंता ॥४३॥

२-सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा स्त्री

भौंहा कपिला ऊँच लिलारा । मांझे पियरा नेत्रा-युगला ।

रुक्षा वदना दंताविरला । कैसे जीविय ताका प्रियला ॥६७॥

(२) नारी-सौंदर्य

रे वनि ! मत्त-मतंगज-गामिनि, खंजन-लोचनि चंद्रमुखी ।

चंचल-यौवन जात न जानै, छेले समपे^१ काहे^२ नहीं ॥१३२॥

सुंदरि गुजंरि नारि, लोचन दीर्घ-विंसारि^३ ।

पीन-मयोधर-भार, लोलिय मोक्तिह-हार ॥१७८॥

हरिज-सरीखा नयना, कमल-सरीखा वदना ।

युवजन-चित्ता-हरणी, प्रिय सखि^४ दृष्टा तरुणी ॥७६॥

चल-कमल-नयनिया, स्थलित-थन-वसनिया ।

हसे पर-निमरिया, अस्सति ध्रुव बहुरिया ॥८३॥

^१ वासमती (?)

^२ विस्तारी

महाभक्त-माद्यंग-भाए ठबीआ, महातिक्ख-वाणा कडक्खे घरीआ ।

भुआ पास भोहा घणूहा समाणा, अहो नाअरी कामराअस्स सेणो ॥२६॥ (४४३)

तुहु जाहि सुंदरि ! अप्पणा, परितेज्जि दुज्जण थप्पणा ।

विअसंत केअइ-संपुडा, णिहु एहु आविह वण्णुडा ॥२७॥ (४०१)

संजण-जुअल गअण-वर-उपमा, चारु-कणअ-लइ भुअ-जुअ सुसमा ।

फुल्ल-कमल-मुहि गअ-वर-गमणी, कामु सुकिअ-फल विहि गहु तरुणी ॥२८॥ (४७७)

तरल-कमल-दल-सरि-जुअ-गअणा, सरअ-समअ-ससि-सुअरिस-वअणा ।

मअगल-करि-वर-सअलस-गमणी, कवण सुकिअ-फल जिहि गठ रमणी ॥२९॥ (४६६)

पाअ-जेउर^१ भंभणकइ, हंस-सइ-सुसोहणा,

थोर-थोर-धअग्ग णच्चइ, मोत्ति-दाम-मणोहरा ।

वाम-दाहिण-धारि धावइ, तिक्ख-चक्खु-कडीक्खआ,

काहु नाअर-गेह-मंडिणि, एहु सुंदरि पेक्खिआ ॥३०॥ (५२३)

(३) ऋतु-वर्णन

(क) शीष्म

तरुण-तरणि तवइ थरणि, पवण बहइ खरा,

लग्ग णाहि जल वड मरुअल, जण-जिअण-हुरा ।

दिसइ चलइ हिअअ दुलइ, हम इकलि बहू,

वर णहि पिअ सुणहि पहिअ ! मण इअइ कहू ॥३१॥ (५४१)

(ख) पावस

वरिस जल भमइ घण गअण सिअल पवण मणहरण,

कणअ-पिअरि णच्चइ विजुरि फुल्लिआ णीवा ।

पत्थर बिथर हिअला पिअला णिअलं ण आवेइ ॥३२॥ (२७३)

णच्चइ चंचल विज्जुलिआ सहि ! जाणएँ,

मम्मह खग , किणीसइ जलहर-साणएँ ।

महामत्त-भासंग-भादे शपीया, तथा तीक्ष्ण-वाणा कटाक्षे धरीया ।

भुजापाशे भौंहा धनूहा-समाना, अहो नागरी कामराजाहें सेना ॥१२६॥
तुहें जाहु सुंदरि आपना, परित्यजिय कुजेंन^१ स्थापना ।

विकसंत-केतकि-संपुटा, चुप एहु आयहु बापुरा ॥१२७॥

खंजल-युगल नयनवर-उपमा, चारु-कनक-लत भुज-युग-सुषमा ।

फुल्लकमल-मुखि गजवर-गमनी, कासु सुकृत-फल विधि गढ़ तरुणि ॥१२८॥

तरल-कमलदल-सर-युगनयना, शरद-समय-शशि-सुसदृश-वदना ।

मदगल-करिबर-स-अलस-गमनी, कदन सुकृत-फल विधि गढ़ रमणी ॥१२९॥

पाव-नूपुर भंभनक्कै, हंस शब्द-सुसोहना ।

थोर-थोर-अनाथ नचै, मोति-दाम-मतोहरा ।
वाम-दाहिन-धारे^२ धारै, तीक्ष्ण-बधु-कटाक्षिया ।

काह नागर-गेह-मंडनि, एहु सुंदरि पेखिया ॥१३०॥

(३) ऋतु-वर्णन

(क) शीष्म

तरुण-तरुणि तपै धरणि, पवन बहै खरा ।

साग नाहिँ जल बड़ मरुथल, जन-जीवन-हरा ।
दिश चलै हृदय डुलै, हम ऐकली बधू ।

धरे^३ नहिँ पिय मुनहि पथिक ! मन-इच्छै कह ॥१३१॥

(ख) पावस

वरिस जल भ्रमै घन गगन, शीतल-पवन मत-हरत ।

कनक-पियरि नचै बिज्जुरि, फूलिया निवा ।

पत्थर-विस्तर-हिथरा पियरा, नियर न आवहै ॥१३२॥
नाचै बंचल बिज्जुरिया सखि ! जाह,

मन्मथ - खड़है घरसै जलधर - शानै ।

फुल्लं कर्जदध्रं श्रवणं डंवरं वीसएँ,

पाउसु पाउ घणावण सुमुहि ! वरीसएँ ॥१८८॥ (३००)

फुल्ला णीवा भम भमरा, दिह्ठा मेहा जल समला ।

णल्हे विज्जू पिअ-सहिआ, आवे कंता कहु कहिआ ॥८१॥ (३६१)

जं णल्हे विज्जू मेहुधारा, पफुल्ला णीवा सदे मोरा ।

वाअंता मंदा सीआ वाआ कपंता काआ कंता गाआ ॥८६॥ (३६६)

(ग) शरद्वर्णन

जेत्ताणंदा उगो चंदा, धवल-चमर-सम-सिअ-अरविदा,

छगो तारा तेआ-सारा, विअसु कुमुद्य-वण-परिमल-कंदा ।

भासे कासा सब्बा आसा, महुअ-पवण लह-लहिअ करंता,

हंसा सदे फुल्ला बंधू, सरअ-समअ सहि ! हिअ अहरंता ॥२०५॥ (५६६)

(घ) शिशिर-वर्णन

जं फुल्लु कमल-वण बहइ लहु पवण, भमइ भमरकुल दिसिविदिसं,

भंकार पलइ वण लहु कुहिल-गण, विरहिअ हिअ हुअ दर-विरसं ।

आणंदिअ जुअजण उलसु उठिअ मण, सरस, णलिणि-दल किअ सअणा,

पलट सिसिररिउ दिअस दिहर भउ, कुसुम-समअ अवतरिअ वणा ॥२१३॥ (५८१)

(ङ) वसंत-वर्णन

भमइ महुअर फुल्ल-अरविद, नवकेस काणण जुलिअ,

सव्वदेस पिक-राव चुलिअ, सिअल-पवण लहु बहइ,

मलअ-कुहूर णव-बलि पेलिअ ।...

चित्त मणोभव सर हणइ, दूर-दिगंतर कंत ।

किअ परि अण्णउ धारिहउ, ऐम परिपलिअ दुरंत ॥२३५॥ (२३३)

फुलिअ महु भसर बहु रअणि पहु, किरण लहु अवअर वसंत ।

मलअ गिरिकुसुम धरि पवण बह, सहव कत सुणु सहि ! णिअलणहि कंत ॥२६३॥ (२७०)

खडि चूअ कोइल-साव, महु-मास पंचम गाव ।

मण-मज्झ वम्मह ताव, णहु कंत अज्जवि आव ॥८७॥ (३६७)

फुल्ल-कदंबक अंधर-हंवर दीलै,

पावस आउ घनाघन सुमुखि ! बरीसै ॥१८८॥

फुल्ला निबा भ्रम भमरा, दिट्ठा मेधा अल-स्यामला ।

नाचै विज्जू प्रिय-सखिया ! आवे कंठा कहू कहिया ॥१८९॥

ओ नाचै विज्जू मेघंधारा, प्रफुल्ला निबा शब्दइ मोरा ।

वीजंता मंदा शीता वाता, कंपता काया कंत न छाया ॥१९०॥

(ग) शरव-वर्णन

नेत्रानंदा ऊगो चंद्रा, बबल-बमर-सभ सित-अरविदा ।

ऊगे तारा तेजससारा, विकसु कुमुद-वन-परिमल-कंदा ॥

भारस काशा सर्वा आशा, मधुर पवन लहलहिय करेता ।

हंसा शब्दै फूला बंधू, शरद-समय सखि ! हिय हहरैता ॥१९१॥

(घ) शिशिर-वर्णन

ओ फूल कमल-वन बहै लघु पवन, अमै अमर-कुल दिशि-विदिशं ।

भंकार परै वन रवै कोइल-भाण, विरहिय-हिय हुओँ डर-विरसं ॥

आनंदिय युवजन उलस उठिय मन, सरस-नलिनि-दल कृत-शयना ।

बीतउ शिशिरउ दिवस दिरघ मज, कुसुम-समय अवतरिय बवा ॥१९२॥

(ङ) वसंत-वर्णन

अमै मधुकर फुल्ल-अरविद, नव-किशु-कानन ज्वलिया ।

सर्वदेश पिक-राव चुल्लिय, शीतल-पवन लघु बहै ॥

मलय-कुहर नव-बेलि पेरिय ।

विसेँ मनोभव-शर हुनै, दूर-दिगंतर कंत ।

किमि परि अग्रहिँ धारिहुउ, इमि परि-पडिय दुरंत ॥१९३॥

फुल्ल मधु, अमर बहु, रजनि-अभु-किरण लघु अवतर वसंत ।

मलयगिरि-कुसुम धरि पवन बहै, सहै कंत सुनु सखि ! नियर नहिँ कंत ॥१९४॥

चढ़ि चूतेँ कोइल-शाव मधु-मास पंचम गाव ।

मन-मौंन मन्मथ-ताप, नहिँ कंत आजउ आव ॥१९५॥

कआ भउ दुब्बरि तेज्जि गरास, खणे खण जाणिअ दीह गिसास ।

कुहू-रव-ताव दुरंत वसंत, कि गिहूअ काम कि गिहूअ कन्त ॥१३४॥ (४५३)

बहइ दक्खिण-भाएअ सीअला, रवइ पंचम-कोमल कोइला ।

महुअरा महु-पाण महुसवा, भमइ सुंदरि ! माहव संमरा ॥१४०॥ (४६०)

णव-मंजरि लिज्जिअ चूअह गाछे, परिफुल्लिअ केसु गआ वण आछे ।

जइ एत्थि विगंतर जाइहि कंता, किअ चम्मह गत्थि कि गत्थि वसंता ॥१४४॥ (४६५)

जहि फुल्ल किंसु-असोअ-चंपअ-मंजुला, सहआर-केसर-गंध लुद्धअ भम्मरा ।

बहु-दक्ख दक्खिण-वाअ भाणह भंजणा, महु-मास आविअ लोअ-लोअण-रंजणा
॥१६३॥ (४६१)

बहइ मलअ-वाआ हंत ! कंपंत काआ,

हणइ सवण-रंवा कोइला-लाव-बंधा ।

मुणिअ दहदिहासु भिग-भंकार-भारा,

हणिअ हणइ हउजे ! चंड-चंडाल-भारा ॥१६५॥ (४६३)

बहइ मलआणिला बिरहि-खेअ-संतावणा,

रअइ पिक-यंचमा विअसु किंसु-फुल्ला वणा ।

तरुण-तद-पल्लवा मउलु माहवी बल्लिआ,

वितर सहि ! नेत्तआ समअ माहवा^१ पत्त आ ॥१७६॥ (५१३)

अमिअ-कर-किरण धर फुल्लु णव-कुसुम-वण,

कुविअ भइ सर ठवइ काम णिअ धणु धरइ ।

खइ पिक समअ णिअ कंत तुअ थिर हियलु,

गमिअ दिण पुणु ण मिलु जाहि सहि ! पिअ-णिअलु ॥१६१॥ (५३७)

जइ फुल्ल केअइ चारु-चंपअ-चूअ-मंजरि-मंजुला,

सब दीसदीसइ केसु-काणण पाण बाउल भम्मरा ।

बह पोम्म गंध विबंदु बंधुर मंद मंद समीरणा,

पिअ केलि-कोतुक-लास-लंगिम लगिआ तरुणी जणा ॥१६७॥ (५५०)

कौया-भञ्ज द्वारि तेज्जिय ग्रास । क्षणे-क्षण जानिय दीर्घ-निश्वास ।

कुह-रव ताप दुरंत बसंत । कि निर्दय काम कि निर्दय कंत ॥१३४॥

बहुइ दनिखन भास्त शीतला, रवइ पंचम कोमल कोइला ।

मधुकरा मधुपान-महोत्सवा, भ्रमइ सुंदरि ! माधव सस्मरा ॥१४०॥

नवमंजरि लिज्जिय चूतह गाछे, परिफुलित किंशु नवा वन आछे ।

यदि आहि दिगंतर जाइव कंठा, किअ भग्मथ नाहि कि नाहि बसंठा ॥१४४॥

जहँ फुल्ल किंशु-अशोक-चंपक-मंजुला, सहकार-कैसर-गंध-लुब्ध अम्मरा ।

बहुदक्ष दक्षिण-वात मानहँ मंजना, मधुमास आयउ लोक-लोचन-रंजना ॥१६३॥

बहुइ मलय-वाता हंत कंपत काया ।

हनइ श्रवण-रंध्रा कोकिलालाप-बंधा ।

सुनिय दशदिशासु भृङ्ग-भंकार-भारा ।

हनिय हनँ ओरे ! खंड-खंडाल मारा ॥१६५॥

बहँ मलियानिला विरहि-चेत-संतापना,

रवँ पिक पंचमा विकसु किंशु फुल्ला वना ।

तरुण-तरु-पल्लवा मुकुलु माधवी-वल्लिया,

वितर सखि ! नेत्रवा समय माधवा आइया ॥१७६॥

अभियकर किरण वरु फुल्लु नवकुसुम वन,

कुपित भइ शर थवइ काम निज घनु धरै ।

रवइ पिक समय निज कंत तव थिर हृदय,

गयउ दिन पुनि न मिलु, जाहि सखि ! पिय-नियर ॥१६१॥

जहँ फुल्ल केतकि चारु-चंपक-चूत-मंजरि-मंजुला,

सब दीस दीसँ किंशु कानन प्राण व्याकुल अम्मरा ।

बहँ पच गंध-बिबंघ-बंधुर मंद-मंद समीरणा,

निज केलि-कौतुक-लास-भंगिम लागिया तरुणी जना ॥१६७॥

फुल्लिअ केसु चंद तह विअसिय, भंजरि तेज्जइ चूआ;
 दक्खिण-वाउ सीअ भइ पवहुइ, कं प विओइणि हीआ ।
 केअइ-धूसि सज्ज दिस पसरइ, पीअर सज्जउ भासे,
 आउ वसंत काह सहि ! करिअइ, कंत ण थाकइ पासे ॥२०३॥ (५६३)

(४) वीर-प्रशंसा

सुरभरु सुरही परसमणि, गहि वीरेस समाण ।
 ओ वक्कल सर कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥७६॥ (१३६)

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चल गुज्जर कुंजर तेज्जि मही, तुअ बभर जीवण अज्जु णही,
 अइ कुप्पिअ कण्ण-णरेंद्वरा, रण को हरि को हर बज्जहरा ॥१३०॥ (४४८)
 कण्ण चलंते कुम्मे चलइ पुहुवि^१ असरणा,
 कुम्मे चलंते महि चलइ भुअण-भअ-करणा ।
 महिअ चलंते महिहर तह असुरअणा,
 चक्कवइ चलंते चलइ चक्क तह तिहुअणा ॥६६॥ (१६५)

जे गंजिअ गोलाहिचइ राउ, उहंठ ओल्लु जसु मअ पलाउ ।
 गुरु विक्कम विक्कम जिणिअ जुअ, ता कण्ण परक्कम कोइ बुअ ॥१२६॥ (२१६)
 जिहि आसावरि देसा दिण्डु, भुत्थिर काहर रज्जा लिण्डु ।
 कालंजर जिणि किन्ती यप्पिअ, धणु आवज्जिअ चम्मक अप्पिअ ॥१२८॥ (२२२)
 हणु उज्जर-गुज्जर-राअ-कुलं, दल-दलिअ चलिअ मरहुइ-वलं ।
 वल मोडिअ भासव-राअ-कुला, कुल उज्जल कलचुलि कण्ण फुला ॥१८५॥ (२६६)
 धिक्क दलण थोंग-दलण तक्क-दलण रिगए,
 णंअ-णुकट दिग डुकट रंगल तुरंगए ।

फुल्लिम किंसु चंद्र तिमि विकसिय मंजरि त्याजै चूता ।

दक्षिण-वायु शीत-भय प्रवहै, कंप वियोगिनि हीया ।

केलकि-धूलि सर्व दिशि प्रसरै, पीयर सबंड भासै ।

आउ कसंत काह सखि ! करिये, कंत न थके^१ पासे ॥२०३॥

(४) वीर-प्रशंसा

सुर-सह सुरभी परस-मणि, नहिं वीरेश-समान ।

बह बलकल अरु कठिन-तनु, बह पशु बह पाषाण ॥६७॥

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

बलु गुर्जर ! कुंजर त्याजि, मही, तब बवंर जीवन आज नही^२ ।

यदि कोपिय कर्ण-नरेन्द्रधरा, रणे^३ को हरि को हर-बज्रधरा ॥१३०॥

कर्ण चलते कूर्म चलै पुहुवि अशरणा,

कूर्म चलते महि चलै भुवन-भय-करणा ।

मही चलते महिधर तहै असुरजना,

चक्रवर्ति चलते चलै चक्र तिमि तिभुवना ॥६६॥

जे गंजिअ गौडाधिपति राउ, उइउ ओइ जसु भय पलाउ ।

गरु-विक्रम विक्रम जिनिहि जुज्झु, तो कर्ण-पराक्रम कोइ जुज्झ ॥२१६॥

जिनि आतावरि देशा दीने^४उ, सुस्थिर डाहुर रज्जा लीने^५उ ।

कालंजर जिति कीर्ति आपिय, धन आवजिय धमैहै अपिय ॥१२८॥

हनु उज्ज्वल भुर्जर-राजकुल, दरदारिय चलिय मरहहु-बलं ।

बल मोठिय मालव, राजकुला, कुल-उज्ज्वल कलचूरि कर्ण-पूला ॥१८५॥

बिक्क दलन धोंग दलन तक्क दलन रेंगए,

न-ननु-कुट दिग-हुकट रंग बल तुरंगए ।

धूलि बबल हुक्क सबल पबिसपवस पत्तिए,

कण्ण चलइ कुम्म ललइ भुम्म भरइ कित्तिए ॥२०१॥ (३२२)

जुम्भ भट भूमि पड, उट्टि पुणु लगिआ,

सग-मण लग्न हण कोइ णहि भगिआ ।

बीस सर तिव्व कर कण्ण गुण अप्पिआ,

पत्थ तह जोलि दह चाउ सह कप्पिआ ॥१६१॥ (४८८)

सज्जिअ जोह विवट्ठिअ कोह चलाउ धणू,

पक्खर वाह चलू रणणाह कुरंत तणू ।

पत्ति चलंत करे धरि कूंत सुखगकरा,

कण्ण-गरेंद सुसज्जिअ बिंद चलंति घरा ॥१७१॥ (५०२)

कण्ण पत्थ ठुक्कु लुक्कु सूरवाण संहएण,

घाउ जासु तासु लग्गु अंधआर संहएण ।

एत्थ पत्थ सट्ठि वाण कण्ण पूरि छहएण,

पेक्खि कण्ण कित्ति थण्ण वाण सब्ब कट्ठिएण ॥१७३॥ (५०४)

३-कविका संदेश

(अगत पुच्छ—)

अइचल जोब्बण देह घणा, सिविणअ सोअर बंधु-यणा ।

अवसउ कालपुरी रमणा, परिहर बब्बर पाप-मणा ॥१०३॥ (४१४)

ए अत्थीरा देक्खु सरीरा, घर जाया,

किता, पित्ता, सोअर, मिता, सबु भाया ।

काहे लागी बब्बर बेलावसि^१ मुज्जे,

एक्का कित्ती किज्जहि जुत्ती, जइ सुज्जे ॥१४२॥ (४६३)

^१ बेलावसि=बाहर निकालते हो (मंथिली कि० बेलाएब)

धूलि धवल हाँक सबल पक्षि-प्रबल पति^१,
 कर्ण चलै कूम ललै भूमि भरै कीर्ति^२ ॥२०१॥

जूक भट भूमि पडु उडि पुनि लगिया,
 स्वर्ग-मन खड्ड हन कोइ नाहि भगिया ।
 बीस-शर तक्षिण कर कर्ण गुणै^३ अर्पिया,
 पार्थ तहँ जोरि दश चाप-सह कणिया^४ ॥२०२॥

सज्जित योध विवर्द्धित-श्रोध चलाउ धनू,
 पक्षर-बाह^५ चलो रणनाथ फुरंत तनू ।
 पति^६ चलंत करे धरि कुंत सु-खड्डकरा,
 कर्ण-नरेन्दे^७ सु-सज्जित-वृन्दे^८ चलति बरा ॥२०३॥

कर्ण-पार्थ हुक्कु लुक्कु सूर-बाण-संहतेहिं,
 पाव जासु तासु सागु अंधकार संहतेहिं ।
 अत्र पार्थ साठ बाण कर्ण पूरि छाडतेहिं,
 पेखि कर्ण-कीर्तिधन्य बाण सर्व काटियेहिं ॥२०४॥

३-कविका संदेश

(अगत तुच्छ—)

अतिबल-श्रीवन-देह-धना, स्वप्नए सोदर-बंधु-जना ।
 अवसए काल-पुत्री-गमना, परिहर बम्बर पाप मना ॥२०५॥

ए अस्थीरा देखु शरीरा, घर जाया,
 वित्ता, पित्ता, सोदर, मित्रा, सब भाया ।
 काहे लागी बम्बर बैलावसि मुज्जे,
 एकका कीर्ति किज्जइ युक्ती, यदि सुज्जे ॥२०६॥

§ २८. कनकामर मुनि

काल—१०६० ई०(?)। देश—बुंदेलखंड(?)। कुल—ब्राह्मण, बिगंबर

१-भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

दीवाण पहानहि दीव-दिवे । जंबू-द्रुम लंछिएँ जंबुदिवे^१ ।

वेढिय सबणणय बलयमाणे^२ । जोयण सय-सहस्र परिप्पभाणे^३ ।

वित्थिण्णउ इह सिरि भरह-छेतु । गंगाणइ सिंधुहु विप्फुरस्तु ।

छक्खंड भूमि रयणहँ णिहाणु । रयणायरोव्व सोहायमाणु ।

एत्थत्थि रवण्णउ अंगदेसु । महि-महिलहँ णं किउ दिव्ववेसु ।

जहिँ सरवरि उगगय पंकयाहँ । णं धरणि बयणि णयणुत्तयहँ ।

जहिँ हालिणि^४ रुवणि वदणहे । संचल्लहिँ जक्खण दिव्वदंहे ।

जहिँ बालहिँ रक्खिय सालिखेत । मोहेणिणु गीयएँ हरिणखेत ।

जहिँ दक्खइ भुजिवि दुहु मुयंति । बल-कमलहिँ पंथिय सुहु सुयंति ।

जहिँ सारणि सलिस सरोय-यंति । अइरेहइ मेइणि णं हैसंति ।

(२) अंपानगरी

यत्त । तहँ देसि खण्णहँ घण-कण-मुण्णहँ अत्थि णयरि सुमणोहरिया ।

जण-णयण-पियारी महियलि सारी, चंपा णामइ गुणभरिया ॥

जा वेढिय परिहा-जलभरेण । णं मेइणि रेहइ सायरेण ।

उत्तुंग-भवल कउ सीसएहिँ । णं सग्गु छिवइ बाहु-सएहिँ ।

जिण-भंवरि रेहहिँ जाहिँ तुंग । णं पुण्णपुंज णिम्मल अहंग ।

कोसेय पडायउ धरि लुलंति । णं सेय-सप्प णहि सलवलंति ।

^१ बेलो स्वयंभू (पृ० ३२), और पुष्पवत (पृ० १६२ और १६४)

§ २८. कनकामर मुनि

साधु । कृति—करकंद-चरित^१

१-भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

द्वीपन को प्रधानो द्वीप-दीप । जंबुद्वीप-सांखित जंबुद्वीप ।

वेडिय लवणार्णव बलवमान । योजन-शत-सहस्र-परिप्रमाण ।
विस्तीर्णउ इह श्रीभरत-छेत्र । गगानदि-सिंधुउ विस्फुरंत ।

छै खंड भूमि रतनहैं निधान । रतनाकर इवें शोभायमान ।
एहिं ग्रहै रम्य (एँहु) अंग-देश । महि-महिलें जनु किउ दिव्यवेष ।

जहें सरवरें उगैं पंकजाइ । जनु भरनि-बदने नयनुल्लयाइ ।
जहें हालिनि रूप-निबद्ध-नेह । संचल्ले यक्ष न दिव्यदेह ।

जहें बाला राखिय शालि-खेत । मोहेबिय गीतहिं हरिन खेत ।
जहें ब्राक्षइ भुजिय दुध मुंचति । स्थलकमलहैं पंथिक सुल सोंवति ।

जहें सरवर-सलिलें सरोज-पंकित । अतिराजै मेदिनि जनु हसति ।

(२) चंपानगरी

घत्ता । तहें देशें रमणयहें, धन-कण-पूर्णह, आहि नगरि सुमनोहरिया ।

जननयन-पियारी, महियल-सारी, चंपा नामहें गुण-भरिया ।
जा वेडिय परिखा-अल-भरेहिं । जनु मेदिनि राजै सागरेहिं ।

उत्तुंग-धवल कपि-भीषाएहिं । जनु स्वर्ग छुबै धाहूशतेहिं ।
जिभसंदिर राजै जाहें तुंग । जनु पुण्य-पुंज निर्मल अभंग ।

कौषेय-पताकउ धरें लुलंति । जनु श्वेत-सर्प नमैं सरसरंति ।

^१ कारंजा जैन-ग्रंथमाला (कारंजा, बरार) में प्रो० हीरालाल जैन द्वारा
संपादित (१९३४) ^२ हलवाह-वधू

जा पंचवक्त्र-मणि-किरण-दित्त । कुसुमजलि णं भयणेण चित्त ।

चित्तलियहिं जा सोहइ बरेहिं । णं अमर-विमाणहिं भणहरेहिं ।

णव-कुंकुम-छटयहिं जा सहेइ । समरंगणु मयणहोँ णं कहेइ ।

रत्तुपलाई भूमिहि गयई । णं कहइ धरंती फलसयाई ।

जिण-वास पुण्ण-माहप्पएण । ण वि कामुय जित्ता कामएण ।

घटा । तहिं अरिविहारणु, मयसरु-वारणु, धाडी वाहणु पहु हुयउ ।

जो कवगुणजुत्तउ, गुह्यणभत्तउ, विज्जासायर पारगउ ।

—करकंड-वरिउ, पृ० ४, ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एक्कहिं दिणि करकंडएण । पुणु दिणु पयाणउ तुरियएण ।^१

गउ सिंहलदीवहोँ णिवसमाणु । करकंडु गराहिउ गरपहाणु ।

जहि पाउल पिस्लहोँ मणुहरंति । सुर-खेयर-किणर जहिं रमंति ।

गयलीलई महिलउ जहिं जलंति । णियरूवेँ रहरूजवि खलंति ।

जहि देविसि मि लोयहँतणउ भोउ । बीसरियउ देवहँ देवलोउ ।

आवासिउ णयरहोँ बहिय एसेँ । अरिसंक पवइळि तहिं जि देसेँ ।

आवासु सुएँवि सहयरसमेउ । करकंडु गयउ रमणिहिं अमेउ ।

तहिं गरुवउ सवणसएँहिं भरिउ । णं कप्पवच्छु देवेहिं वरिउ ।

दलवंतहि पत्तहिं परियरिउ । बडु विट्ठु राएँ समु जित्थरिउ ।

घटा । करकंडेँ पेक्खववि तहोँ वडहोँ, दीहहँ सुट्ठु सुकोमलहँ ।

ता लेविणु गुसिया वणुहडिया विद्धाई असेसई सहलहँ ।।

—वही पृ० ६४

^१ तूर्य = नगाड़ा

जा पंचवर्ण-मणि-किरण-दीप्त । कुसुमाञ्जलि अनु भगणोहिं^१ क्षिप्त ।

चित्तलियहिं जा सोहं धरेंहिं । जनु अमर-विमानहिं मनहरेंहिं ।

नवकुंकुम-छटयेहिं जा सहेइ । समरांगण मदनहो जनु कहेइ ।

रक्तोत्पलाइ भूमिहिं गताइ । जनु कथे धरित्री-फल-शताइ ।

जिन-वास-पूजा-माहात्म्यएहिं । नहि कामुक चिता कामएहिं ।

घसा । तहँ अरिविहारन, मदतह-वारन, वाडीवाहन प्रभु हुअऊ ।

जो कविगुण-युक्तउ, गुरुजन-भक्तउ, विद्यासागर-पारगऊ ॥

—करकंड चरिउ, (पृ० ४. ५)

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एकहिं दिन करकंडएहिं । पुनि दिन्न प्रयाणहिं तूर्ययेहिं ।

गउ सिंहलद्वीपहु निवसमान । करकंड नराधिप नरप्रधान ।

जहँ पावस पिल्ल^२इ मनहरंति । सुर-सेचर-किन्नर जहँ रमंति ।

गजलीलहिं महिलउ जहँ चलंति । निजरूपे रतिरूपहँ खलंति ।

जहँ देखिय लोकहँ केर भोग । वीसरियउ देवहँ देवलोक ।

आवासे^३उ नगरहँ वहिप्रदेशे^४ । अरि-शंका बाढी ताहि बेशे^५ ।

आवास छाडि सहचर-समेत । करकंड गये^६उ रमणिहिं अमेय ।

तहँ गरुअउ सवण शते^७हिं भरिउ । जनु कल्पवृक्ष देवे^८हिं धरिउ ।

दलवंतहिं पत्रहिं परिचरिऊ । बट देखु राव सम-विस्तरिऊ ।

घसा । करकंडे^९हिं दीसे^{१०}उ सो बट, दीरघ सुष्ट सुकोमलइ ।

तो लेइय गोली धनुहुडिया, बे^{११}उ अशेषहँ शाकलइ ॥५॥

—वही पृ० ६४

२-सामन्त-समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ 'वि लोयहिँ कलियमाणु । गउ सुन्दर पुरवरेँ जणसमाणु ।

घत्ता । सो पुरवरणारिहि गुणगिलउ पइसंतउ दिट्टउ जयरे कह ।

णं दसरहणंदणु तेयणिहिँ उज्झहिँ सुरणारीहि जहँ ॥

तहुँ पुरवरेँ सुहियउ रमणियाउ । भाणट्टिय मुणि-मण-दमणियाउ ।

कवि रहसहँ तरलिय चलिय थारि । विहडफड़ संठिय कावि थारि ।

कवि धावइ णव-णिव गेहुलुद्ध । परिहाणु ण गलयउ गणइ मुद्ध ।

कवि कज्जलु बहलउ ग्रहरेँ देइ । जयणुल्लयेँ लखारसु करेइ ।

णिगंथ-विस्ति कवि अणुसरइ । विवरीउ डिंभु कवि कडिहिँ लेइ ।

कवि गेउरु करयलि करइ बाल । सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल ।

णियणंदणु मणिगवि कवि वराय । मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय ।

कवि धावइ णवणित मणेँ धरंति । विहलंधल मोहइ धर सरंति ।

घत्ता । कवि माण-महल्ली मयण-भर, करकंडहोँ समुहिय चलिय ।

बिर थोरय ओहरि मयणयण उत्त-कणय-छवि उज्जलिय ॥

णवरज्जलंभ रंजिय हिएण । करकंडहं पुरेँ पइसंतएण ।

गयलंघेँ चहणिय जंतएण । णिउ-राउलु लीखए पत्तएण ।

सं दिट्टउ राय-णिकेउ तुंगु । अइमणहरु णं हिमवंत-सिंगु ।

मुक्ता-हल-माला-तोरणेहिँ । णं विहसइ सियदंतहिँ षणेहि ।

किंकिणि रणंतु धयवडउ मालु । णं गज्जइ पणमणि बिहिम-तालु ।

चामीय-रमणि-रयणेहिँ बडिउ । णं संगहोँ अमर-विमाणु पडिउ ।

तहिँ पइसइ णवणित विमलबुद्धि । पारंभिय गुरुयणु मण-विमुद्धि ।

कर हेमकुंभु मंगलु करंति । कवि माणिणि णिगयता तुरंति ।

२-सामन्त समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँहु लोकहिँ कलितमान^१ । गयो सुन्दर पुरवरे जनसमान^२ ।

घसा । सो पुरवरनारिहिँ गुणनिलय पइसंता दीठे^३उ नगरे किमि ।

जनु दशरथनंदन तेजनिधि योध्या मुरनारीहि जिमि ॥

तहें पुरवरे^४ क्षुभ्यउ रमणियाउ । ध्यान स्थित-मुनि-मन-दमनियाउ ।

कोइ रहसे तरलिय चलिय नारि । हठफड संठिय कोई दुवारि ।

कोइ धावै नव-नूप-नेहु-सुख । परिधान न गलियउ गने मुखौ ।

कोइ कज्जल बहुतो अथर देइ । नयनुल्लै^५ लाक्षारस करेइ ।

निर्ग्रन्थ-वृत्ति^६ कोइ अनुसरेइ । बिपरीत बाल कोइ कटिहिँ लेइ ।

कोइ नूपुर करतलें^७ करे बाल । शिर छाडी कटितलें^८ धरे माल ।

निजनंदन मानिय कोइ वराकि । मार्जार न फेकै सानुराग ।

कोइ धावै नवनूप मने^९ धरति । बिह्वलधर मोहै धरौ स्मरति ।

घसा । कोइ मान-महल्लो मदन-भरा, करकंडह सम्मुख चलिया ।

स्थिर थोडा अपहरि मदनयना, उत्तप्त-कनक-छवि-उज्ज्वलिया ॥

नव-राज्य-लाभ-रंजित-हियेहिँ । करकंडहिँ^{१०} पुरे पइसंतएहिँ ।

भञ्ज-कंधे चढिया जंतएहिँ । नूप-राजुल-लीला-प्राप्तएहिँ ।

सो देखउ राज-निकेत तुंग । अतिमनहर जनु हिमवत-भृंग ।

मुक्ताफल-माला-तोरणेहिँ^{११} । जनु बिहसै सित-वंतहिँ घनेहिँ ।

किंकिणि रणंत श्वजपटि^{१२}व माल^{१३} । जनु नाचै प्रणयिनि बिहित-ताल ।

चामीकर-मणि-रतनेहिँ गढे^{१४}उ । जनु सर्गहिँ अमर-विमान पडे^{१५}उ ।

तहें पइसै नव-नूप विमल-वुडि । प्रारंभिय गुरु-जन्म मन-विषुडि ।

के^{१६} हेम-कुंभ मंगल करति । कोइ मानिनि नीसरि गइ तुरति ।

परिमंगलु किउ धर-दीवएहि । जयफारिउ पुणु पारी-सएहि ।

सोवण-कलस-कय उच्छवम्मि । पइसारिउ सो णिव-भंदिरम्मि ।

घत्ता । सो सयल-मुणायह सीलणिहि, विणयभाव-संजुत्तउ ।

सामंत-मंति-जण-परियरिउ, पुरि अछइ^१ रज्जु करंतउ ।

—वही पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकंडहों उपरि खेयरासु । अइपउर पचइडिउ षेइ तासु ।

पाढाविउ सो णीतिऐं जुयाई । वायरण-तक्क-णाढय-सयाई ॥

कविविरइय कव्वई बहुरसाई । मच्छायण-गणियई गवरसाई ।

मंताई असेसई तंतयाई । वसियरण सुसोहई जंतयाई ॥

असिचक्क-कुंत-छुरियउ बराउ । धणवेय—सत्ति-दिढ-तोमराउ ।

मल्लाण जुज्ज तणुवट्टणाई । उल्ललणई वलणई लोट्टणाई ।

फल-फुल-पत्त-छेयंतराई । जाणाविउ सयलई मुह्यराई ।

पहु-पंडह-मुरय-वीणाइ वंसु । विज्जाई असेसई कलिउऐसु ।

घत्ता । जं किपि पसिद्धउ भुवणयले, खेयरई जणाविउ सो मुरह ।

लोहेण विडविउ सयलु जणु, भणु कि कर चोज्जई णउ करह ॥

—वही पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता । हल्लोहलि हूयउ सयलुजणि अपरंपरि जाणइ संचलहि ।

हा-हा-रउ उट्टिउ करुण-सरु, नहों सोए णरवर-सलवलहि ॥

जा णर-पंचाणणु विवसिय-आणणु जलि पडिउ ।

ता सयलहिं लोयहिं पसरिय सोयहिं अइहरिउ ॥

रइवेय सुभामिणि णं फणि-कामिणि विमणमया ।

सव्वमे कंमिय, चित्ते चमक्किय मुच्छमया ॥

परि-मंगल किउ वर-दीपकेहिं । जयकारेँउ पुनि नारी-बातेहिं ।
 सौवर्ण-कलश-कृत उत्सवही । पइसारेँउ सो निजमंदिरही ।
 धत्ता । सो सकल-युगाकर शील-निधि, विनय-भाव-संयुक्तऊ ।
 सामंत-मंथि-जन-परिचरिय, पुरि आछैं राज्यकरंतऊ ॥
 ---वही पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकंडह-ऊपर खेचराहु । अतिप्रवर प्रबाढेँउ नेह तासु ।
 पढयउ सो नीतिय जुताई । व्याकरण-तर्क-नाटक-शताई ।
 कवि-विरचित-काव्यहैं बहु-रसाई । वात्स्यायन-गनितहैं नवरसाई ।
 मंत्राहैं अशेषहैं तंत्रयाई । वशिकरण सु-सोहैं मंत्रयाई ।
 असि-चक्र-कृत-छुरियउ वराउ । धनु-वेद-शक्ति दूढ तोमराउ ।
 भत्ताहैं युद्ध तनु घट्टनाई । उल्लसनैं वलनैं जोट्टनाई ।
 फल-फूल-पत्र-धेकन्तराई । जानावेंउ सकलें शुभकराई ।
 पटु-पटह-मुरज वीणाहैं वंशि । विद्याहैं अशेषहैं ऋषिदण्डसु ।
 धत्ता । जो किछुउ प्रसिद्धउ भुवनतले, खेचरहैं जनायेउ सो सुरति ।
 लोभेहिं विडंबिउ सकल जन, भन की.कर प्रेरणे न करइ ॥
 ---वही पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

धत्ता । हल्लाहल हूयो सकल जन, अपरापर जानैं संचलही ।
 "हा हा" रब उठेँउ करुण-स्वर, पुनि-शोके नरवर कलबलही ॥
 जो नर-पंचानन विकसित-आनन जलें पढेँऊ ।
 तो सकलहिं लोकहिं प्रसरित-शोकहिं अति डरेँऊ ॥
 रति-वेग सुभामिनि जनु फणि-कामिनि विमन-भया ।
 सर्वांगे कंपिय चित्तें अमकिय मूर्छगता ॥

किय-नभर-सुवाहँ सलिल-सहाहँ गुणभरिया ।

उट्टाविय रमणिहि मुणि-मण-दमणिहि मणहरिया^१ ॥

सा करयल-कमलहिँ सुलसिय-सरलहिँ उरु हणइ ।

उब्बा-लजणयणी गगिर-वयणी पुणु मणइ ॥

“हा बइरिय बइवस पावमलीमस किं कियउ :

भइँ आसिव रायउ रमणु परायउ किं हियउ ॥

हा बइव परम्मुह दुणय-दुम्मुह तुहँ हुयउ ।

हा सामि ! स-लक्षण सुटु वियक्षण कहिँ गयउ ।

महोँ उपरि भडारा णरवर सारा करण करि ।

दुह-अलहिँ पडंती पसयहोँ जंती णाह वरि ॥

हुँ णारि बराइय आबइँ आइय को सरउँ ।

परछंडिय तुम्हहिँ जीवमि एवहिँ किं मरउँ” ॥

इय सोय-विमुहइँ लवियउ सद्धइँ जं हियइ ।

हुँ बोलिसु तइयहुँ । मिलिहइ जइयहुँ मज्जु पइ ।

वही पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवसहो आवइ जाव राउ । मयणावलि णउ पेच्छइ ‘वि ताउ ॥

जोइयइ चउहिंसु हिययहीणु । उब्बेचिरु हिडइ महिहोँ दीणु ॥

ता संकिउ णरवइ गलिय-गव्वु । “कहिँ गउ कलसु सव्वंग-भव्वु ॥

मयणावलि जा आणंद-भूअ । सा एवहिँ किं विपरीय हूअ” ॥

ता पेसिय किंकर वर-णिवेण । अवलोयहु सामिणि दिसिवहेण ॥

जोएवि दिसिहिँ आगयवलेवि । पुनकारहिँ उब्बा-कर करेवि ॥

ता राए देकिववि ते सुपंत । परिमुक्क अंसु णयणाहिँ तुरंत ॥

“हे पयवइ तुहँ सवणाणुबंधु । महु अवलहि सुंदर-णेह-बंधु ॥

^१ मण हरिया (=मनहरिया)

कल-चमर-सुवाते^१ सलिल-सहाये^२ गुण-भरिया ।

उद्गाड्य रमणिहिं मुनिमन-दमनिहिं मणहरिया ॥

सा करतल-कमलहिं सुललित-सरलहिं उर हनई ।

उद्-व्याकुल-नयनी गद्गद-वदनी पुनि मनई ॥

“हा बेरी वीवस पाप-मलीमस की कियऊ ।

मम अहे^३उ बराकिउ रमण परायल की हियऊ ॥

हा देव ! पराङ्मुख दुनय दुर्मूल तुहें भयऊ ।

हा स्वामि ! सलक्षण सुष्ट विचक्षण कहैं गयऊ ॥

मम उपर भटारा^४ नरवर सारा कहेण करो ।

दुख-जलधि-पड़ती प्रलयहैं जाती नाथ धरो ॥

हीं नारि बराकी आपति आपे को सुमिरऊँ ।

पर छाडिय तुम्हहिं जीवौ^५ एवं की भरऊँ ॥”

इमि शोक-विमुग्धहैं लपियउ क्षुब्धहिं जो हियई^६ ।

हीं बोलेसु तइयहैं मिलिहैं अइहउं मोर पती ॥

वही पृ० ६७

(४) पल्लि-विरह

आवासहों^१ आबई जाइ राव । मदनावलि ना पेखैउ ताव ॥

जोइयै चतुर्दिश हृदयहीन । उद्वेगिर हिंडे महिहें^२ दीन ॥

तो शकैउ नरवरें^३ गलित-गर्व । कहैं गउ कलत्र सर्वांग-भय ॥

मदनावलि जा आनंदभूष । सा एवं की विपरीत हूअ ॥

तब प्रेषेउ किंकर वर-नृपेहिं^४ । “अवलोकहु स्वामिनि दिदि-पथेहिं^५ ॥”

जोयउ दिसीहिं आगत-बलेइ । पुक्कारहिं लँचा कर करेइ ।

तब राख देखियउ ते सौं बत । परि-भूंच अश्रु नयनहिं तुरंत ।

“हे प्रजोपति तुहें^६ अवगानुबंध । मोहि आलहु सुंदर-नेह-बंधु ।

हा मुद्धि मुद्धि तुहें केण नीय । किं एवहिं लिहिकवि कहिमि ठीय ॥

हा कंजर किं तुहें जमहों दूउ । किं दोसई महों पडिकूलु हुउ ॥

घसा । शिर मोहू बहंतउ कोवि हियई, लबह-रूउ अगई हुयउ ।

विज्जाहक आयउ सोवि तहिं, विज्जासायर पाउ गउ ॥

—बही पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

श्रुवकं । करकंडइ साहिवि महि-सयल, परिपुच्छिउ भइवरु विमलभइ ।

भणु सम्मइ महवर को 'वि शिरु, जो अज्जु'वि दुट्टउ नवि णवइ ॥

सो महवर पभणइ "देव देव । तुह महियलु सयलु'वि करइ सेव ।

परि दिविठ-देसें णिव अत्थि बिट्ट । ते णमहि ण कासुवि हियई दुट्ट ।

सिरि चोडि पंडि णामेण चेर । णउ करहिं तुहारी देवकेर" ॥

आयणि'वि तं चंपाहिवेण । सपेसउ दूयउ तहों खणेण ।

"ते" जाइवि ते चोडाइ राय । इउ भणिय णवहु करकंड-पाय ।"

'णिग्गत्थिउ दूयउ तेहिं सोवि । "जिणु मेल्लिवि अण्णुण णवहु कोवि ।"

करकंडहों आइवि कहिउ तेण । "णउ करहि सेव तुह किं परेण ।"

तं सुणिवि वयणु करकंडु राउ । "जइ देमि ण तहों सिर णियय पाउ ।

तो महियल पुस इदिय सुहासु । महों अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु ।"

ऐह पइज करिवि करकंडएण । लहु दिण्णु पयाणउ कूट्टएण ।

घसा । चंपाहिउ चलिउ तहों उवरि, गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो ।

चउरंगई सेणइ संजुयउ, सो लीला घरइ सुरेसरहो ॥

तहों जंतहों महि हय-सुरहिं भिण्ण । गयणंगणि गय-रय-धूम-वण्ण ।

पसरंतहि तेहिं दिग्गाणणाहें । णं मुहवहु किउ दिसिवारणाहें ।

महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिद । कपंत पणट्टा खे सुरिद ।

दक्खिण-वहे गउ तेरापुइम्मि । तहों दक्खिण-दिसिहिं मत्तावणम्मि ।

हा मृगधेँ मुगधेँ तुहूँ केहिँ नीउ । की एवं लुक्किय कतहुँ टीय ।

हा कुंजर ! की तुहूँ यमहँ दूत । की दोषहिँ मोहि प्रतिकूल हूअ ।
यसा । चिर मोह बहंतउ कोउ हियहिँ, सुंदर रूप अग्रे हुयउ ।

विद्याधर आयउ सोउ तहिँ, विद्यासागर पार गउ ॥

—बही पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवक ! करकंडेहिँ साविउ महि-सकल, परिपूछेँउ मति वर विमलमति ।

“भणु सम्यक् मतिवर कोँउ निश्चय, जो आजउ दुष्टउ नहि नवइ ।”

सो मतिवर प्र-भणै “देवदेव । तुहूँ यहियल सकलहुँ करै सेव ।

पर ब्रविड-देशेँ तृप अहँ घृष्ट । सो नमै न काहुहिँ हृदय-दुष्ट ।

श्री घोल पाँखि नामेन चेर । ना करै तुहारी देवकेर ।”

सुनि केहू सो चंपाधिपेहिँ । संप्रेषेँउ दूतहिँ तहँ क्षणेहिँ ।

“तेँ जाइबि तेहि चोलाधिराज । इमि भनिबि ‘नमहुँ करकंडपाद’ ।”

निर्भत्स्येँउ दूतउ तेहिँ सोउ । “जिन द्वाडि अन्य ना नमहुँ काहु ।”

करकंडहिँ आई कहेंउ तेन । “ना करै सेव तव की परेन ।”

सो सुनिय वचन करकंडु राव । “यदि देउ न तेहि शिर निजहि पाव ॥

सो महितल-पुत्र-इन्द्रिय-सुहास । मम अहँ निवृत्ति-परिग्रहास ।”

ऐहुँ पइज^१ करेँउ करकंडएहिँ । लघु^२ दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ ।

यसा । चंपाधिप चल्लेँउ तेहिँ उपरि, गुज बंझिय नीसरेँउ पुरवरहँ ।

चतुरंगई सैन्यई संयुतउ, सो लीसा धरै सुरेश्वरहँ ॥

तहँ जातेँउ महि हय-खुरेहिँ भिन्न । गगतांगने गजरज धूमवर्ण ।

पसरता ते दिश-आननाहँ । जनु मुख-बंवु किउ दिश-वारणाहँ ।

महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरेन्द्र । कंपत प्रतप्त रवे^३ सुरेन्द्र ।

वक्षिणपथेँ गउ तेशपुरेइ । तहँ वक्षिण-दिक्षी महाब्रनेइ ।

आवासिउ तहिँ बलु चाजरु ॥ खणेँ सीह पुलिदहँ हुयउ भंगु ।

संताडिय दूसय पंचवण ॥ णं अमरगह - भूमिहि पवण ।

गय करिवर लेविणु जलहोँ भेटु ॥ रासहियहिँ धाविय खर पहिडु ।

लोलाविय धय गिब-णरवरेहिँ । महि णच्चइ णं उब्भिय करेहिँ ।

धत्ता । आवासिउ अञ्छइ जाव तहिँ, करकंड-गराहिउ पसर-वसु ।

पडिहार पराइउ तहो पुरउ, दूराउ गमंतउ हरियमलु ॥

—वहीँ पृ० ३५, ३६

(६) शुद्ध-वर्णन

तँ सुणिमि वयणु चंपाहिराउ । सण्णज्झइ ता किर बद्धरउ ।

तावेंतहिँ वंतीपुरि-णिवेण । कंपाविय भेइणि मंदरेण ।

णिण्णासिय अरि-यण-जीवएण । उड्ढाविय दहदिसि रय रणेण ।

णहु छावउ खलियउ रविवएण । लहु दिण्णु पयाणउ कुट्टेएण ।

गंगतपएणु संपत्तएणु । गंगाणइ दिट्ठी जंतएण ।

सा सोहइ सिय-जल कुडिलयंति । ण सेयभुजंगहो महिल जंति ।

दूराउ बहंती अइविहाइ । हिमवन्त-गिरिन्दहोँ किति-णाई ।

विहिँ कूलहिँ लोयहिँ ण्हंतएहि । आइच्चहोँ जलु परिदितएहि ।

दम्भंकिंय उड्ढहि करयलेहिँ । णइ भणइ णाई एयहिँ छलेहि ।

“हलँ सुद्धिय णिय-मग्गेण जामि । मा रुसहि अम्हहोँ उवरि सामि” ।

णइ पेक्खमि णिउ करकंडं णामु । गउ जणण-णयरु गुण-णाणिय-धामु ।

धत्ता । जे संगरि सुरवर-खेयरहें, भउ जणियउ धणुहर-मुखस-रहीँ ।

तं वेठिउ पट्टणु चउदिसिहिँ, गय-तुरय गरिदहिँ दुद्धरहीँ ॥

सा हयहँ तूराई, भुवणयल पूराई ।

वज्जंति वज्जाई, आणाए धडियाई, परवणहँ भिडियाई ।

आवासेँ उ तहँ बल-बानुरंग । अणैँ सिंह पुलिंदहँ भयेँ उ, भंग ।

संताड़िय दुस्सहँ पंचवर्ण । जनु अमरगेह-भूमिहि प्रपन्न ।
गम करिवर लेइय जलहौँ मेँठ^१ । राक्षभियहिँ घाड़य खर प्रहृष्ट ।

लोलाइय ध्वज नृपनरखरेहिँ । महिँ नाचैँ जनु उत्थित-करेहिँ ।
घत्ता । आवासेँ उ अच्छइ जख तहँ, करकंड-नराधिप पौरखल ।

प्रतिहार पर-आयेँ उ तेँहि पुरउ, दूराउ नमंतउ हरियमल ॥

—वहीँ पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

सो सुनिथ बचन चंपाधिराज । सआहेँ तो फुरि बद्ध-राग ।

तखँ तहँ इंतीपुर-नृपेहिँ । कंपाइय मेदिनि मंदरेहिँ ।

निर्-नाशिय अरिजन-जीवितेहिँ । उहाविय दश-दिशि रज रणेहिँ ।

नभ छावउ खलियउ रविपदेहिँ । लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ ।

गंगा - प्रदेश संप्राप्तएहिँ । गंगानदी देखेँ उ जांतएहिँ ।

सो सोहँ सित-अल-कुटिल-पंक्ति । जनु श्वेतभुजंगह महिलौँ जंति ।

दूराउ बहंती अति-विभाइ । हिमवन्त-गिरीन्द्रह कीर्ति-न्याइँ ।

दोँउ कूलहँ लोगहि न्हांतएहिँ । आदित्यहँ जल परि-देंतएहिँ ।

दभीकित उड्डा-करतलेहिँ । नदि भनै न्याहँ एतहिँ छलेहिँ ।

“हउँ केवल निजमार्गेहिँ जाउँ । ना रुसहु हम्महँ उपर स्वामि” ।

नदि पेखिय नृप करकंड-नाम । गउ जनन-नगर गुण-गणिय ग्राम ।

घत्ता । जो संगर सुरवर-खेचरहँ, भय जनियउ धनुधर-मुच-शरहीँ ।

सो बेठेँ उ पाटन चउदिशिहिँ, गज-तुरग नरिंदेहिँ गुंरहीँ ॥

तख हयइँ तूराइँ, भुवन-तल-पूराइँ ।

बाजंति बाजाइँ, आनाद-धटिताइँ । पर-बलहिँ भिड़ियाइँ ।

कुंताई भज्जंति, कुंजरइ गज्जंति । रहसेण वग्गंति, करि-दसेण लग्गंति ।

गताई तुट्ठंति, मुंडाई फुट्ठंति । सुंडाई धावंति, अरियाणु पावंति ।

अंताई गुप्पंति, सहिरेण थिप्पंति । हुड्डाई मोडंति, गीवाई तोडंति ।

घत्ता । केवि भग्गा कांशर जेवि णर, केवि भिडिय केवि पुणु ।

लग्गुगामिय केवि भड, मंडेविणु धक्का केवि रणु ॥

—वही पृ० २८-३१

३-कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकंड सुणेविणु तं वयणु, अस्थानहो लट्ठिउ तक्खणिण ।

‘गळ सत्तपयई मल्लेवि कर, सुमरंतउ भुणिवरपय भणिण ॥

स्ता आणंदभेरि तुरंतएण । देवाविय तुट्ठई राणएण ।

तहे णट्ठु सुणेविणु लद्धभोय । परिमलिय खणदे भविय लोय ।

कवि माणिणि चल्लिय सलिय देह । मुणि-वरण-सरोयह वद्धणेह ।

कवि जेतुर सई रणभणंति । संचल्लिय मुणि-गुण णं थुणंति ।

कवि रमणु णं जंतउ परिगणेइ । मुणि-दंछणु हियवए सई मुणइ ।

कवि अक्खयधूव भरेवि थालु । अइरहसई चल्लिय लेवि बालु ।

कवि परिमलु वल्लु वहंति जाइ । विज्जाहरि णं महियलि विहाइ ।

घत्ता । काइवि छण ससहर-आणणिया, करे कमलकरंती संचलिया ।

आणंदिय भेरिहे सुणिवि सुह, लहु भवियण सयलवि तहिं मिलिया ।

लिण्णिद-धम्म-रत्तओ, मुणिद - पाय - भत्तओ ।

सुवण्णकंति - दित्तओ, सरोय - पत्त - जेततओ ।

पल्लव - पीण - हत्थओ, विबुद्ध - सज्ज - सत्थओ ।

विसुद्ध-सन्धि-गत्तओ, खणेण आव पत्तओ ।

कुंताहैं भज्जंति । कुंजरइ गजंति । रथसेन बल्गंति । करि-दशन लग्गंति ।
गात्राहैं दूटंति । मुंडाहैं फूटंति । रुंदाहैं धावंति । अरि-थान पावंति ।
अंत्राहैं गोपंति । रुधिरैहिं थपंति । हड्डाहैं मोडंति । ग्रीवाहैं तोडंति ।
घत्ता । केँऊ भग कायर जेउ नर, केँउ भिड़िया केउ पुनि ।
खड्ग लट्ठाइय कोउ भट, मँडियस थाकेँउ केउ रणे ॥

—वही पृ० २८-३१

३-कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकेँडू सुनीया सो कवन । आस्था नहैं उठेँउ तत्-क्षणहीं ।

गल सप्तपदे मुकुलित-कर, सुमिरंतउ मुनिवर-पद मनहीं ॥

तब आनंदमेरि तुरंतएहिं । देवायउ तुष्टहिं राणएहिं ।

तहें नष्ट सुनीया लब्ध-भोग । परिमिलेउ क्षणार्धे भौंक लोग ।

कोँइ माननि चलिय ललित-देह । मुनि-वरण-सरोजहें बद्ध-नेह ।

कोँइ तुपुर-शब्दे रनभुनंति । सं-चलिय मुनि-गुण अनु स्तुवंति ।

कोँइ रमण न जातउ परि-गनेइ । मुनि-दर्शन-हिय पद स्वर्थ जनेइ ।

कोँइ अक्षय-धूप भरीय थाल । अति रमसैं चलिय लेह बाल ।

कोँइ परिमल-बहुल अहंति जाइ । विद्याधरि अनु महितले विहारि ।

घत्ता । काहुउ क्षण शशधर-आनननिया, करेँ कमल करंती संचलिथा ।

आनंदिय भेरिहि मुनिय स्वर, लघु भविजन सकलउ तहें मिलिया ॥

जिनेंद्र-धर्म-रक्तधो । मुनींद्रपाद-भक्तधो ।

सुवर्ण-कांति-दीप्तधो । सरोजपत्र-नेत्रधो ।

प्रलंब-पीन-हस्तधो । विबुद्ध-सर्व-शास्त्रधो ।

विष्णुद्वि-संधि-नावधो । क्षणेहिं जाव प्राप्तधो ।

तहिं पि ताव दिट्ठिया, भणंति हा पमूठिया ।

पुरंवि^१ कावि दुक्खिया, हणंति दोवि कुक्खिया ।

खंति अंसु वाहुलं, जणाण दुःख-सकुलं ।

कुणंति चित्तु भाउलं, बरंति बेसु वाउलं ।

भुलंति जावि मूच्छए, पढंति भू-मएसए ।

मुणेवि तं नरेसरो, सुवासणि-द्वणीसरो :

धत्ता । करकंडइ पुच्छिउ कोवि नरु, एँह थारि वराई किं स्वइ ।

विसर्वती हियवई मुहु करइ, अप्पाणउ बिहलंघल मुअइ ॥

—वही पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ । संसारहो उवरि विरत्त-भाउ ।

वी वी असुहावउ मच्च-लोउ । दुहु कारण मणुरहँ अंग-भोउ ।

रयणावर-तुल्लउ जेत्यु दुक्खु । महुविदु-समाणउ भोय-सुक्खु ।

धत्ता । हा माणउ दुक्खइ तड्ड-तणु, बिरसु रसंतउ जहिं मरइ ।

भणु णिग्घिणु विसयासत्त-भणु, सो छैंडिवि को तहिं रइ करइ ॥

कम्मेश परिट्ठिउ जो उवरे । जम-रायए सोणिउ गिययपुरे ।

जो बालउ बालहि लावियउ । सो बिहिणा गियपुरि कालियउ ।

णव-जोव्वणि चहियउ जो पवर । जमु जाइ लएविणु सोजि नरु ।

जो बूठउ वाहि-सएहि कलिउ । जमदूयहिं सो पुणु परिमलिउ ।

बहलइएँ सहु हरि अतुलबलु । सो बिहिणा णीयउ करिवि छलु ।

छत्तखंड वसुन्धर जेहि जिया । चक्केसर^२ ते कालेण गिया ।

विज्जाहर किणर जे खयरा । बलवन्ता जम-मुहे पडिय सुरा ।

फणिणाहइ सरिसउ अमर-वइ । जमु लितउ कवणु^३ वि णउ मुअइ ।

तहीँ तब दिट्टिया । भनति "हा" प्रमुड्डिया ।

घुरंघि काउ दुःखिया । हनति दोउ कुक्षिया ।
रोवंति अशु-बाहुलं जनाइ दुःख सकुलं ।

करेई वित्त आकुलं । धरंति वेष बरउरं ।
घुरंति जा विमूढिया । पडंति भू-अवेसाए ।

मुनीय सो नरेश्वरो । सुवारुणी धनीश्वरो ।
घत्ता । करकंडइ पूछेँ कोइ नर, एहु नारी बराकी का रोषे ।

बिलपंती हियई दुहु करहिं, अप्पानउ विह्वलता मुंचे ॥

—वहीँ पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

सो मुनिय वचन राजाधिराव । संसारहें उपर निरक्त-भाव ।

‘धिक धिक असो’ हावउ मर्त्यलोक । दुख-कारण मनोरथ-अंग-भोग ।

रतनाकर-तुल्यउ यत्र दुःख । मधुविदु-सभाको भोग-सुख ।

घत्ता । हा मानव दुःखहें स्तब्ध-तन, विरस हसंतउ जहें मरे ।

भन निर्घृण विषयासक्त मन, सो छाडिय को तहें रति करे ॥

कमेंहिं परिट्ठिउ जो उबरे । यमराजेहिं सो लेउ निजय-मुरे ।

जो बाल्येहिं बालउ लालियऊ । सो विधिना निजपुरे चालियऊ ।

नवयौवन चरियउ जो प्रवरू । यम जाइ लिवावन सोउ नरू ।

जो बूढउ व्याधिशतेहिं कलिऊ । यमदूतहिं सो चुनि परिमर्दिऊ ।

बलभद्रहु सम हरि अतुल-बलू । सो विधिना लीयउ करिय छलू ।

द्वैसंड वसुन्धर जेउ जिया । चक्रेश्वर ते कालेहिं लिया ।

विष्णुधर किन्नर जे सचरा । बलवंता यम-मुखे पडेँउ मुरा ।

फणिनाथे सरिसउ अमर-पती । यम लेतउ कवन नू ना मुवई ।

धत्ता । णउ भोजिउ बंधणु परिहरइ, णउ छंदइ तवसिउ तवि-टियउ ।

धनवंतु ण छुट्टइ णवि णिहणु, जह काणणे जलणु समुट्टियउ ।
दइवेण विणिम्मिउ देहु णपि । लायणउ मणुवहं थिइ ण तपि ।

णव-जोवणु मणहरु जं चडेइ । देवहिं वि ण अणिउ कहिं पडेइ ।
जे अवर सरीरहिं गुण बसति । णवि आणहुं केण पहेण जति ।

ते कायहो जइगुण अचल होति । संसारहं विरहं ण मुणि करति ।
करि-कण्ण जेम थिर कहिं ण थाइ । ऐकवंतहं सिरि णिण्णासु जाइ ।

जह सुयउ करमलि थिउ गलेइ । तह पारि विरत्ती खणि चलेइ ।
मू-पयण-वयण-गइ कुडिल जाहं । को सरल करेवहं सककु ताहं ।

मेत्तलंती ण गणइ सयण इट्ट । सा दुज्जण-मेत्ति'व जल थिकिट्ट ।
धत्ता । णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चत्ते, वडरामभाव संपत्तउ ।

सो सुरहरमंडणु होइ णम, सुललिय-मणहर-गात्तउ ॥
संसार भमतहं कवणु सोक्खु । असुहावउ पावइ विविह दुक्ख ।

णरयालहं णाणा पारएहिं । चिरकियहिं णिहम्मइ वइएहिं ।
हिथएण'वि चित्तहुं सक्कियाई । तहिं भुत्तइ पवरइ दुक्कियाई ।

अवरम्परु जाइ विरुद्धएहि । तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहि ।
मुहंघण-खेयण-ताडणाई । पावीयहिं तेहिं तणु-काडणाई ।

मणुयत्तणे माणउ परिमलंतु । परिमिज्जइ गियमणे सत्तबलंतु ।
सुरलोए पवण्णउ णट्टबुद्धि । मणि भिज्जइ वेक्खवि परहो रिद्धि ।

णउणारि जेम रुवहं करेइ । तिम जीउ-कलेवर सई धरेइ ।
धत्ता । संसारहं उवरि णिहालणउ, किउ जेण णरेण कयायरेण ।

अणु काई ण लद्धउ तेण जइ, पवर-रयण रयणावरेण ॥
जीवहो सुसहाउ ण अत्थि कोवि । णरयम्मि पडंतउ धरइ जीवि ।

सुहि सज्जण-गंदण इट्ट-भाव । णवि जीवहो जंतहो ए सहाय ।

धत्ता । ना श्रोत्रिय ब्राह्मण परिहरई । ना छाडै तपसिउ तपे^१ थितऊ ।

धनवत न छुट्टइ ना निधनू, जिमि कानने^२ ज्वलत समुत्थितऊ ॥

दैवेन विनिमैउ देह जो^३उ । लावय्यउ मनुजहँ थिर न सों^४उ ।

नवयौवन मनहर जो चढेइ । देवहँउ न जाने^५उ कहँ पडेइ ।

जो अवर शरीरहिँ गुण बसति । ना जानहु केन पथेन जंति ।

सो कथह यदि गुण अचल होति । संसारह थिरति न मुनि करति ।

करि-कर्ण जेम थिर कहँ न थाइ^६ । पेखंतहँ श्री निर-नाश जाइ ।

जिमि सूतउ^७ करतले^८ ठिउ गलेइ । तिमि नारि-विरक्ती सणे^९ चलेइ ।

धूनयन-वदन-गति-कुटिल जाइ । को सरल करावन सक्क ताह ।

छोडंती न गनै स्वजन-इष्ट । सा दुजैन मैत्रि^{१०}व चल निकुष्ट ।

धत्ता । निज-भंखै जो अनुपेस बल, बैराग्य-भाव-संप्राप्तऊ ।

सो सुरधर-मंडन होइ नर, सुखलिय-मनहर-भावऊ ।

संसार भ्रमंतहँ कवन मुक्छ । असुहावउ पावै विविध-दुःख ।

नरकालय नाना नारकेहिँ । थिरकृतहिँ निहन्थे बैरएहिँ ।

हृदयेउ न चितन सक्कियाई । तहँ मोगै^{११} अवरई दुःखियाई ।

अपरापर जाति विरुद्धएहि । तिर्यञ्च-माँक उत्पन्नएहि ।

मुख-बंधन-छेदन-ताडनाई । पाचीमहिँ तहँ तन-फाडनाई ।

मनुजतने मानव परि-मलंत । परि-भंखै निजमने^{१२} खलबलंत ।

सुरलोके^{१३} प्रवर्णउ नष्ट-बुद्धि । मने^{१४} लोभ देखि पराइ अद्धि ।

बवनारि जेम रूपई करेइ । तिमि जीव कलेवर-शत धरेइ ।

धत्ता । संसारह उपर निहारनउ, किउ जो^{१५}उ नरेउ कृतावरही^{१६} ।

भन काहँ न लब्धउ सोइ यदी, प्रवर-रतन रतनाकरही^{१७} ।

जीवह सुखभाव न अहँ को^{१८}उ । नरक काहँ पडंत धरे जोउ ।

सुखि सज्जन नंदन इष्ट भाय । ना जीवहँ जाते हो^{१९}इ सहाय ।

गिय जणणि जणणु रोवंतयाई । जीवे सहुं साई थ पउ-गयाई ।

घणु ण चलइ येहहोँ एककुपाउ । एककलउ भुजइ धम्म पाउ ।

तणु जलणि जलंतइ परिवहेइ । एककलउ चहवस धरि चडेइ ।

जहिँ जयण-णिमेसु ण सुह हवेइ । एककलउ तहिँ बुहँ अणुहवेइ ।

अहि-णउल-सीह-वणयरहँ मज्जे । उणज्जइ एककुवि जिउ असज्जे ।

सुर-खेयर-किणर-मुहयगाम । तहिँ भुजइ एककुवि जियइ जाम ।

—वही पृ० ८२-८५

§ २६. जिनदत्त सूरि

काल—११०० (१०७५-११५४) ई०। देश—धवलक (धौतका) गुजरात। कुल—

१-जिनचंदना

पणमह पास-बीर-जिण भाविण । तुम्हि सखि जिव मुच्चहु पाविण ।

बर-बबहारि म लग्गा अच्छह । सणि-सणि भाउ गलंतउ पिच्छह ॥^१

—उदएस-रसायण^१

२-गुरु (जिनवल्लभ)-महिमा

नमिनि जिणेसर-वम्मह, तिहुयण-सामियह ।

पायकमलु ससिनिम्मलु, सिवगयगामियह ॥

करिमि जइद्विय गुणथुइ, सिरि जिणवस्सहह ।

जुग-पवरागम-भूरिहि, गुणगण-दुल्लहह ॥१॥

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अपमाणु पमाणइ, छहरिसण-तणइ ।

जाणइ जिव नियनामु, न तिण जिव कुवि घणइ ॥

निज जननि-जनक रोवंतयाहैं । जीवें सँग ताहु न पद-गयाहैं ।

धन न चलै गेहहैं एक पाव । एकलै भोगे धर्म-याप ।
तनु ज्वलने ज्वलतइ परि-गडेइ । एकलै वरवस धरि चडेइ ।

अहैं नयन-निमेष न सुख हवेइ । एकलै तहैं दुख अनुभवेइ ।
अहि-नकुल-सिंह-वनचरहैं भाँक । सप्पजै एकइ जिव अ-साभ ।

सुर-खेचर-किन्नर सुखद-ग्राम । तहैं भोगे एकै जिये जाम ।

—वही पृ० ८२-८५

§ २६. जिनदत्त सूरि

हुंडव-वर्जित, जैन साधु । कृतियाँ—चाचरि^१, उद्यत्सरसायण^२, कालस्वरूप-मुलक^३ ।

१—जिन-चंदना

प्रणमहु पाशवं-वीर-जिन भावे^४ हैं । तुम्ह सर्वजिव मोखहु पापे^५ हैं ।

धर-व्यवहार न लागे रहा । क्षण-क्षण आधु गलंतउ पेखा । ॥१॥

—उपदेश-रसायन

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमवि जिनेश्वर-धर्महैं, त्रिभुवन-स्वामियहा ।

पाद-कमल शशि-निर्मल, जिवगति-नामियहा ॥

करउँ यथा स्थिति गुण-धृति, श्री जिनवल्लभहा ।

दुग-प्रवर-नगम-सूरिह, गुण-गण दुर्लभहा ॥१॥

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अप्रमाण प्रमाणे, छैं दर्शन-तनई ।^१

जानै जिव निज नाम, न ॥२॥ जिव को^२इ हनई ॥

^१ जब लो

^२ Gaikwad's Oriental Series 1927, Vol.

XXXVII "प्राचीन-गुजरा-काव्य-संग्रह"

^३ तन=केर, का

पक्ष - परिचाइ - गहँद - बियारण - पंचमहु ।

तसु गुणवक्षणु करण, फु सककइ इक्कमुहु ॥२॥

जो बायरणु बियाणइ, सुहलकलण-निलउ ।

सदहु असदहु बियारइ, सुविथक्खण-तिलउ ॥

सुखंदिण बक्खाणइ, छंदु जु सुजइमउ ।

गुरु लहु सहि पडठानइ, नरहिउ विजयमउ ॥३॥

कवु अउवु जु निरअइ, नव-रस-भर-सहिउ ।

लक्षपसिद्धिहिं सुकइहिं, सायरु जो महिउ ॥

सुकइ माहुति पसंसहिं, जे तसु सुहगुछु ।

साहु न भणहि अयाणुय, मइ जियसुरगुछु ॥४॥

कासिपासु कइ आसि, जु लोइहिं वक्षिअइ ।

ताव जाव जिणबल्लह, कइ ना अमियइ ॥

अणु चित्तु परियाणहि, तपि विसुद्धनय ।

तेकि वित्तकइराय, भणिज्जहिं मुद्धनय ॥५॥

सुकइ विसेमिय वणु, जु अण्णइराजकइ ।

भुवि जिणबल्लह पुरउ, न पावइ कित्ति कइ ॥

अवरि अणेय विणेयहि, सुकइ-पसंसियहिं ।

तक्कज्जामयलुद्धिहिं, निच्चु नमंसयिहिं ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जिण कय नाणा चित्तई, चित्त हरंति लहु ।

तसु दंसणु विणु पुत्तिहिं, कउ लब्धइ दुसहु ।

सारई बहु शुद्ध-पुत्तइ, चित्तई जेण कय ।

तसु पयकमलु जि पणमहि, ते जण कय-सुकय ॥७॥

पर-परिवाद-गयंद-विदारण पंच-मुख ।

ताँसु गुण वर्णन करण, को सक्के एक-मुख ॥२॥

जो व्याकरण वि-जानै, शुभलक्षण-निलय ।

शब्द-अशब्द विचारे, सु-विचक्षण-तिलक ॥

मुच्छब्देन बखानै, छंद जो सुयति-मय ।

गुरु लघु लेई पढ़ैछानै, नर-हिय विजय-मय ॥३॥

काव्य अपूर्व जो विरचै, नव-रस-भर-सहितो ।

लब्ध-प्रसिद्धिहिँ सुकविहँ, सागर जो मथितो ॥

सुकवि माध'ति प्रशंसै, जे ताँसु गुम-गुरुहो ।

साधु न मनहि अजानय, मैँ जित-सुरगुर-हो ॥४॥

कानिदास कवि अहेँउ, जो लोकेहि वर्णियऊ ।

सो जितनो जिनवल्लभ-कवि ना अन्ययऊ ॥

आपु चित्त परि-जानै, सोउ विशुद्ध-नय ।

तोउ विश्व कविराय, भनिज्जै मूर्धनय ॥५॥

सुकवि-विशेषित-वचन, जो वाक्पतिराज कवी ।

सोँउ जिनवल्लभ समुँह, न पावै कीर्ति कवी ॥

अवर अनेकानेक...हिँ सुकवि प्रशंसियही ।

तत्काव्यामृतसूक्ष्मेहिँ, नित्य नमंसियही ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जो कुत-नाना-चित्रहँ, चित्त-हरति लघु^१ ।

ताँसु दर्शन वितु पुष्पहिँ, को लब्धै दुलभू ॥

सारहँ बहु-धुति-धुत्तै, चित्त^२ जेहिँ कुत ॥

ताँसु पदकमल जेँ प्रणमै, ते जन कुत-सुकुता ॥७॥

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जहि सावय तं बोखु न भवसहि, लिति नय ।

जहि पाण-हिय धरंति, न सावय-मुदतय ॥

जहि भोगणु न सयणु, न अणुविउ बइसणउ ।

सह पहरणि न पवेसु, न दुहुउ बुल्लणउ ॥२१॥

जहि न हासु भवि हुहु, न खिहु न रुसणउ ।

कित्ति निमित्तु न दिज्जइ, जहि वण अप्पणउ ॥

करहि जि बहु आसायण, जहि तिन मेलियहि ।

मिलिय ति-केलि करंति, समाणु महिसिय^१हि ॥२२॥

जहि संकति न गहुणु, न माहि न मंडलउ ।

जहें सावयसिरि दीसइ, कियउ न विटलउ ॥

णवणयार जण मिल्लिबि, जहि न बिभूसणउ ।

सावयजणिहि न कीरइ, जहि गिह-चित्तणउ ॥२३॥

जहि न अप्पु बसिज्जइ, पर बि न दूसियइ ।

जहि भग्गणु बसिज्जइ, बिगुणु उवेहियइ ॥

जहि किर बत्तु-वियारणि, कसु बि न बीहियइ ।

जहि जिणवयणुत्तिभु, न कहवि पयंपियइ ॥२४॥ . . .

इह अणुसोय पयट्टइ, संख न कुबि करइ ।

भवसायरिति पडंति, न इक्कुवि उत्तरइ ॥

जे पडिसोय पयट्टहि, अप्पवि जिय धरइ ।

अवसय साभिय हुंति ति, निव्वुइ पुरवरइ ॥२५॥

तसु पयपंकउ पुत्तिहि, पाविउ जण-अमर ।

सुद्ध नाण-महुषाणु, करंतउ हुइ अमर ॥

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जांसु थावक^१ सो बोल न भाखै^२, लिप्तन या ।

जांसु प्राण हित धरति, न थावक शुद्ध-नया ॥

जांसु भोजन न शयन, न अनुचित बहसनऊ ।

सँग प्रहरण^३ न प्रवेश, न दुष्टउ बोलनऊ ॥२१॥

जहँ न हास ना ह्रुहु, न खेल न रुसनऊ ।

कीर्ति-निमित्त न दीजै, जहँ धन आपनऊ ॥

करै^४ मि बहु-आस्वादन, जहँ तूण मेलियई^५ ।

मिलिया केलि करति, सहित महेलियही^६ ॥२२॥

जहिँ संक्रान्ति न ग्रहण, न मास न मंडलऊ ।

जहँ थावक-श्री दीसै, कियउ न विटलऊ^७ ॥

स्नानचार जम मेलवि^८, जहँ न विभूषणऊ ।

थावकजने^९ हिँ न करियै, जहँ गृह-चिन्तनऊ ॥२३॥ . . .

जहँ न आपु वर्णिज्जै, परउ न दूषियई ॥

जहँ सद्गुण वर्णिज्जै, वि-गुण उपेक्षियई ॥

जहँ पुनि वस्तु-विचारण^{१०}, कांसुउ न धी^{११} बियई ।

जहँ जिन-वचन-उत्तीर्ण, न कथा प्रजल्पियई ॥२७॥ . .

ऐहि अनुशोच प्रवृत्तह, संको न कोउ करई ।

भवसागरे^{१२} ति पडत, न एकउ उतरई ॥

जे प्रतिशोच प्रवृत्तहिँ, आपुउ जिय धरई ।

अवशिय स्वामी होति ते^{१३}, निर्वृतिपुर-वरई ॥३१॥ . .

तांसु पदपंकज पुष्पहि, पाये^{१४}उ जन-भ्रमर ।

शुद्ध-ज्ञान-मधुपान, करंतउ होई अमर ॥

^१ शिष्य

^२ छोड़ कर

^३ महिला, मेहरी

^४ विटलाहा (मस्तिष्क) = गवा, पतित

^५ छोड़ें

^६ निर्वाण-पुर०

सत्यु हंतु सो जाणइ, सत्यपसत्य सहि ।

कहि अणुवमु उवमिज्जइ, केण समाण सहि ॥४३॥

इय जुग-पवरह सूरिहि, सिरि जिणवल्लहह ।

नाय समय परमत्थह, बहुजण-दुल्लहह ॥

तसु गुण युइ बहुमाणिण, सिरि जिणदत्त-गुण ।

करइ सु निखम, पावइ, पढ जिणदत्तगुरु ॥४७॥

—चाचरि^१

३-वेश्या-निंदा

जोव्वणत्थ जा नच्चइ दारी । सा लग्गह सावयह वियारी ।

तिहि निमित्तु सावयसुय-फट्ठि^२ । जंतिहिं दिवसिहिं वम्मह फिट्ठिहिं ॥३॥

बहुय लोय रायंथ सपिच्छहि । जिण-मुह-पंकज विरला वंछहि ।

जणु जिणभवणि सुहृत्थ जु आयउ । भरइ सु तिक्ख-कडक्खिहिं घायउ ॥३४॥

४-कविका संदेश

(१) जात-पात मजयूत करो

बेट्टा-बेट्टी परिणाविज्जहिं । तेवि समाण धम्म-घरि दिज्जहिं ।

विसमधम्म-घरि जइ बीवाहइ । तो सम्मत्तु सु निच्छइ वाहइ ॥६३॥

इय जिणदत्तवएस-रसायणु । इह-परलोयइ सुक्खइ भायणु ।

कण्णजलिहिं पियंति जि भव्वइ । ते हवंति अजरामर सव्वइ ॥५०॥

—उवएसरसायणु

(२) धर्मोपदेश

विवक्कम संवच्छरि सय-वारह । ह्यइ पणहुउ सुह घरवारह ।

इय संसारि सहाविण संतिहि । वत्तहि सुम्मइ सुक्खु वसंतिहि ॥३॥

शास्त्रहूँते^१ सो जानै, शास्त्र प्रशस्त सही ।

किमि अनुपम उपमिज्जं, केन समान सही ॥४३॥

इति युग-प्रवरह सूरिहि, सिरि जिनवत्समहा ।

न्याय^२-समय-परमार्थह, बहुजन-दुर्लभहा ॥

ताँसु गुण-श्रुति बहुमाने^३, सिरि जिषवत्तगुरु ।

करं सो^४ निरुपम पावै, पद जिन-दत्त-गुरु ॥४७॥

—वाचरि

३-वैश्या-निंदा

यौवनार्थ जो नाचै दारी^१। सा लागै श्रावकहँ पियारी ।

तेहि निमित्त श्रावक श्रुत-फाडै^२। जाते दिवसे^३ धर्महिं फोडै ॥३३॥

बहुत लोग रागाँव सो^४ पेलहिं। जिन-मुख-पंकज विरला बाँछहिं ।

जन जिनभवने^५ श्रुभार्थ^६ जो आयउ । मरै सो^७ तीक्ष्ण-कटाक्षे^८ धायलु ॥३४॥

४-कविका संदेश

(१) जात-पाँत मज्झूत करो

बेटा-बेटी परनाचीजै^१। सोउ समानधर्म-धरे^२ दीजै ।

विषम-धर्म-धरे^३ यदि बीबाहै । तो सम्यक्त्व^४ सो^५ निश्चय बाहै ॥६३॥

इति जिनवत्तु-पदेश-रसायन । इह-परलोकह सुखह-भाजन ।

कर्णाजलिहिं पियति जे^६ भव्यहै । ते भवन्ति अजरामर सबै ॥६०॥

—उक्कएसरसायण

(२) धर्मोपदेश

विक्रम-संवत्सर शत-वारह । होई प्रवष्टउ सुख-घरवारह ।

इति संसारे^१ स्वभावे^२ शांतेहि^३। वसै^४ सुम्मति सुखु वसतेहि ॥३॥

^१ जात=जातु (पुत्र) महावीर

^२ गणिका, दारिका

^३ विवाहिजै

^४ एकधर्मी

^५ जैमीपन

^६ बहाना, फँकना

तह बि वत्त नबि पुच्छहि धम्मह । जिण गुरु भित्तहि कज्जिण दम्मह ।

फलु नबि पावहि माणुस-जम्मह । दूरे होति तिज्जि सिव-सम्मह ॥४॥

भोह-निह जणु सुत्तु न जगह । तिण उट्टिबि सिव-भग्नि न लगह ।

जह सुहत्थु कुबि गुरु जग्गावह । तुबि तव्वयणु तासु नबि भावह ॥५॥

परमत्थिण ते सुत्ताबि जगहि । सुगुरु-वयणि जे उट्ठे बि लगहि ।

राग-दोस-भोह 'बि जे गंजहि । सिद्धि-पुरुधि ति निच्छह भुंजहि ॥६॥

बहुय लोय लुंचियसिर दोसहि । पर रागदोसिहि सहु विलसहि ।

पढहि गुणहि सत्थइ वक्खाणहि । परि परमत्थु तित्थु सु न जाणहि ॥७॥

दुद्धु होइ गो-यन्किह बवलउ । पर पेज्जतइ अंतइ बहलउ ।

एक्खु सरीरि सुक्खु संपाडइ । अवर पियउ पुणु मंसु 'बि साडइ ॥८॥

ईसर धम्म-ममत्त जि अच्छिहि । पाउ करेवि ति कुणइहि गच्छहि ।

वम्मिय वम्मु करंति जि मरिसहि । ते सुद्ध सयल मणिच्छिउ लहिसहि ॥९॥

कज्जउ करह बुहारी दुद्धी । सोहइ गेहु करेइ समिद्धी ।

जह पुण सावि जुयजुय किज्जइ । ता किं कज्जा तीएँ सहिज्जइ ॥१०॥

इय जिगबत्तुवएसु जि निसुणहि । पढहि गुणहि परियाणवि जि कुणहि ।

ते निज्जाण-रमणि सहु विलसहि । बलिउ न संसारिण सहु मिलिसहि ॥११॥

काव्य-स्वरूप-कुलक^१

(३) दुर्लभ मालुष-जन्म

सद्धउ माणुस-जम्मु महारहु । अप्पा भवसमुदि गउ तारहु ।

अप्पु म अप्पहु रायहु रोसह । करहु निहाणु म सुव्वह दोसह ॥१॥

(४) गुरु सब कुछ

दुलहउ मणुय-जम्मु जो पत्तउ । सह लहु करहु तुम्हि सुनिरुत्तउ ।

सुह-गुरु-दंसण विणु सो सहलउ । होइ न कीवइ बहलउ बहलउ ॥३॥

तैहाँ बात ना पूछै^१ धर्महैं । जिन-गुरु मीलहिं कार्ये दामहैं ।

फल ना पावै^२ मानुष-जन्मह । दूरे होंति त्याग शिव-धर्महैं ॥४॥

मोह-निद्रा जनु सुत्तु न जागै । मो उट्टिउ शिव-मार्ग न लागै ।

यदि शुभार्थ कोइ गुरु जग्मावै । तोउ तट्टचन तासु ना भावै ॥५॥
परमार्थे ते सूतल जागै^३ । मुगुरु-वचने जे उठिया लागै ।

राग-द्वेष-मोहउ जे गजै^४ । सिद्धि-पुरंदरि ते^५ निश्चय भुजै ॥६॥
वृत्त नांभ लुचिन-धिर दीसै^६ । पर राग-द्वेषहिं सँग बिलसै^७ ।

पढ़ै^८ गुनै^९ आस्त्रहिं वस्त्रानै^{१०} । पर परमार्थ-तीर्थ सो न जानै ॥७॥ . . .
शुद्ध होइ गो-मंकुलउ धवलउ । पर पीवंत अंतर बहलउ ।

एक शरीर सुखसु सं-पातै । अवर प्रियउ पुनि मांसउ स्वादै ॥८॥
ईश्वर-धर्म प्रमस जे आछहिं^{११} । पाप करिय ते कुगतिहिं गच्छहिं^{१२} ।

धार्मिक धर्म करने जे^{१३} मर्पहिं^{१४} । ते सुख सकल मनीच्छित लभिहैं ॥९॥
कार्य करै (जो) बहारी^{१५} बुझी । सोहैं गेह करेइ समुझी ।

यदि पुनि सोउ युगयुग कीजे । ता का कार्ये तीय साधीजे ॥१०॥
इति जिनवत्त-उपदेश जे सुनही^{१६} । पढ़ै^{१७} गुनै^{१८} परि-ज्ञान जे^{१९} करही^{२०} ।

ते निर्वाण-रमणि-सँग बिलसहिं^{२१} । बलेउ न संसारे सँग मिसिसहिं^{२२} ॥११॥

—काव्यस्वरूपकुसुम

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लामेउ^{२३} मानुष-जन्म महारघु । आपे^{२४} भव-समुद्रते^{२५} तारहु ।

श्रापु न अर्पहु रागहैं रीषहैं । करहु निधान न सर्वहैं दोषहैं ॥१२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुर्लभ मानुष-जन्म जो पायउ । सह लघु करहु तुम्ह सु-निश्चतउ ।

शुभ-गुरु-दर्शन बिनु सो सहलउ । होइ न करते^{२६} बहलउ^{२७} बहलउ ॥१३॥

सुगुरु सु बुज्जइ सक्खल भासइ । पर-परिवामि-नियस जसु नासइ ।

सत्त्व जीव जिव अण्णउ रक्खइ । मुक्ख-मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥४॥

इह विसमी गुग्गिरिहिं समुट्ठिय । लोय-ग्गवाह-सरिय कु पइट्ठिय ।

जसु गुग्गपाउ नत्थि सो निज्जइ । तसु पवाहि पडियउ परिविस्सज्जइ ॥५॥

पर न मुणइ तयत्थु जो अच्छइ । लोय-ग्गवाहि पडिउ सुवि गच्छइ ।

अइ गीयत्थु कोवि तं वारइ । ता तं उट्ठिवि लउइइ मारइ ॥६॥

तिव तिव वम्म कहिंति सयाणा । जिव ते मरिवि हुंति सुर-राणा ।

चित्तासोय करंत ड्ढाहिय । जण तहिं कय हवंति नट्ठाहिय ॥७॥

—उवाएस-रसायण

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

(कलिकास-सर्वस) काल—१०८८-११७६^१, देश—धवकलपुर (गुजरात)
में जन्म, अनहिलवाड़ा पाटन (गुजरात) में साहित्यिक कार्य । कुल—भोह

१-सामन्त-समाज

(१) राज-प्रशंसा

खीर-समुद्रिण लमण-जलहि, कुवलय-कुमुयहि ।

कालिंदी सुर-सिधु अलिण, महु-महणु हरिण ॥

^१ सोलंकी (चालुक्य) अनहिलवाड़ा (गुजरात) के राजा कर्ण (१०७४-६१),
जयसिंह सिद्ध-राज (१०६३-११४२), कुमारपाल (११४२-७३), अजयपाल
(११७२-७४), सूलराज द्वितीय (११७६-७८) और भीमदेव भोला (११७८-
१२२४) के समकालीन । कुमारपाल के गुह ।

सु-गुरु सो उच्चै सच्चै भाषै । पर-परिवाद-निकर जसु नाशै ।

सर्व जीव जिव आपउ राखै । मुख्यमार्ग पूछियल जो आखै ॥४॥
इहँ विषमी गुरु गिरहिँ सम्-उट्टिय । लोक-प्रवाह-सरित को पइट्टिय ।

जोसु गुरु-पाद नाहि अवणिज्जै । तासु प्रवाहे पडिय परि-सिचै ॥५॥
पर न मॉनै तदर्थ जो अछ्छै । लोक-प्रवाह पडिय सोउ गच्छै ।

यदि नेयार्थ कोउ तेहिँ करै । सो तेहिँ उट्टिय लगुडहिँ मारै ॥६॥
तिमि'तिमि धर्म कहंति समाना । जिमि ते मरिय होहि सुर-राना ।

चित्ताशोक करंता पाइय^१ । जव तहँ कृत भवन्ति नष्टाहित ॥७॥

—उपदेश-रसायन

५ : चारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

वणिक, जैनसाधु-आचार्य । अपभ्रंश-कृतियरै—प्राकृतव्याकरण^१, छन्दोनुशासन^२,
देशीनाममाला (कोश)

१-सामन्त-समाज^३

(१) राज-प्रशंसा

कीरसमुद्रेहिँ लवण-जलधि, कुबलय-कुमुदहिँ ।

कालिंदी सुर-सिंधु-अलेहिँ, मधु-मथन हरिन ॥

^१ ठहरा

^२ डाक्टर पी. एल्. वैद्य द्वारा संपादित, मोतीलाल-नारायणी

(पूना) द्वारा प्रकाशित १९२५ । अपभ्रंश के सभी उद्धरण हेमचंद्रके रचे नहीं हैं

^३ शेषकरण मूलचंद्र (बंबई) द्वारा प्रकाशित, १९१२

^४ सभी उद्धरण हेमचंद्र की रचना नहीं हैं । ये पद्य हेमचंद्र-संगृहीत हैं,
शायद कोई उनके अपने रचित भी हों

कइसासिण सरिसउ हू किरि, सो अंजण-गिरि ।

इह तुह जस-सिरि धवलियो, पतु किं पंडर नहुरि ॥१२॥

जे तुह पिच्छहि वयण-कमलु, ससहर-मंडल-निम्भलु ।

जे विहु पालहिं भिच्च-कम्मु, थुणहिं जि निरवमु विवकमु ॥

जे विहु सासण घरहिं, पायकमलु जे पणमहि ।

ता हंत लच्छी-विमुहु, पतु-जस-धवलिय दिसि-मुहु ॥१३॥

लषकरडा-खल-चउ-गज्जउ, चिर जुज्जमणु ।

उन्नामउ सिर-कमरु म लज्जयो, थक्क महम्भर तुहु कटुहिं ।

अशुभ ति-हुअणि किति-धवल विसाओ तुहु वट्टइ ॥१४॥

पतु ! तुहु बेरि अरणि गय, निच्छु'वि निवसहिं जिंथ ससय ।

घण-कटय-दुस्सचरणि, तहिं भंजडइ करीर-वणि ॥१५॥

जइ जाहि मुर-सरिअ जइ गिरि-निज्जकर सेवहि, जइ पइसहि काणण-तर-संडय ।

रिउ-निवतुवि नवि छुट्टहिं पतु ! तुज्ज पयावहु, कालहु अइदीहि-हर-भुअ-दंडय ॥१६॥

—छन्दोनुशासन*

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जो मारिआ, बहिणि ! महारा कंतु ।

लज्जेज्जंतु वयंसियहु, जइ भग्गा अर ऐन्त ॥३५१॥

जहिं कप्पिज्जइ सरिण सर, छिज्जइ खगिण खगु ।

तहिं तेहुइ भड-घड-निवहि, कंतु पयासइ मग्गु ॥३५२॥

कंतु महारउ हलि सहिएं ! निच्छहैं रुसइ जासु ।

अत्थिहिं सत्थिहिं हत्थिहिं वि, ठाउ'वि केडइ तासु ॥३५३॥

अम्हे थोवा रिउ बहुअ, फायर एव भणंति ।

मुद्धि निहालहि गयण-यलु, कइ जण जोण्ह करंति ॥३५४॥

खग-विताहिउ जहिं सहहु, पिय ! तहिं देसहिं जाहुं ।

रण-दुग्गिबल्ले भग्गाइ, विणु जुज्जमे'न वलाहुं ॥३५५॥

कैलाश^१हि मद्भयउडुफुर, सो अंजन-गिरि ।

इह तव यश-श्री धवलियउ, प्रभु का पोंडुरु नभ ॥१२॥

जो मव पेलै बदन-कमल, यशधर-मंडल-निर्मल ।

जो विधि पालै^२ भूत्थकर्म, धुवै^३ जे^४ निरुपम विक्रम ॥

जं विध दासन धरै, पाद-कमल जे प्रणमै ।

नोहंत ! लक्ष्मी-विमुख, प्रभु-यश-धवलिय दिशिमुख ॥१३॥

उत्करटा^५-आखल चउ गजैउ, चिर-युद्धमना ।

उधामित-शिर-कायर ना लज्जउ, थाक मतिभर तव निकटे ।

अन्योन्य त्रिभुवने^६ कीर्ति-धवल, विषादो तव वाटै ॥१४॥

प्रभु तव बैरि अरप्य-गज, नित्यउ निवसे जिमि सशौक ।

घन-कांठक-दुःसंचरणे^७, तहँ भंबई करीर-वने^८ ! ॥१५॥

यदि आवे^९ सुर-सरित यदि गिरि-निभर मेवै^{१०}हिं, यदि पइसे^{११} कानन-तर-खंडे^{१२} ।

रिपु-नृप तउ नहि छूटै^{१३} प्रभु ! तुम्ह प्रतापहँ, कालह अति-दीर्घ-हर-भुज-दंडे^{१४} ॥१५॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३७, ३८, ४१, ४५)

(२) वीर-रस

भल्या दृष्टा जो^१ मारिया, वहिनि ! हमारा कंत ।

लज्जिज्जेहु वयस्पयहिं, यदि भागा धर ऐन्त^२ ॥३३१॥

जहँ काटिज्जे^३ थरहिं थर, छिद्यै खज्जहिं खज्ज ।

तहँ तेही भट-घट-निवहे^४, कंत प्रकाशै मग ॥३३७॥

कन्त हमारो रे सखिय, निदचै कसै जासु ।

अस्वहिं गस्वहिं हाथियहिं, ठावहिं फोडै तासु ॥३३८॥

हम है^५ थोडे रिपु बहुत, कायर एस मनति ।

मूढ निहारै^६ गगन-तल, कवि जन जोन्ह^७ करति ॥३३९॥

खज्ज बेसाहिन्न जहँ लहउ, प्रिय ! तहँ देशहिं जाहु ।

रण-दुर्भिक्षे^८ भागई, विन् युद्धेहिं बलाहु^९ ॥३४०॥

अम्भउ-वंचित बे पयहँ, पेम्भु निअत्तइ जाँइ ।

सब्बासण-रिउ-संभवहों, कइ परिअत्ता ताँव ॥

हिअइ सुहुक्कइ गोरही, गयणि घुहुक्कइ मेहु ।

बासा-रत्ति पवासुअहँ, विसमा संकडु एहु ॥

अम्मि ! पओहर वज्ज मा, निष्पु जे^१ संमुह भंति ।

महु कंतहों समरंगणइ, गय-वड भज्जिउ जंति ॥

पुत्ते^२ जाएँ कवण गुण, अवगुण कवण सुएण ।

जा वप्पी की भूँहुडी,^३ चंपिज्जइ अवरेण ॥

तं तेत्तिउ अलु सायरहों, सो तेवहु वित्थान ।

तिसहे^४ निवारण पलुवि विवि, पर घट्टुअइ असाण ॥३६५॥

महु कन्तहों गुट्ट-ट्टिअहों, कउ भुपडा बलंति ।

अह रिउ-रुहारे^५ उल्हवह, अह अप्पणे^६ न भंति ॥४१६॥

अइ भग्गा पारक्कडा, तो सहि ! मज्झु पिषेण ।

अह भग्गा अन्हहे^७ तणा, तो ते^८ मारिअ देण ॥४१७॥

सामि-पसाउ सलज्जु पिउ, सीमा-अंविहिं वासु ।

पेक्खवि बाहु-बलुक्कडा, घण मेल्सइ नीसासु ॥४३०॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-५२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

कर-हय-धनहर-गलिअ-खोल-मणोहर-हारय ।

गंडत्थस - लुलिअ - महल-जडिल - कुंतल - भारय ।

अणवरय-बाहुणि-वड-पसुण सोण-विलोअण ।

तुह दुअ नर-वड-तिलय संपय वेरि बहु-मण ॥६॥

जेत्थु गज्जहिं मत्त-करि-णिवह, रंखोलहिं जत्थु हय ।

जेत्थु भिउडि-भीसण भमंति भट,

तहिं तेहइ रणि वरइ विजय-लच्छि, पइ पर समरोब्बउ ॥२६॥

जसु भुअ-बल् हेल्खरिअ-वरणि,

निसुणिवि वणयर - गण - उवगीउ - सुबिक्कसु ।

'निगन-बंचित दो पदै', प्रेम निवर्त्त' जब्ब ।

सर्वासन रिपु संभवहु, कर परिवर्त्त' तब्ब ॥

हृदय खुडुक्के गोरही, गगन घुडुक्के मेह ।

वर्षा-रात्रि प्रवासुकहँ, विषमा संकट एह ॥

अम्म ! पयोधर बख ना, नित्य जे संमुख थंति ।

मम कंतह समरांगणे, गज-घट भाजे'उ जांति ॥

पुत्रे जाये कवन गुण, अवगुण कवन मुएहिं ।

जो वापेकी भूमिड़ी, चाँपिज्ज अपरेहिं ॥

सो तेत्तच जल सागरहँ, सो तेवड' विस्तार ।

तृषह निवारण चिलुव ना, पर घँटनो असार ॥३६५॥

मम कंतह गोष्ठ-स्थितह, के'त भो'पडा ज्वलंति ।

चहे' रिपु-रधिरे' बूमवै, चहे' आपने न भ्रान्ति ॥४१६॥

यदि भागा परकेरआ, तो सखि ! मोर प्रियेहिं ।

औ भागा हमकेरका, तो ते' मारिय तेहि ॥४१७॥

स्वामि-प्रसाद सलज्ज प्रिय, सीमा-संधिहिं बास ।

पेक्षिय बाहु-बलककुडा, धनि मेलै निश्वास ॥४३०॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-२, १५६, १५८, १६०, १६४, १७१)

करहत-स्तन-धर गलिय लोस मनोहर हारय ।

गंडस्थले लुलित मङ्गल-जटिल-कुंतल भारय ॥

अनवरत-बाहनि-वट - प्रसून शोण - विलोचन ।

तव हृअ नरपति-तिलक संप्रति वैरि-बधू-जन ॥६॥

यत्र गर्जे' मत्त-करि-निवह, (औ) कूदे' यत्र हय ।

यत्र भृकुटि-भीषण भ्रमंति भट ।

तहँ तेही रणे' करै विजय-लक्ष्मि तै' पर-समरोद्भव ॥२६॥

जाँसु भुजबले हेली उदरेउ धरणि,

सुनिआ वनचर-गण-उपगीत-सुविक्रम ।

अञ्जलि हरिसिद्ध नव-दम्भकुर-दभिण,

पयडहिँ कुल-महिहर पुलकगमु ॥४४॥

—छन्दोनुशासन^१

(३) कु-नारी

जासु अंगहिँ अणु नसा-जालू-असु पिंगल-नयण-जुओ ।

असु दंत परिरत्न-विभ्रदुभय,

न अरिञ्जइ दुह-करिणी मतकरिणि जिवँ घरिणि दुभय ॥२७॥

गाँवि पट्टणि हट्टि अउहट्टि, राजलि देउलि पुरि अँ दीसइ ।

सखहु-अंगिअ विरहिद-जालएणै, मं सा एककवि कय-बहु-रुद-कलिअ ॥३०॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३६ख)

(४) शृंगार-रस

विपिअ-आरउ जइवि पिउ, तोवि तँ आणहि अज्जु ।

अगिण दइढा जइवि घर, तो ते^१ अग्गि कज्जु ॥३४३॥

जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहँ, णिहँ सामलि सिक्खेइ ।

तिँव तिँव दम्महु निअय-सर, खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥३४४॥

तुच्छ-मज्झहँ तुच्छ-जम्पिरहँ,

तुच्छ-च्छ-रोमावलिहँ तुच्छ-राय-तुच्छयर-हासहँ ।

पिय-वयणु अलहँतिअहँ, तुच्छकाय-यम्मह-निवासहँ ।

असु अ तुच्छउँ तहँ अणहँ, तं अक्खणउँ न जाइ ।

कटारि अणतरु सुद्धहँ, जे मणु विच्चि ण माइ ॥३५०॥

फोडँति जे हियडउँ अप्पणउँ, ताहँ पराई कवण अण ।

रक्खेज्जहु लोअहँ अप्पणा, बालहँ जाया विसम-अण ॥३५०॥

^१ पृ० ३५ख, ३६ख, ४५क

आजउ हविष्य नव-वभकिरके मिस,

प्रकटै कुल-महिषर पुलकोद्गम ॥४४॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३५, ३६, ४५)

(३) कु-नारी

जसु अंगहिं वन नसा-जाल, जसु पिगल-नयन-भुग ।

जसु दंत प्रविरल-विकटोन्नत,

न धरीजै दुख-करिणि भल-करिणि इव धरिणि दुर्नय ॥२७॥

गांव पाटन हाट चौहट, रावल देवल पुर जो दीसै ।

सुंदरांगी विरहेंद्रजालकेहिं, तेहिं सा एकउ कृत-बहुदुष-कलिता ॥३०॥

—वही (पृ० ३६)

(४) शृंगार-रस

विप्रियकारक यदपि पिउ, तउ तेहिं आनहु आज ।

आगिहिं डाहा यदपि घर, तउ तेहिं आगीं काज ॥३४३॥

जिमि जिमि बंकिम लोचनहैं, बहु-साँवारि सीसाम ।

तिमि तिमि मन्मथ विजयशर, खर-पाथर सीसाम ॥३४४॥

तुच्छ मध्ये तुच्छ जल्पने,

तुच्छ-अच्छ रोमावलिहैं, तुच्छ-राग तुच्छतर हासै,

प्रियवचन अलभतियहैं, तुच्छकाथ मन्मथ निवसहैं ।

अन्य जो तुच्छउ तेहिं घनिहि, मो आपनउ न जाइ ।

कटरि शनंतर मुर्घडहिं, जो मन-बीच न माइ ॥३५०॥

फोडहिं जे हियडा आपनउ, ताँह पराई कवन धृण ।

राखीजहु लोगो ! आपना बान्ता जाया विषम धन ॥३५०॥

एकहिँ भनिखहिँ सावणु अग्रहिँ भटवउ,

माहउ महिअल-सत्यरि गण्ड-त्थले^१ सरउ ।

अंगिहिँ गिम्ह सुहृच्छी-तिल-वणि भगसिर,

तहे^२ मुदहे^३ मुह-पंकइ आवासिउ सिसिर ।

हिअठा फुट्टि तडति करि, काल-असेवे^४ काइ ।

देखउ हय-बिहि कहिँ ठवइ, पइ विण दुख-सयाइ ॥३५७॥

जइ न सु आवइ दूइ ! घर, काइ अहो-मुहु तुज्ज ।

वयणु जु खंडइ तउ सहिएँ, सो पिउ होइ न मज्झु ॥

अमरु म रण-भुणि रणइइ, सा दिसि जोइ म रोइ ।

सा मालइ देसंतरिअ, जसु तुहुँ मरहि विओइ ॥३५८॥

मुह-कवरि^५-बन्ध तहे^६ सोइ घरहिँ, नं मल्ल-जुज्ज ससि-राहु करहिँ ।

तहे^७ सहहिँ कूरल भमर-उल-तुलिअ, नं तिमिर-डिभ खेल्संति मिलिअ ॥३५९॥

वणीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ कअहि हयास ।

तुह जलि महु पुण वल्लइइ, विहुँ^८वि न पूरिअ घास ॥

वणीहा कइ वोँल्लिण, निगिषण वार-इ-वार ।

सायरि भरिअइ विमल-जलि, लहहि न एकइ धार ॥३६०॥

भमरा ! एत्थुवि निबडइ, केँवि दिथहवा विलंबु ।

धण-पत्तलु छाया-बहुलु, फुल्लइ जाम कयंबु ॥३६१॥

केम समप्यउ दुट्ठु दिण, किध रयणी छुट्टु होइ ।

नव-बहु-दंसण-लालसउ, वहइ भणोरह सोइ ।

ओ गोरी-मुह-णिज्जिअउ, वहलि लुक्क मियंकु ।

अश्रु^९वि जो परिहविम-तणु, किह ठिउ सिरि-आणंद ॥

निरुपम-रसु पिएँ पिअवि जणु, सेसहोँ दिण्णी मुह ।

भण सहि निहुअउ तेँव मइँ, जइ पिउ दिट्ठु सदोसु ॥३६२॥

एकहिं श्रीखें सावन, अन्यहिं भादों,

माधव महिधल-साथरे^१ गंडस्थले^२ शरदों ।

अंगहिं श्रीष्म शुभाक्षी तिल-वने^३ मार्गसिरू,

तेहि मुग्धहें मुख-पंकजे आवासिउ शिशिरू ।

हियड़ा फूट तडक्क करि, कालक्षेपे काई ।

देखउ हृत-विधि कहें यपै, तैं विनु दुःख शताई ॥३५॥

यदि न सों आवैं हृति ! घर, काई अधोमुख तोर ।

वधन न खंडै तव सखी, सो पिउ होइ न मोर ॥

अमर ! न स्तम्भुन रणरणै, सो दिशि जोम न रोउ ।

सा मालति देशांतरिय, जसु तुहु मरै ब्रियोग ॥३६॥

मुख कबरि-बन्ध सहैं सोह घरहिं । जनु मल्ल-भुद्ध शशि-राहु करहिं ।

तहि सोभै कुरल^४-भमर-कुल तुलिय । जनु तिमिर डिभ खेलति मिलिय ॥३७॥

पप्पीहा पिउ-पिउ भनवि केतिक रोखैं हताश ।

तव जले^५ मम पुनि बल्लभे^६, दोहैं न पूरिय आश ॥

पप्पीह का बोलिये^७इ, निर्घृण वारंवार ।

सागरे^८ भरियइ विमल जल, लहैं न एकहु धार ॥३८॥

अमरा ! ईहै लिपटिया, किछु दीवसे^९ बिलंब ।

धनपत्ता छाया-बहुल, फूल जवळ कदंब ॥३९॥

केमि समपंड दुष्ट दिन, किमि रजनी यदि होइ ।

नव - बधु - दर्शन - लालसउ, वहै मनोरथ सोइ ॥

श्री गोरी-मुख-निजितउ, बादल लुक्कु मृगांक ।

अन्यउ जो परिभविज तनु, किमि ठिउ श्री आनंद ॥

निरुपम-रस पिउ पियवि जनु, शेषहों दीनी मुद्र ।

भन सखि ! निभूतउ तिमि मई, यदि पिउ दीस सदोस ॥४०॥

अधे" ते दीहर-सोअण, अशु ते भुअ-जुअलु ।

अशु मु घण-थण-हारु ते", अशु जि मुह-कमलु ॥

अशु जि केस-कलानु, सुअशु जु पाउ विहि ।

जेण गिअविणि घडिअ स, गुण-लायण-णिहि ॥

एसी पिउ लसेउ हउ, हट्ठी महँ अणुणेइ ।

पणिँव एइ मणोरहई, दुअकर दइउ करेइ ॥४१४॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-१४७, १४८, १४९, १५०, १६१-६२)

गयणुप्परि कि न चइहिं, कि नरि दिक्खरहिं दिसिहि वसु,

भुवण-सय-संतावु हरहि, कि न किरवि सुहारसु ।

अंधयारु कि न दलहिं, पयडि उज्जोँउ, गहिउल्लभोँ,

कि न धरिज्जहिं देवि सिरहोँ, सई हरि सोहिल्लभोँ ।

कि ॥ तणउ होहि रयणारहु, होहि कि न सिरि-भायरु ।

तुवि चंद निअवि मुहु गोरिअहि, कुवि न करइ तुह आयरु ॥५॥

परहुअ-पंचम-सवण-सभय मअउँ सो किर,

ति भणि मणइ न किपि मुअ-कलहंस-गिर ।

चंडु न दिक्खण सक्कइ जं सा ससि-नयणि,

दप्पणि पमूहु न पलोअइ ति भणि मय-नयणि ।

वइरिउ मणि मअवि कुसुम-सर, खणि खणि सा बहु उत्तसइ ।

अज्जरिउ रुव-निहि-कुसुम-सर, तुह दंसणु जं अहिलसइ ॥६॥

जइ अज्जलक्कहिं नयण दीह-नयणि अहि-खणु,

केअइ-कुसुम-दलमि भसवु बिलसइ त जणु ।

जइ तीए मुहि हावि मंदु हासउ चइइ.

ता जणु हीरय-पउमराय-संचओँ भइइ ।

जइ तीएँ महुअ-मिउ-भासिणिहि, दयण-भुफ निसुनिज्जइ ।

तावह करेप्पि जणु अमय-रसु, कण्ण-पण्ण-मुडि पिज्जइ ॥७॥

सवण-निहिअ-हीरय-हंसत-कुंडल-जुअल,

थूलासल-मुत्तावलि-मंडिअ-थण-कमल ।

अन्य सों दीरघ-लोचन, अन्य सों भुज-युगल ।

अन्य सों घन-घनहार त, अन्यउ मुख-कमल ॥

अन्यउ केश-कलाप सों, अन्य जों पाव विधि ।

जैहिं नितबिनि गडिय सों, गुण-लावण्य-निधि ॥

ऐसी पीउ छबै हउ, स्ठी मोंहि अनुनेइ ।

प्राप् हव एहि मनोरथहिं, दुष्कर वैव करेइ ॥४१४॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-५२, १५४, १५७, १५८, १६१, १६२)

गगनोपरि कि न चढै कि नरे बीखरै दिशहिं वस ।

भुवनत्रय संताप हरै, कि न किरवि सुधारस ।

मंधकार कि न दलै, प्रकटि उज्जोत ग्रहियुल्लस ।

की न धरिज्जै देवि-सिरहैं स्वयं हरिं सोहिल्लस ।

कि न तनय होहि रतनाकरइ, होहि चाहैं श्रीभ्रातर ।

तउ चंद्र देखि मुख गोरियहि, कौउ न करै तव आदर ॥५॥

परभूत-पंचम श्रवण सभय मानउ सों फुर ।

तो भनि मनै न किछुअ, मुख कलहंस-गिरि ।

चंद्र न देखन सक्कै जो सा शशिवदनि ।

धरं भुंह न प्रलोकै कि मने भृगनयनि ।

वैरिउ मनै मानिय कूसुम-शर, क्षण-क्षण सा बहु उत्तरसै ।

आश्चर्य रूपनिधि कूसुम-शर, तव दर्शन जो अभिलषै ॥६॥

यदि आ-भलकै नयन बीधनयनि अभि-क्षण,

केतकि-कूसुमदलोहिं अयर विलसै तो जनु ।

यदि तेही मुखे भावै मंद हासउ चढई,

तो जनु हीरक-पदुमराग-संचय भढई ।

यदि तेहि मधुर मुकु भाषिणिहि वचन-गुंफ नि-सुनौजै ।

तो वध करीय जनु अमृत-रस कर्ण-पुटे पीजै ॥७॥

श्रवण-निहित-हीरक-हंसत कुंडल-युगल ।

स्थूलामल-मुक्तावलि-मंडित-यनकमल ।

सेम्र-सम्र-मंगुरण बहल-सिरिहंड-रसु-ज्जल,

बहु-महुल्ल-विश्रुल्ल-फुल्ल-फुल्लाविश्र-कुंतल ।

तो पयइ घाव दंसण-जणिय-खल-यण-उर-भर-भारिअ,

अहिसरइ चंद-सुंदर निसिहिं, पई पिअयम-अहिसारिअ ॥११॥

जइ तुह मुह करयलु उ मोइवि । चल्लिअ चीरचलु अज्जोइवि ।

माणिणि ! सुविपसाओँ करिसुम्मउ । पईपिइ उतावलिअ म गम्मउ ।

जइ कि वइवि संवह-मय-जुयलु, इह विहि वसिण निहइइ ।

ता तुज्ज मज्जु खीणतु सरउ, कि न समोअरि ! तुइइ ॥१३॥

गोवी-अण-दिज्जंत-रासय निसुणंतहं,

दासा-रत्ति पहुज्जवइ पइअहं पवसंतहं ।

निअ-वल्लइ तिंवि किंइइ हिअयंतरि निवडिअ,

खिंवि अजइ न बहंति चलग नावइ निअहिअ ॥३॥

महल्लु दलइ जवापसुण दंत-कुंद,

पाणि-चरण-नयण-वयण विशसि-आरविइ ।

कुसुम पर पच्चक्खुवि सुंदरि ! तुज्ज देहु,

तुह तनु-मज्ज-देसु बहसि विचरीउ एहु ॥५॥

हंसि सहरओँ गइ-बिलासु पडिहासइ रित्तओँ,

कोइल-रमणिइ तुहवि कंठु कुंठत्तणु पत्तओँ ।

विरहय कंकेलिइ दोहल संपइ पूरतिअ,

जं किर कुवलय-वयण एह हिंडइ गायतिअ ॥८॥

भू-वल्लि-चावयं मणोहवस्स ससितुल्लं वयणं,

अंगं चामीअरप्पहं अहिणव-कमल-दल-नयणं ।

तीए हीरावलिंवि दंतपंति विवुसं अहरं,

पेच्छंताणं पुणो पुणो, काण न हवइ मणं विट्ठरं ॥११॥

निच्छिउ करिनि चंदु दोणि खंड । तहि निम्भिय मय-नयणाइ गंड ।

वर-कुसुमंडेविणूँ गंध-वंगु । कोमलु तह विरइओँ एहु अंगु ॥१४॥

स्वेतांशुक-प्रावरण-बहुल, श्रीखंड-रसोज्ज्वल ।

बहुप्रफुल्ल विकचिल्ल-फूलन फुल्लाविध कुंतल ।

तो प्रकट थाइ दर्शन-जनित खल-जन उर-भर-भारिया ।

अभिसरै चंद्र-सुंदर निशिहिं, तै प्रियतम अभिसारिया ॥११॥

यदि तुहें भुख-करतल उ मोडवि । चलिय चीराचले आ-झोडवि ।

मानिनि ! तव प्रसाद करि सुनऊ । तै प्रिय उतावलिय न आवउ ।

यदि कि पतिउ संवह पदयुगल, इहें विधि-वशेहि बाटई ।

तो तव मध्य क्षीणतउ खरउ, कि न क्षामोदरि ! टूटई ॥१३॥

गोपी-जन दीजंत राशक नि-सुनंतहैं ।

बासर-राशिं पहुँचै पथिकहैं प्रवसंतहैं ।

निज-बल्लभ तिमि किमिवहि हृदयंतरे निबडिय ।

जिमि जनह न बहंसि चरण नावै निगडिय ॥३॥

अधरोष्ठ दलं जवाप्रसून दंत कुंद,

पाणि-चरण-नयन-वदन विकसित-अरविद ।

कुसुम पर प्रत्यक्षउ सुंदरि ! तव देह,

तव तनु-मध्यदेश बहुह विपरीत एह ॥५॥

हंसि तुहारउ गति-विलासे प्रतिभासै रिक्तउ,

कोकिल-रमणिहि तोर कंठे कुंठत्वहिं प्राप्तउ ।

विरहइ कंकली दोहल संप्रति पूरतिअ,

जो पुनि कुवलय-नयने ! एह हिंडै गायतिअ ॥८॥

भूवल्लि-चापक मनोभवहैं शशि-सुत्यव्वदनं,

अंगे जामीकर-प्रभं अभिनय-कमलदल-नयनं ।

ताही हीरावली'व दंतपंक्ति विद्रुम अधरं ।

पेखतेहिं पुनी पुनि, काह न होई मन विधुरं ॥११॥

निश्चय करवि चंद दोइ खंड । तहि निर्मित मदनयनई गंड ।

वरकुसुम लेपियउ गंध चंग । कोमल तिमि विरचिय एहु अंग ॥१४॥

कृमुञ्ज-कमलहैं एकक उर्यति भजलेह तुवि,

कमल-वणु कृमुञ्ज-संहु निञ्जुवि विभ्रासह ।

स-च्छन्द-विभारिणिअ चंद-जोण्ह किं भस-बालिआ ॥१६॥

भणहह तुह मुह-सरहह, रयणीअर-विन्ममु धरह ।

कामिणि हास-विलासु'वि, जोण्ह-पसरह अणुहरह ॥४४॥

कवणु सु धमउ जिण विणु, कामिणि कंकण हत्थओ विभ्रसहिं ।

अनु कि ऐवइ ससि-मुहि, हिउइ उममिहहिं कर-कमलहिं ॥५१॥

अह गंगा-अलि धवलि, कालइ जउणा-जलि जइ खित्तअउ ।

राय-हंसि नहु वह न तुद्ध, सुज्झत्तणु तुवि तेत्तउ ॥१०७॥

धयणु सरोजु नयण कुवलम-दल, हासु नव-कुल्लिअ भल्लि ।

कर-पाय असोअ-पल्लव-च्छाय, सहजि कुसुमाउह भल्लि ॥१०८॥

तुहें उज्जाणि म वच्चसु जइविहु, विलसइ मयणूसवु पवलु ।

गह-नपणिहिं लज्जीहइ तुह हंसीउलु सहि तह हरिण-उलु ॥१०९॥

पिउ आइउ निवडिउ पइहिं, सपणय-वयणिहिं, अणुणिनि माणु सुधाविआ ।

इअ सिविअयभरि आलिगिमि जाँवहिं ताँवहिं सहि ! हय कुक्कुडि रडिआ ॥२७॥

—छन्दोबुधसूत्र (पृ० ३४क ख, ३६क, ४-क ख, ४२क, ४३ ख, ४४ख)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) फावसं

रेहइ अरुण-कंति धरणी-अलि इंदगोवया^१,

पाउस-सिरि नाइ पय जावय-विंदु लगया ।

एहवि विज्जु-लेह कलकंतिअ वहल-कंतिआ,

लविसज्जइ जायखव-निम्मिअव्व कंठिआ ॥७॥

मत्तंबुवाह धरसंतिण पइ समहिओ,

आयण्णसु संपय महिअलि जं धिरइओ ।

कुमुद-कमलह एक उत्पत्ति भुक्नु तब,

कमल-वन कुमुद-बंठ नित्यहिं विकासै ।

स्वच्छंद-विहारिणिय चंद्र-ज्योत्स्ना कि मत्त-आलिका ॥१६॥

मनहर तब मुख-सरसह, रजनीकर-विभ्रम धरइ ।

कामिनि ! हास-विलासज, ज्योत्स्ना-असरह अनुहरइ ॥१७॥

कवन सों धम्यज जिन विनु, कामिनि कंकण हस्तहें विगलै ।

अन्य कि एवं शशिमुखि, हिंडै उलमितइ कर-कमलै ॥१८॥

यदि गंगा-जलें धवली, कालइ यमुना-जलें यदि क्षिप्तज ।

राजहंसि नभ बहु न टूटु, शुद्धत्वे तब तेतऊ ॥१९॥

वदन-सरोज नयन कुवलय-दल, हास नव-फुल्लिय मल्ली ।

कर-पाद अशोक-पल्लव-झाय, सहजे कुसुमायुध भल्ली ॥२०॥

तुहें उज्जेलि न अजहु अइबिहु, बिलसै मदनोत्सव प्रबल ।

गति-नयनेहिं सज्जीहै, तुहु हंसीकुल सखि तिमि हरिण-कुल ॥२१॥

पिय आथज नि-पडेउ पदहिं, स-अणय-बचनेहिं अनुनइ मान सों-आविया ।

इमि स्वपने भरि आलंगउं जी सों, ती लो सखि ! हत कुक्कुटि रटिया ॥२२॥

—छन्दो० (पृ० ३४, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

राखै अरुण-कांति धरणीतलें इन्द्रगोपका,

पावस-श्री त्याहें पद यावक-बिन्दु लगया ।

ईहज विज्जु-लेख कल-कंसिय बहुल-कंसिया,

लक्खीजै जातरूप-निर्मितव्य कंसिया ॥७॥

भत्त-भ्युवाह वर्षतिहिं पति समबिका,

आकर्णहु संप्रति महितलें जो विरचिया ।

हंस-हंकर-सहिण जं आसि णोहइ, सब्दूर-रडिआउसु निम्मिओ तं सरवच ॥ ६ ॥
 गहिइ गज्जइ घरइ मय-वारि, बिहल-धुलु नहु कमइ ।
 दुश्चिबारुदिसि-दिमिपलोइइ ! ओ मस-वालिय-सरिसु विसम-चेट्टुपाउसु पयइइ ॥ १८ ॥
 गज्जइ धण-माला घणघणाह । नं मयण-निवइणो कुंजर-घञ्ज ॥ ६१ ॥
 कुसुमगंगु अज्जुण-जेअइ-कुठयह । पेच्छिवि कहवि हु न हु रह-मंडहिं ।
 नव-पाउसि पइसंतइ ओ आइ । निअंत ममर दुओ हिंडहिं ॥ ३७ ॥
 वज्जहिं गज्जिर-घण-मइल, नच्चहिं नह-यल-अंगणि नव-चंचल-विज्जुल ।
 गायहिं सिहि इह संगीअउ. पाउस-लंछिहिं करइ जुआणह मण-आउल ॥ ४३ ॥
 —छन्दोनुशासन^१

(ख) शरद-वर्णन

तरुणी किलकिचिअइ विसइहिं, ससि-ओण्ह-समूज्जल रत्तही ।
 मल्लिअ पुल्लइ परिमल-सारइ, जउ तउ भय मगगहु वत्तही ॥ ११३ ॥
 सुहु मुहुलायअ-तरंगिणिऐं, भलकंतउ कंति-करविअओ ।
 सोहइ निम्भल-वट्टुल-मंडलु, जल-मज्जिनाड ससि-बिबिओ ॥ ११४ ॥
 —छन्दो० (पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क)

(ग) हेमन्त-वर्णन

महु-रसु सुटिउ जेहिं जहिच्छइ, ते अलि दीसैंत भमंत ।
 मालइ-ओहुलणउं करंतिण, कि सौंहिओ पइ हेमंत ॥ १११ ॥
 —छन्दो०^२

(घ) वसंत-वर्णन

किं न फुल्लइ पाउल पर-परिमल । महमहेइ किं न माहवि अवरिल ।
 नवमल्लिअ कि न दलइ पहल्लिय । कि उत्तरइ कुसुम-भरि मल्लिय ।

^१ पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क

^२ पृ० ४२ ख

हंस-हंसल-शब्धे^१ हैं जो अहे^२ उ सोहर, ध्वर-रटनाकुल निर्मित तो सरवर ॥ ६ ॥

गैभिर गर्जें धरें मद-वारि, बिहूल नभ कमई,
बुधिवार दिशि-दिशि प्र-लोटे, ओ मत्त-बालिक-सदृश विषम-चेट पावस प्रवर्तें ॥ १८ ॥

गर्जें घनमाला घनघनाइ, जनु मदन-नृपतिकर कुंजर-घट ॥ ६१ ॥

कुसुमोद्गम अर्जुन-केतकि-कुटजह^३ पेखिय कइविउ नहि रति-मंडहिं ।

नव-पावसे^४ पइसंतइ ओ जाइ, देखंत अमर दूत हिंडहिं ॥ ३७ ॥

वाजें गज्जर-घन-मईल, नाचें नभतल-आंगने^५ नव-चंचल-विज्जुल ।

गावें शिखि इहें संगीतउ, पावस-लक्ष्मिहि करै युवानहु मन-आकुल ॥ ४३ ॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ख) शरद्वर्णन

तरुणी किलकिंचितै^६ विसट्टै^७, शशि ज्योत्स्न-समुज्ज्वल-रातडी ।

मल्ली कुल्लै^८ परिमल सारै^९, जो तो गय मागहु बातडी ॥ ११३ ॥

तव मुख-लावण्य-तरंगिणिऐं, भलकंतउ कांति करबितओ^{१०} ।

सोहै निर्मल-वर्तुल-मंडल, जल-मांभ न्याहै शशि-बिबओ ॥ ११४ ॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ग) हेमन्तवर्णन

मधु-रस घोटिउ जेहि यथेच्छहै, ते अलि दिसत भ्रमंत ।

मावति-ओलहनउ करति, की साधिउ ते^{११} हेमंत ॥ १११ ॥

—छन्दो० (पृ० ४)

(घ) वसंतवर्णन

की न फूलै पाटल पर-परिमल । महमहै की न माधवि अविरल ॥

नव-मल्लिक की न दलै पहूषिया । की उच्छलै कसुम-मरै^{१२} मल्लिय ।

दीहिय-तलाय-सर-सल्लहिहिं । कि न पसाहि पठमिणि फुडइ ।

तुवि अइ अय-गुण-अंभरणु भाणु । कि भसलुह मणि खुडइ ॥१२॥
सुणिधि वसंति पुर-पोढ-पुरंधिहिं रासु ।

सुमरि बिलडहि हूओ तक्खणि पहिउ निरासु ॥१५॥
मत्त-कोइल-नाय गंदीइ सिंगार-रसोगंभिण, नच्छमाण-मायंद-पत्तहि ।

अहिणिज्जइ मयण-अय-नाडउज्ज, संपइ वसंतिण ॥१६॥
सुट्टिदुं चंदण-वल्लि-पल्लंकि सम्मिलिदु अवंग-वणि खलिदु बल्लु-रमणीय-कयलिहिं ।
उच्छलिदु फणि-अयहिं धुलिदु सरल-कक्कोल-अवलिहिं, चुंविदु माहवि-वल्लरहिं ।

पुलइद-काम-सरीर ममर-सरिच्छउ संचरइ, रड्डउ मलय-समीर ॥११॥
माणु म मेल्हि अहिल्लिएं तिहुई होहि खणु,

उभयओ चंदु पयदुओ रासावल्ल खणु ।
दिक्खिसु एहिंवि नयणिहिं, पइ हलि मयण-अय,

वल्लह पयह पठति, भणंतिअ वयण-अय ॥३॥
आमूलु वि बहु-मंकिण सेंवल्लिअ सव्व-वार-पडिबोह सोहर-हिय ।

कंटय-अय-संसेविअ-अल-अयण, अिण उववयणु न सोहहिं कमल-वण ॥७॥
कोइल-कल-रवु चंदणु, चंदुज्जोअ-विलासु ।

वल्लइ-संगमि अमय-रसु, विरहिय जलिउ हुआसु ॥२६॥
अं सहि ! कोइल कल पुक्कारइ, फुल्लु निलओ ।

तं पत्तु वसंतु मासु, कामहु जीलालओ ॥६८॥
दीसइ उववणि, फुल्लिओ नाय-केसरो ।

नं माहविण वण-सिरिहि दिण्ण-सेहरो ॥७२॥
कर असोअ-दल्लु मुहु-कमलु हसिउ नव-मल्लिअ ।

अहिणव-असंत-सिरि एहु, मोहण-हल्लिअ ॥८६॥
पत्तउ एहु वसंतउ, कुसुमाउल-महुअर ।

अणिणि ! माणु मलंतउ, कुसुमाउह-सहयर ॥८४॥

‘छोवेसे घरमें, छोटी उमरकी घरवासी (गृहिणिके !)

दीधी-तलाव-सर-तालडिहिं । की न प्रसाधि पथिनि फूटई ।

तहु जाति ! जात-गुण-संभरण ध्यान । की भ्रमरहु मणि खूटई ॥१२॥
सुनिय बसते^१ पुर-श्रीढ-पुरांधिय रास ।

सुमिरि बिलटहि हुयउ तत्क्षण पथिक निरास ॥१५॥
मत्त-कोकिल-नाद-नंदी शृंगार-रसोद्गम्ये^२हि नृत्यमान माकंद-मंकिहि ।

अभिनीजे मदन-जयनाटकहैं, संप्रति बसते^३हीं ॥१६॥
लोठिय बंदन-बल्लि-पर्यंकें^४ सम्मिलिय लवंग-वने^५ स्खलिय वस्तु-रमणीय-कदलिहिं ।

उच्छलिय फणि-नताहिं घुरिय सरल-कंकोल-लबलिहिं, चुंविय माधवि-वल्लरिहिं ।
पूलकित काम-भारीर भ्रमर-सरीसउ संचरै, रोयउ^६ मलय-समीर ॥३१॥

मान न मेलि गृहिलिएं, निभूता होहि क्षण,
उभयउ चंद्र प्रकटेउ, रासा-बल^७ क्षण ।

देखिहु एहिहि नयनहिं, तैं री मदन-हत,
वल्लभ-नदहैं पडति, भनंतिय बचन-अउ ॥३॥

आमूलउ बहु-मंकें^८हिं सँवरिय, सर्व-द्वार-प्रतिबोध सोहर-हिय ।
कंदक-क्षत-संसेविय जल-शयन, जिन उपवचन न सोहैं कमल-वन ॥७॥

कोकिल-कलरव बंदन, चंद-उदोत-विलास ।
वल्लभ-संगमें^९ अमृत-रस, बिरहे जलेंउ हुताश ॥२६॥

ओ सखि ! कोकिल कल-पुकारै, फुलेंउ निलगो ।
सो आज वसंत मास, कामहैं लीला-लयो ॥६८॥

दीसै उपवनें, फुल्लिय नागकेशरो ।
अनु माधवे^{१०} वन-श्रीहिं दियेंउ शेखरो ॥७२॥

कर भक्षोक-दल मुख कमल हसित नव-मल्लिय ।
अभिनव-वसंत-श्री एहु, मोहन-दल्लिय^{११} ॥८६॥

आयउ एहु वसंतउ, कुसुमाकुल-मधुकर ।
मानिनि । मान मलंतउ, कुसुमायुध-सहचर ॥६४॥

घोलिर-नवपल्लव, परिफुल्लिओं रेंहइ असोअ-तह ।

विरहओं रम्मु नाइ, महु-भासिण कुसुमा-उहु-सेहइ ॥६८॥

—छन्दो०^१

(४) विरह-वर्णन

जे महु दिण्णा विअहडा, वइएँ पवसंतेण ।

ताण गणतिएँ अंगुलिउ, जज्जरिआउ नहेण ॥३३॥

विरहानल-जाल-करालिअउ, पहिउ कोवि बुड्ढिवि ठिअओ ।

अनु सिसिर-कालि सअल-जलहु, वूम कहन्तिहु उड्ढिअओ ॥४१॥

पिय-संगमि कउ निइदी, पिअहों परोक्खहों केव ।

महें विअिवि विआसिआ, निह न ऐव न तेव ॥४१८॥

हिअडा पइ ऐहु बोस्तिअओ, महु अगइ सय-वार ।

फुटिसु पिऐँ पवसंतिहउँ, भंअय ठक्करि-सार ॥४२२॥

सुमरिज्जइ तं वल्लहउँ, जं नीसरइ मणार्जं ।

जहिँ पुणु सुमरणु जाउँणउ, तहों नेहहों कहै नाउँ ॥४२६॥

हिअडा जइ वेरिअ घणा, तो कि अअि चडाहुँ ।

अम्हाही बे हत्थडा, जइ पुणु भारि मराहुँ ॥

रक्खइ सा विस-हारिणी, बे कर चुंविचि जीउ ।

पडि विविअ-मुंजालु जलु, जेहिँ अहाडिउ पीउ ॥

वाह-विअोडवि जाहि तुँह, हउँ तेवहें को दोसु ।

हिअय-डिउ जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज स रोसु ॥४३६॥

—प्राकृतव्याकरण (१४७, १६५, १६६, १७०, १७३)

निवकंदल-किय-कच्छ, नलिणि-वज्जिय-किय सरसरि,

निचंदण किय मलओं, तुहिण-वज्जिय किय हिअगिरि ।

ढोलिलय नवपल्लव, परिफुल्लिय राजै भ्रशोक-तरु ।

विरचे^१ उ रम्य न्याई, मधुमासे^२हिं कुसुमायुध-शेखर ॥६८॥

—छन्दो० (पृ० ३४-३७, ३६, ४१, ४२, ४५)

(४) विरह-वर्णन

जो मो^३हिं दिग्धा दिवसड़ा, दयिते^४ प्रवसतेई ।

ताह गन^५तिउ अंगुसिउ, अज^६रियाउ नखेई ॥३३३॥

विरहानल-ज्वाल-करालियउ, पथिक कोउ बूडिय ठियउ ।

अनु शिशिर-काले^७ सकल-जलहु, धूम कहंतिउ उडियउ ॥४१५॥

प्रिय-संगमे^८ कहें नी^९दड़ी, प्रियह परोक्षहु केमि ।

मै^{१०} दोउहि विन्यासिया, निद्र न एम तेमि ॥४१८॥

हियड़ा तै ऐहू बोल्लियउ, भम आगे शतबार ।

फूटे^{११}सु प्रिय प्रवसंतही, भंडक^{१२} ठिक्करि-सार ॥४२२॥

सुमिरज्जं तै^{१३}हिं बल्लभउं, जो बीसरै मनाउ ।

अहें पुनि सुमिरन चलि गउ, तह नेहहू की नार्ज ॥४२६॥

हियरा यदि बैरी घना, तो की नभहिं चढाउं ।

हमरो ही दो हावड़ा, यदि पुनि मारि मराउं ॥

राखै सा विष-आरिणी, दोउ कर चुंविय जोउ ।

प्रतिनिवित-मुंजाल जल, जे^{१४}हिं ले लीमउ पीउ ॥

बाह विछोडिय जाहि तुहें, हउं तेवहू को बोष ।

हृदय-स्थित यदि नीसरै, जानउं मुंज सरोष ॥४३६॥

—प्राकृत-व्या० (पृ० १४७, १६५, १६६, १७०, १७३)

निरु-कंदस किय कज्ज, नलिनि-वर्जित किय सुरसरि ।

निश्चंदन किय भलय, तुहिन-वर्जित किय हिमगिरि ॥

निपल्लव किय करि पयसु-कंकलि-विह्वल-सय,

पत-पत किय बाल-कयलि, अकुसुम किय तद-सय ।

सिसिरोवयार किहिं परियणिहिं, निम्मुत्ताबलि किय भुवण ।

तो विहू न तीइ विरह-तुह भरि, खसइ दाह-दारुण-विग्रण ॥४॥

तरुणि - हूण - गंड-प्यह - पुच्छिअ - तिमिर - भसि,

उक्क - भलुवका^१ - बडणु दुसहु मा करउ ससि ।

मलयानिल मय-नयणि धुनिअ-कपूर-कयलि-वणु,

संधुक्किय-मयण-'गि सहि ! इमा लुज्जत तवउ तणु ।

तणु-अंगि ! स खडहडि पडहि तुह, मयण-बाण-वेयण-कलह ।

चममाणु माणि बलहिण सहै, चडि म जीव संसय-तुजह ॥१०॥

आयण-विग्रमं तरंगतिहिं । निहृद-वम्म जिआवतिहिं ।

प्रेमि प्रियाहिं जो पुलोइज्जई । ता मत्तलोइ सगु पाविज्जइ ॥१३॥

मत्त-महुअरि-तार-भंकार-कलयंठि-कलयलिहिं, मयण-वणु-दुंदुकार-ससिहिं ।

कह जीवहुं विरहिणिउ, दुर-देस - पवसंत - रमणिउ ॥२१॥

कुविदो मयणो महामबो, वण-लच्छी अ वसंत-देहिआ ।

कह जीवउं सामि ! विरहिणि, मिउ-मलयानिल-फंस-मोहिआ ॥५४॥

जलइ पडवि कुसुम-लया-हर, तवइ चंदु जह गिम्हि दिवायइ ।

तुवि ईसा-भर-तरलिअ, पिअ-सहि वयणु न मसइ बालिअ ॥५७॥

जलइ सरोवरि नीलुप्पल-वणु ! वणि लय फुल्लिअ न्हयलि हिम-किरणु ।

विरह-रहक्कई तुह तणु-अंगिहिं, सुहय ! विणिम्मिओ जलु यलु नहु जलणु ॥३२॥

सइ विज्जुल-अविउत्तउ तुहुं जल-हर-करि, गुंदलु निट्ट न-जाणसि विरहिअई ।

इअ मणि धितवि किपि अमंगलु, वइअहुं असु-पवाहु पल्लुउ पँथिअई ॥४५॥

विरह रहक्कई सुहय न जंपइ, न हसइ जीवइ केवलु पिअ-पञ्चासइ ।

अहवा किंति उरस्थावणणु, करिसहुं निच्छई मरिसहुं तुहु असु नासइ ॥४६॥

^१ ऊककी तरह भक्से बलनेवाला, ऊक ऊरकानेवाला

निष्पत्सव किय करि प्रयत्न कंकलि - विटप - शत ।

पत्र-त्यक्त किय बाल-कदलि, अ-कुसुम किय तरु-शत ॥
शिशिरोपचार किउ परिजनिहिं, निर्मुक्तावलि किय भुवन ।

तोपिउ न साहि विरह तुह भरे, खसै दाह-दारुण-विषन ॥४॥
तरुणि हूण-रंड-प्रभ पोछिय तिमिर-मसि,

उत्क-भल्लुक्का बलन दुसह ना करउ शशि ।
मलयामिल मृग-नयनि घूणि कर्पूर-कदलि-वध,

संयुक्षिय मदनाग्नि सखि ! ऐह तोर तपउ तनु ।
तनु-अंगि ! न खडहडि पहि तुहै, मदन-वाण-वेदन-कलह ।

त्यजमान मान बल्लभेहिं सँग, चढि न जीउ संशय-तुलहै ॥१०॥
लाजण्य-विधम-तरंगतिहिं । निदुइछ मन्मथ जियावतिहिं ।

प्रेमे प्रियाहि जो पुलकिज्यै । तो भत्यंलोके स्वर्ग पाइज्यै ॥१३॥
मस-मधुकरि तार-भंकार कलकंठि-कलकलहिं, मदनधनु-टंकार-सरिसहिं ।

किमि जीवहु विरहिनिउ, दूर-देश प्रवसंत रमणेउ ॥२१॥
कुपितउ मदन-महाभटउ, वन-लक्ष्मीउ वसंत-रेखिता ।

किमि जीवउ स्वामि ! विरहिणी, मृदु-मलयानिल-स्पर्श-मोहिता ॥५४॥
ज्वलै यदपि कुसुमलता-धर, तपै चंद्र जिमि ग्रीष्म-दिवाकर ।

तउ ह्रींया-भर-तरलिय, प्रिय-सखि-वचन न मानै बालिका ॥५७॥
ज्वलै सरोवरे नीलोत्पल-वन । वने लतां फूलिय नभतसे ह्रिभकिरण ।

विरह-धधक्के तुह तनु-अंगिहिं, सुभग ! विनिमोउ जल बल नम ज्वलन ॥३२॥
स्वयं विज्जुल अविद्युक्ताउ तुहै जलधर करि, गुंदल निष्ठौ न जानसि विरहियहै ।

हमि भनि चितै किछुअ अमंगल दमितहै, अशु-प्रवाह प्रलोउउ पयिकहै ॥४५॥
विरह धधक्के सुभग न जल्पै, न हसै जीवै केवल प्रिय-प्रत्याक्षै ।

अथवा काउ अवस्था-वर्णन, करिहउ निश्चय मरिहहै तव यश नाशै ॥४६॥

रुण्णय भ्रमथभऊह-भऊह विदुसहु, चंदण-पंकुवि जलइ लयाहए वि ।
 इय सुह विरहिण तहि तणु-अंगिहि सुहय, सुहाइ न किपि'वि पसिअहि दय करिबि ॥५०॥
 —छन्दो^१

३-नीति-वाक्य

सायइ अप्परि तणु घरइ, तसि घरइ रयणाई ।
 सामि सुभिच्चु 'वि परिहरइ, सम्माणेइ खलाई ॥३३४॥
 गुणहिं न संपइ कित्ति पर, फल लिहिआ भंजति ।
 केसरि न लहइ बोडिअवि, गय लक्खेहिं घेप्पति ॥३३५॥
 जीविउ कासु न बल्लहउं, घणु पुणु कासु न इट्ठु ।
 दोण्णिवि अवसर-निबडिअई, तिण-सम गणइ विसिट्ठु ॥३५८॥
 धासु महारिसि ऐउ भणइ, जइ सुइ-सत्थु पमाणु ।
 मायहो बलण नवन्तहो, दिवि-दिवि गंगा-प्हाणु ॥३६६॥
 वम्भ ते' विरला केवि नर, जे सव्वंग-छइल्ल ।
 जे वंका ते वंचयर, जे उज्जुअ ते' वइल्ल ॥४१२॥
 गयउ सु केसरि पिअहु जलु, निच्चितहो हरिणाई ।
 जसुकेरएँ हुंकारइएँ, मुहहो पडति तूणाई ॥४२२॥
 सिरि चडिआ खंति प्फलई, पुणु डालई मोडति ।
 तोवि महवुद्धुअ सउणहो, अवराहिउ न करंति ॥४४५॥
 —प्राकृतव्याकरण^२

जे निअहिं न पर-दोस । गुणिहिं जि पयडिअ तोस ।
 ते जगि महाणुभावा । विरला सरल-सहावा ॥१२४॥
 पर-गुण-गहणु स-दोस पयासणु । महु महुरक्खरहि अमिअ-भासणु ।
 उवयारिण पडिअियो बेरिअणहं, इअ पदडी मणीहर सुअणहो ॥१२८॥
 —छंदोनुशासन (पु० ४३क)

^१पु० ३४क, ३५ख, ३६क, ४०ख, ४४ख, ४५क-ख

^२पु० १४७, १५२, १६१, १६६, १६६, १७५

सृष्णइ अमृतमयूख मयूखउ वुस्सह, धंदन-पंकज ज्वलै लताधर भी ।

एँहु तव मिरहेँ तस तनु-अंगिहि सुभग ! सोँ हाइ न किछूउ प्रियसखि दयाँ करनि ॥५०॥

—छन्दो० (पू० ३४-३६, ४०, ४४, ४५)

३-नीति-वाक्य

सागर ऊपर तन धरै, तलेँ घालै^१ रतनाई ।

स्वामि सुभूषणहँ परिहरै, सम्मानेइ खसाई ॥३३४॥

गुणहिँ न संपत्ति कीर्ति पर, फल लिखिया भंजति ।

केसरि न लहै कौडियउ, गज लक्षहँ धेँप्पति^२ ॥३३५॥

जीविबु कासु न बल्लभउ, धन पुनि कासु न इष्ट ।

दोउहिँ अवसर आपड़े, तूण-सम गर्त विशिष्ट ॥३३६॥

व्यास महाश्रुषि इमि भनै, यदि श्रुति-शास्त्र-प्रमाण ।

मातह चरण नमन्तहँ, दिनेँ-दिनेँ गंग-नहन ॥३३७॥

ब्रह्म ! सोँ विरला कोउ नर, जो सदागि छइलल ।

जो वंका सो बंचकर, जो ऋजुका सोँ बइल ॥४१२॥

गयउ सोँ केसरि पियहु जल, निश्चिन्तेँ हरिनाई ।

जासुकेर दहूहाडयेँ, मुखइ पडति तूणाई ॥४२२॥

शिर चडिया लावहँ फलहिँ, पुनि छालिहिँ मोडति^३ ।

तऊ महादुम शकुनहीँ, अपराधी न करति ॥४४५॥

—प्राकृत० (पू० १४७, १५२, १६१, १६६, १६८, १७५)

जे देखहिँ न पर-दोष । गुणेँहिँ जेँ प्रकटैँ तोष ।

ते जगेँ महानुभाव । बिरला सरल-स्वभाव ॥१२५॥

पर-गुण-ग्रहण स्वदोष-प्रकाशन । मधु-मधुराक्षरेँ अमृत-भाषण ।

उपकारेँहिँ प्रतिकारिय बैरिजन, एँउ पद्धती मनोहर सुजन ॥१२८॥

—छन्दो० (पू० ४३)

§ ३१. हरिभद्र सूरि

(चंद्रसूरि-शिष्य) । काल—११५६ ई० (जयसिंह-कुमारपाल १०६३-११४२-७३) । देश—गुजरात (अनहिलवाड्य पाटणमें निवास) कुल—

१-प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

तपणु वियलिर तिभिर बम्मिलु परिल्लसिर तारय वसण-कलयलंत तरुसिहर पक्सिय ।

परिसंदिर कुसुम-महु-विटु-भिसिणएँ पइ बहुक्खिय ।

जस मइ कुमरिहेँ दुबखेण बइरेण रयणि-विलीण,

पडिवक्खिय खयरिद सुहुबुद्धि'व कुमुदणि की ।

कुभर-रयणहु पहु पयासेँ उ भिव-वियसई विसिमुहई, उदयगिरिहिँ आरुहिउ विणयर ।

संपावियउ वरुनिह रायहंस कमलोह-सुहयर ।

पत्तावसर समुल्लसिय संभराय सिंगार ।

नं कुकुम कोसुंभ वरवत्थ-कयालंकार ।

संत चक्कई विहिय संतोस पविरायइ पुव्वदिसि अवहरंत तम-वल्लि-लज्जेण ।

पसरंत रायारुणेण नववहु'व्व रवि-वइय-संगेण ।

उदयते गयरवि निवेण गंजतेण पडिवक्खु ।

कमलकोसेँ विणिहित करवद्धु गुरुत्तणे लक्खु ।

हरिय तारय-रेणु-नियरंभिअह निप्पहेँ वोसयरे, निम्मजं मि गयणयले चड्डिउ ।

रवि रेहइ कणममउ-मंगलज्जुनं कलसु भंजिउ ।

भमरा धावहिँ कुमुदणिउ उब्भिवि कमलवणेसु,

कस्सव कहिँ पडिवंमु जणे चिरपरिचिय-गणेसु ।

§ ३१. हरिमद्रसूरि

जैत साधु, महामंत्री पृथ्वीपालके अनुगृहीत । कृति—सेमिनाथ-धरिउ*
(८०३ श्लोक)

१-प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

तपन-विदलिय तिमिर-अम्मिल्ल^१ परि-लसिय तारक-वसन, कलकलंत तरुशिर पक्षिय ।

परिस्संदित कुसुम-भवुविदु-मिश्रण^२ तै^३ वहु-रक्षिय ।

जमु मै^४ कुभरिहि दुःखे^५ वैरे^६ रजनि-बिलीन ।

प्रति-पक्षिय संचरेंद सुख-बुद्धि^७ व कुमुदिनि की ।

कुमार-रतनह प्रभ प्रकाशे^८ उ मुदु विकसे^९ विसि^{१०}-मुखे^{११}, उदयगिरिहिं आरुहे^{१२} उ दिनकर ।

मं-पाये^{१३} उ यतिशय राजहंस कमलोच-मुखकर ।

प्राप्तावसर समुल्लसिय शाव-राज^{१४}-भृंगार ।

जनु कुकुम - कीसुम्म - वरवस्त्र - कृतालंकार ।

शांत-चक्रहे^{१५} विहित-संतोष प्रभिराजै^{१६} पूवं दिने^{१७} अपहरंत तम-वलि-सज्जहिं ।

प्रसरंत रागारुणेहिं नवबधु इव रवि-दमित-संगेहिं ।

उदयसे नव-रवि नृपेहिं गर्जन्तेहिं प्रतिपक्ष ।

कमलकोशे^{१८} विनिहित कर-वसे^{१९} गुह्ये लक्ष्मि^{२०} ।

हरित तारक-रेणु निकुरंविय निष्प्रभे^{२१} दोषोकरे^{२२}, निर्मले गगनतले^{२३} चहे^{२४} उ ।

रवि राजै कनकमय-मंगलार्जुन-कलश-भंडे^{२५} उ ।

अमरा धावे^{२६} कुमुदिनिउ खिले^{२७} उ कमलवनह ।

केहि इव कहै प्रतिबंध जगे^{२८} चिरपरिचित-गणह ।

* केश

१ कमल

२ कामदेव

३ किरण समूह

४ लक्ष्मी

विरह-विहुरिय चक्कमिहणार्है मिलिऊण साणंद, हूय तूट्ठ भमहिं पहियण महियले ।

कोसिय^१-कुलु ऐक्कु परिदुहिउ रविहिं ग्राह्णे^२ नहयले ।

---गेमिणाह-चरिउ ७

(२) वसंत-वर्णन

प्राणि संधिय भंजु सिजंत भभरावलि सामलियदलि कुसुम-सहयार-मंजरि ।

पसरंत हरिसुल्ल सिय पुलय भरेण रेहंत सिरुवरि ।

विरहवि करसंपुट भणहिं, उज्जाणिय आगंतु ।

जह पट्ट हरिसिय भुवण-जणु, संपइ पत्तु वसंतु ।

अभिह पसरिउ दइय-संगु^३व्य मलयानिलु अंगसुहु पत्तविहवु पुणु कुसुम-परिमलु ।

चारिज्जय तूर-रव-रम्मु फुरिउ कलयवि-कलयलु ।

पडमारुण कंकेल्लि-तरु-कुसुमई नयणसुहाई ।

तवणिज्जज्जल कुसुम-भरु हूय कोरिट-वणाई ।

जत्थ माहवि लहय तो मरिय सेहालिय कुंतलिय जालइय लहु सुरहि तइयवि ।

भूयदुम मंजरिय कहुगुलुव पायव असोयवि ।

आलिगिज्जहिं पूगफले^४, तरु कामुय सच्चंगु ।

नागवल्लि तरुणिहिं जणहूँ, उज्जीविरिहि अणंगु ॥

जहिं पवालंकुरे^५हिं कयसोह डिमाई^६व तिलयकय गयसहिम कामिणि मुहाई^७व ।

बहुलवक्षण चित्त-सय भणहराई तर-वद-गिहाई^८व ।

उत्तिम जाइ प्यसवकय-महिमंठणाई वणाई ।

बिलसहिं भुवणाणंदयर, नं सरताहकुसाई ॥

अहिय विज्ज सियकुसुम कणियार-वणराइ कंचणमयव कुणइ पहिय हिययाण विवभमु ।

अहिकंसहिं भुवणयले सयल-मिहण निय-दइय-संगमु ।

गिज्जहिं रासहिं चच्चरिउ, पेज्जहिं वरमहराउ ।

माणिज्जहिं तुंगत्थणिउ, किज्जहिं जल-कीलाउ ॥

---गेमिणाह-चरिउ^९

^१ कोशिक=उल्लू

^२ संधि ४

द्विरहविधुरित चक्रमिथुनाई मिलियउ सानंद, हुये^१ तुष्ट धरै^२ पैथिजन महितले^३ ।

कौशिक-कुल एक परि-दुखित रविहिं आरुढे नभतले^४ ।

—नेमिनाथ-चरित ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि-सं-ठिय मंजु सिजंत भ्रमरावलि क्षामलिय,दले^५ कूसुम सहकार-मंजरि ।

पसरंत हृषिल सित-पुलक-भरे^६ राजंत शिरवरे^७ ।

द्विरचिय कर-संपुट भनै^८ उद्-जानिय आगंत ।

जिमि प्रभु हृषिय भुवन-जन, संप्रति आउ वसंत ।

जो ऐहि पसरै^९ उ दयित-संग इव मलयानिल अंग-सुख प्राप्तविभव पुनि कूसुम-परिमल ।

संचारिय तूर्य-रव रम्य फुरै^{१०} उ कलकंपि-कलकल ।

पचारण कंकलि^{११}-तरु-कूसुमा नयन-सुखाई ।

तपनीय ज्वल कुसुम-भर वृक्ष कोरिट-बनाई ।

अत्र माधवि लतिक तोमरिय^{१२}-शेफालिक कुंतलिय जालकित लघु सुरभि लहयउ ।

भुजंद्रुम मंजरिय बडू - गुल्म - पादप अशोकउ ।

आलिगिज्जै^{१३} पूग-फले^{१४}, तरु कामुक सर्वांग ।

नागवल्ली-तरुणिहिं जनहैं, उज्जीवियहि अनंग ॥

जिमि प्रदालांकुरै^{१५}हिं कृतशोभ डिभा इव,तिलककृत गरुव-महिम कामिनि-मुखाइव ।

बहुलक्षण - चित्रशत - मनहूरा नरपति - गूहा इव ।

उत्तम-जाति - प्रसवकृत, महिमंडना बनाहैं ।

विलसै^{१६} भुवनानंदकर, जनु नरनाथ - कुलाइ ॥

आहि फुटिय सित-कूसुम कणिकार-वन-राजि कंचनमृदउ,करै पथिक-हृदयाहैं विभ्रम ।

अभिकांक्षै^{१७} भुवनतले^{१८} सकल-मिथुन निज-दयित-संगम ।

गहइज्जै रासहिं चंचरिउ, पीइज्जै वर-मदिराव ।

मानिज्जै तुंग - स्तनिउ, फिज्जै जल - फ्रीडाव ॥

—नेमिनाथ-चरित संधि ४

२-सामन्त-समाज

(१) नारी-सौन्दर्य-वर्णन

जीऐँ रपणिहिँ नियय तणु किरणमालच्चिय दीव सिव सोहू मेतु भंगल-पईवय ।

सवणाण बिहुसणई नयणकमल बिइ मेतु मेवय ।

गंठयलच्चिय तिमिर-हर, जगेँ पहुँ ससि-रवि-संस ।

सवण जेँ अंदोलय ललिय, बिहल महूह आकंस ॥

जणु सुहावहिँ मुहह निसास किं मलयानिल भरेण, दंतकिरण धवलहिँ किं चदेण ।

ग्रहरो बिहूरं जवइ जगु विकडण किं अंगरागेण ।

रसण पउच्चिय मिउकरि, सुनपा-मयण सयणेज्ज ।

नहू-भणि-किरणच्चिय कुणहिँ, कुसुम अथारह कज्जु ॥

तरत-नयणेहिँ कुहिल-केसेहिँ थण-जुयलेण, पुणु कतिथ तुज्ज क्व मज्जपाप्मेण ।

अचंचलं वाउलिय देवपूय गुरु विणय हरिसेण ।

इय सा सयलुवि जगु जिणइ, निय-गुण-दोस-सएण ॥

—शेमिणाह-सरिउ^१

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौन्दर्य

नील-कुंतल कमल-नयणिल्लु विवाहक सियदसणु, कंवुग्गीवु पुर-अररि उरयलु ।

जुथ दीहर-भुय-जुयल वयण ससि जिय कमल-उप्पल ।

पठमवलारुण करवलणु, तविय - कणय - गोरंगु ।

अट्ट वरिस वस पहुँ हुयउ, समहिंथ विजिय अणंगु ॥

—बही^२

(३) विवाह-महोत्सव

सा पडुतइ लग्न समये मिलिएहिँ सुहि-सज्जणेहितेसि, कुमारकुमरीण दोण्डवि ।

पारद विवाह-बिहि नयण-खयर पहुँ दुहिय अन्नवि ।

२-सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जेहि रजनिहिं निजय तनुकिरण-मालाधित दीप शिव सोह मात्र मंगलप्रदीपय ।

धवणाई विभूषणै नयन-कमल डे मित्र एवय ॥

गंडतल-अर्धी तिभिरहर, जग प्रभ शशि-रवि-शंख ।

धवण जे आंदोलै ललित, विफल न होइ आकांक्ष ॥

जन् स्वभावे मुखनिःप्रकाश की मलयानिल भरोहिं, दंतकिरण धवलहिं की चंदेहिं ।

अधराहु-हु रंजवै जग विकचे की अंगरागेहिं ॥

रसन प्र-उन्विष्य मृदुफलै, सून मदन शयनिज्ज ।

चख-मणि-किरणाचिय करै, कुसुम-विरहै काज ॥

तारलनयनेहिं कुटिल-केशेहिं स्तन-युगलेहिं, पुनि कठिन तोर रूप मध्यप्रदेशेहिं ।

अत्यंत व्याकुलित देव-पूजां गुरु-वितय हर्षेहिं ।

इमि सा सकलउ जग जितै, मिज गुण-दोष-शतेहिं ॥ ॥

—नेमिनाथ-चरित संधि ७

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नीलकुंतल कमल-नयनिल्ल विबाधर सित-दशन, कंबुग्रीव मुर-अरर^१ उरतल ।

युग-दीरघ-भुज-युगल बदन सीस जिमि कमल-उत्पल ।

पद्मदलाक्षण कर - चरण, तपनकनक - गोरंग ।

आठ वर्ष वय प्रभु हुयेउ, समधिक-विजित-अनंग ॥

—वक्त्री

(३) विवाह-महोत्सव

सब प्रभूतउ लग्न समये मिलितेहिं सुहृद्-साजनहितैषि, कुमार कुमरीहु दोनउ ।

प्रारब्ध विवाह-विधि तपन-सखर-प्रभ दुहित अन्यउ ।

^१ अरर=कपाट

^२ विद्याधर

निय-निय जगयाणुगहिणु, कयसायर सिगार ।

लग कुमारह पाणितले, फुरिय मलय-पव्वार ॥

ता कुमारह बित्ति विवाहे^१ पसरंत महुसवेण नयरलोउ सयलोवि सहरिखु ।

आसीसहे सय-सहस देइ कुणइ मंगलिय पगरेसे^२ ।

अह नरनाहे^३ण वित्थरे^४ण, निय-नयरमि असेसे^५ ।

पारवउ वढ्ढावणउ, तंमि विवाह विसेसे^६ ॥

वज्जंत गज्जंत बहुभेय-तूरं । लभिज्जंत दिज्जंत कप्पूर-पूरं ।

पणच्चंत णच्चंत वेसा-समूहं । दसिज्जंत हिंडंत वावणयतूहं ।

एंत गच्छंत चिट्ठंत वहुसज्जणं । लेंत वियरंत सुयसंत णण-रंजणं ।

संत पिज्जंत दिज्जंत बहुभक्खयं । लोय उल्लसिय वहुभेय मणसुक्खयं ।

भावंत कीलंत वगंत सुज्जयगणं । वंत उट्ठंत निवटंत बालयजणं ।

—गेमिणाह-चरिउ^१

(४) नारी-विलाप

हरिण-गायणिय धंपयच्छाय ससि-सोमवयणंवुह, कुंद-कलिय-सम-वस-पंतिया ।

परिदेविय रव-भरिय वरणि गयण अंतरमय विय ॥

कुडुहिं सिर कर-भुगारिहिं, पीडहिं उर वादाहिं ।

ताडहिं बच्छोरुहवियउ, निय - करसाहाहिं ॥

रुयहिं गायहिं ललहिं मुच्छहिं सिक्कारहिं पुक्कारिहिं, सहिहिं गहियउउरे^१ हारतोडहिं ।

उल्लूरहिं चिहुर-भर कणय-रयण-वलमासि मोडहिं ॥

सरिवि सरिवि निय-पियम महु, गुणगणु तहिं विलवति ।

जह स विहट्ठिय तर विहय, विमह वि रोयावति ॥

—गेमिणाह-चरिउ^२

निज निज जनकानुग्रहे^१उ, कृत - सादर - श्रृंगार ।

साग कुमारह पाणितले^२, फुरिय मलय पहूहार ॥

तो कुमार-कृत-विवाहे^३ पसरत महोत्सवे^४, नगर लोग सकलज सँहर्षे^५ ।

आशीषह^६ शत-सहस दे^७ करै मंगलिय प्रकर्ष^८ ।

अथ नरनाथे^९ विस्तरे^{१०}, निज नगर ही अक्षे^{११} ।

प्रारंभे^{१२} बधावनउ, तेहि^{१३} विवाह - विशेषे^{१४} ॥

वाजंत गाजंत बहुभेद-तूरं । लभिजंत दीयंत कर्पूर-पूरं ।

प्र-नाचंत नाचंत वैश्या-समूहं । द्रशिज्जंत हिंडंत वामन-समूहं ।

जांत आबंत तिठंत बहुसज्जनं । लेंत वितरंत सुप्रशांत जनरंजन ।

खांत पीयंत दीयंत बहु-भक्षणं । लोक उत्ससिय बहुभेद मनसुख्यं ।

धावंत क्रीडंत बलंत कुब्जक-गणं । वांत उठंत निपतंत बालकजनं ॥

—वही^{१५}

(४) नारी-विलाप

हरिन-नयनिय चम्पक-छाय शशि-सौम्य वदनांवरुह, कुंदकलिय-सित-दंत-पंक्तियः ।

परिदेवे^१उ रव-भरिय वरणि-गगन-अंतरमय इव ॥

कूटे^२ शिर कर - मुद्गरिहि^३, पीडे^४ उर - पादाहं ।

ताडे^५ वक्षोरुह विकट, निज (निज) कर-शाखाहिं ॥

रोवे^६ गावे^७ लल^८ मुखे^९ सीत्कारे^{१०} पुकारे^{११}, सखिहि गहिउ उर-हार तोड़ही^{१२} ।

उल्लूरे^{१३} विकुर-भर कनक-रतन-बलयासि भोजही^{१४} ।

सुमिर सुमिर निज-प्रियहं महां, गुण-गण तहें बिलपति ।

जिमि स-तिरस्कृत-तर विहग, नितरुख रोझापति ॥

—वही^{१५} संधि ६

३-कविका संदेश

(सब सुख)

तरलु तारुण्यु जल'न जल संपयवि ।

इच्छ आयास महुलह पुणु नचियवि ॥

तप्पु विणस्सरु सयण नियय कज्जट्टिया ।

विसम-परिणाम'वि हि कामिणि 'वि दुट्टिया ॥

पिसुणवस पिच्छिणो महि दुराराहया ।

भणुवि मक्कह, मयच्छीउ तक्काहया ॥

—बही

§ ३२. अज्ञात कवि

(बीसल-बेव काल ११५३-६४)

(१) जगह साहुके दानकी प्रशंसा

नउ करवाली मणियडा, ते अग्गीला च्यारि ।

दानसाल जगह-तणी, बीसइ पुहवि मँकारि ॥११८॥

बीसलदे विरुधं करइ-जगहु कहावइ जी ।

तु(उ) परीसइ फासिसिउँ, एउ परीसइ धी ॥११९॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४३

(२) अकालमें दुर्दशा

कल्लिहिं बोर जि वीणती, अज्ज न जाणइ खल्ल ।

पुणरवि अरविहिं करि सुघर, न सहँ एह अणवस ॥१२०॥

भूमी मुण्ण जइ कहवि तुंगिमा तुज्ज होइ ता होउ ।

तह तुह फलाण रिछी होही वीआणुसारण ॥१२१॥

—उ० उ०, पृ० ४६

३-कविका संदेश

(सब सुख)

तरल तारुण्य अल द्रव चपल संपदउ ।

इच्छि आकाश मृदुलह पुनि वंचियउ ॥

ताप विनश्वर शयन निजय कार्य-दृष्टिया ।

विषम-परिणामउ हि कामिनिउ दुट्ठिया ॥

पिशुन-बल प्रेक्षका महि बुराराधना ।

मनउ मर्कट, मृगाक्षीउ तद्-बाधना ॥

—बही

§ ३२. अज्ञात कवि

कृति—स्फुट

(१) जगद्ध साहुके दानकी प्रशंसा

ना करवाली मनियरा ते आगिल्ला चारि ।

दानशाल जगद्धकेरी, दीसै पुहवि-भोकारि ॥११८॥

बीसलदे विहद करै, जगद्ध कहावै जीव ।

तू(तो) परसै फालसै, एह परीसै धीव ॥११९॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कालहिं बोर जो बीनती, आज न जानै कक्ष ।

पुनरपि अटविहिं करिसु घर, ना सँग एह अनक्ष ॥१२०॥

भूमि गुणैही यदि कहवि तुंगिमा तुज्ज होउ ता होउ ।

तिमि तब फलाहै अट्टी होही बीजानुसारेही ॥१२१॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१, ४२, ४६

§ ३३. आम भट्ट

काल, (जयसिंह—कुमारपाल १०६३-११४२-७३)। वेश—अनुहितबादा-

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

हरि गहद डगमगिअ चन्द करमिलिय दिवायर,

हुलिय महि हुलियहि मेरु जलभूपइ सायर ।

सुहृदकोडि परहरिय कूरकूरभ कडक्किअ,

अतल नितल धसभसिअ, पुहवि सह प्रलय पलटिय ॥

गज्जंति गयण कवि आन भणि, सुरमणि फणिमणि इक्कहुअ ।

मागहि हिमगहि मम गहि मगहि मुंच मुंच जयसिंह तुह ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे रक्खइ लहुजीव बढवि रणि मयगल मारइ,

न पिइ अपगलनीर हेलि रायहु संहाइ ।

अवर न बंधइ कोइ अघर रयणायर बंधइ,

परनारी परिहरइ लज्जि पररायहु बंधइ ।

कुमारपाल कोपिं चडिअ फोडइ सत्तकडाहि जिमि,

जे जिणधम्म न मगिसइ तीहुवि चाडिमु तेम-तिम ॥२०४॥

—वही उ० त०, पृ० ६५

§ ३३. आत्म भट्ट

पाठन (गुजराल) । कुल—माहाराज, राज-कवि । कृतियाँ—स्पष्ट

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

हरि गयंद डगमगिय चन्द करमिसिय दिवाकर,
 होलिय महि हल्लियह मेरु जल जंवे सागर ।
 सुभट-कोटि धरथरिय क्रूर-क्रूरम्भ कडक्किय,
 अलल वितल असमसिय पुहवि सैर प्रलय पलटिय ।
 गर्जति गगन कवि आत्म भन, सुर-मणि फणि-मणि एक हुअ ।
 मागहि हिम गहि मम गहि मगहि मुंच मुंछ जयसिंह तुव ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे राजौ लघुजीव बडल रणे मदकगल मारै,
 न पिउ अनगल नीर हेरि राजहँ संहारै ।
 आवर न धौधै कोइ स-वर रतनाकर धौधै,
 परनारी परिहरै लक्ष्म पर-राजहँ रुधै ।
 कुमारपाल कोपी चढेउ फोढे सप्तकडाहि जिमि ।
 जो जिनधर्म न मानिहँ, तेहहिँ चाडिउ ताम तिमि ॥२०४॥
 —उपदेशतरंगिणी (पृ० ६४, ६५)

§ ३४: विद्याधर

काल—११८० (जयचंद ११७०-६४)। देश—कन्नौज : कुल—ब्राह्मण,

(सामन्तोंकी भ्रांसा)

जयचंद-महिमा^१

(वीर-रस)

बंदा कुंदा कासा, हारा हीरा सिलोअणा केलासा ।

जेता जेता सेता, तेता कासीस जिणिअ ते कित्ती ॥७७॥ (१३७)

बिसुह चलिअ रण अचल, परिहरिअ हअ-गअ-वलु ।

हलहलिअ मलअ णिवह, जसु अस तिहुअण पिअह ।

अरणसि-अरवइ लुलिअ, सअल उवरि अस फरिअ ॥८७॥ (१४८)

अअ भंजिअ अइअ भग्गु कलिंगा, सेलंगा रण मुविक चले ।

अरहइ विट्ठा लग्गिअ कइ^२, सोरइअ अअ पाअ पले ।

अपरण कंआ पव्वअ भंआ, ओत्ता ओत्ती जीअहरे ।

कासीसर राअा किअउ पआणा, बिज्जाहर अण मंतिवरे ॥१४९॥ (२४४)

राअह भग्गंता दिगलग्गंता, परिहर हअ-गअ-अर-घरिणी ।

लोरहि^३ अर सरवइ पअ अरु परिकइ, लोइइ पिइइ तणु धरणी ।

पुणु उइइ संभलि कर दंतंगुलि, दाल तनअ कर जमल करे ।

कासीसर राअा णंहलु काआ, करु माआ पुणु अणि धरे ॥१८०॥ (२८६)

जे किज्जिअ आला जिणु णिवाला, भंइता पिइंत चले ।

भंजविअ चौणा दप्पहि हीणा, लोहाअल हाअंद पले ।

^१ "The King's (Jaichandra's) minister Vidyadhara" the Hist. of Rashtrakuta, p. 128.

^२ दिग्ग

^३ लोर (मल्लिक) आसु

§ ३४. विद्याधर

राज महामंत्री ।^१ कृतिर्षा—स्फुट कवितारथे ।^२

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा

(वीर-रस)

चंदा कुंदा काथा द्वारा हीरा त्रिलोचना कैलाशा ।

जेता जेता जेता, तेता काशीय जीतिया तव कीर्ति ॥७७॥

विमुक्त चलयि रणे अचल, परिहरिय हय-गज-बल ।

हलहलिय मलय नृपति, यांसु यश विभुवन पिबई ।

वनरसि-नरपति लुलिय सकल-उपरि, यश फुरिया ॥७८॥

भय भाजिय बंगा भागु कलिंगा, तेलंगा रण मुंचि चले ।

सरहद्वार दिद्रा लागिथ काष्ठा, सौराष्ट्रा भय पाद पडे ।

चंधारन कंथा पर्यंत भंषा, उट्ठी उट्ठी जीवहरे ।

काशीश्वर राना किये उ पयाना, विद्याधर, मनु मंत्रिवरे ॥१४५॥

राजा भागंता दिश-लागंता, परिहरि हय-गज-घर-घरनी ।

लोरहिं भर सगर पद पर-परिकर, लोटै-पीटै तनु घरणी ।

पुनि उट्ठै संभलि कै दंतांगुलि, बाल-वनय कर यमल करे ।

काशीश्वर-राजा स्नेहल-काया, कर माया, पुनि थापि घरे ॥१८०॥

जेहिं कीजिय धारा जितु नैपाला, भोटुंता पिटुंता चले ।

भंजावे उ चीना शर्पहिं त्रीना, लोहाबले हा कंदि पडे ॥

^१ "सर्वाधिकार-भार-धुरंधरः । . . . सतुर्दशविद्याधरो विद्याधरः . . ." प्रबंध-चिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य १३०४ ई०) पृष्ठ ११३-१४ (सिंधी जैन-ग्रंथ माला १, शांतिनिकेतन १९३२ ई०) The king's (Jaichanda's) minister Vidyādhara. Hist. of the Rashtrakutas (Altekar) p. 128

^२ "प्राकृत-संगल" (Bibliotheca Indica) में संगृहीत । जिनमें कविका नाम नहीं, उनका कर्तृत्व संदिग्ध है ।

ओहा उहाविभ किती पाविभ, मोलिभ भालव-रात्र-बले ।
 तैलंगा भगिभ पुणवि ण लग्गिभ, कासीरात्रा जलण बले ॥१८६॥ (३१८)
 भक्ति पति पात्र भूमि कंभिआ, टप्पु खुवि खेह सूर भंभिआ ।
 गोलरात्र-जिणि माण मोलिआ, कामरूत्र-रात्र वंदि खोलिआ ॥१११॥ (४२३)
 भंजिआ भालवा गंजिआ ^१कणला, जिणिआ गुरजरा लुंठिआ कुंभरा ।
 बंधला-^२भंगला-भोडिआ मोडिआ, मेळ्ळिआ कंभिआ कितिआ थंभिआ ॥१२८॥ (४४६)
 रे गोड ! धक्कति ते हत्थि-बूहाड, पल्लट्टि जुज्जंतु पाइनक-बूहाड ।
 कासीसु रात्रा सरासार अग्गे ण, की हत्थि की पति की वीर-वग्गेण ॥१३२॥ (४५०)

§ ३५: शालिभद्र सूरि

काल—११८४ ई० । देश—गुजरात । कुल—... जैन साधु ।

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखवि पुरह प्रवेसु, हूत पहुतउ रायहरे^१ ।
 सिउं प्रतिहार प्रवेसु, पामिय नरवर-पय नमइ ॥६८॥
 चरकिय माणिक-यंभ-, माहि बईठउ बाहुबले^२ ।
 रूपिहिं जीसिय रंभ. अमरहारि चालहें कमर ॥६९॥
 मंडिय मणिमइ दंड, भेचाडंबर सिर भरिय ।
 जस पयडे भुयदंडि, जयवंती अयसिरि वसहें ॥७०॥
 जिम जदयाचल सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटों^३ ।
 कस्तुरि कुसुम कपूर, कूचुंबरि महमह(मह)ए ॥७१॥

^१ कर्नाटक

^२ भगल—अंगवेश (भागलपुर प्रदेश)

ओढ़ा उढ़ापेँउ कीर्त्ती पायेँउ, मोड़िय नासब-राज बले ।

तेलंगा भागेँउ पुनहुँ न लागेँउ, काशी-राजा असन चले ॥१६८॥

महु पति^१-पाद भूमि कंपिया, टाप खूँदि खेह सूर भंपिया ।

गौड-राज जितु मान मोड़िया, कामरूप-राज बंदि छोड़िया ॥१११॥

संजिया मासवा गंजिया कश्मिरा, जितिया गुर्जरा लूटिया कुंजरा ।

बंगला भंगला ओड़िया मोड़िया, म्लेच्छिया कंपिया कीर्त्तिया थापिया ॥१२८॥

रे गौड ! थाकति ते हस्ति-यूधाई, पल्लट्टि जूझति पाइक्क इयूहाई !

काशीश राजा सरासार आगेहिँ, की हस्ति की पति की वीर-बगोहिँ ॥१३२॥

§ ३५: शालिभद्र सूरि

कुलि—बाहुबलिरास^१

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखेँउपुरहेँ प्रवेश, दूत बहूतउ राजघरेँ ।

स्वयेँ प्रतिहार प्रवेशु, पाइय नरवर-पद नमेँ ॥६८॥

अलकी भाणिक-बंभ-^२, माँझ बईटउ बाहुबलि ।

रूपे जैसी रंभ, चमरधारि चालैँ चमर ॥६९॥

मडित मणिमय दंड, मेघाडंवर पशर धरिय ।

जसु प्रकटे मुजदंडेँ, जयवंती जयश्री बसिय ॥७०॥

जिमि उदधाचलेँ सूर, तिमि शिर सोहेँ मणि-मुकुट ।

कस्तुरि-कुसुम कपूर-^३, कञ्चूमर महमह-महइ ॥७१॥

^१ प्यावा, पवालि

^२ “भारतीय-विद्या” (वर्ष २, अंक १) में मुनि

जित्तिविजय जी द्वारा पंद्रहवीं-सोसहवीं सबीके हस्तलेखके आधार पर सम्पादित

भलकइ भुंडल कानि, रवि शशि मंडिय किर अवर ।

गंगाजल गजदानि, गाढिय गुण गज गुडउडहैं ॥७२॥

उरवरि मोलियहार, बीरदलय करि भलहसइ ।

नवल अंग सिणगार, खलकए टोडर वामए ॥७३॥

पहिरणि जादर चीर, कलइ करि माल करे ।

गुरूक गुण गंभीर, दीठउ अवर कि चक्कधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठपनि ॥ प्रहिं उगगमि पुरवदिसिहिं, पहिलउं कालिय चक्क ।

धूजिय धरवल अरहरएँ, कसिम कुलाचल-चक्क ॥१८॥

पूठि पिषाणुं तउ दियएँ, भूयवलि भरह-नरिदु तु ।

पिडि पंचायण परदलहैं, हलियसि अवर मुरिदु ॥१९॥

वज्जिय समहरि संचरिय, सेनापति सामंत ।

मिलिय महावर मंडलिय, गाढिम गुण गज्जंत ॥२०॥

गडयडतू गयवर गुडिय, जंगम जिमि गिरि-शृंग ।

सुंड-दंड चिर चालवहैं, वेलहैं अंगिहिं अंग ॥२१॥

गंजइ फिरि फिरि गिरि-सिहरि, भंजइ तरुअर डसि ।

अंकस वसि आवहैं नही, करइ अपार अणसि ॥२२॥

हीसहैं हुसमिसि हृणहणहैं, तरवर तार सोषार ।

खंदहैं खुरलहैं खेडविय, मन मानहैं असुवार ॥२३॥

पाखर पंखि कि पंखइय, ऊडाऊडिहिं जाइ ।

हूंफहैं तलपहैं ससहैं वसहैं, जडहैं जकारिय घाइ ॥२४॥

फिरहैं फेंकारहैं फोरणहैं, फुड फंणालसि फार ।

तरणि-तुरंगम समतुलहैं, तेजिय तरल ततार ॥२५॥

^१ तु हर जगह अलापभेके लिये जोडा हुआ है, जिसे हमने आगे छोड़ दिया ।

भलकै कुंडल कान. रवि-राशि-मंडित जनु अवर ।

गंगा-अस गजदान, ग्रंथित गुण-गज गुडगुं ॥७२॥

उरवरे^१ भोतीहार, वीर बलय करे^२ भलभलै ।

नवल अंग शृंगार, खलकतो टोडर^३ वामए ॥७३॥

पहिरनि चादर चीर, कंकोलह करि माल करे^४ ।

गुरुओ गुण-गंभीर, दीसे^५उ अपर कि चक्रधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठवभि ॥ रवि-उद्गमे^१ पूर्वदिशिहि, पहिले^२इ चालिय चक्र ।

धूनिष धरतल धरपरै, चलिय कुलाचल-चक्र ॥१८॥

पीछे^३ प्रयाणा तब दियो, भुजबलि भरत नरेंद्र ।

पिछि पंचानन परदलहें, धर-तल अपर सुरेंद्र ॥१९॥

वाजिय समभे^४रि संचरिय, सेनापति सामंत ।

मिलिय महाधर-मंडलिय, ग्रंथित गुण गर्जत ॥२०॥

गड़गड़तो गजवर गुड़िय, जंगम जिमि गिरिशृंग ।

शुंड-शंड चिर चालवै^५, भोडै^६ अंगे^७ अंग ॥२१॥

गंजै^८ फिरि फिरि गिरि-शिखर, भंजै^९ तरुवर-डालि ।

अंकुश-वश आवै^{१०} नही^{११}, करै^{१२} अपार अनाहि ॥२२॥

हीसै^{१३} असमस हिनहिनै^{१४}, तरवर तार सुखार ।

स्कंदै^{१५} सुरलै^{१६} खेलइय, मनमाना असवार ॥२३॥

पाखर^{१७} पंख इव पाखै^{१८}रु, ऊछाऊड़ी जाइ ।

हाँकै^{१९} तडकै^{२०} श्वस-धसै^{२१}, जडै^{२२} जकारिय थाइ ॥२४॥

फिरै^{२३} फे^{२४}कारै^{२५} स्फोरणै^{२६}, फुर फेनावलि फार ।

तरल-तुरंगम समतुलै^{२७}, तगजिह तरल ततार ॥२५॥

धनहर्षत धर द्रम-द्रमिय, रह संभई रहवाट ।

रव-भरि गणई न गिरि-गहण, धिर दोभई रहवाठ ॥२६॥

चमर-चिन्च-घल लहलहई, मिलई, मयंगल माग ।

बेगि वहुंता तिहुँतणइ, पायल न लहई साथ ॥२७॥

दखइत दह-दिसि दुसह, (प)सरिय पायक-चक्क ।

अंगोअंगिहिँ अंगमई, अरियणि असणि अणंत ॥२८॥

ठाकई तलपई तलिमिलिई, हणि हणि हणि पमणंत ।

आगलि कोइ न अछइ भलु, जे साहसु जूमंत ॥२९॥

दिसि दिसि दारक संचरिय, वेसर बहई अपार ।

संघ न लाभई सेनतणि, कोइ न लहई सुधि सार ॥३०॥

बंधव बंधवि नवि मिलई, बेटा मिलई न दाप ।

सुअमि न सेवक सारवई, आपिहिँ आप विषाय ॥३१॥

गयकडि चडिऊ चक्कचरो, पिडि पर्यड भुयदंड ।

चालिय चहुँदिसि चलचलिय, दिई देसाहिव दंड ॥३२॥

वज्जिय समहरि द्रमद्रमिय, घण नीनाद निसाण ।

संकिय सुरवरि सग्य सवै, अवरहै कवण पमाण ॥३३॥

ठाक ठूकू अंककणई, गाजिय गयण निहाण ।

षट् षंडह षंडाहिवहै, चालतु चमकिय भाण ॥३४॥

भेरिय-रव-भर तिहुँ-मुयणि, साहित किमई न माइ ।

कंपिय पय-भरि शेष रह, विष्ण साहीच न जाइ ॥३५॥

सिर डोलावइ धरणिहिँ, टंकु टोल गिरिशृंग ।

साथर सयलवि भलभलिय, गहलिय गंग-तरंग ॥३६॥

सर-रवि बुंदिय* मेहरवि, महियलि मेहधार ।

उजु-आलइ आउध तणई, चलई राय संधार ॥३७॥

घड़घड़ंत धर द्रमद्रमिय, रथ रंघै रथवाट ।

रख-भरै गनै न गिरि-गहन, धिर स्तोमै रथ छोट ॥२६॥

धमर-बिन्दु-ध्वज लहलहै, छोडै मदगल मार्ग ।

वेग बहता तेहिकर, पायल न लहै लान ॥२७॥

दड़दड़ंत दशदिशि दुसह, पसरिय पायक-चक्र ।

अंगा-अंगी अंगमै, अरिजने अशनि अनंत ॥२८॥

साकै तड़पै तिलमिलै, "हन हन हन" प्र-भनंत ।

आगे कोइ न अहै भल, जे साहस जूझत ॥२९॥

दिशिदिशि दारक संचरिय, वेसरै वहै अपार ।

शंक न लावै सेनते, कोइ न लहै सुधि सार ॥३०॥

बांधव बांधवै ना मिलै, बेटा मिलै न बाप ।

स्वामि न सेवक सारलै, आपुहि आपउ याप ॥३१॥

गजपति चढेऊ चक्रधर, पीडि प्रचेड भुजदंड ।

चालिय चहुँदिशि चलचलिय, देइ देशाधिप दंड ॥३२॥

बाजिय भेरी द्रमद्रमिय, घनो निनाइ निसान ।

शंकित सुरवर स्वर्ग सब, अपरहै कवन प्रमाण ॥३३॥

ठाक-भूक^१ अर्धकतनई^२, गाजिय गगन निधान ।

षट् खंडहै खंडाधिपहै, चालत कमकिय भान ॥३४॥

भेरी-रख-भर तिहु भुवन, समुहा कतहुँ न माइ^३ ।

कंपित पदभरै शेष रहु, बिन साधेऊ न आइ ॥३५॥

शिरे ओलानै धरपिही^४, टुंक डोल गिरिशृंग ।

सागर सकलउ भलभलिय छल्लिय गंग-तरंग ॥३६॥

खर रवे^५ खुँदिय शेष रवि, महितल मेघन्धार ।

ऋजुकाल आयुषत कर, चलै राज-खंभार^६ ॥३७॥

^१ धावा ^२ खज्जर ^३ आघात ^४ अर्धककेरा ^५ समाइ ^६ स्कंधाधार-सेना-केम्प

मंडिय मंडलवह न मुहें, ससि न कवहैं सामंत ।

राउत राउत-वट रहिय, मनि मुंभहैं मतिवंत ॥१८॥

कटक न कवणिहिं भरतनूँ, भाजइ भेदि भंडंत ।

रेलहैं रयणायर जसलें, राजोरणि नभंत ॥१९॥

ठगणि १० । तउ कोपिहिं कलकलिउ कालके(र)य कालानल,

कंकोरइ कोरंनियऊ करमाल महाबल ।

काहुल कलथलि कलगलंत मउडाधा मिलिया,

कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिं पर जसिया ॥१२०॥

हुउउ कोलाहुल गहुगहारि, गयणंगणि गज्जिय,

मंचरिया सामंत सुहुड सामहणिय सज्जिय ।

गडगडंत गय गडिय गेलि गिरिवर सिर ढालई,

गुगलीय गुलणई चलंत करिय ऊलालई ॥१२१॥

जुउई भिउई भठहुडई खेदि खडखडई खडाखडि,

घणिय बुणिय धोसवई दंतु दी त (डातडात)डि ।

खुरतलि खोणि खणति खेदि तेजिय तरवरिया,

समई वसई धसमसई सादि^१ पय सई पाषरिया ॥१२२॥

कंधगल केकाण कवी करउई कडियाला,

रणणई रवि रण बखर सखर घण घाघरियाला ।

सीचाणा बरि सरहैं फिरई सेलई फोकारई,

ऊडई आडई भंगि रंगि असवार बिचारई ॥१२३॥

वसि वामहैं बडहुडई धरणि रवि-सारथि गाढा;

जडिय जोघ जडजोड जरद सभाहि सनाढा ।

पसरिय पायल पूर कि पुण रलिया रयणायर,

लोह लहर बरवीर वयर वहुवटिई भंवायर ॥१२४॥

भंडित मंडलपतिन मुखें, शशि न जवई सामंत ।

राउत^१ राउतपन-रहिय, मनें मोहैं मतिवंत ॥३८॥

कटकन कौनेहि भरतकौ, भागी भीडिभंडंत ।

रैलें रतनाकर युग, रानारान नमंत ॥३९॥

ठवनि १० । तब कोपेहि कलकलेंउ कालकेरइ कालानल,

कंकोलइ कोरबिउ करमाल महाबल ।

काहल कलकलें कलकलंत मुकुटाधर मिलिया,

कलहकेर कारण कराल कोपेहि पर ज्वलिया ॥१२०॥

भयेउ कौलाहल गडगडाट, गगनगण गर्जिय,

संचरिया सामंत सुभट सावनिय सज्जिय ।

गडगडंत गज गुडिय गैल गिरिवर-शिर द्वारें,

गुग्गलीय हस्तिधि चलंत करिय उल्लासै ॥१२१॥

जुडैं भिडैं भट-भटहि खेदि खड़खड़ैं खड़ाखड़,

धनियधुनिय धूसवैं वंत दोऊ(त) तड़ातड़ ।

खुरतर क्षोणि खनंत खेदि त्याजिय तरवारिया,

अमैं वसई धसमसैं सादि पदसंग पाखरिया ॥१२२॥

स्कंवाप्रेखल लगाम-करई कडियाली,

रणगैं रवि रण बखर सखर बन धावरियाला ।

सिंचाना^१ वरसरई फिरें सेलें फुवकारें,

ऊड़ैं आड़ैं अंगें रंग असबार विचारें ॥१२३॥

बसि बामैं घड़घड़ैं धरणि रवि-सारथि गड्ढा,

जटित जोष जटजूट जरख सभाह सनझा ।

प्रसरिय पायल पूर कि पुनि रलिया रतनाकर,

लोह लहर बरबीर बैर बघवटैं आया कर ॥१२४॥

रणभिय रवि रण-तूर सार श्वक प्रहृष्टहिया,

डाक-दूक-दम-दमिय डोल राउत रह रहिया ।

नेच निसाणनिनादि (निनी) नीभरण निरंभिय,

रणभेरी भुंकारि भारि भुयबलिहिं बियंभिय ॥१२५॥

चल चमाल करिमाल कुंत कइतल कोदंड(उ),

भलकइँ साबल सबल सेल हल मसल पर्यंड(उ) ।

सिमिणि गुण टंकार सहित बाणावलि ताणई,

परशु उलाहई करि वरहई भाला ऊलाहई ॥१२६॥

तीरिय लोभर भिदपास डवतर कसबंधा,

सांनि सकति तरुआरि छुरिय शत्रु नागतबंधा ।

हय खर रवि ऊछलिय खेह छाइय रविभंडल,

घर घूजइ कलकलिय कोल कोपिउ काहहुल^१ ॥१२७॥

टलटलिया गिरि टंक टोल सेचर खलभलिया,

कडडिय कूरम कंध-संधि सडयर कलहलिया ।

चलिय समहरि सेस सीसु सलसलिय न सक्कइ,

कंचणगिरि कंधार भारि कमकमिय कसक्कइ ॥१२८॥

कंपिय किन्नर कोडि पडिय हरगण हडहडिया,

संकिय सुरवर सगि सयल बाणव दडवडिया ।

अतिप्रलंब सहकई प्रलंब बलचिब चहूँ दिसि,

संचरिया सामंत-सीस सीकिरिहिं कसाकसि ॥१२९॥

जोइय भरह-नरिंद कटक मूँछह बल चल्लइ,

कुण बाहवलि जेउ बरख मई सिजै बलबुल्लइ ।

जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसंतु न छूटइ,

जइ बलि जंगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अछूटइ ॥१३०॥

रणणिय रवि रण-सूर्य तार अंबक अह्वहिथा,
 डाक-दूक डमडमिय डोल राउत^१ रथ रहिया ।
 नेजों निधान निनाद (निनी) निरंरन् अरंभिय,
 रणभेरी हुंकार भार भुजबले^२हिं विजृम्भिय ॥१२४॥
 चम-चमाल^३ करवाल कुत कडतल कोदंडउ,
 भलक^४ सागर सबल शोल हल मुशल प्रचंडउ ।
 शारंग गुण टंकार-सहित बाणावलि तानै,
 परशु उलाल करघरै^५ भाला ऊलालै ॥१२५॥
 तीरिय तोमर भिक्पास डबतर कसबंभा,
 सांगि शक्ति तरवार धुरी ग्रह नाग त्रिवंघा ।
 हयं खर रवे^६ ऊछलिय, सेह छाइय रविमंडल,
 धरौं कपै कलकलिय कोल कोपे^७उ काहुडल ॥१२७॥
 टलटलिया गिरि टंक टोल खेचर खलबलिया,
 कड़ड़िय कूरम स्कंध-संधि सागर भलभलिया ।
 शालिय समरा शेष-सीस सलसले^८उ न सकके,
 कंचनगिरि कंधार भार कपकपिय कसकके ॥१२८॥
 कपिय किछर-कोटि पड़िय हर-गण हड़हड़िया,
 शंकिय सुरवर स्वर्गे^९ सकल दानव दड़वड़िया ।
 अतिप्रलंब सहकै प्रलंब बल-चिन्ह चहुँ दिशि,
 संचरिया सामंत-शीर्ष सीकरे^{१०}हिं कसाकसि ॥१२९॥
 जोये^{११}उ भरत नरेन्द्र कटक भूछहें बल डाले,
 को बहुबलि जो गरव मोहि^{१२}हिं संगे बल बोलै ।
 यदि गिरिकंदर-विबरै^{१३} कीर पड़ठंत न छूटै,
 यदि थल जंगल आइ कंसहु तो भरे असूटै ॥१३०॥...

गथ आगलिया गलगलंत दीजई हय सासना,
 तूई हसमस भरहराय केरा आवासन ।
 एक निरंतर बहई नीर एक ईवण आणई,
 एक आससिई पर-सर्गु पंगु आणिउं तूण ताणई ॥१३३॥
 एक उत्तारा करिय तुरय तलसारे बाँधई,
 एक मरडई केकाण खाण इकि चारे रीधई ।
 एक भीलिय नयनीरि तीरि तेतिय बोलावई,
 एक वारु असवार सार साहण बेलावई ॥१३४॥
 एक आकुलिया तापि तरल तडि चडिय भोपावई,
 एक गूहर साबाण सुहृद अलरा दिवरावई ।
 —भरतेश्वर बाहुवली-रास

१३६. सोमप्रभ

काल—११८५ । देश—अनहिलवाडा (गुजरात) । कुल—पोरवाल

१-नीति-वाक्य

बसइ कमलि कल-हंसी जीवयया असु भित्ति ।
 तसु-पक्खालण-अलिण होसइ अस्तिव-निवित्ति ॥ प्रस्ताव १ (२६)
 आभरण-किरण दिप्पंत देह । अहरोकय सुरबहु-स्वरेह ।
 घण-कुंकुम-कहम घर-दुवारि । सुप्यंत-वल्लण वच्चंति तारि ॥ (३२)
 तीयह तिभि पियारई, कलि-कज्जलु-सिदूर ।
 अन्नइ तिभि पियारई, दुद्धु जेवाइउ तूर ॥ (३२)
 बेस विसिद्धइ चारियइ, जइवि भणोहर-भत्त ।
 गंगाजल-पक्खालियवि, सुणिहि कि होइ पवित्त ॥

गज आगड़िया गलगलंत दीजै हय लास-न,
 हूँ बसभस भरतराय केरा आवासा ।
 एक निरंतर लाव नीर ऐक ईधन आने,
 एक आलसें हिं पर तनु पग आने उ तृण ताने ॥ १३३ ॥
 एक उतारा करिय तुरग हयसारे बांधै,
 एक रगड़ बोड़ा हें खान ऐक चारा राधै ।
 एक पकड़ नदनीर तीर सो स्त्रिय बोलावै,
 एक बार असवार सार साधन वेलावै ॥ १३४ ॥
 एक आकुलिया तापे तरल तड़ि-चड़िय भोपावै,
 एक गूदर, साबान सुभट चौरा देवरावै ।
 —बाहुबलीरास

§ ३६. सोमप्रभ

वैश्य—जैन साधु (महन्त) । कृति—कुमारपाल-प्रतिबोध

१—नीति-वाक्य

वसइ कमल कलहंसी, जीव-दया जसु चित्त ।
 तसु प्रकाशन जलहीं, होइह अशिव-निवृत्ति ॥ (पृ० २६)
 आभरण-किरण दीप्यंत देह । अधरीकृत सुरबधु-रूपरेख ।
 यन कुंकुम-कर्दम घर-दुवार । लिपटंत चरण नाचति नारि ॥ (३२)
 तीयहैं तीन पियारई, कलि-काजल-सिंदूर ।
 अन्धउ तीन पियारई, दूब-जमाई-दूर्य ॥ (३२)
 नेशविशिष्ट हिं बारियत, यदपि मनोहर गात्र ।
 गंगाजल प्रक्षालियउ, सुनह कि होइ पवित्र ॥

^१ हाथन ^२ बिदा करें । ^३ तंदू ^४ Gaikwad's Oriental Series; XIV, 1920. १४०२ ई० की हस्तलिखित (उत्तरी भारतकी अस्तिम) ताल-पोथी

नयनिहि रोयइ मणि हसइ, जणु जाणइ सउ तत्तु ।

वेस विसिद्धु तं करइ, जं कट्टह करवत्तु ॥ (८६)

पडिवज्जिवि थय देव गुरु, देवि सुपत्तिहि दाणु ।

विरइवि दीण-अणुद्धरणु, करि सकलउं अम्माणु ॥ (१०७)

पुत्तु जू रंजइ जणय-मणु, थो आराहइ कंतु ।

मिन्नु पससु करइ पट्टु, इहु भल्लिम पज्जंतु ॥

भरगय वसह पियह उरि, पिय चंपम-पह-देह ।

कसवट्टइ दिमिय सहइ, ताइ सुवअह रेह ॥ (१०८)

हियहा संकुडि मिरिय जिम, इदिय-भसरु निवारि ।

जित्तिउ पुज्जइ पंगुरणु, तित्तिउ पाउ पसारि ॥ (१११)

संसय-तुलहि चडावियउं, जोविउ जान जणेण ।

ताव कि संपइ पावियइ, जा चित्तविय मणेण ॥ (१४६)

रिद्धि विहूणह माणुसह, न कुणइ कुवि सम्माणु ।

सउणिहि मुच्चइ फलरहिउ, तरुवर इत्थु पमाणु ॥

जइविहु सूर सुखु विअक्खणु । तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु ।

पुरिस गुणागुण-मुणण-परम्मुह । भहिलह बुद्धि पयंपहिं जंबुह ॥ (३३१)

रावणु जायउ जहिं दियहि, दह-मुह एक-सरीह ।

चिताविय तइयहिं जणणि, कवणु पियावउं खीर ॥ (३६०)

२-सामन्त-समाज

(१) मंत्री-पुत्र स्थूलभद्र

पुरि चिट्ठइ पाडवियुत्त नाम् । धण-कण-सुवअ-रयणाभिरामु ।

तहिं तवमु नंद पालेइ रज्जु । पडिवक्ख-महीहर-हलण-वज्जु ॥१॥

मुणि पत्त-कप्प-जल-सित्तु गत्तु । बालसणि असु रोगेहि चत्तु ।

तसु कप्पय मंतिहि वंसि हूओ । सभबालु^१ मति निवक्खसु भूओ ॥२॥

नयनें रोनें मनें हँसै, अनु जानै सब तत्त्व ।

वेश किशिष्टहँ सो करै, जो काठहँ करपत्र ॥ (८६)

प्रतिपादन धर्यो देव गुह, देव सुपात्रहँ दान ।

विरचित्र दीन-जनोद्धरण, करि सकलउँ अप्पान ॥ (१०७)

पुत्र जो रंजै जनक-मन, स्त्री आराधै कंत ।

भृत्य प्रसन्न करै प्रभू, मही भला परि-वन्त ॥

मर्कत-वर्ण प्रियह उरै, प्रिय चंपक-प्रभ देह ।

कसौटियहँ दीन्ती सोहँ, नारि सुवर्णहँ रेख ॥ (१०८)

हियरा संकुचि कच्छु जिमि, इन्द्रिय-प्रसर निवारि ।

जैतै पूरै प्रावरण, तैतै पाव पसार ॥ (१११)

संशय-तुलहिं बडाबियड, जीवित जान जनेहिं ।

तब का संपत् पाइहँ, जो चितविय मनेहिं ॥ (१४६)

अस्त्रि-विह्वनहँ मानुषहँ, न करै कोइ सम्मान ।

शकुना मुँचै फल-रहित, तरुवर इहाँ प्रमाण ॥

यद्यपि शूर सुरूष विचक्षण, तदपि सेवै लक्ष्मि प्रतिक्षण ।

पुरुष गुणागुण-भजन-नराङ्गमुख, महिलहँ वृद्धि प्रजल्मै जो बुध ॥ (३३१)

रत्नवण जायेउ जसु दिनहिं, दशमुख एक शरीर ।

चितविया सहिया जननि, कौन पियाग्रउं क्षीर ॥ (३६०)

२-सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलिभद्र

पुत्रि आहै षाटलिपुत्र नाम । बन-कन-सुवर्ण-रतनाभिराम ।

तहँ नवम नव पालेह रज्ज । प्रतिपक्ष-महीधर-दसन-वध ॥१॥

मुनिपात्र-कल्प जल-सिक्त गात्र । बालत्वै जसु रोगेहिं त्यक्त ।

तसु कल्पक मंत्रिहि वंश हूअ । शकटादि मंत्रि नृप-चक्षु-भूत ॥२॥

तसु धूलभबु सुओँ आसु पठमु । मयणुव्व मणोहर रुव परमु ।

जो जम्म दियहि देबयहिं वुत्तु । इह होही चउदह-मुव्व-जुत्तु ॥३॥

सिरिउत्ति विइज्जउ आसि पुत्तु । नय-विणय-परक्कम-वुद्धि-जुत्तु ।

तह जल्ल-पमुह पसिद्ध पत्त । मेहाइ गुणिहिं भइणीउ सत्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य

कंचण कलसिहि जणि फलिय, सहइ लच्छिलय चित्त ।

कोसा बेसा पुव्वकय, सुकय जलिण जेँ ऐव सित्त ॥६॥

रक्खालंकिय सयल-तणु, उज्जल-वेस-विसिट्ट ।

नं सुर-रमणि विमाण-गय, जोयण-विसइ-पविट्ट ॥७॥

जसु वयण विणिज्जिउ नं ससंकु । अप्पाणु निसिहिं दंसइ स-संकु ।

जसु तयण-कंति-जिय-सज्ज-भरिण । वणवासु पवन्नय नाइ हरिण ॥८॥

जसु सहहिं केस-वण-कसण-वन्न । नं छप्पय भुह-पंकय-पवन्न ।

भुवणिक्क-वीर-कंदप्प-वणुह । सुंदरिम विडंबहि जासु भमुह ॥९॥

जसु ग्रहर हरिय-सोहग-सार । नं विट्ठुम^१ सेवइ जलहि सार ।

जसु दंत-पंति सुदेह रुंदु । नहु सीओसहे तुवि लहइ कंदु ॥१०॥

असणंगुलि पल्लव नह पसूण । जसु सरल-भुयउ लयाउ नूण ।

वण-पीण-तुंग-थण-भार-सत्तु । जसु मज्झु तणुत्तणु नं पवत्तु ॥११॥

(३) वसन्त

ग्रह पत्तु कयाइ वसंत समओँ । संजणिय-सयल-जण-चित्त-पमओँ ।

उल्लासिय-ल्लस-पवाल-जालु । पसरंत-चारु-वच्चरिउव्व मालु ॥१॥

अहिं वण-लय-पयडिय कुसुम-वरिस । महु-कंत समागय जणिय हरिस ।

पक्खमाण-वलिर-नवपल्लवेहिं । नच्चंति नाइ कोमल-करेहिं ॥२॥

तसु स्थूलिभद्र सुत रहेंउ प्रथम । मदन हव मनोहर रूप परम ।

जेहि जन्मदिवस देवतहि उक्त । ई होइहैं चौदह पूर्व^१ युक्त ॥३॥

श्री सिरिय दुतियो अत्रेंउ पुत्र । नय-विनय-पराक्रम-बुद्धि-युक्त ।

तिमि यक्षा-प्रमुख प्रसिद्धि प्राप्त । मेघादि गुणेंहि मगिनीउ सप्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य

कंचन कलशेंहि जनु फटिक, सोहैं लक्ष्मलय चित्र ।

कोशा वैश्या पूर्वकृत, सुकृत जलेंही^२ सिक्त ॥६॥

रतनालंकृत सकल तनु, उज्ज्वल वेश-विशिष्ट ।

जनु सु-रमणि विमान-भत, लोचन-विषय प्रविष्ट ॥७॥

जसु वदन विनिर्जित जनु शशांक । अप्पान निशिहिं दसैं^३ स-सक ।

जसु नयनकांति जित लज्ज भरेहिं । वनवास सिचारेउ मनहु हरिन ॥८॥

असु सोहैं^४ केश घन-कृष्ण-वर्ण । जनु षट्पद मुखपंकज-प्रपन्न^५ ।

भुवनकक्षीर कंदर्प धनुह । सुंदरिम विडंबे जासु भउंह ॥९॥

जसु अघर वरिय सीभाग्य-सार । जनु विद्रुम सेवै जलधि खार ।

जसु दंत-पंक्ति सुंदर रुंद^६ । नख शीतोषध^७-तोउ लहै कंद ॥१०॥

हस्तांगुलि-पल्लव नखप्रसून । जसु सरल भुजउ लताउ नून^८ ।

घन-पीन-तुंग-यनभार-सक्त । जसु मध्य^९ तमूत्तहैं जनु प्रवृत्त ॥११॥

(३) वसन्त

पुनि आब कदाचि वसंत-समय । संजनिय सकल जन चित्त प्रमद ।

उल्लासिय वृक्ष-प्रवाल-जाल । प्रसरंत चारु चर्चरि^{१०}ब माल ॥१॥

जहैं वनलतां प्रकटिय कुमुम-वर्ष । मधुकांत समागत जनित-दुर्ष ।

पवमान चलिय नवंपल्लवेहिं । नाचंति न्याइ^{११} कोमलकरेहिं ॥२॥

^१ अर्ध-मास

^२ वित्तृत

^३ मंत्रि पुत्र स्थूलिभद्रकी प्रेयसी वैश्या कोशा

^४ चंद्र

^५ निरुद्ध

^६ कटि

^७ प्राप्त

नव-पल्लव-रत्न-असोत्र-विडंबि । महुसच्छिहि सउं परिणयणु भडवि ।

जहिं रेहहिं नाइ कुसुम-रत्न । बत्वेहिं नियसिय सयल-नात्त ॥३॥

हसइ भव फुल्ल-मल्लिख-गणेहिं । नच्चइ^१ पवण केविर-वणेहिं ।

चायइ ममरावसि रविण नाइ । जो सयमवि मयणुम्मत्तु भाइ ॥४॥

धण मयण-महुसवि, पिज्जंतासवि, तहि वसंति जणचित्तहरि ।

कम-विसय-भससिहिं नीओ^२ वयं सिहिं, बूलभदु कोसाहि^३ घरि ॥५॥

(४) (वेश्या-) प्रेम

अवरुप्पइ अणुराय गुणु, दोहिहिं पयडंतीहिं ।

बूलभइ कोसहें पडमु, किउ रूहत्तणु तीहिं ॥१२॥

निम्मत्त-सुत्तिय-हारमिसि, रइय भउक्कि पहिट्टु ।

पडमु पविट्टइ हिय तसु, पच्छा भवणि पविट्टइ ॥१३॥

चंदणु दंसित हसिय मिसि, इय कोसहिं असमाणु ।

घरि पविसंतइ तासु किउ, निय अंगिहि सम्माणु ॥१४॥

अक्ख-विणोइण ते गमहिं, जा दुम्वि दिण-सेसु ।

ता पच्छिम-दिसि कामिणिहि, अंकि निविट्टइ दिणेस ॥१५॥

सल्ल-कला-संपल्लु रसिय, - जण-संतोसु कूणत्तु ।

अमयमयइ कर-फंसि-सुहि, तहि कुम्भणि वियसंतु ॥१६॥

पारदु संगीउ तहि, कोस वेस नच्चिय वियक्खणि ।

रंजिय-मणु घणु दविणु, बूलभदु तसु देइ तक्खणि ॥

तयणंतइ अणुरत्तमण, मयण-पलांकि निसभं ।

माणिय-मयण-विलास-सुह, दुम्वि निह-पवन्न ॥१७॥

मवपल्लव-रक्त-अशोक बिटप । मधु लक्ष्मिहिँ सँग परिणयहँ करव ।

जहँ राजै नारि 'कुसुम-रक्त । वस्त्रेहिँ आच्छादिय सकल-गात्र ॥ ३॥

हसई ह्व फुल्ल-मल्लीगणेहिँ । नाचइ पवन-कंपिर-वनेहिँ ।

गावै भ्रमरावलि-रवेहिँ न्याइ । जो स्वयमपि मदनोन्मत्ता भाइ ॥ ४॥

घन मदन-महोत्सवे । पीयतासव, तहँ वसंत जनचित्तहरे ।

किय विषय प्रशंसै, निजहिँ वयस्यहिँ, धूलभद्र कोशाके घरे ॥ ५॥

(४) (वैश्या-) प्रेम

अपरापर अनुराग गुण, दोउहिँ प्रकटतेहिँ ।

धूलभद्र-कोशाहँ प्रथम, किउ डूतीत्वहँ तेहिँ ॥ १२॥

विर्मल मोलिय हार-मिस, रचित चतुष्क प्रहृष्ट ।

प्रथम बईठेई हिय तंसु, पाछे भवन प्रविष्ट ॥ १३॥

चंदन दर्शउ हसित-मिस, ई कोशाहिँ अ-समान ।

घर प्रविशतहँ तासु किउ, निज अंगहिँ सम्मान ॥ १४॥ . . .

अकलिनोदेहिँ बीतवै, जो दोऊ दिन शेष ।

तो पश्चिम दिश-कामिनिहँ, अके निविष्ट दिनेश ॥ १५॥

सर्वकला-संपन्न रसिक, -जन-संतोष करत ।

अमृतमयइ कर-पशं सुखे, तहँ कुसुमिनि जिकसंत ॥ १६॥

प्रारंभेउ संगीत तहँ, कोश वेश नाच विचक्षणी ।

रंजित मन घन द्रविण, स्यूलभद्र तेहिँ देइ तत्त्वणी ॥

तदनंतर अनुरक्त मन, मदन पलंग निषण्ण ।

माणिक मदनविलास-सुख, दोऊ निद्रापन्न ॥ १७॥

‘वन्मई धा केसरिया (कुसुमी) रंगमें रंगे

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हूँ शकिय सयलु दिणु, तुह विरहगि किलंत ।

थोडह जलि जिम मच्छलिय, तल्लोविल्लि करंत ॥

महँ जाणिछँ पिय-विरहियह, कवि बर होइ विधालि ।

न करि भयंकु वि तह तवइ, जह दिणयर खयकालि^१ ॥ (८६)

३-कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

एवंति भणिय तो थूलभदु । चितेइ तत्थ परमत्थ भदु ।

मणुयत्तह साह ति-वग्ग-सिद्धि । तिहि जिग्ग-हेउ अहिगार-रिद्धि ॥४७॥

जं सत्थ राय-चित्ताणुकूल । आरंभ कणतह पावमूल ।

कउ मंतिहि जायइ विमलधम्म । जिणि लब्धइ सासउ सिद्ध-सम्म ॥४८॥

पर-पीड-करेविणु जं पभूअ । गिरहहिं निउ गिरहि रुव जलूअ ।

नरनाहिण धिप्पइ नपि दब्बु । निप्पोलिवि सहँ पाणेहिं सव्वु ॥४९॥

पर-वसहँ सव्वु भय-भभलाहँ । अन्नअ-पन्नोअण वाउलाहँ ।

अहिगार-जणहं (पुणि) कामभोअ । संभवहिं वियंभिय गुरु-पमोय ॥५०॥

कोसा-धर वारस-वच्छरेहि । विसइहि न तित्तु लोउत्तरेहिं ।

वहु रज्ज-कज्ज-वविस्सत्त-चित्तु । किं संपइ होहिसि मूढ-चित्तु ॥५१॥

पइ जम्म-सरणु कल्लोलमत्तु । भवजलहि भमिवि मणुअत्तु पत्तु ।

परिहरिवि विसय-फलु तासु लेहि । किं कोडी कवडिहँ हारवेहि ॥५२॥

इम विसय-विरतउ, पसमपमतउ, थूलभदु संविग्गमणु ।

सिव-मुक्क-कयायर, भवभयकायर, सहइ चित्ति दुच्चर चरणु ॥५३॥

X

X

X

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हूँ रहिया सकल दिन, तब विरहाग्नि किलाँत ।

थोढ़इ जलै जिमि माछरी, तल्लोबिल्ल करै ॥

मैं जानेँ उँ पिय विरहियह, कोइ धरौँ होइ बिकाल ।

नतरु मयंकउ तिमि तपै, जिमि दिनकर क्षयकाल ॥ (८६)

३-कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

ऐसोइ भनिय तब थूलभद्र । चितेइ तहाँ परमार्य भद्र ।

मनुजत्वह सार त्रिवर्ग-सिद्धि । तेहि विघ्नहेतु अधिकार-शुद्धि ॥४७॥

जो तहाँ राज-चित्तानुकूल । आरंभ करैतह पापमूल ।

को मंत्रिहिँ उपजै विमलधर्म । जेहिँ लभै शाश्वत सिद्ध-धर्म ॥४८॥

परपीढ करेइय जो बहूत । ग्रहणै निज गिरही रूप जलौक ।

गरनाहेहिँ दीजै जोउ द्रव्य । निष्पीडिब संग प्राणीहिँ सर्व ॥४९॥

परबशा सर्व-भय-विह्वलाह । अन्यान्य-प्रयोजन-व्याकुलाह ।

अधिकारजनहै (पुनि) काम-भोग । संभवै विजुँ भिय गुण-प्रमोद ॥५०॥

कोशा-धर बारह बत्सरेहिँ । विषयहिँ न तृप्ति लोकोत्तरेहिँ ।

बहुराज्य-कार्य-अक्षिप्त-चित्त । का संप्रति होइसि मूढ-चित्त ॥५१॥

तैं जनम-मरण-कल्लोल मत्त । भवजलधि अमिय मनुजत्व प्राप्त ।

परिहरिय विषय-फल तासु लेहि । का कोटी कौडिहिँ हारबेहि ॥५२॥

इमि विषय-विरक्तउ-प्रशम-प्रसक्तउ, स्थूलभद्र संविगमना ।

शिव-सुख-कृतादर, भवभय कातर, जहै चिते दुख-वर-वरना ॥५३॥

×

×

×

(२) बलु जीवज जुवधणु धणु सरीर । जिय कमलबलमग-विलग नीर ।

अथवा इहतिथ जं किंपि वत्थु । तं सम्बु अगिज्जु हहा धिरत्थ ॥

पिह भाय भाय सुकलसु पुत्तु । पट्ट परिणणु मित्तु सिणेह-जुत्तु ।

पहवंतु न रक्खइ कोवि मरणु । विणु धम्मह अत्तु न अत्थि सरणु ॥

रायावि रंक्क समयो वि सत्तु । जणओ तणऊ जणणि वि कलत्तु ।

इह होइ नठव्व कुक्कम्मवंतु । संसार-रंगि वहुरुब्बु जंतु ॥

एक्कत्तलउ पावइ जीवु जम्मु । एक्कत्तलउ मरइ विठत्त-कम्मु ।

एक्कत्तलउ परमवि सहइ दुक्खु । एक्कत्तलउ धम्मिण लहइ मुक्खु ॥

अहं जीवइ एडवि अत्तु वेह । तहिं किं न अत्तु धणु सयणु गेह ।

जं पुण अणत्तु तं एक्कचित्त । अज्जेसु नाणु दंसणु चरित्तु ॥

वस-वंस-सहिर-वम्मट्ठि-वड । नउ-छिह-भरत-मलावणड ।

असुइ-स्तल्ल-नर-थी-सरीर । सुइ बुद्धि कहवि मा कुणसु श्रीर ॥

जह मंदिरि रेणु तलाइ वारि । पविसइ न किंचि ढक्किय दुवारि ।

पिहियासवि जीवि तहा न पावु । इय जिणिहि कहिउ संवर पहाव ॥

अहिं जम्मणु मरणु न जीवि पत्तु । तं नत्थि ठाणु बालमग-भत्तु ॥ (३११)

(२) इन्द्रिय भारना

नहु गम्मु अगम्मु व किंपि गणइ । अब्बंभ कलुस अहितास कुणइ ।

सकलत्ति वि हुंतइ महइवेस । पररमणि गमणि पयडइ किलेस ॥१२॥

सिसिइम्मि निवाय घरगिसयडि । धण-वुसिण-तेल्ल-वहुवत्थ-सवडि ।

वंदण-रस-कुसुम-जलावगाह । धारागिहि पिभि महइ नाइ ॥१३॥

पाउसि पय-पंक-पसंग तद्दु । वंछइ अन्धिइ भवणयलु लद्धु ।

जइ कुणइ विविह-विसयाणुवित्ति । तेह विहु न एहु पावेइ तित्ति ॥१४॥

एक्कवि फासिदिउ, वुहयण निविउ, करइ किंपि दुक्करिउ तिहि ।

नानाविहु अम्मिहि, पीडिओ कम्मिहि, सहसि विहंण सरमि जिह ॥१५॥

(२) चल जीवन धोवन घन शरीर । जिमि कमसदलाय-विसम्भ नीर ।

अथवा इहाँहिं जो किछुव वस्तु । सो सर्व अनित्य "हृहाधिम्"अर्थ ॥

पितु माय भाय सुकलत्र पुत्र । प्रभु परिजन मित्रसिनेह-युक्त ।

सबकै ना रोकिय केहु मरन । किनु धर्महु अहै न अन्य करण ॥

राजाउ रंक स्वजनऊ शत्रु । जनकउ तनयउ जननी कलत्र ।

इह होइ नटव्य कुकर्मवन्त । संसार-रंगे बहुल्य जंतु ॥

एकल्लै पावै जीव जन्म । एकल्लै मरै करीय कर्म ।

एकल्लै परभवै सहै दुःख । एकल्लै धर्मोहिं लहै मूर्ख ॥

अहै जीवहु ईहउ अन्य देह । तहै का न अन्य धन स्वजन गेह ?

जो पुनि अनन्य सो एक चित्त । आर्याहिं ज्ञान-दर्शन-भरिज ॥

वशो-भांस-सुधिर-वर्म-नस्थि-बद्ध । नौ छिद्र भरंत मलावनद्ध ।

अशुचिस्वरूपनर-स्तिय-शरीर । शुचिबुद्धि कहवना करसु वीर ॥ . . .

जिमि मंदिरें रेणु तलायें वारि । प्रविष्टी न किछू डंके दुवारि ।

ढेंकि आसव जीवें तथा न पाप । इमि जिनहिं कहिउ संवर-अभाव ॥

जहें जन्म न मरण न जीव पाय । सो नाहि धान बालाग्र-मात्र ॥ (पृ० ३११)

(२) इन्द्रिय शत्रु

ना गम्य अगम्यउ किछुउ गर्नै । अकहा कलुष अभिलाष करै ।

सकलत्रहु होतेउ चहै बेश । पररमणि-गमन प्रकटेउ किलेश ॥ १२ ॥

धिशिरेहिं नि-वात थरेउनि सिगडि । धन-धुसुण-तेल बहुवस्त्र सँपडि ।

चंदन-रस-कुसुम-जलावगाह । धारागृहे श्रीष्मे जहै न्हाय ॥ १३ ॥

पावस पदपंक प्रसंग स्तब्ध । बाँछै अच्छिद्र भवनतल लब्ध ।

जो करै विविध-विषयानुवृत्ति । तेहिं किनु न एहु पावही तृप्ति ॥ १४ ॥

एकउ फरसेन्द्रिय बुधधन निदिय करै केतक दुस्वरित तेही ।

नानाविध जन्मेहिं पीडिय कर्मोहिं सहस विहंवन स्वामि जेही ॥

तह भनखभनख-विवेय-मूहु । रस-विसय-गिद्धि-दोलाधिरुहु ।

अविभाविय पेयापेय बरु । रसणुवि कुणैह बहुविहु अणत्तु ॥१६॥

अं हरिण-ससय-संदर-बराह । जणि संचरंत अनयाबराह ।

तण-सलिल-मत्त-संतुहु चित्त । भम्मर-रव-सवणुअंत-नेत्त ॥१७॥

हिंसंति केवि मिगया पयट्ट । पसरंत - निरंतर - तुरयधट्ट ।

कर-कलिय-कुंत-कोदंड-बाण । संसय-तुल-रोविय-नियय-पाण ॥१८॥

अं गहिरि सलिल बियरंत मीण निक्कमण केवि निहणहिं निहीण । (४२६)

अं लावय-तिसिरि-दहिय-मोर । भारेंति अयोसवि केवि घोर ॥१९॥

तं रसणह बिलसित, दुक्कय कलुसित, तुम्हहं किसित कितियइ ।

अं बरिस-सएणवि, अइनिउणेणवि, कहवि न जंपित अक्कियइ ॥२०॥

(३) नरक-भय

तह नरयवासि अं परवसेण । महं नरयवाल-मुगुर-हएण ।

अबगूहु वज्ज-कंटय-सणाहु । सिबलितरु-जणिय-सरीर-बाहु ॥२१॥

कंदंतु कलुणु अं हडिण धरवि । खाविय नियमंसु भडित्तु करवि ।

अं वेयण-विहरिय-सज्ज-गत्तु । हउं पायउं तडयउं तंनु तत्तु ॥२२॥

अं पूय - रहिर - बस - बाहिणीइ । मज्जाविउ देयरणी - नई ।

अं तत्त-पुलिणि चलउव्व भुम्भु । अं सुलवेह दुहु पत्तु दुम्भु ॥२३॥ (४३२)

अं वज्ज-अलण-आलोलि-तत्त । महं लोहमइय महिलावसत्त ।

अं महि हिम्भु कुसई खंडु करवि । उट्ठिओ खणेण पारउव्व मिलिचि ॥२४॥

अं कुंभपाकि पक्कओ परदधु । अं चंड-तुंड-पक्कीहि खदधु ।

अं तिलुव निपोलित लोहजंति । अं बसहिं ब वाहित भरि महंति ॥२५॥

अज्जोडिओ अं सिचउव्व सिलहिं । करवत्ति भित्तु अं कौं कयलहिं ।

अं तलेउ कठल्लिहिं पप्पडुव्व । सत्थेहि त्रिभु अं चिन्मडुव्व ॥२६॥

—कुमारपाल-प्रतिमोच^१

तिमि भक्ष्या-भक्ष्य-विवेक-मूढ । रस-विषय-गूढि-दीताधिकूढ ।

विनु सोचे पेयापेय वस्तु । रसनउ करेइ बहुविध अनर्थ ॥१६॥

जो हरिन-शशक-सांभर-वराह । बनें संवरंत अकृतापराध ।

सृण-सलिल-मात्र संतुष्ट चित्त । ममंर रव-अवण-रोद्भात-नेत्र ॥१७॥

हिसंति केउ मृगया-प्रवृत्त । प्रसरंत निरंतर तुरग यट्ट ।

करकलित कुंत कोधंड बाण । संशयतुलां रोषिय निजय प्राण ॥१८॥

जो गहिर-सलिल विचरंत मीन । निष्करण केउ निहनें निहीन ॥ (४२६)

जो लावक तित्तिर दधिक मोर । मारंति अदोषउ केउ घोर ॥१९॥

सो रसनह-विलसिय दुष्कृत-कलुषित तुम्हहें कीर्त्तित कीर्त्तियई ।

जो वर्ष शतेहें, अतिनिपुणेहें, कतहें न जल्पन शकियई ॥२१॥ (पृ० ४२७)

(३) नरक-भय

तहें नरकवासें जो परचोहें । मै नरकपाल-मुदगर-हतेहें ।

लिपटिया वज्रकंटक-सेनाह । सेमलसर जनित शरीर-बाध ॥२२॥

क्रंदत करुण जो हठेहें धरवि । खाइय निजमांस भत्ता करवि ।

जो वेदन-विफुरिय सर्व गात्र । हौं पादेउं तडपेउं ताम्र तप्त ॥२३॥

जो पूत रुधिरवश बाहिनीइ । मज्जावेउं बंतरणी-नदीइ ।

जो तप्तपुलिनें चलताहु भोग । जो शूलवेध दुख पाव दुर्ग ॥२४॥ (४३२)

जो वज्र ज्वलन ज्वालालितप्त । मै लोहमयी महिलावसक्त ।

जो महि हिम कुशई खंड करबी । उद्विग्न क्षणेहें पारउ मिलबी ॥२५॥

जो कुंभिपाके पाकेउं परार्ध । जो खंड-तुंड-पक्षीहें खाद्य ।

जो तिस'व निपीडेउं लोहयंत्रे । जो वृषभ'व बाहेउं भरे' भहंत ॥२६॥

आ-छोडेउं जो पटइव शिलाहें । करपत्रे' भिद्यत जो कंठ तलहें ।

जो तलेउं कडाहिहें पापडे'व । शस्त्रेहें छिदेउं जो ककडि ईव ॥२७॥ (४३३)

—कुमारपाल-प्रतिबोध

§ ३७. जिनपद्म सूरि

काल—१५०० ई० । देश—गुजरात । कुल—जैन सामु ।

१-श्रुत-वर्णन

पावस—

भिरिभिरि भिरिभिरि भिरिभिरि ए मेहा बरिसंति ।

खलहल खलहल खलहल ए वादसा बहंति ।

भबभब भबभब भबभब ए बीजुलिय भक्कइ ।

घरहर घरहर घरहर ए विरहिणि मणु कंपइ ॥६॥

महुर गंभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजते ।

पंचबाण निय-कुसुम-बाण तिम तिम साजते ।

जिम जिम केतकि महमहंत परिमल बिहसावइ ।

तिम तिम कामिय चरण लगि निय रमणि मनावइ ॥७॥

सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायते ।

माण-मडफर माणणिय तिम तिम नाचते ।

जिम जिम अलभर भरिय मेह गयगंगणि मलिया ।

तिम तिम कामीतणा नयण नीरहि भलहलिया ॥८॥

भास । मेहारव सर स्लटिय, जिमि जिमि नाचइ मोर ।

तिम तिम माणिणि खलभलइ, साहीता जिमि चोर ॥९॥

—यूलिसद्-फागु^१

§ ३७. जिनपद्य सूरि

कृति—शूलिमह-फाग ।

१-ऋतु-वर्णन

पावस—

भिरभिर भिरभिर भिरभिर ए, मेघा वरसन्ति ।

खलखल खलखल खलखल ए, बादला वहन्ति ॥

भवभव भवभव भवभव ए, वीजुली भववक्त्र ।

थरथर थरथर थरथर ए, विरहिनि मन कंफइ ॥

मधुर गभीर स्वरें मेष जिमि जिमि गाजंते ।

पंचवाण निज-कुसुम-बाण तिमि तिमि साधंते ॥

जिमि जिमि केतकि महमहंत परिमल बिहसावै ।

तिमि तिमि कामिय चरण लागि भिज रमणि मनावै ॥७॥

शीतल कोमल सुरभि वायु, जिमि जिमि वायंते ।

मान-मडफ्फर^१ मानिनिय, तिमि तिमि नाचंते ॥

जिमि जिमि जलभर भरिय, मेघ गगनांगने^२ मिलिया ।

तिमि तिमि कामीकेर नयन, नीरहिँ भलभलिया ॥८॥

भास । मेघारव भर उलसिय, जिमि जिमि नाचै^३ मोर ।

तिमि तिमि मानिनि खलबलै, साहोता^४ जिमि घोर ॥९॥

—शूलिमह-फागु (पृ० ३८-३९)

२-सामन्त-समाज

(१) शृङ्गार-सजाव

अह सिगाइ करेइ बेस मोटइ मन ऊलटि ।

रइयरंगि बहुरंगि चंगि^१ चंदनरस ऊगटि ।

चंपय केतकि आइ कुसुम सिरि धुप भरेइ ।

अति आछइ सुकुमाल चीर पहिरणि पहिरेइ ॥१०॥

सहसह सहसह सहसह ऐं उरि मोलियहारो ।

रणरण रणरण रणरणऐं पनि नेजर सारो ।

गमग गमग गमग ए कानिहि बरकुंडल ।

भलभल भलभल भलभल ए आभरणहें मंडस ॥११॥

मयण-सग्न बिम लहलहत जसु बेणी दण्डो ।

सरसउ तरसउ सामसउ रोमावलि दण्डो ।

तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थपक्का ।

कुसुमवाणि निम अमियकुंभ किर थापणि मुक्का ॥१२॥

भाल । काजलि भंजिवि नयणजुय, सिरि संथउ फाढेई ।

जोरियावडि कांचुलिय पुण, उरमंडलि ताढेई ॥१३॥

कलजुयल जसु लहलहत किर मयण हिडोला ।

चंचल चपल तरंग चंग जसु नयणकचोला ।

सोहइ जासु कपोल पालि जणु गालि मसूरा ।

कोमलु विमलु सुकंठ जासु बाजइ सैंसतूरा ॥१४॥

सवणिम-रसभर कूबडीय जसु नाहिइ रेहइ ।

मयणराइ किर विजयसंभ जसु कल सोहइ ।

२-सामन्त-समाज

(१) शृंगार-सजाव

अति शृंगार करेइ बेध मोटै मन ऊलटि,
 रचितरंग वद्वरंग चंग चंदन रस ऊलटि^१ ।
 चंपक-केतकि-जाति-कुसुम शिर-झोंप भरेई,
 अति-आखज सुकुमार चीर पहिरन पहिरेई ॥१०॥

लहलह लहलह लहलहए ठर मोतिय हारो,
 रणरण रणरण रणरणइ पग नूपुर सारो ।
 जगमग जगमग जगमगै कानहिं वर-कुंडल,
 भलमल भलमल भलमलै आभरणहूँ मंडल ॥११॥

भदन खड्ग जिमि लहलहंत जसु बेणी-दंडो,
 सरलउ तरलउ श्यामलउ रोमावलि-दंडो ।
 तुंग पयोधर उल्लसै शृंगार स्तवका,
 कुसुम-वाण निज अमृतकुंभ जनु थापन रक्खा ॥१२॥

भास^२ । काजल अंजिय नयन युग, मिर संधी^३ फाड़ेइ ।
 बोरिपट्टी^४ कंचुकिय पुनि, उरमंडल ताड़ेइ ॥१३॥

कर्ण-युगल जसु लहलहंत जनु भदन हिंडोला,
 चंचल चपल तरंग चंग जसु नयन-कचोला^५ ।
 सोहै जासु कपोल-पालि जनु गरल मसूरा,^६
 कोमल विमल सुकंडु जासु बाजै शैल-तूरा ॥१४॥

लवणिम रसभर कूपडीय^७ जसु नाभिय राजै,
 मदनराय कर विजय लंभ जसु ठरु सोहै ।

^१ उलटन ^२ छन्द विशेष ^३ मींग ^४ तिलारी ^५ कठोरा ^६ कूला ^७ दुई

जसु नहु-पल्लव कामवेव-अंकुसु जिम राजह ।

रिमझिमि रिमझिमि पायकमलि घाघरिय सुवाजइ ॥१५॥

नवजोवन विससंत देह नवनेह गहिंल्ली ।

परिमल सह्ररिहि मदमयंत रह-केलि पहिंल्ली ।

अहरविब परवाल खण्ड वर-वंपावशी ।

नयन सलूणिय हावभाव बह्वगुण संपुत्री ॥१६॥

इय सिणगार करेवि वर, जब आवी भुणिपासि ।

जो एवा कलतिगि मिसिय, सुर-किनर आकासि ॥१७॥

—वहीं पृ० ३६-४०

(२) हाव-भाव

नयनकठक्लिय आहणएँ वाँकड जोवन्ती ।

हावभाव सिणगार भंगि भवनक्लिय करंती ।

तहवि न भीजइ भुणि-पवरो तडवेस वोलोवइ ।

‘तवणु तुल्लु तुह देह नाह ! महतणु संतावइ ॥१०॥

बारह वरिसहँ तणउ नेहु किणि कारणि छाडिउ ।

एवहु निठुरपणउ कइ भूसिउ तुम्ही मंडिउ ।

पूलिभइ पमणेइ वेस ! अह खेहु न कीजइ ।

लोहिहि अडियउ हियउ मज्ज तुह वयणि न बीजइ ॥१६॥

मह विलवन्तिउ उवरि नाह अणुराग धरीजइ ।

रिसु पावसु-कालु सयलु भूसिउ माणीजइ ।

भुणि-वइ जंपइ वेस ! सिद्धि रमणी परिषेवा ।

मणु लीणउ संजम सिरी सुं भोग रमेवा ॥२०॥

—वहीं*

जसु मख-पल्लव कामदेव-अंकुश जिमि राजै,

रिमभिम रिमभिम पादकमल चापरिय सुनाजै ॥१५॥

नवयौवन विलसंत देह नवनेह-गहिल्ली,^१

परिमल लहरोह मदमदंस रतिकेलि पहिल्ली ।

अपरभिव पर-वाल-खंड वर-चंपा-वर्णी,

नयन सलोनीय हावभाव बहुगुण-संपूर्ण ॥१६॥

इमि शृंगार करीय वर, जब आई भुनि पास ।

जोयेबा कौतुक मिलेउ, सुर-किन्नर आकास ॥१७॥

—वहीं पृ० ३६-४०

(२) हाव-भाव

नयन-कटाक्षहैं आहुनई बांको जोग्यंती,

हाव-भाव शृंगार-भंगि नव-नविय करंती ।

तबछ न बीधैं भुनि-प्रधरो तब वेश बोलावैं,

“तपन तुल्य तुव देह नाथ ! मम तनु संताप ॥१८॥

बारह वर्षहैं केर नेह कहि कारण छडिउ,

एकछ^२ निहुरपनइ का मोसे तुम मंडिउ^३ ।”

शूलिभद्र प्र-भनेइ “वेश” ! इह खेद न कीजै,

लोहोहैं गडियउ हृदय मोर, तुव बचन न बिबै ॥१९॥”

“मम विलपंतिय उपर नाथ ! अनुराग धरीजै,

ऐसो पावस-काल सकल मोसो मानीजै ।”

भुनिपति जल्पै “वेश ! सिद्धि-रमणी परिणेबा ।

मन लीनउ संयम श्री सो भोग रमेवा ॥२०॥”

—यूसिमइ-फाग पृ० ४०

^१ ग्रहण किये

^२ इतना

^३ शुरू किया

^४ वैश्या

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

काल—१२०० ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—...जैन साधु।

विरह-चर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमद सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कस-कुमारि।
आवणि सरवणि कंदुय मेतु। गज्जइ विरहिति भिज्जइ वेहु।

विज्जु भज्जकइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम ॥२॥
सखी भणइ सारिणि मन भूरि। दुज्जण-तणा म वंछिति पूरि।

गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरहु सयाइ ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयणु। नरथी नेमी सभ वर-रयणु।

धरइ तेजु गहगण सविताव। गयणु न जगइ दिणयर जाव ॥४॥
भाज्जवि भरिया सर पिक्खेवि। सकरण रोअइ राजलदेवि।

हा एकलडी मइ निरधार। किम ऊवेषिसि कलणासार ॥५॥
भणइ सखी राजल मन रोइ। नीठुह नेमि न अप्पणु होइ।

सिचिय तरुवर पारि पलवति। गिरिवर पुणि कड-डेरा कुंति ॥६॥
सांचउ सखि वरि गिरि भिज्जति। किमइ न भिज्जइ सामलकंति।

वण वरिसंतइ सर फट्टन्ति। सयइ पुण वण ओह दुलिति ॥७॥
आसोमसइ अंसु-मवाह। राजल मिल्हइ विणु नमि नाह।

वहइ चंद चंदण हिस सीउ। विणु भत्तारइ सउ विवरीउ ॥८॥
—चतुष्पादिका^१

सखि नवि खीना नेमि हिरैसि। मन आपणपउ तउ खय नैसि।

जिणि दिक्खाडिउ पहिलउ छोडु। न गणिउ अट्ट भवंतर-नेहु ॥९॥
नेमि दयालू सखि निरदोसु। कीजइ उग्रसिण पर रोसु।

पसुय भराविउ मूकउ वाडु। मुमु प्रिय सरिसउ कियउ बिहाडु ॥१०॥

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

कृति—नेमिनाथ-चतुष्पादिका^१

विरह-वर्णन

(आरहभासा)

नेमि कुमार सुधिरिय गिरनार । सिद्धी राजल कन्य-कुमारि ।
श्रावण श्रवणे कङ्कशा मेह । गर्जे विरहित छीजे देह ।

विज्जु भमक्क राक्षसि जेम । नेमि बिना सखि ! सहिय केम ॥२॥
सखी भनै "स्वामिनि ! मन भूर । दुर्जन करे न वाञ्छित पूर ।

गयेँउ नेमि तब विवशेँउ काइ । आछै अन्यहुँ वरहुँ शताहँ ॥३॥"
बोलै राजल "तब ऐहु वयन । नाही नेमि सम घर-रत्न ।

वरै तेज अह-गण सब ताउ । गगन न ऊगै दिनकर जाउ ॥४॥"
भारवौ भरिया सर पेखेइ । सकरुण रोवै राजल-देइ ।

"हा एकलही मै निराधार । का उद्वेजित करुणासार ॥५॥
भनै सखी राजल भव रोइ । "नीठुर नेमि न आपन होइ ।

सिधिम तरुवर परि प्लवन्ति । गिरिवर पुनि करहेरा होंति ॥६॥
सांचउ सखि ! बारि गिरि भिद्यन्ति । काह न भिद्यै स्यामल कांति ।

धन वर्षन्ते सर फूटन्ति । सागर पुनि धन-ओष डुलन्ति ॥७॥"
आश्विन मासहँ आसु-प्रवाह । राजल मेलै^२ बित नैमि नाह ।

दहै चंद अंदन हिम शीत । विनु भर्तारहँ संगउ विपरीत ॥८॥
—चतुष्पादिका

"सखि ! ना क्षीणा नेमि हृदेश । मन आपनयौ तउ क्षय लेस ।

जिन देखाइ^३उ पहिलउ छेह^४ । न गणेँउ आठ भवार्तर^५ नैह ॥९॥
नेमि दयालू सखि ! निर्दोष । कीजै उग्रसेन पर रोष ।

पशू भरायेँउ मूकेँउ बाड । मम प्रिय सरिसउ कियउ बिगाड ॥१०॥

१ "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह", G.O.S. Vol. XIII (बड़ोदा) 1920

२ छोडे

३ आशा-भंग

४ जन्मांतर

कलित क्षितिग लग्नइ संभ । रजमति भिज्जिउ हुइ अतिभंभ^१ ।

राति दिवसु आछइ विलपंत । बलिवलि दय करि दयकरि कंत ॥११॥

नेमितणी सखि मूकि न आस । कायर पगउ सो घरवास ।

हमइ ईसि सनेहल नारि । जाइ कोइ छौडवि गिरिनारि ॥१२॥

कायर किमि सखि नेमि जिणिंदु । जिमि रिणि जितउ लक्षु नरिंदु ।

फुरइ सासु जा अगलि नास । ताव न भिल्लउ नेमिहि आस ॥१३॥

स्यसिरि मग्गु पलोअइ बाल । इणयरि पभणइ नयण विसाल ।

जो मइ मेलइ नेमि कुमार । तसुणी वेल बहउ सवि बार ॥१४॥

एहु कयाग्रहु तउ सखि मिहि । करसु काइ तिणि नेमिहि हिल्लि ।

मंडि चढाविउ जो किर भालि । हे हे कु करइ रोहणि कालि ॥१५॥

अठभव सेविड सखि मइ नेमि । तासु समाहउ किम न करेमि ।

अवगनेसइ जह मइ सामि । लग्गी आछिसु तोइ तसु तामि ॥१६॥

पोसि रोस सखि छोडिबि नाहु । राखि राखि मइ मयणहु पाहु ।

पइइ सीउ तबि रयणि विहाइ । लहिय छिइ सखि दुक्ख अमाइ ॥१७॥

नेमि नेमि तू करती मुखि । जुब्बणु जाइ न जाणिसि सुद्धि ।

पुरिस-रयण भरियउ संसार । परणु अनेरउ कुइ भसार ॥१८॥

मोली तउ सखि खरी गमारि । बारि अछंतइ नेमि कुमारि ।

अभ पुरिसु कुइ अप्पणु नइइ । गइवर लहिउ कु रासभि चइइ ॥१९॥

भाहमासि भाचइ हिम रासि । देवि भणइ मइ प्रिय लइ पासि ।

तइ विणु सामिय दइइ तुसर । नवनव मारिहि मारइ मार ॥२०॥

इहु सखि रोइसि सहू अरसि । हसि कि जामइ धरणउ कसि ।

तउ न पती जिसि माहरि भाइ । सिद्धि रमणि रस्तउ नमि जाइ ॥२१॥

कंति वसंतइ द्वियडाभाहि । वाति पहीजउं किमहि लसाइ ।

सिद्धि जाइ तउ काइ त बीह । सरसी जाउत उगसेण-बीध ॥२२॥

काणुण वागुणि पन्न पडंसि । राजल दुक्खि कि तव रोयंसि ।

गळि गलिबि हउ काइ न मूय^२ । भणइ विहंगल धारणि घूय ॥२३॥

कातिक भित्तिग ऊगै सौभ । रजमति छीजेउ होइ अति भाँभ ।

राति-दिवस आछै बिलपंत । “बलि बलि दयाँ करु दयाँ करु कंत” ॥११॥

नेमि केर सखि मुंचउ आश । कायर भागेउ सो घर-वास ।

ऐहू ऐसीह सनेहल नारि । जाइ कोइ छाडिय गिरिनार” ॥१२॥

“कायर का सखि ! नेमि जिनेंद्र । जिन रणे जीतेउ लाख नरेन्द्र ।

फुरे स्वास जौ आगल नास । तौ लो न छोड़उ नेमिहि आश ॥१३॥”

मगसिर भार्य प्रलोक बाल । ऐसो प्रभन नयन-विशाल ।

“जो मोहि मिलवै नेमिकुमार । तसु उपकार बहुउ सब कार” ॥१४॥

“एहु कुआग्रह तव सखि ! मेलु^१ । करसि काह तिन नेमिहि हिल्ल ।

मंडे चढ़ायेउ जो पुनि मास । हे हे को करै टोअन^२-काल” ॥१५॥

अठ भव सेवेउ सखि ! मै नेमि । तसु ऊमाइ^३ किमि न करेमि ।

अवश छिजीहैं जो मोहिं स्वामि । लागी रहौ तऊ तसु नाम” ॥१६॥

“पूख रोष सब छाड़हु नाह । राखु राखु मोहि पद-नह-पाह ।

पडै शीत ना रजनि बिहाइ । लहिय छिद्र सब दुख अमाइ” ॥१७॥

“नेमि नेमि तू करती मुग्धे^४ । यौवन जाइ न जानसि बुद्ध ।

पुरुष-रतन भरियउ संसार । परतहु अन्य कोई भर्तार” ॥१८॥

“भोली तै” सखि ! खरी गँवारि । वर अछ्छते नेमिकुमार ।

अन्य पुरुष कोइ आपन नहई । गज-धर लहे को रासभ चढ़ई” ॥१९॥

माघ भास मातै हिम-राशि । देवि भनै “भोहि प्रिय लेउँ पास ।

तव विनु स्वामिय ! वई तुषार । नवनव मारहि मारै मार” ॥२०॥

“ऐहू सखि रोवसि जिमि आरण्ये^५ । हाथ कि जोये धरियो कणें ।

तौ न पतीअसि हम्मर माइ । सिद्धि-रमणि-राती नैमि जाइ” ॥२१॥

कंत वसंतै हियरा-मोहि । बात पहीजौ किमिहि लसाइ ।

सिद्धि जाइ तोहि काई भीय^६ । ओहि सँग जाऊ उगसै न-धीय” ॥२२॥

फागुन पवता णं पडैति । राजल दुख कि तरु रोवति ।

“गर्भ गलिय हौं काह न मूय ।” भनै विहव्वल आरणि-धूये ॥२३॥

भजित भगिउ करि सखि जिम्भासि । अछइ भला वर नेमिहि पास ।

अनुसखि मोक्ष जउ नवि हूँति । छुहिय सुहाली किन रुचवति ॥२४॥

भणह पासि जइ देखिसउ होइ । नेमिहि पासि ततलउ ना कोइ ।

जइ सखि वरजै त सामल-धीर । घण विणु पियइ कि चातक नीर ॥२५॥

चैत्र मासि वणसइ पंगुरइ । वणि वणि कोयल टहका^१ करइ ।

पंचबाणि करि धनुष धरेवि । वेभइ मांडी राजल देवि ॥२६॥

जुइ सखि ! मातउ मासु वसंतु । इणि सिल्लिज्जइ जइ हुइ कंतु ।

रमियइ नवनव करि सिंगार । लिज्जइ जीविय जुवण-भार ॥२७॥

मुनि सखि मानिउ मुहु परिणयणु । नवि ऊपरि थिउ बंचन-वयणु ।

जइ पडवसइ चुक्कइ नेमि । जीविय जुवणु जलणि जलेमि ॥२८॥

बइसाहइ बिहसिय वणराइ । मयणमित्तु मलयानिलु वाइ ।

फुट्टिरि हियडा माकि वसंतु । विलपइ राजल पिक्खउ कंतु ॥२९॥

सखी दुक्ख वीसरिवा भणइ । 'संसलि मभरउ किम रुणभुणइ ।

दीस पंचथिर जोव्वणु होइ । खाउ पियउ विलसउ सहु कोइ ॥३०॥

रमणि पसंसिय राजल-कन्न । जीह कंतु वसि ते पर धन ।

जसु पउ न करइ किमइ मुहाडि । सा हउं इक्क ज भुंडनि लाडि ॥३१॥

जिह विरह जिमि तप्पइ सूर । छण वियोगि सुसिय नइ पूर ।

पिक्खउ फुल्लिउ चंपइ विल्लि । राजल मूछी नेह गहिल्लि ॥३२॥

मूछी राणी हा सखि धाउं । पडियउ खंडइ जेवइ धाउ ।

हरि मूछा चंदण पवणेहि । सखि आसासइ प्रिय-वयणेहि ॥३३॥

भणइ देवि विरती संसार । पडिखि पडिखि मइ जाउव सार ।

नियपडिवसउ प्रभु संभारि । भइ लइ सरिसी गडि गिरिनारि ॥३४॥

आसाहइ दिठु हियेउ करेवि । गज्जु विज्जु सवि असगच्छेवि ।

भणइ वयणु उगसेणह जाय । करिसि धम्मु सेविसु प्रिय पाय ॥३५॥

मिलिउ सखी राजल पभणति । विणय जेम नमिरिय खणति ।

अउगी अन्धि सखि ! भखि मन आल । तपु दोहिल्लउ तउं सुकुमार ॥३६॥

—नेमिनाथ-चतुष्पदिका^२

अजउ मनेँउ कर सखी विमथि । अछै भलो वर नेमिह-पास ।

“पुनि सखि ; भोदक यदि ना होति । छुधितेँ सो हारी किन्तु रक्खति ॥२४॥

“मनह पास यदि जल्दी होइ । नेमिहिँ पास तेँसनउ ना कोइ ।

यदि सखि ! वरौँ त स्यामल-धीर । घन विनु पिय कि चातक नीर” ॥२५॥

धैश् मास धनसपती अँकुरै । वन-वन कोयल टहक करै ।

पंच-वान केँर वनुष घरेदि । बेघै लक्ष्मि राजल-देवि ॥२६॥

“ओँउ सखि ! मातेँउ मास वसंत । इमि खेलीजै यदि होइ कंत ।

रमियै नव नव कर शृंगार । लीजै जीवित यौवन-सार” ॥२७॥

“सुनु सखि ! मानेँहु मम परिणयन । ना ऊपर ठिय बाधव-वयन ।

यदि प्रतिपक्षा चुकै नेमि । जीवित यौवन ज्वलनेँ जुलेमि ॥२८॥

बैशाखह विहसिय बनराजि । भदनभिन्न मलयानिल वाइ ।

फुटिय हियरा माँक वसंत । विलपै राजल पेखिय कंत ॥२९॥

सखी दुःख बीसरिबा भवई । “सुनु सुनु अमरउ का रुनमुनई ।

“दिवस पंच धिर यौवन होइ । साहु पियहु विलसहु सब कोइ” ॥३०॥

रमण प्रशंसिय राजल-कन्य । “आहि कंत वशेँ ते पर वन्य ।

जसु पिय न करै किछुउ पुछारी । सो होँ एकइ फूट-लिलारे” ॥३१॥

जोठ विरह तप्यै जिमि सूर । घन-विद्योगेँ सुखियो नदि-पूर ।

पेखेँउ फुलिय चंपक-बेल्लि । राजल मूर्छी नेह-गहिल्लि ॥३२॥

“मूर्छी रानी हा सखि ! धाव ! पडियउ खंडह जेवड़ धाव !”

हरि मूर्छा चंदन पवनेहिँ । सखि आश्वासी प्रिय-वचनेहिँ ॥३३॥

अनै “देवि ! विरती-संसार । परिख परिख में जानेँउ सार ।

निज प्रपन्नउँ प्रभु सम्हारि । मोहिँ लइ साथे गढ गिरनार ॥३४॥

धावाइह दूढ हियई करेनि । गर्ज विज्जु सब अवगण नेमि ।

अनै वचन उगसेनहँ जाय । करिसि धम सेविसि प्रिय-पाय ॥३५॥

“मिलिउ सखी !” राजल प्रभनंति । चना जेम न मिरिच खाचंति ।

एकली अछइ सखि ! अछै मन आल । तप-दोहिल्लउँ तूँ सुकुमार ॥३६॥

—नेमि-चौपाई (पृ० ९-१०)

§ ३६. चन्दबरदाई

चन्दबरदाई । काल—१२०० ई० । देश—लाहौर-जिल्ला । कुल—भाट ।
कृति—पृथिवीराज-रासो^१

१—हिमालय-वर्णन

सकल भूमि को भेद राज आनै ए भग्यै ।

अति सु-विकट बम-जुह चढ़ै संग्राम न होई ॥

अश्व-पाय गज-पाय चढन किहि ठौर न कोई ।

वनविकट जूह परवत गुहा बरबेहर बंकम विषम ॥

दाह भयानक अति सरल बर प्रस्तर जल नहिं सुषम ।

भरै भरन भोरं-सु आघात सोरं जिने सह या सह ता भंग मोरं

हथं तज्जि राजं चलै हत्य डोरं हथं हक पच्छी वियं जनं जोरं ।

बजै सह-साहं परच्छेय उहै सुनै नन सोरं सुधीरज्ज छुटै

इकं होइ राजं पथं सन्त लखै दिये हत्य तारी तिनं को न बूझै ।

२—सामन्त-समाज

(१) राजा बीसलदेवकी प्रशंसा

धर्माधिराज रति जोग भोग पट छुट गिति पगह सु-भोग

जग दुष्य बीर बीसल नरिह महापाप रत द्रव्यान अंध

^१ वर्तमान रूप १६वीं सदीसे पहिलेका नहीं है ।

कृत अश्रित काम कितह सु कीन जिन असुर घोर बनि द्रव्य लीन

संसार थागि पुनि द्रव्य काज उपजाई मति अजमेर राज

कोडी सु मोल गज कियौ एक लीयो न किनह किरि सह्र नैक

कामच अंध सुजभ्यो न काल हक अहक जोरि गिरि इवक भाल

चलत्यौ न राज नीतिह प्रमान आनीत बधि नृप थान थान

सुजभ्यौ न धम्म चलत्यौ प्रमान मुकजो निगम्म करि अगम-मान

अव लोह छोह छांझिय सु-किति मुक्कयो ध्रम आध्रम जिति

दरबार अतिथि दीसै न कोइ अप्प-सुह किति संभरै लोइ

चौसठि बरस बर राज कीन परायी न पुण बर सुवष हीन

—पृथ्वी० रासो—पृ० ७८-७९

आनन्द अग पर इन्द्र सम धम्म तंद' जस उबबरे ।

अजमेर नयर अरिजेर कारि विमल राज बीसल करै ॥

बर पट्टन अट्टन अमित समित वेद फुनि राज ।

समय अंत बीसल शिरह वयो छत्र सम साज ॥

—पृ० रा०—पृ० ६१

(२) शृंगार-रस

रतिराज ह जोषन राजत जोर, सैंधो सिसिरं उर सैसन-कोर ।

उनी मधि मझझि भवू घुनि होइ, तिन उपमा बरती कवि कोइ ।

सुनी बर आगम जुव्वन बैन, नव्यो कबहू न सुउदिय सैन ।

कबहू दूरि अन न पुच्छत नैव, कहो किन अव्व दुरी दुरि बैन ।

ससि रोरन सैसव दुंदुभि बज्जि, उरै रतिराज सजोवन सज्जि ।

कही बर श्रोत सुरंगिय रज्जि, भये नर दीउ बनंदन भज्जि ।

इय मीन नलीन मये रत रज्जि,

भय बिभ्रम भाइ परी नहि नज्जि ।

मुनि प्रथम बाविय रूप, बरबाल लच्छित रूप ।

अहिसंधि सैदव-याल, अजु अरक राका हाल ।

सैसव सुसूर समान, वयचंद चढ़न प्रमान ।

सैरख जेवन एल, ज्यो पंथ पंथी मेल ।

परि भोह भवर प्रमान, वै बुद्धि अच्छरि अमान ।

प्रिग स्याम सेन सुभाग, सावक्क मृग छुटि वाग ।

बिय दूगन श्रोपम कोउ, सिसअंग वंजन होउ ।

बरबरन नासिक राज, मनि जोति दीपक लाज ।

मतिशिषी पतंग नसाव, श्रोपम दे कवि आव ।

नासिकक दीपन साल, भैप दत वंजन-बाल ।

बिय बरल जेवन सेव, ज्यो दंपती हथलेव ।

वैसंधि संबिय चिद, ज्यो मल अरहि गुविंद ।

तुछ रोमराज बिसाल, मनो अगि उगिय दाल ।

कुच तुच्छ तुच्छ समूर, मनो कामफल-अंकूर ।

बयरूप श्रोपम एह, जा जनक नृप कर सेह ।

बर छिन्न शक्क तेह, मनो काम द्रप्पन बेह ।

वै संधि कविबर बंध, ज्यो वृद्ध बाल विबंध ।

वै संधि संधि 'प्रामन, ज्यो सूर ग्रहन प्रमान ।

ये राह ससि गिलि सूर, नव ग्रह (५) मत्त करूर ।

वरवाल वै संधि एह, सिक्कार काम करेह ।

ससकरे लसलसि छंडि, चितरंक दीन समंडि ।

कर्धो सुह्रान कामिनी, दिपंत मेघ दामिनी ।

सिगार षोरुसं करे, सुहस्त दर्पनं धरे ।

वसस वासि वासनं, तिलक्क माल भासनं ।

दुनैन अन अंजए, चलं चलंत षंजए ।

सुहंत थोन कुंडर्स, ससी रवी कि मंडलं ।

सुमुत्ति नास सोभई, दसनं दुत्ति लोभई ।

अनेक जाति जालितं, धरंत पुष्प भालितं ।

भैकार हार नोपुरं, धमंकि शुघरं धुरं ।

बिलेपि लेपचंदनं, कसी सु कंचुकी धनं ।

सुछुद्र घंठि घंटिका, समोल आय अंटिका ।

कनक्क नग्न कंकनं, जरे जराइ अंकनं ।

बिसाल बेनि चातुरी, दिषनं रंभ आतुरी ।

अनेक दुत्ति अंगकी, कहंत जीभ भंगकी ।

निसि थट्टिय-फट्टिय तिमिर, दिसि रस्ती घबलाइ ।

सैसव भे जुव्वन कछ, तुच्छ तुच्छ दरसाइ ।

दक्षिन वुत्त सुनाभि, तुंग नासा गजगमनी ।

सासन गंध खं जु चारं, कुटिल केस रतिरमनी ।

वरजंघन मुहुपय सुरंग, कुरंग लज्जे छविहीनं ।

(३) युद्ध

(क) वीर-रस

हृत्थ हृत्थ सुजम् न, मेष डंभरि मंडि रज्जी ।
 निसि निसीय अंतरो, भान उत्तरि सथ सज्जी ॥
 विज्ज वीर भलकंत, पवन पच्छिम दिसि वज्ज ।
 मोर सोर पप्पीह, अवनि सक्ति यन गज्ज ॥
 शंटी अ सिलह निसि सत्तमिलि, अधिय पंग दरवार विसि ।
 चामंडराय दाहर नन, सरन लोह कड्डे तिरसि ॥
 पच्छे भी संग्राम, अग्न अपहर विचारिय ।
 पुच्छे रंभ मेनिका, अज्ज चित्त किमि भारिय ॥
 तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय ।
 रघ्य वैठिअो धान, सोभ तह कंज न पाइय ॥
 भर सुभर परे भारतभरि, ठाम ठाम चुप जीत संधि ।
 उथकीय पंग हल्लै चल्थो, सुधिर सभी देखिय नभ ॥

(ख) रण-यात्रा

ठलकंत ढाल तरवार प्रमान, हल्लके हल्लंत गज नग-समान ।
 अपसकुन सकुन चितहि न चित्त, निरिमान वन्त गुन धरत तत्त ।
 कदवति सरिल जहाँ सरिलपंक, चित्तचित्त डवंक जे करे कंक ।
 चल्ते नरिंद अरि पुब्ब गाव, भुमिया ससंक सब लगत पाव ।
 गढ़ घेरि पंग किअ अप्रमान, मानो कि मेरि पारस्स आन ।

पंगह सुवीर गढ़ करि गिरह, जनु सर्थेपर परस चंदा सरह ।

गोरी नरिद हय-गय-सुभर, सजि आयी उप्पर सुभय ।

चैत मास रवि तीज, सेत पण्यह कल चंदह ।

भयी सुदिन मव्यान, चढघो प्रथिराज नरिदह ॥

कटक सबर हिल्लोर, भार सेसह करि भगिगय ।

चढि सामंत सकज्ज, नह सुर अंभर जगिगय ॥

गज रोर रोर बंधे घटा, सिलह बीज सिल काधलिय ।

पप्पीह बीह सह नाइ सुर, नदि घण्वर मैलान दिय ॥

(ग) पृष्ठ-वर्णन

पंग जंग पुलं । कूह मच्ची हुलं ॥ सार तुट्टे पलं । धग्ग मच्चे खलं ॥

हाल हालाहलं । सोव्व वित्थो तलं ॥ गिद्ध कोलाहलं । अंत दंती खलं ॥

उद्ध पीयं खलं । चर्म अस्ति तलं ॥ बीर निद्धी खलं । सिद्ध ठट्टे खलं ॥

संभु मालं गलं । ब्रम्ह चिता खलं ॥ भूत वित्ता तलं । पत्थ पारब्धलं ॥

देव देवानलं । फट्टि फारक्कलं ॥ धाय वज्जे खलं । सूर घुम्मै खलं ॥

सार चौसट्टिलं । वाइ भूतं तलं ॥ रीति पच्छी धिनं । तार आयासनं ॥

सूर उग्यो ननं । कोट चहूटे फल ॥

जहाँ उत्तरयो साहि चिन्हाव मीरं । तहाँ नेज गडघो डडुक्के पुंढीरं ॥

करी आन साहाव साबधि गोरी । घकी धींग धिगं धकावे सजोरी ॥

दोऊ दीन दीनं कही बंकि अस्सि । किबो मेघमो बीजु कोटि निकस्सि ॥

किए सिग्घरं कोरता सेलं अग्गी । किबो नहरं कोर नागि न नग्गी ॥

हुक्कके जु मेछं अमंतं ज छुट्टे । मनो घेरती धुम्मि पारेव तुट्टे ॥

अरं फुट्टि बरछी बरं छिन्वि नासी । मनो जालमें मीन अद्धी निकासी ॥

सटक्के जुरं न उडै हंस हल्लै । रसं भीजि सूरं चवन्मान विल्लै ॥

सगे सीस नजा भ्रमं भेजि तथ्ये । मथे बाइसं भात दीपति सथ्ये ॥

करै मार मारं महावीर धीरं । भए मेघवारा वरषंत तीरं ॥

परे पंच पुंहीर सा चंव कछथी । तबै साहि गोरी स चन्हाव चछथी ॥

घर घरकि धाहर करवि काहर रसमिसू रस कूरयं ॥

गजघंट घनकिय, स्रग्न मनकिय, धनकि संकर उद्यो ।

रनतकि मेरिय कन्ह हेरिय, दंति दान घनदयो ॥

वरं वंवरं ओरं माही ति साई । हल्ले छथ पोत वले यार घाई ॥

मुले सूर दूक्के दहक्के पचारं । धले कथ्य दोळ धरं जा अघारं ॥

उतमंग तुट्टे परै श्रोत घारी । मनो दण्ड सुकर्षि अगीवाइ वारी ॥

नचं कंधबंधं दकं सीस भारी । तहाँ जोग-मामा जकी सो बिचारी ॥

सोलंकी भाषव नरिंद, पान धिलजी मुख लग्गा ।

सवर वीररस वीर, वीर वीरर रस पग्गा ॥

दुमन बुद्ध जुव तेग, दुहू हथन उजमारिय ।

तेग तुट्टि चासुक्क, कथ्य परिकहेडि कटारिय ॥

सह बग्न कैमास वीरं अमानं । धमके घरा भोम गण्णे गुमानं ॥

उतें उप्परी बाग तत्तार पानं । मिले हिंदु भीरं दोळ दीन मानं ॥

अजे राज सिंघु सु माख्य बज्जै । गजे सूर सूर असूरं सुभज्जै ॥

अडे व्योम विस्मान देशंत देवं । बडे स्वामि-कज्जै सुसज्जै उमेवं ॥

छुटे शाल गोला हवाई उछंगं । नछत्रं मनो जानि तुट्टे निहंगं ॥

करण्य खलं बान बानं कमानं । भई अंध-धुंधं न सुज्जै सुभानं ॥

मिले सेल भेलं समेलं अघारं । सनाहं फटै हीय होवंत पारं ॥

अदं मत्त दंतं अघारै मसदं । मनो मिलितिया पच्च उष्वालि कंदं ।

मचै हूक हूकं वहै सार-धारं । चमक्कें चमक्कें करारं करारं ॥

भभक्कै भभक्कै वहै रत्तधारं । सतक्कै सतक्कै वहै वान-भारं ॥

हबक्कै हबक्कै वहै सेल भेलं । कुकें कूक फूटी सुरस्तान ठालं ॥

बकी जोगमाया सुरं अप्पथानं । वहै चट्ट-नट्टं उघट्टं उलट्टं ॥

कुलट्टा धरै अप्प-अप्पं उहट्टं । दडक्कं बजै सेन सेना सुघट्टं ॥

(घ) युद्धमें छल

छल तक्क्यी श्रीराम, सेत साहर तब बंध्यी ।

छल तक्क्यी सुग्रीव, बालिजिउ ताउह संध्यी ॥

छल तक्क्यी लछिमना, सूरमंडल अलि वेध्यी ।

छल तक्क्यी नरसिंघ, अगकस तब उर छेछी ॥

छलबल करंत दूषन न कोइ, किस्त कलह कंसह करिय ।

सोमैस राज तकि अप्प बिधि, रत्तिवाह छलमन धरिय ॥

३-कविका संदेश

{ भाग्यवाद }

नर करनी कछु श्रीर, करै करता कछु श्रीरै ।

अनचितन करै ईस, जीय सुनर श्रीरै दीरै ॥

रचे रचन नर कोरि, जोरि जम पाइ वस्त सह ।

छिनक मध्य हरि हरै, केलि किरतव्य कम्मइह ॥

प्रथिराज गमन देवास विसि, ब्याह विनोव सुमंढिजिय ।

अनचिति जगि गज्जन बलिय, आनि उतांग सु कंक किय ॥

जु कछु लिप्पो लिलाट, सुख अर दुःख समंतह ।

धन विद्या सुन्दरी, अंग आधार अनंतह ॥

कलप कोटि टरि जाहिं, मिटै न न घटै प्रमानह ।

जतन जोर जो करै, रंच न न मिटै बिनानह ॥

तेरहवीं सदी

§ ४०: लक्षणा

काल—१२५७ ई० । देश—रायबंदी (रायभा, आगरा) कुल—बैश्य,

१-आत्म-परिचय

(१) काव्य-महिमा

तं सुणेदि भणित साहुल-सुएण । जिण-चरणचवण-पसरिय-भूएण ॥

भो लंब-कंचु कुल-कमल-सूर । कुलमाणद चित्तासा पऊर ॥

घसत । तुहँ कइ-यण-मण-रंजणु पाव-विहंजणु गुणु-गण-भणि-रयणायरऊ ।

उच्छट्टि अयट्टिउ सुणयो मट्टिउ(?)णिहिल-कला-मलणायरऊ ॥

तुहँ घणु आसु एरिसिउ चित्तु, तिपयत्थ रसुज्जलु मइ पवित्तु ।

सयणासण तंबेरम तुरंग, धयल्लत चमर बालावरंग ॥

घण-कण-कंचण घण-दविण-कोस, जंपाण जाण भूसण सैंतोस ।

घरपुर गयरायर देस-याम, पट्टोलंघर पट्टण समाण ॥

संसार-साह पयवत्थु भावु, जंजं दीसइ गाणा सहाउ ।

तंतं सुहेण पावियइ सव्वु, लहियइ ण कव्वु माणिककु भव्वु ॥

(२) आत्म-परिचय

एकहि दिनें सुकइ पसण्य चित्तु, णिसि सेज्जायलें भायइ सहत्तु ।

महुबोह-रयणु घडगय सरिसु, बुहयण-भव्वयणहं जणिय हरिसु ॥

भरकंठकण्य पहिरण असक्कु, णरहरमई तेण सजरेर धक्कु ।

मइ सुकइत्तणु विज्जा विलासु, बुहयण-मुह-मंडणु साहिलासु ॥

आणंद लयाहृष अमिय रोइ, गवि माणइ सून-इण इत्य कोवि ।

तेरहवीं सदी

§ ४०: लंकरवर्ण

जैन-गृहस्थ । कृति—अणुधरयण पईव (अनुव्रत-रत्नप्रदीप)¹

१-आत्मपरिचय

(१) काव्य-महिमा

सो सुनिय भनेउ साहुल-सुतेहिं । जिन-चारणार्चन-असरिय-भुजेहिं ॥

“हे लंबकांचु-कुल-कमल-सूर । कुल मानव चित्ताशा-अपूर ॥

घत्ता । तुहुँ कवि-मन-रंजन, पाप-विभंजन, गुण-गण-मणि-रतनाकरऊ ।

उच्छेदि कुवर्त्तन-मुनयउ मारजउ, निखिल-कलामल-नागरऊ ॥

तुहुँ वन्य जासु ऐसहु चित्त । त्रिपदार्य रसोज्ज्वल मति-पवित्र ॥

शयनासना स्तंबैरम तुरंग । ध्वज छत्र चमर आलावरंग ॥

वन-कण-कांचन-वन द्रविण-कोश । भंपान-यान-भूषण सैंतोष ॥

घर पुर नगरागर देश ग्राम । पट्टोल-अंबर-पट्टन समान ॥

संसारसार पद-वस्तु² भाव । जो जो दीसै नाना स्वभाव ॥

सो सो सुखेहिं पाइयै सब । लभियै न काव्य-भाणिक्य भव्य ॥

(२) आत्म-परिचय

एकै दिन सुकवि प्रसन्न चित्त । निशि शय्यातले³ ध्यावै स्वपित्त ।

“मम बोधरतन धरु⁴ गरुड सरिस । बुधजन भाविकजन⁵ जगिय हरष ॥

करकंटकर्ण पहिरन असक्क । नरहरमति तेन सैंजोर थक्क⁶ ।

मै सुकवित्वहैं विद्याविलास । बुधजन मुक्तमंडन साभिजाष ॥

आनंद लताघर श्रमृत रोपि । ना जानै सुनै न इहाँ कोइ ।

¹ १५१८ (१५७५ संवत्) की हस्तलिखित प्रति—अप्रकाशित

² रेशमी

³ पदार्थ

⁴ तन

⁵ जैन-भक्त

⁶ रहना

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मइं समुणति अक्षर विसेसु, न मुणमि पबंथु न छंद-सेसु ।

पद्धतिया बंधें सुप्पसणउ, अवगमउ अत्थु भव्वयणु तण्णु ।

हीणवखउ मुणें वि इयउ तत्थु, संभवउ अण्णु वज्जे वि अणत्थु ।

२-सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इह-अउणा-गइ-उत्तर-तदित्थ । मह-णयरि 'रायवड्डिय' पसत्थ ।

घण-कण-कंचण-वण-सरि-सभिद्ध । वाणुण्यकर-जण-रिद्धि-रिद्ध ॥

किम्भीर-कम्म निम्मिय रवण्ण । सट्टल सत्तोरण विविह-कण्ण ।

पंडुर पायारुण्ह सभेय । जहि सहहि निरंतर सिरित्तिकेय ॥

चउहउ चत्तल दाम जत्थ । मग्गण-गण-कोसाहल समत्थ ।

जहि विवणे विपणे घण कुप्पभंड । जहि कसिअहि णिच्च पिसंडि खंड ॥

णिच्चिच्च-याण-समान-सोह । जहि वसहि महायण सुद्धबोह ।

ववहार चार सिरि सुद्ध लोय । विहरहि पसण चउवण लोय ॥

जहि कणथचूड मंडण विसेस । सिंगार-सार-कय निरवसेस ।

सोहण लग्ग जिणधम्म सील । माणिणि-णिय-यइ-अय-वहण-लील ॥

जहि पण पकरिय पण्ण साल । णायर-णरेहि भूसिय विसाल ।

थिय जिण विवुज्जल जणियसम्म । कूडग धयावलि-रुद्ध-धम्म ॥

चउ सालुण्णय-तोरण-सहार । जहि सहहि सेय सोहण-विहार ।

जहि दविगंगण बहि पेम छित्त । लावण-पुण्ण-घण लोलचित्त ॥

जहि चरउ चाउ कुसुमाल भेउ । दुज्जण सखुइ खल पिसुण एउ ।

ण वियंभहि कहिमि न धणविहीण । दविगइह णिहिल णर धम्मलीण ॥

पेम्माणुरत्त परिगलिय गव्व । जहि वसहि विवक्खण मणुवसव्व ।

वावार सव्व जहि सहहि णिच्च । कणथंवर भूसिय राय-मिच्च ॥

तंबोल-रंग-रंगिय 'अरग' । जहि रेहहि साएण सबल भग ।

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मे^१ अवुभंता अक्षर-विशेष । न बुझौ^२ प्रबंध ॥ छन्दोदेश ।

पद्धतिका^३ बंधे^४ सुप्रसन्न । अवगमै^५ भव्यजन अर्थ तूर्ण ॥
हीनाकउ जानी इतर तत्र । संभवउ अन्य वखै^६उ अनर्थ ।

२-सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इहै यमुना नदि उत्तर तटस्थ । महनगरि रायभा^१(है) प्रकास्त ।

घन-कण-कंचन-वन-सरि-समृद्ध । दानोन्नत कर-जन-वृद्धि-वृद्ध ॥
किमरि^२ कर्म निर्मिय रमण्य । स^३ष्टुल स-तोरण विविधवर्ण ।

पांडुर प्राकार-उन्नति समेत । जहै रहै^४ निरंतर श्रीनिजेत ॥
औहट्ट चर्चर-होम यत्र । मांगन-गण-कोलाहल-समर्थ ।

जहै विपणि विपणि घन कूप्यभांड । जहै कसियै^५ नित्य पिषंग-खंड ॥
निश्चित यान सम्मान सोह । जहै वसै^६ महाजन शुद्ध-बोध ।

व्यवहार चार श्री शुद्धलोक । विहरै^७ प्रसन्न चौवर्ण लोक ॥
जहै कनकबूड-भंडन विशेष । शृंगार-सार कृत-निरवशेष ।

सौभाग्य सप्त जिन-धर्मशील । मानिनि निजपति वच-बहन-शील ॥
जहै पण्य प्रपूरिष पण्यशाल । नामर-नरेहि^८ मूषित विशाल ।

ठिय जिन बिद्योज्ज्वल जनित शर्म । कूटाग्र ध्वजावलि रुद्ध धर्म ॥
चतुशालोन्नत तोरण स-हार । जहै अहै^९ श्वेत शोभन बिहार ।

जहै द्रविणांगन बहि^{१०} प्रेमक्षेत्र । लावण्यपूर्ण धन लोलचित्त ॥
जहै चरउ चार कुसुमाल भेव । कुर्जन स-शुद्ध खलपिशुन एव ।

न विजु^{११} भै कतहुँ न धनविहीन । द्रविणाढ्य निखिल नर धर्मलीन ॥
प्रेमानुरक्त परिगलित-गर्भ । जहै वसै^{१२} विश्वकण मनुज सर्व ।

व्यापार सर्व जहै सवै^{१३} नित्य । कनकावर-भूषित राजभृत्य ॥
तांबूल रंग-रंगिय^{१४} धरात्र । जहै राजै^{१५} साक्षण सकल मग्य ।

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

तहिं नरवह आहवमल्ल एउ । बारिह समुद्धरण-सेउ ॥

घसा । सव्वासिय-पर-मंडलु दंसिय-मंडलु, कास-कुसुम-संकास-जसु ।

छल-बल-सामत्ये^१ णीह जयत्ये^२, कवण राउ जवमियह तसु ॥

णिय-कुल-कौरव-सिय-पयंगु । गुण-रयणाद्वरण-विहसियंगु ।

अवराह-बलाह्य-पलप-पयंगु । मह-भाग-गण-पडिदिण-तवणु ॥

दुवसण-सोस-णासण-पवीणु । किउ अखलिय-सजस मयंक सीणु ।

पंचंग-मंत-वियरण-पवीणु ।

माणिणि-मण-भोहणु-भयर-केउ । गिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।

रिउ-राय-उरत्यल दिण्ण हीरु । विसमुण्णय-समरे^३ मिहंत वीरु ॥

सगगि-डहिय-पर-चक्कवंसु । कपरीय-बोह-भाया-विहंसु ।

अतुलिय-जल खल-कुस-पलपकालु । पट्ट-पट्टालंकिय विजल भालु ॥

सत्तंग-वज्ज-चुर दिण्ण संधु । संमाण-दाण-पोसिय संधु ।

णिय-परियण-मण-भोमसण-दच्छु । परिवसिय-पयासिय-केर कच्छु ।

करवाल-भट्टि-विष्फुरिय जोहु । रिउ दंड बंड सुठाल सीहु ।

अह-विसम-साह-मुहामधामु । बड-सयरेत-पायडिय-गामु ॥

गाणा-लक्खण-लक्खिय सरीरु । सोमुज्ज्व(ल) सामुदय गहीरु ।

दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्ल । हम्मोर^४-वीर-मण-नट्ट-सल्ल ॥

बडहाण-वंस-तामरस-भाणु । मुणियई न जासु भुद-बल-पमाणु ।

बुलसीदि-खंड-विण्णाण-कोसु । छत्तीसाउह(प)यउण समोसु ॥

साहण-समुद्धु बहुरिद्धि रिद्धु । अरि-राय-विसह संफर-पसिद्धु ।

घसा । सलिय सासणु परबल तासणु, ताण-बडल उव्वासणु ।

जस पसर पयासणु णव जल-हरसणु, दुण्णय वित्ति पवासणु ॥

^१ रणयम्मोरवाले

(२) राजा (आह्वमल्ल)की प्रशंसा

तहँ नरपति आह्वमल्ल एव । दारिद्र्य-समुद्रोत्तरण-सेमुतु ।

घत्ता । उद्घांसित परमंडल देशित मंडल, काशकुसुम-संकाश-यशू ।

छलबल-सामर्थ्य^१ नौतिनयार्थ^२, कवन राव उपमियै तसू ॥

निज-कल-कैरव-सित-मतंग । गुण-रतनाभरण-विभूषितांग ।

अपराध बलाहक प्रलय-पक्व । मथ^३-मार्गगण प्रतिदत्त तपन ॥

दुर्धसन शोष-नाशन-प्रवीण । किउ अ-खलित स्वयश-भयंक सैन्य ।

पंचांग मंत्र-विवरन् प्रवीण ।

माननि मन-मोहन मकरकेतु । निरुपम अविरल गुण-मणि-निकेत ।

रिपु-राज-उरस्थले^४ दीन हीर । विधिमोक्षत समरे^५ भिदंत वीर ॥

लज्जाग्नि-दग्ध-पर-वक्रवंश । विपरीत बोध-भाषा विध्वंस ।

अतुलित-बल खलकुल-प्रलयकाल । प्रभु पट्टालंकृत विपुल भाल ॥

सप्तांग-राज्य-धुर दीनु कंध । सम्मान-दान-पोषित स्वबंधु ।

निज-परिजन-मन-मीमांस-दक्ष । परिवसिय-प्रकाशिय-कैर कक्ष ॥

करवाल पट्ट विस्फुरति जीह । रिपुदंड-बंड-शुंडाल-सीह ।

अतिविषम साहसोद्दाम-धाम । चतुसागरांत प्राकटित नाम ॥

नाना लक्षण-लक्षित शरीर । सोमोज्ज्वल सामुद्र^६व गभीर ।

दुष्प्रेक्ष्य म्लेच्छ रणरंग-मत्स्य । हृन्मीर-वीर मन-नष्ट-शल्य ॥

चौहान-वंश-तामरस-भानु । बुभुक्षै न जासु भुजबल-प्रमाण ।

चौसट्टि खंड विज्ञानकोश । छत्तीसामुघ प्रकटन समोष^७ ॥

साधन-समुद्र बहू-ऋद्धि-ऋद्ध । अरिराज-विषह संफर^८ प्रसिद्ध ।

घत्ता । क्षत्रिय-शासन परबल-नाशन प्राण मंडल-उद्घासनऊ ।

यश-प्रसर-प्रकाशन नव जलधर सन, दुर्नयवृत्ति प्रवासन ॥

(३) रानी (ईसरदे)की प्रशंसा

तहोँ पट्ट महाएवी पसिद्ध । ईसरदे पणयणि पणय-विद्ध ।

णिहिलतेउर मज्झएँ पहाण । णिय पइ मण-पेसण सावहाण ।

सज्जण-मण-कप्प महीय साह । कंकण केऊरंकिम सुवाह ।

छण-ससि-परिसर संपुण-व्यण । मुक्कमल कमलदल सरल गयण ॥

आसा सिंधुर गइ गभण लील । बंदियण-भणासा दाण-सील ।

परिवार भार बुरवरण सत्त । मोयइ अंतर-दल ललिय गत्त ॥

छहंसण चित्तासा विसाम । चउ सायरंत विक्खायणाम ।

अहमल्ल-राय-पय भत्तिजुत्त । अयगमिय णिहित विष्णाणसुत्त ॥

णियणंदणाहँ चित्ताभणीव । णिय धवलगाह सरहंसिणीव ।

परियाणिय-करण-विलासकज्ज । रुबेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज ॥

गंगा-तरंग कल्लोल माल । समकित्ति भरिय ककुहंतराल ।

कलयंठि-कंठ कलमहुर-वाणि । गुणगरुअ रयण उप्पत्ति साणि ।

अरिराय विसह संकरहो सिट्ठ । सोहग-लगग भोरिव्व दिट्ठ ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्ल^१-राय-अहमंति सुइव । जिण-सासण-परिणइ गुणपवद्वु ।

ककुह-कुल कइरव सेयभाणु । पट्टणा समज्ज सब्बहँ पहाणु ॥

मंजोत्तिय मणु लक्खणु बहूउ । सीयरिउ कव्व करणाण रुउ ।

णियवरें पत्तउ वणगन्व हत्थि । मयमत्तु फुरिय मुहह्ठ गभत्थि ॥

वसि हुयउ स-सर दसदिसि भरंतु । मणि कोण पडिच्छइ तहोँ तुरंत ।

सुयस्तण राज घरहँ तवेइ । भणु कवणु दुवार कवार देइ ॥

अयमिय वयणसिणा चातुरंग । धण-कण-कंठण-संपुण वंग ।

अर समुह एंत पेच्छिवि सवार । भणु कवणु वप्प भंपइ बुवार ॥

^१ अहमल्ल राजा

(३) रानी (ईश्वरदेवी)की प्रशंसा

तह पट्ट महादेवी प्रसिद्ध । ईश्वरबे प्रणमिनि प्रणय-बिद्ध ।

निखिल-न्त-पुर-मध्ये प्रधान । निज पति-मन-प्रेक्षण सावधान ॥

सज्जन-मन कल्प-महीपशाख । कंकण-केयूर-किंत सुबाह ।

छण-शशि-परिसर-संपूर्ण-वदन । मुक्त-मल कमलदल सरल-मयन ॥

आशासिधुर गज-गमनलील । वंदिजन-मनाशा-दानशील ।

परिवार-भार-धुर-धरन शक्त । मोचै अंतरदल ललित-भाष ॥

छै-दर्शन चित्ताशा-विश्राम । चतुसागरांत-विख्यात-नाम ।

अहमल-राय-पद-भक्तियुक्त । अवगमित-निखिल-विज्ञान-सूत्र ॥

निजनंदने (६) चित्तामणी-व । निज-धवलगेह-सरहंसिनी-व ।

परि-जानिय करन विलासकाज । रूपेहिं जीत सुखान-भार्य ॥

गंगा-सरंग-कल्लोलमाल । समकीर्ति भरिय ककुभान्तराल ।

कलकंठि-कंठ कलमधुर-वाणि । गुणगुरु रतन-उत्पत्ति-स्नानि ॥

अरिराज विषह शंकरहो शिष्ट । सौभाग्यलग्न गौरी-व दृष्ट ॥

(४) मंत्री (कान्हड़)की प्रशंसा

अहमल्लराय महोमंत्रि शुद्ध । जिन-शासन-परिणय-गुण-प्रबद्ध ।

कान्हड़-कुल-कैरव-श्वेतमानु । प्रभुहै समाज सव्यहै प्रधान ॥

गंजोल्लिय मन लक्षण बहूव । स्वीकारिउ काव्य-करणानुरूप ।

निज-वरे आयउ बन गंध-हृस्ति । मदमत्त फुरिय मुखरुह-नाभस्ति ॥

वरा ह्रुयउ स्व स्वर दशदिशि-भरंत । मन कोन प्रतीच्छै तह तुरंत ।

सुप्रसन्न राव घरई तबेइ । भनु कौन दुवार-किवाइ देइ ।

जानीय वचन लिन चातुरंग । धन-कन-कंचन-संपूर्ण संग ॥

घर समुह आइ पैलेवि सवार । भनु कौन वध्व भंपइ दुवार ।

चितामणि-हाडय-निवड-जडिउ । पञ्जहइ कवणु सहै हत्य चडिउ ।

धर रंगुपणउ कण्य-रुक्म । जले कवणु न सिचइ जणिय सुनसु ॥

सयमेव पत कामधेनु । पञ्जहइ कवणु कथ-सोक्खसेणु ।

चारण-मुणि-तेएँ जित्त भवइ । गयणाउ पत किर कोण गवइ ॥

पेरुस पिठ केँर पतु भवु । को मयइ तिवे (इय) जीवियवु ।

अहमल्ल-राय-कर-विहिय-तिसउ । मह्यणहँ महिउ गुणगरुम-णिलउ ।

सो साहु पइहुवु जणिय-सेउ । सिन्नदेउ साहुकुल-वंस-केउ ॥

घसा : जो कण्हइ पुवुसउ, पुणपउत, महिमंडलि विक्सायउ ।

आहवमल्ल-गरिदहु, भण-साणंदहु मंततण पइभायउ ॥

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

पिया तस्स सल्लक्खणा लक्खणइडा । गुरुणं पए भक्ति काउं वियइडा ।

स मत्तार-भाधार-विदाणुगामी । घरारंभ-वावार-संपुण-कामी ॥

सुहायार चारित्त-चीरक-जुता । सुचेयाण मंधीदएणं पबिसा ।

स पासाय-कासार-सारा-भरासी । किंवा-दाण संतोसिया वंदिणाली ॥

पसण्णा सुवाधा अचंचेल-चित्ता । रमाराम-रम्मा मए बालगित्ता (?) ।

सलाणं मुहंभोय-संपुण जुण्हा । पुरगो महासाहु सोळस्स सुण्हा ॥

दया-वल्लरी मेह-मुककंबुवारा । सइत्तत्तणे सुद्ध-सीयप्पयारा ।

जहा चंदचूडा नुगामी भदाणी । जहा सब्ब वेइहिं सब्बंग वाणी ॥

जहा शोत निहारिणी रंभ रामा । रमा दाणवारिस्स संपुण-कामा ।

जहा रोहिणी ओसहीसस्स सण्णा । महइढी संपुणस्स सारस्स रण्णा ॥

जहा सूरिणी मुत्तिवेई भणीसा । किसानस्स साहा जहा ख्वमीसा ।

चितामणि हाटक निवह जड़ित । प्रज्जहै^१ कौन सँग हस्त चड़ित ॥

घर रंग उत्पन्नउ कल्पवृक्ष । जल कौन न सींचे^२ जनित सुवक्ष ।

स्वयमेव प्राप्त घर कामधेनु । प्रज्जहै^३ कौन कृत-सौख्य-सेम ॥

चारण मुनि-सेजे जेत हवै । गगनाहु आउ फुर को न नवै ।

पीयूष-पिह करे^४ पाइ भव्य । को मुंचै निवेदिय जीवितव्य ॥

अहमल्ल^५ राय-कर-विहित-तिलक । महो^६ जनक महित गुण-गरुड-निलय ।

सो साहु पईठउ अनित-सेतु । शिववेव साहु कुल-वंश-केतु ॥ (१४ छ)

यसर । जो कान्हड पूर्वो-^७क्तउ पुण्य-प्रयुक्तउ महिमंडल विख्यात यऊ ।

अहमल्ल-नरेन्द्रहु, मन-सानंदहु, मंत्रित्वन प्रति-भातयऊ ॥ (१५ छ)

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

जिया तासु सुल्लक्षण लक्षणादया । गुरुणां पदे भक्ति-करणे विदग्धा ।

स्वयन्तरि पादारविन्दानुगामी । वरारंभ व्यापार संपूर्ण कामी ॥

शुभाचार चारित्र श्रीरांकयुक्ता । सुचेतन गंधोदकेहीं पवित्रा ।

स्वप्रासाद-कासार-सारा मराली । कृपादान-संतोषिया बंदिताली ॥

प्रसन्ना सुवाचा अचंचल-चित्ता । रमा राम रम्या मदेवाल-नेत्रा ।

खलो-को मुलाम्मोज संपूणज्योत्स्ना । पुरासोमहासाहु सोड़ाको सुन्हा^८ ।

दया-मल्लरी-भेष-मुक्तांबुधारा । सतीत्वत्तने शुद्ध-सीत-प्रकारा ।

यथा चंद्रचूडानुगामी भवानी । यथा सर्व वेदेहिं सवीग वाणी ।

यथा गोत्र भिदीरिण^९ हैं रंभा^{१०} रामा । रमा दानवारी कि संपूर्ण कामा ।

यथा रोहिणी ओषधीशाह संगी । महादया संपूणहि साराहु रानी ॥

यथा सूरिकी मुक्तिवेदी मनीषा । कृशानार्क स्वाहा यथा रूप मीसा । (१६ छ)

§ ४१: जज्जल^१

काल—१२१० ई० (हम्मीर^२ १२८२-८६) । देश—उत्तरी राजपूताना ।

वीर-रस

(राजा हम्मीरकी प्रशंसा^३)

मुंघहि सुंदरि पात्र अप्पहि हसिकण सुम्मुहि खग मे ।

कपिअ मेच्छ-सरीरं पेच्छइ वधणाइ तुम्ह धुअ हम्मीरो ॥७१॥ (१२७)

पअमरु दरमरु धरणि तरणि रह बुल्लिअ भंपिअ,

कमठ-पिट्ट टरपरिअ मेरु-मंदर-सिरकंपिअ ।

कोह चलिअ हम्मीर-वीर गअजूह-सँजुते ।

किअउ कट्टु हा कंद ! मुच्छि मेच्छहके पुसे ॥८२॥ १(५७)

पिअउ पिठ-सण्णाह वाह-उप्पर पक्खर दइ,

बंधु समदि रण घसउ सायि हम्मीर वधण लइ ।

जज्जल णह-वह समउ खग रिउ-सीसहि डारउ,

पक्खर-पक्खर ठेल्लि-पेल्लि पक्खअ अप्फालउ ।

हम्मीरकज्ज जज्जल मणइ, कोहाणल मुह मह जलउ ।

सुलताण-सीस करवाल दइ, तेल्लि कलेवर दिअ वलउ ॥१०६॥ (१८०)

ढोल्हा भारिअ ढिल्लिमह, मुच्छिअ मेच्छ सरीर ।

पुर जज्जल मंतिदर, चलिअ वीरं हम्मीर ॥

चलिअ वीर हम्मीर, पाअभर मेहणि कंपइ ।

दिगमगणह अंधार धूरि सूरिय रह भंपइ ॥

दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्हा ।

दरमरि दमसि विपक्ख भार अ ढिल्लिमह डोल्हा ॥१४७॥ (२४६)

^१ "आकृत बंगल" से ।

^२ रणधम्मोरके राजा वीर हम्मीर जिन पर अलाउद्दीन ने १२६६में चढ़ाई की ।

^३ जिन कविताओंमें जज्जलका नाम नहीं है, उनके बारेमें सन्देह है, कि वह इसी कविकी कृतियाँ हैं ।

§ ४१: जज्जल

कुल—हम्मीरका भन्त्री और सेनापति ।

वीर-रस

(रामा हम्मीरकी प्रशंसा)

मुंचहि सुंदरि ! पाव अपंहि हंसियाउ सुमुखि सङ्गहैं मे ।

काटिय स्लेच्छ शरीरहँ पे^१सिहँ वदनहँ सुम्ह ध्रुव हम्मीरो ॥१२७॥

पद्मर दरमर धरणि तरणि रहू धूलिय भंपिय,

कमठ-पीठ टरपरिय मेरु-मंदर-शिर कंपिय ।

क्रोधि चलिय हम्मीर बीर गज-यूथ-सँयुत्ते,

कियउ कष्ट "हाफंद" मूछि स्लेच्छनके पुत्ते ॥१२८॥

पेन्हेंउ दुठ सत्ताहू बाँह ऊपर पक्खर बइ,

बंधु समझि^२ रण घेंसेँउ स्वाभि हम्मीर वचन लइ ।

उज्जल नभ-पथ भ्रमेँउ खड्ग, रिपु शीशहि डारेउ,

पक्कड़-पक्कड़ ठेलि-पेलि पर्वत उच्छालेउ ।

हम्मीर-कार्य उज्जल भनइ, क्रोधानल-मुख महँ ज्वलउ,

सुल्तानशीश करवास दइ, त्यागि कलेवर दिवु चलउ ॥१२९॥

ढोला भारिय बिल्लि महँ मूछिय स्लेच्छ शरीर,

पुर्^३ जज्जल्ला मंत्रिवर चलिय बीर हम्मीर ।

चलिय बीर हम्मीर पाद-भर मेदनि कपै,

दिग-भग-नभ^४ अंधार धूलि सूरज-रथ भंपै ।

दिग-भग-नभ अंधार आनि सुरसान के ओल्ला^५,

दर मरि वसति विपक्ष मार बिल्ली महँ ढोल्ता ॥१३०॥

^१ मीर मुहम्मदशाह और उनके साथियोंको हम्मीरने शरण दिया था, जिस पर अलाउद्दीनसे विरोध हो गया । ^२ आगे ^३ स्वामी

सहस्र मधुमत्त गन्ध साख लख पक्षरिअ ,
साहि छुइ साजि खेलत गिह ।

कोप्यि पिअ ! जाहि तहि यप्यि जसु विमल सहि ।

जिणइ पहि कोइ दुअ तुलक-हिह ॥१५७॥ (२६२)

वर लगइ आनि जलइ घह घह ,
कइ दिगमग गह-पह भणल भरे ।

सब दीस पसरि परइक लुलइ धनि ,

यणहर जहण दिआव करे ।

भअ लुकिअ धक्किअ बहरि तरणि ,
जण भहरव भेरिअ सह पले ।

महि लीटइ पिटइ रिउ-सिर टुटइ ,

अक्खण वीर हमीर चले ॥१६०॥ (३०४)

खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ ,
ण ण ण गगिदि करि तुरअ चले ।

टट टगिदि पलइ टपु असइ धरणि वपु ,

चकमक करि बहु दिसि चमले ।

चलु दमकि दमकि बलु चलइ पइक बलु ,
बुलकि धुलकि करि करि चलिआ ।

वर मणु सअल कमल दिपख हिअअ सल ,

हमिर वीर जब रण बलिआ ॥२०४॥ (३२७)

बहा भूत बेताल गच्छंत गावंत^१ खाए कबंधा ,
सिआकार फेक्कार हक्का रवन्ता फुले कण्णरंधा ।

कभा टुटु फुट्टेइ मत्था कबंधा गचंता हसंता ,

तहा वीर हमीर संगम-मज्जे तुलंता जुभंता ॥१८३॥ (५२०)

सहस्र मदमत्त गज, लाख-लख पक्कड़ी ,
साह द्रव साजि खेलंत गेदू ।

कोपि प्रिय ! जाहि तहें सापि वश-विमल महि,
जित नहि को तोहि तुरक-हिंदू ॥१५७॥

वर लागै आग जलै धह-धह ,
करि दिग-मग नम-पथ खल-भरे ।

सब दीस पसरि पाइक्क^१ चलै ,
घनि घन-भर-जघन दियो^२ करे ।

अथ लुक्किय थाकिय बैरि तरणि-
बस भैरव-भेरिय शब्द पड़े ।

महि लोटै-पोटे रिपु-शिर टुटै ,
जखन वीर हम्मीर चले ॥१६०॥

सुर-सुर खुदि-खुदि महि घघर रव करे ,
न न न नगिदि करि तुरग चले ।

ठ ठ ठ गिदि परै टॉप धैसे वरणि वपु
चकमक करि बहु दिशि चभरे ।

बलु दमकि दमकि बल चलै पइक्क^१-बल ,
धुलुकि धुलुकि करि करि बलिया ।

वर मनुष बल कमल विपल^१ हृदय सज ,
हमिर वीर जब रण बलिया ॥१७४॥

यथा मूल-वेताल नाचंत गावंत साएँ कबंधा ,
शियाकार फेककार हक्का रवंता फोड़ें कर्ण-रंध्रा ।

कौया टुट फोड़ेइ मत्या कबंधा नचंता हसंता,
तथा वीर हम्मीर संग्राम-अध्ये तुरंता जुमंता ॥१८३॥

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

काल—तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध । देश—युक्त-प्रान्त या बिहार ।

१-सामन्त-समाज

युद्ध-वर्णन

अहि ललइ महि चलइ, गिरि ससइ हर खलइ,
 ससि घुमइ अमिअ वमइ, मुअल जिवि उट्टए ।
 पुणु घसइ पुणु ससइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ,
 पुणु वमइ जिविअ मिडिह, परि समर दिट्टए ॥१६०॥ (२६६)
 गअ-गअहि बुकिअ तरणि लुकिअ, तुरअ तुरअहि जुजिअआ ।
 रह-रहहि भीलिअ वरणि पीलिअ, अप्प-पर णहि बुजिअआ ॥
 कल मलिअ आइअ पति जाइउ, कंप गिरिवर-सीहरा ।
 उच्छलइ सामर दीण काअर, बहर भडिअ दीहरा ॥१६३॥ (३०६)
 कुंजरा जलंतआ पव्वआ पलंतआ ।
 कुम्म-पिट्ठि कंपए, धूलि सूर भंपए ॥१६४॥ (३७८)
 उम्मता जोहा दुक्कंतर, विप्पक्खा मज्जे लुक्कन्ता ।
 णिक्कंता अंता धावंता, णिम्भंती किंती पावंता ॥१६७॥ (३७८)
 ठामा-ठामा हत्थी-जूहा देवलीआ,
 नीला-मेहा मेरु-सिंगा पेक्खीआ ।
 बीरा हत्था अग्गे खगा राजंता,
 नीला-मेहा-मज्जे बिज्जू णम्भंता ॥१६९॥ (४२५)
 मत्ता जोहा वट्टे कोहा अप्पा-अप्पी गब्बीआ,
 रोसा रत्ता सब्बा भत्ता सल्ला भल्ला उट्ठीआ ।

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

काल—दबारी, भक्त । कृतियाँ—स्फुट कवितायें^१ ।

१-सामन्त-समाज

(१) युद्ध-वर्णन

अहि ललै महि चलै गिरि खसै हर स्खलै,
 शशि घुमै अमिय वमै मुअल जीइ उठुए ।
 पुनि धँसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
 पुनि वमै जीविता विविध परि समर दृष्टए ॥१६०॥

गज-नखहि हुक्किय तरणि लुक्किय तुरग-तुरंगहि बूझिया,
 रथ-रथहि मेलिय धरणि पेलिय, आप पर नहि बूझिया ।
 बल मिलै आइय पत्ति^२ आइय, कंप गिरिवर शीखरा,
 ऊछलै सागर दीन कातर वैरि बाढिय दीघरा ॥१६३॥

कुंजरा चलंतआ पर्वता पडंतआ ।
 कूर्म पृष्ठ कंपए, झूसि सूर भंषए ॥१६४॥

उत्पत्ता योधा हुक्कंतरा, विप्यच्छा मध्ये लुक्कंतरा ।
 निष्कर्ता जांता थावंता निभ्रांती कीर्ती पावंता ॥१६७॥

ठावें ठावें हस्ति यूथा देखीया,
 नीला मेघा मेरु-भृंगा पेखीया ।
 धीरा-हस्ता-अत्रे सङ्गा राजंता,
 नीला-मेघा-मध्ये विज्जू तारंता ॥१६९॥

मत्ता योधा बाढे क्रोधा आपे-आपा गर्बीया,
 रीषा रक्ता सर्वा गात्रा शल्या भल्ला उट्ठीया ।

^१ “प्राकृत-पैगल” मे संगृहीत, पृष्ठ कवित्त(श्रुति) अन्तर्ग—कोष्ठकमे । ^२ व्यास

झूठी-जूहा सज्जां हूमा पाए मूमी कंपता,
 लेही देही छहो ओहो सन्ना सुरा जप्पता ॥१५७॥ (४८३)
 मरति जोइ सज्ज होइ सज्ज मज्ज तंखणा,
 रोस-रत्त सव्व-गत हक्क^१ दिज्ज भीसणा ।
 भाइ भाइ खग पाइ दाखवा चलंतभा,
 बीर-भाअ शाअराअ कंप भूतलंतगा ॥१५६॥ (४८५)
 चलंत जोइ मत्त-कोइ रण-कम्म-अगरा,
 किवाण-वाण-सल्ल-भल्ल-वाव-वक्क-मुअरा ।
 पहार वार वीर वीर वग मज्ज पंडिआ,
 पअट्ट^२ जोट्ट^३ कंत वंत तेभ सेभ मंडिआ ॥१५६॥ (४८६)
 उम्मत्ता जोहा उट्ठे कोहा ओल्या-ओत्यी बुज्जंता,
 मेणक्का रंभा णाहं दंभा अप्पा-अप्पी बुज्जंता ।
 बावंता सत्ता छिण्णे कंठा मत्ता पिट्ठी पेरंता,
 जं सग्गा मग्गा जाए अग्गा लुआ उआ हेरंता ॥१७५॥ (५०७)

२-देव-स्तुति

(१) वराहवतार

जिण वेश घरिज्जे महिअल लिज्जे, पिट्ठिहि दंतहि ठाउ धरा ।
 रिउ-वच्छ विआरे छल तणु धारे, बंधिअ सत्तु सुरज्जहारा ।
 कुल सत्तिअ कप्पे तप्पे दहमुह कप्पे, कंसअ केसि विणासकरा ।
 करुणा पअले मेछह विअले सो, देउ णराअण तुम्ह धरा ॥२०७॥ (५७०)

(२) राम-स्तुति

वय्य अ-उअकि सिरे जिणि लिज्जिउ, तेज्जिअ रज्ज वणंत चलेविणु ।
 सोअर सुंदरि संगहि लगिअ, मारु विराअ कबंध सहा हणु ।

^१ आह्वान, ललकार

हस्ती-यूषा सज्जा हुआ पायें भूमी कंपता,

“लेही देही छाडो ओढो” सर्वा शूरा जल्पता ॥१५७॥

भट्ट योवाँ सज्ज होइ, गर्ज बज्ज तत्क्षणा ।

रोष-रक्त सर्वगात्र हाँकि चीजेँ भीषणा ।

बाह् बाह् खड्ग पाइ धानवा चलंतआ ।

वीरपाद नागराज कंप भूतल'त्तगा ॥१५८॥

चलंत योव मत्त क्रोध रत्न-कर्म आगरा ।

कृपाण-बाण-सत्य-भल्ल-बाण-बक-मुग्धरा ॥

प्रहार-वार-वीर-वीर-वर्ग-मांझ-मंडिता ।

प्रदष्ट-ओष्ट-कांत-दंष्ट तेन सेना मंडिता ॥१५९॥

उन्मत्ता योद्धा उट्ठे ओषा उट्ठा-उट्ठी जुझंता,

मेनका-रम्मा-नार्थ दम्भा अप्पा-अप्पी बुझंता ।

धावता सत्या क्षिपा कंठा मत्था पीठी पड्बंता,

जनु स्वर्गा-मार्गा जाये अगगा-लुब्धा उर्ध्व हेरंता ॥१६०॥

२-देव-स्तुति

(१) दशावतार

ओहि वेद चरिज्जे महितल लिज्जे, पीठाहि दंठाहि ठाबै धरा ।

रिपु-वध विदारे छल-तनु धारे, बंधिय शत्रु स्वराज्य हरा ॥

कुल-क्षत्रिय तापे दशमुख कप्ये^१, कंशय केशि विनाश करा ।

करुणा प्रकटे स्लेच्छहैं विदले, सो देउ नरायण मुम्ह धरा ॥२०७॥

(२) राम-स्तुति

बापहु उक्ति शिरे जिनि लिज्जित । त्यागिय राज्य वनंत चलेविक्र ।

सोदर सुंदरि संगहि लगिय । मार विराध कबंध तथा ह्व ॥

मारुह भिल्लिअ वासि बिहंडिअ, रज्ज सुगीवह दिज्ज अकंटअ ।

बंधु समुह विणासिअ रावण, सो तुअ राहव दिज्जउ णिअअ ॥२११॥ (१७६)

(३) कृष्ण

अरे रे बाहहि काहू जाव छोडि, हगमग कुगति न देहि ।

तइ इत्थि णइहि संतार देइ, जो चाहहि सो लेहि ॥१॥

जिणि कंस विणासिअ किति पन्नासिअ, मुट्ठि-अरिट्ठि विणास करे, गिरि हत्थ घरे ।

जमलज्जुण भंजिअ पन्नभर गंजिअ, कालिअ-कुल संहार करे, जस भुअण भरे ।

बाणूर बिहंडिअ णिअ-कुल मंडिअ, राहा-मुह महु-पाण करे, जिमि भमर वरे ।

सो तुम्ह णराअण विप्प-पराअण, चित्तह चितिअ देउ बरा मअ-मीअ-हरा ॥२०७॥

भुअण-अणंदो तिहुअण कंदो । भमरसवणो स जअइ कव्हो ॥४६॥

परिणअ ससिहर-अअण, विमल-कमल-दल-अअण ।

बिहिअ-असुर-कुल-दलण, पणमह सिरि-महुसहण ॥१०६॥^१

(४) शंकर-स्तुति

जा अदंगे पव्वई, सीसे भंगा जासु ।

जो लोअण बल्लहो, वंदे पाअं तासु ॥८२॥ (१४३)

जसु सीतहि गंगा गोरि अअंगा, गिव पहिरिअ फणि-हारा ।

कंठ-ट्ठिअ बीसा पिअण दीसा, संतारिअ संसारा ।

किरणावलि कंदा वंदिअ चंदर, अअणहि अणल फुरंता ।

सो संपअ दिज्जउ बहु सुह किज्जउ, तुम्ह भवाणी-कंता ॥१८॥ (१६६)

रण दक्ख दक्ख हणु जिणु कुसुम-वणु, अंधअगंध विणास कर ।

सो रक्खउ संकर असुर-अअंकर, गिरि-गाअरि अदंग-अर ॥१०१॥ (१७२)

जो वंदिअ सिरगंग हणिअ अणंग, अदंगहि परिकर घरणु ।

सो जोइ-अण-मित्त हरउ दुरित्त, संकाहउ संकर चरणु ॥१०४॥ (१७६)

मारुति मेँल्लिय नासि विषडिय, राज सुग्रीवहि विज्ज अकंटक ।

बंघ समुद्र विनाशिय रावण, सो तोहँ राघव दिज्जिउ निर्भय ॥२११॥

(३) कृष्ण

अरे रे बालहि कान्ह नाव, छोटि उगमग कुगति न देहि ।

तै एहि नदिहि संतार देइ, जो चाहि सो लेहि ॥१॥

जिन कंस विनाशिय कीसि प्रकाशिय, मुष्टि अरिष्ट विनाश करे, गिरि हाथ धरे ।

यमसार्जुन मंजिय पदभर मंजिय, कालिय-कुल-संहार करे, यक्ष भुवन भरे ।

चाणूर घिलंडिय निज-कुल मंडिय, राक्षामुख मधु-गान करे, जिमि अमरवरे ।

सो तुम्ह नरायण, विप्र-परायण, चित्ते चितित देहु वरे, भय-भीति-हरे ॥२०७॥

भुवन-अनंदा त्रिभुवन कंदा । अमर-सवर्णा स जयतु कृष्णा ॥४६॥

परिणत-शशिधर-वदनं, किमल-कमल-दल-नयनं ।

विहित-असुरकुल-दलनं, प्रणमहु श्री मधुमथनं ॥१०॥

(४) शंकर-स्तुति

जेँहि अर्घगे पार्वती, शीशे गंगा जासु ।

जो लोकन कर वल्लभ, वंदे पादहँ तसु ॥२॥

जसु सीसहि गंगा गौरि अर्घगा, प्रिय पहिरिय फणिहारा,

कंठे ठिय वीषा पहिरन दीशा, संतारिय संसारा ।

किरणावलि कंदा वंदिय चंदा, नयनहि अनल फुरंता,

सो संपति दिज्जउ बहु-सुख किज्जउ, तुम्ह भवानी कंता ॥६८॥

रण-दक्ष दक्ष हंतु, जित्तु कुसुमधनु अन्ध क-अंध विनाश करो ।

सो रक्षउ शंकर असुर-भयंकर, गिरि-नागरि-अर्घांग-धरो ॥१०१॥

जो वंदिय शिर गंग हनिय अनंग, अर्घगहि परिकर धरणू ।

सो योगि-जन-मित्र हरहु दुरित्त, शंकाहर शंकर-वरणू ॥१०४॥

जसु कर फणिवह-वसत्र तसणिवर तणुमहँ विससइ,

गमन गमल गत गरल विमल ससहर सिर निवसइ ।

सुरसरि सिर मेंह रहइ सगल जण-दुरित-दमन कर,

हसि ससिहर हरउ दुरित, कितरह भतुल भभगवर ॥१११॥ (१६०)

जाया जा अदंग सीस गंगा खोलंती, सखासा पूरति सब-दुक्खा तोलंती ।

गाथा राधा हार दीस वासा भासंता, बैभाला जा संग गढ़ा दुहा नासंता ।

गार्जता कंठा उच्छवे ताले मूमी कपले,

जा दिट्ठे मोक्खा पाविज्जे, सो तुम्हाणं सुख दे ॥११६॥ (२०७)

सिर किज्जिअ गंगं गोरि अघंग, हणिअ गणगे पुर-दहणं ।

किअ फणवह हारं सिहुअण सारं, वंदिअ छारं रिउ-महणं ।

सुर सेविअ चरणं मुणिगण सरणं, भद-भग्न-हरणं सूलधरं ।

साणंदिअ वधणं सुंदर-गमणं गिरिवर-सअणं भमह हरं ॥११५॥ (३१३)

जसु मित्त धनेसा ससुर गिरीसा, तहविहु पिधण^१ दीस ।

जह भमियह कंठा निधलहि चंदा, तह विह भोगण वीस ।

जइ कणअ-सुरंगा गोरि अघंगा, तहविहु डाकिणि संग ।

जो जसुहि दिआवा देव सहावा, कयहु ण हो तसु भंग ॥२०६॥ (३३८)

गवरिअ-कंठा अभिणउ संता । जइ परसण्णा दिअ महि धण्णा ॥४८॥ (३६५)

पिंग-अटावलि-ठापिअ गंगा, वारिअ गाअरि जेण अघंगा ।

चंदकला जसु सीसहि णोक्खा, सो तुह संकर दिज्जउ मोक्खा ॥१०५॥ (४१७)

बालो कुमारो स छमुंडधारी, उप्पाउ-हीणा हउँ एक गारी ।

अहणिसं खाहि विषं भिखारी, गई भविषी किल का हमारी ॥१२०॥

तुअ देव दुरित गणा हरणा चरणा, जइ पावउ चंदकला-भरणा सरणा ।

परि पूजउ तेज्जिअ लोभमणा भवणा, सुख दे मह सोक विणास मणा समणा ॥१५५॥

पहु दिज्जिअ वज्जिअ सिज्जिअ टोप्पर, कंकण बाहु किरिट सिर ।

पइ कणहि कुंडल णं रइभंडल, ठाविअ हार फुरंत जरे ।

जसु कर फणिपति बलय, सखिनि-बर तनुमहें बिलसह,

नयन अनल गल गरल विमल शशधर शिर निवसह ।

सुरसरि शिरमोह रहें सकल-जन-दुरित-दमनकर,

हृसि शशिधरः हरहु दुरित, वितरहु अतुल अमय धर ॥१११॥

आया अधाँग शीशे गंगा लोलंती, सर्वाशा पूरति सब दुक्खा तोडेंती ।

नागा-राजा हार दिशा वासा भासता, वेताला जा संग नष्ट हुष्टा नाशता ।

नाचता कंठा उत्सवे ताले भूमी कंपरे ।

जा देखे मोक्षा पाइज्जा, सो तुम्हा कहें सुख दे ॥११२॥

शिर किञ्जिय भंग गौरि अधंग, हनिय अनंग पुर-दहन ।

किय फणिपति हारं त्रिभुवन सारं, बंदिय छारं रिपु-मयन ।

सुर-सेवित-चरण मुनिगण-सरण भवभय-हरण शूलधर ।

सानंदित वदनं सुंदर-नयनं, गिरिवर-शयनं नमहु हरं ॥११३॥

जसु भिन्न धनेशा समुर गिरीशा, तेहि विध पेन्हन दीश ।

जिमि अमृतह कंठा नियरइ चंदा, तेहि विध भोजन वीष ॥

यदि कनक-सुरंगा गौरि अधंगा, तेहि विध डाकिनि संग ।

जो यशह दियावा देव स्वभावा, कवहु न हो तसु भंग ॥११४॥

गौरिय कंठा अभिनव शांता यदि परसअ देंहुं मोहि भक्षा ॥११५॥

पिंग-जटावलि आपिय गंगा, धारिय नागरि जिनि अधंगा ।

चंद्रकला जसु शीशहि नोखा, सो तेहि शंकर दिज्जउ मोक्षा ॥११६॥

वातो कुमारो स छ-मुंड-धारी, उत्पाद-हीना हो एक नारी ।

अहनिशा खाइ विष भिक्षारी, गती हुंवा फुर का हमारी ॥११७॥

तव देव ! दुरित-गणा-हरणा-चरणा, यदि पावउ चंद्र कला-भरणा-शरणा ।

परिपूजैं त्यागिय लोभमता भवना, सुख दे मोहि शोक-विनाश मवः शमना ॥११८॥

अधु ! दीजिय वषाहि सुज्जिय टोप्पर^१ कंकण वाहु किरीट शिरे,

प्रति कर्णहि कुंडल अनु-रवि मंडल, आपिय हार फुरत उरे ।

पइ भंगुसि मुदरि हीरहि सुंदरि, कंचण रज्जु सुमभूत तणू ।

तसु तूणउ सुंदर किज्जिअ मंदर, ठावह वाणह सेस अणू ॥२०६॥
जअइ जअइ हर बलहअ विसहर तिलहअ सुंदर चंदं मुणि आणवं अणकवं ।
वसह-गमणकर तिसुल-उमर-घर, णअणहि डाहु अणंगं सिर गंगं गोरि अघंगं ।
जअइ जअइ हरि भुअजुअ घर गिरि, दहभुह कंस विणासा पिअवासा सुंदर हासा ।
बसि छलि भहि हर असुर विसयकर, मुणिजगमाणसहंसा पिअ सुहभासा उत्तमवंसा ॥२१५॥^१

३-कविका संदेश

सन्तोष-और निराशा-आव

सेर एक्क जइ पावउ चित्ता । मंडा बीस पकावउ णित्ता ।
टंकु एक्क जउ सेंधव पाआ । जी हउ रंको सो हउ राआ ॥१३०॥ (२२४)
राआ लुद्ध सभाज खल, बहु कलहारिणि सेवक वुत्तउ ।
जीवण चाहसि सुक्ख जइ, परिहर घर जइ बहुगुण-वुत्तउ ॥१६६॥ (२७७)
पंडव-वंसहि कम्म घरीजे । संपअ अज्जिअ धम्मक दिज्जै ।
सोउ जुहुट्ठिर संकट पावा । देवक लेक्खिल केण मेढावा ॥१०१॥ (४१२)
सो जण जणमउ सो गुण-मंतउ । ओ कर पर-उवधार हसंतउ ।
जे पुण पर-उपआर विरुभूऊउ, ताक जणणि-किण थक्कउ वंऊउ ॥१४६॥ (४७०)

§ ४३: हरिब्रह्म

काल—तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध (चंडेश्वर-मंत्रीका काल)^१ । देश—बिहार

१-मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

जहा सरअ-ससि-विन, जहा हर-हार-हंस छिअ,
जहा फुल्ल सिअ कमल, जहा सिरि-खंड खंड किअ ।

^१ पृष्ठ ४३५, ४८०, ५७३, ५८६
^२ चंडेश्वर मिथिला-नेपाल के राजा हरिसिंह (१३१४-२५) के मंत्री थे, जिन्होंने "कृत्यरत्नाकर", "कृत्य-चिन्तामणि", "दानरत्नाकर" आदि ग्रंथ लिखे ।

प्रति-अंगुलि सुंदरि हीरहि सुंदरि, कंचन-रज्ज सुमध्य तनू ।

तसु तूणहु सुंदर कीजिय मंदर, थापहु वाणहु शेष धनू ॥२०६॥
जयति जयति हर बलमित-विषधर, तिलकित सुंदर चंद्र मुनि-आनंद जनकंद ।
वृषभ-गमनकर त्रिशूल-डमरु-धर, नयनहि बाहु अनंग शिर गंग गौरि अक्षमं ।
जयति जयति हरि भुजयुग धर गिरि, दशमुख-कंस-विनासा प्रियवासा सुंदर-हासा ।
बलि छलु महि धर असुर-विलय कर, मुनि-जन-मानस-हंसा प्रियभाषाउत्तमवंसा ॥२१५॥

३-कविका संदेश

सन्तोष और निराशावाद

सेर एक यदि पावउँ धृता, मंडा बीस पकावउँ निता ।

टंक एक यदि सेधा पाया, जो हौं रंकउ सो हौं राजा ॥१३०॥
राजा लुब्ध समाज खल, बधु कलहारिनि सेवक धूर्तउ ।
जीवन चाहसि सुखस यदि, परिहर घर यदि बहु-गुण-मुक्तउ ॥१६६॥
पंडव-वंशहि जन्म धरोजे, संपति अजिय धर्म को दीजै ।
सोउ युधिष्ठिर संकट पाया । देवके^१ लिखल कौन मिटावा ॥१०१॥
सो जन जनमेंउ सो गुणवंतउ । जो कर पर-उपकार हसंतउ ।
जो पुनि पर-उपकार विरुढउ । ताकि जननि किनु याकेउ^२ बांझउ ॥१४६॥

§ ४३: हरिव्रह्म

(?) । कुल—ब्रह्मभट्ट (?), राजद्वारी । कुतियाँ—स्फुट

१-मंत्री (चंदेश्वर)-प्रशंसा

यथा शरद-शशि-निब यथा हर-हार-हंस ठिय ।

यथा फुल्ल-सित-कमल, यथा श्रीखंड-खंड किय ।

जहा गंग-कल्लोष, जहा रोसाणिअ रूपइ,

जहा दुद्धवर सुद्ध फेण फेफाइ तलपइ ।

पिअपाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जह तरुणि जण ।

वरमंति बंहेसर किति तुअ, तत्थ पेक्ख हरिबंभ भण ॥१०८॥ (१८४)

§ ४४: अंबदेव सूरि

काल—१६१४ । देश—अन्हिलवाडा (गुजरात^१) । कुल—वैश्य(?) ,

१-सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)को प्रशंसा

जिणि दिणि दिनु दक्खाउ, समरसीहि जिण धम्मवणि ।

तसु गुण करउ उदोउ, जिम अंधारइ फटिकमणि ॥

सारणि अमियतणीय, जिणि वहाँवी मरुमंडलिहि ।

किउ कृतजुग अवतइ, कलिजुगि जीवउ बाहुवले ॥

ओसवाल कुलि चंदु, उदयउ एउ समान नहि ।

कलिजुगि कालइ पासि, छेदीयउ सचराचरहि ॥ . . .

रतन कुक्खि कुलि निम्मलीय मोली पतुजाया ।

सहजउ साहणु समरसीहु बहु पुनिहि आया ॥

लहु अजगइ सुविचार चतुर सुविदेक सुजाण ।

रत्न परीक्षा रंजवइ राय अउ राण ॥

तउ देसल नियकुल पईव ए पुत्र सघन ।

रूपवंत अउ सीतवंत परिणाविय कन ॥

गोसलसुत्ति आवास कियउ अणहिलपुर नयरे ।

पुअ लहुइ जिम रयण भाहि नर समुद्रहु लहरे ॥

—समर-रास (पृ० २७-२८)

^१ "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. XIII.

यथा गंग-कल्लोल, यथा रोषाणित^१ रूपे ।

यथा दुग्धवर-शुद्ध-फेन फंफाह तल्प^२ ।

प्रियपाद प्रसादे दृष्टि पुनि, निभृत हसै जिमि तरणिजन ।

वरमंत्रि अंबेश्वर कीर्ति तव, तव पेखु हरिब्रह्म भन ॥१०८॥

§ ४४: अंबदेव सूरि

जेन साधु । कृति—समर-रास ।

१-सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)की प्रशंसा

जिन दिन दिन दक्षाउ, सभरसिंह जिनधर्म-वणि ।

तसु गुण करजें उजोम, जिमि अंबारै^३ फटिकमणि ॥

सरणी अभियतनीय^४; जिन बहाइ मह^५मंडलहिं ।

किउ कृतयुग अवतार, कलियुग जीते^६उ बाहुबल ॥

असेवास कुल-चंद्र, उदये^७उ एउ समान तहिं ।

कलियुग कालइ पास, छेदीयऊ सभराखरहिं ॥

रतनकुक्षि कुल निर्मलीय भोली पुंतु जाया ।

सहजउ साधन समरसीह बहु पुण्यहिं आया ॥

लहु अलगह सुविचार चतुर सुविवेक सुजाना ।

रतन-परीक्षा रंजवई राजा अरु राना ॥

तो देसल निज कुलप्रदीप ऐहु पुत्र सधन्या ।

रूपवंत अरु शीलवंत परिनामिय कन्या ॥

रोसल-सुत आवास कियउ अनहिलपुर नगरे ।

पुण्य सहै जिमि रतन मोंक नर समुदह सहरे ॥

—समररास (पृ० २६-२६)

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ) की प्रशंसा

तहि अच्छह भूपतिहि भुवण-सतखंड-पसत्यो ।

विश्वकर्म विज्ञानि करिउ घोइउ निय हृत्यो ॥

अमिय सरोवर सहससिगु ईकु धरणिहि कुंडलु ।

कित्तिबंभु किरि अवरदेसि मागइ आखंडलु ॥

अज्जवि दीसइ अत्य-वम्भु कलिकालि अगंजिउ ।

आचारिहिं इह नयर-तणइ सचराचर रंजिउ ॥

पातसाहि भुरताग भीकु तहिं राजु करेई ।

अलपखानु हींदूअह लोय बणु मानु जु देई ॥

साहु राय बैसलह पूतु तसु सेवइ पाय ।

कलाकरी रंजविउ खानु बहु देइ पसाय ॥

मीरि मलिकि भानियइ समइ समरयु पभणीजइ ।

पर-उव्यारिय माहि लीह जसु पहिलिय बीजइ ॥

२-(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगलि मुनिवर-संघु सावय जणा । तिलु न धिरइ तिम मिलिय लोय जणा ॥

मादल वंस विणा धुणि वज्जए । गुहिर भेरीय रवि अंदरे गज्जए ॥

नवय पाटणि नवउ रंगु अवतारिएँ । सुखिहिं देवालय संखारी-संचारिएँ ॥

घरि बयसवि करि केवि समाहिया । समरगुण रंजिउ विरलउ रहियउ ॥

जयतु कान्हु दुइ संचपति चालिया । हरिपालो लंडुको महाघर दुइ धिया ॥

वाजिय संख असंख नादि काहुल दुइदुडिया ।

धोडे चढइ सल्लार सार राजत सींगबिया ।

तउ देवालय जोयि बेगि वाघरि रवु भमकइ ।

सम जिसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ॥

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ) की प्रशंसा

तहँ आछे भूपतिहँ भुव सतखंड प्रशस्ती ।

विश्वकर्म विज्ञान करेँउ घोइय निज हस्ते ॥

अमिय-सरोवर सहस्रलिंग ऐक धरणिहँ कुंडल ।

कीर्त्ति-खंभ फुर अवर देश माँगइ आखंडल ॥

आजउ दीसै यत्र धर्म कलिकाल अगंजेउ ।

आचारेँहि इह नगरकेर सचाचर रंजेँउ ।

पादशाह सुरतान भोसु तहँ राज करेई ।

असपक्षान हिंदुअहँ लोग धनमान जोँ देई ॥

साहु राय बैसलहु पुत्र तसु सेवै पाये ।

कलाकरी रंजबिउ खान बहु देइ प्रसादे ॥

मीर मलिक मानियै समर समरथ प्र-भनीजै ।

पर-उपकारी माँभ लेख जसु पहिली दीजै ॥

२-(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगे मुनिवर संघ आवक-जना । तिल न खिड़े तिमि मिलिय लोग घना ॥

माँदल-वंश-वीणा धुनि बाजई । गहिर भेरीरव अंबरेँ गाजई ॥

नवक पाँटन नवउ रंग अवतारेँऊ । मुखेँहि देवालय शंख-गरी संचारेँऊ ।

घरेँ वइसवि करि कोइ समाहिया । समर-गुण-रंजित विरसउ राहिया ॥

जयन्तु कान्ह दुइ संबपति^१ चालिया । हरिपासो लंडुको महाघर दूठ ठिया ॥

बाजिय शंख असंख्य नाद काहल दुडदुडिया ।

घोडे छडे सवार^२सार राजल सीगडिया ॥

तब देवालय जोइ बेगि घाघर रव भूमकै ।

सभ-विषमा ना गनै कोइ ना वारिउ थाकै^३ ॥

^१ जैन गृहस्थोंके संघके प्रधान

^२ कमांडर

^३ ठहरै, रहै ।

सिजवाला घर बरहइ वाहिणि बहु बेगे ।

धरणि धक्कइ रजु उडए नवि सूझवि मागे ॥

हय हींसइ आरसइ करहु बेगि बहइ बइल्ल ।

सादकिया थाहरइ अवर नवि देई बुल्ल ॥

निस्सि दीवी भलहलहि अेम ऊगिउ तारायणु ।

पावन पाउ न पामियए बेगि बहइ सुखासण ॥

आगे बाणिहि संचरए संधपती साहु बेसलु ।

बुद्धिबंतु बहुपुनिबंतु परिकसिहिं सुनिश्चलु ॥

पाछे बाणिहि सोमसीदु साहुसहज पूतो ।

सांगणु साहु दूणिगहु पूतु सोमजिनि जुतो ॥

जोड करी असवार माहि आपणि समरागर ।

चडिय हीड चहुएमे जोइ ओ संध असुहकर ॥

सेरीसे पूजियउ पासु कलिकालिहिं सकलो ।

सिरजेज थाइउ धक्कए संधु आबिउ सथलो ॥

धंशूकउ अतिकमिउ ताम लोलियाफइ पहतो ।

नेमि भुवणि उछवु करिउ पिपलालीय वत्तो ॥

—बही (पृ० ३२-३३)

३-ग्रंथ-रचना-काल

संबल्लरि इक्कहत्तरए बापिउ रिसहुजिणिदो ।

चैत्रवदि सातमि पठुतधरे नंदउ ए नंदउ ए नंदउ जा रवि चंदो ॥

पासउ सूरिहिं गणहरहु नेउअच्छ निवासी ।

तसु सीसहिं, अंबदेव सूरिहिं रचियउ ए रचियउ ए रचियउ समरारासो ॥

—समरारासो^१

सिद्धवाला घर धड़धड़े वाहिनि बहुवेगे ।
 चरनि धड़वक रज ऊई ना सूझै मार्गे ॥
 हय हिनसै आरसै करम वेग वहै बहला ।
 साँदकिया याहरै और ना देई बोला ॥
 निशि दीपा भलभलै जेम ऊगिय तारागण ।
 पावल पाव न पाइये वेगि वहै सुखासन ॥
 आगे वाणी संचरै संचपति साहु बेसला ।
 बुद्धिबंत बहुपुण्यबंत परिक्रमहिं सुनिश्चला ॥
 पाछे वाणिहि सोमसीह साहु सहजा-पूतो ।
 सांगण साहु झुनिगह पूत सोम जिन युक्तो ॥
 जोड़करी असवार माँह आपुहिं समरागर ।
 चढिय हिंड चहुगमे जोय जो संघ असुखकर ॥
 सेरीसे पूजियउ पाखँ कलिकालहिं सकलो ।
 सिरसेजो ठहरेउ धवलकह संघ आयेउ सकलो ॥
 बंधूकउ अति क्रमेउ ताँह लोलि यानह बहुतो ।
 नेमिमुवन उत्सव करेउ झिलालिय प्राप्तो ॥
 —वही (पृ० ३२-३३)

३-ग्रंथ-रचना-काल

संवत्सर एकहसरे आपेउ ऋषभ जिनेंद्रो ।
 चैत्रवदी सातमि पहुतघरे नंदउ जो लो रवि चंद्रो ॥
 पारखँउ सूरिहिं गणधरह नेउअच्छ निवासो ।
 तसु शिष्येहिं अंबदेव (सूरि) रचियउ समरारासो ॥
 —समरारास (पृ० ३७)

§ ४५: अज्ञात कवि

काल—१६०० (ई०), देश—गुजरात ।

१-कक्षा

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कस्य वच्छ कुवलय-नयण, सालिभद् सुकुमाल ।

भदा पयणइ देव तुहु, कह थिउ इत्तिय वार ॥

सरउं फुडहु ता पुत्त कहि, का देसण किय वीरि ।

कवण अत्थु वरवाणिहउ, कंषणगोर सरीरि ॥

सार समुद्हर आगलउ, माहर कडिउ संसार ।

संजमपवहण हीण तसु, कियइ न सम्भइ पार ॥

गमयमत्त वीरिय पवर, जे जगि पुरिस पह्णण ।

सालिभद् भदा भणइ, संजमु सोहइ ताण ॥

यण कंकुम चंदण रसिण, तुहु तणु वासिउ वच्छ ।

वमह परीसह किम सहिसि, मुणि गंगाजल सच्छ ॥

नविवउ लिज्जइ तरुण पणि, सालिभद् सुकुमाल ।

भहु कुलमंडल कुलतिलय, कुलपईव कुलबाल ॥

चरणु लेसिजइ पुत्त तुहु, नंदणनीय पवीण ।

रोअंती भदा भणइ, मई किम भेल्लिसि दीण ॥

छण महलछण समवयण, तुहु भज्जा वत्तीस ।

ते बिलवंती पेमभरि, किम कारिसि कुलईस ॥

जणणि भणइ जां बालपणु, तां पुत्तह पडिवंनु ।

तारुमइ बुलाविअउ, बहु उभाइ कंनु ॥

§ ४५: अज्ञात कवि

कृति—शालिभद्र-कल्पा ।^१

१-कल्पा

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कहाँ वास कुवलय-नयन, शालिभद्र सुकुमार ।

भद्रा प्र-भन देव तुह, कहें रहु एतिय बार ॥

खरख^२ कुह^३ ता पुत्र कहें, का देशन किउ वीर ।

कौन अर्थ वर-वाणिज, कंचन गौर शरीर ॥

खार समुद्रहें आगलउ, मा हर कडे^४ संसार ।

संयम-प्रवहण-हीन तसु, किये न लब्ध पार ।

गमय-भक्त वीर्य प्रवर, जे जग पुरुष प्रधान ।

शालिभद्र भद्रा भनै, संयम सोहैं तान^५ ॥

धनकुकुम चंदम रसे^६हिं, तव तन वासे^७उ वत्स ।

तवहैं परीसह^८ किमि सहिसि, मुनि गंगाजल स्वच्छ ॥

नववय छीजै तरुणपन, शालिभद्र सुकुमार ।

भम कुल-मंडन कुल-तिलक, कुलप्रदीप कुलपाल ॥

चरण लेसि यदि पुत्र तुव, नंदन नीच प्रवीण ।

रोअंती भद्रा भनै, मोहि^९ का छाके^{१०}सि दीन ॥

छण-भृगलांछन सम-वदन, तुव भार्या बत्तीस ।

ते विलपंती प्रेमभर, का कारेसि कुलईश ॥

जनमि भनै जो बालपन, सो पुत्रह प्रतिबंधु ।

तारमती बोलावियउ, बहु उखाडे^{११} कंधु ॥

^१ "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. Vol. XIII

^२ अरुद्धा ^३ आश्चर्य ^४ तिनको ^५ उपसर्ग, कष्ट ^६ हिलावै

भलकंतउ कंचणषडिउं, सत्तभूमि पासाउ ।

विहवउ कोडाकोडि घण, कहि कोई ऊणउ ठाउ ॥

नरवह सेणिउ तुम्ह पदु, सुरगोभदु सुताउ ।

नितु नवए आभारणू, कहि को चिसिविसाउ ॥

टलटलेसि धम्मत्थ पुण, धम्मगहिल्ला बाल ।

धम्म करेवा महु समउ, तुहु धणु रक्खण बाल ॥

ठणकह पुत्तसु चिसिमहु, पुत्त विहणिय नारि ।

विहविह मुच्चइ दुहु सहइ, दीणी परवर नारि ॥

बरपिसि सुणिअइ सीहसरि, निसुणिसि सिव-फिक्कार ।

भुक्खिउ तिसिइउ वच्छ, तुह किम हिंइसि नार ॥

इलहैं चमर-वर पुस तुहु, सीस थरिज्जइ छतु ।

मणि सीहासणि बइठणउं, किणि कारणि बइचित्तु ॥

नवउं अंतेउर नवउं बर, नवजोवणु नवरंगु ।

सालिभद्दु नवकणयतणु, इलकरि चरण पसंगु ॥

तरुअरतलि आवासु मुणि, भिक्खह भोयणु पाणु ।

भूमंडलि आसणु सयणु, वच्छ चरण दुहुठाणु ॥

यल-हुंगर पाहणसधण, कक्कर षंट तुसार ।

पाणह नज्जिय गुरि सहिउ, हिंइसि केम कुमार ॥

दहविह धम्मु करेसि किम, किम सोसिसि निय अंगु ।

वच्छ तह ता दोहिलउं, होसिइ तुह सीलंगु ॥

धम्मु किइउ जिम रिसहणिणि^१, तिम किज्जइ सुअ इत्यु ।

पहिलउं साखिहिं पसरिउ, अंतिय यासिउ तित्तु ॥

धवकप्पूरिहि पूरिया, नन्दण कोमल केस ।

केतगि बालहैं वासिया, किम उद्धरिसि असेस ॥

अलकंतउ कंचन गडिय, ^१सप्तभूमि प्रासाद ।

विभवउ कोटाकोटि धर, कहँ कोँउ ऊनउ ठाँव ॥

नरपति श्रेणिक तुम्ह प्रभु, सुरगोभद्र सुताउ ।

नित्य नवै आभारणू, कहँ को धित्त-विषाद ॥

टलटलेसि धर्मार्थ पुनि, धर्म-महिला बाल ।

धर्म करेबा मम समय, तुव बन-रक्षण-काल ॥

ठापै पुत्र सोँ धित्त मै, पुत्र बिहूनी नारि ।

विभवहिँ मुचँ दुख सहै, दीनी परघर वारि ॥

उरपसि सुनिया सिहस्वर, नि-सुनिय शिवाँ-फेक्कार ।

भुखिय तृषितउ बत्स तुहँ, किमि हिंडीमसि नार ॥

दलँ चमर-वर पुत्र ! तब, सीस धरिज्जँ छत्र ।

मणिसिंहासनेँ बइठनउ, किन कारण वैचित्र ॥

भव अंतःपुर नवधर, नवपीवन नवरंग ।

शालिभद्र नवकनकतनु डलकर चरण-असंग ॥

सधरतल आवास मुनि, भिक्षहँ भोजन-धान ।

भूमंडल आसन-शयन, बत्स ! चरण दुख-धान ॥

थल डूंगर पाहन सघन, कंकड कंट तुषार ।

पनही वजिय गोड सन, हिंडसि केम कुमार ॥

दशविष धर्म करेसि किमि, किमि शोषसि निज अंग ।

बत्स ! तहाँतहँ दोहलउ, होँइहँ तुन शीलांग ॥

धर्म करेँउ जिमि अछम जिन, तिमि कीजँ सुत अत्र ।

पहिले सखिहिँ पसारियउ, अते थायेउ तीर्थ ॥

नवकपूरहिँ पूरिया, नन्दन ! कोमल केश ।

केतकि बालैँ वासिया, किमि उद्धरिसि अशेष ॥

पट्टसुभ तहँ पहरियां, रसियउ दिख्य अहार ।

सुभ उब्बासिहिँ सोसिया, केम करेसि विहार ॥

फणि-रायह सिरिपुत्त मणि, मुल्लेणय बहुमुत्सु ।

सा गिण्हंता पाणहर, संजम-भरु तस तुल्लु ॥

वत्तीसहँ पत्तंकि तउं, सयण करइ नितु जाम ।

‘जुंगरि कासुणि करिसि किम, बलि किज्जउं तहँ काय ॥

भमिसि विहारिहिँ भारिअओ, नंदण तं सुकुमाल ।

वीर जिण्हं ह चरणु पुणु, मुणि बावअउं फालु ॥

मयलंछण जिमि तारयहँ, सयलहँ किन भत्ताह ।

तं वत्तीसहँ बहुअरहं, एअकु देव आघार ॥

यइ तउं संजमु लेसि सुअ, मेत्तिवि सयलु सिणेहु ।

ता गोमदु अभागिहउ, हा धिगु जुहुउ गेहु ॥

रहि रहि नंदण वयणु सुणि, मामा मई संतावि ।

■ विणु नितु कुण पूरिसहँ, मुअकाहरणहँ वावि ॥

लडकहँ सउं संजमु लियस, नंदसेणु मुणिराउ ।

सो संजमुपज्जइय सुअ, भोगहँ कम्मपसाय ॥

बण्ण सि नारी पुक्खिनिहि, जाहँ न कंतु न पुत्तु ।

मुहुतहँ नंदण जाइयइ, हिअ आविअँ निरुत्त ॥

सहसाकारिहिँ गहियवउ, सुयइ कंडरिएण ।

नंदण तेणय नरइहुह, पाभिय भट्टवएण ॥

इलहँ मणोरहँ पूजिसहँ, सज्जण होसिइ सोसु ।

नन्दण तुं थाहसि समणु, ऐउ महु कम्महँ दोसु ॥

समल देह कप्पउ समल, रत्तिदिवस गुरुआण ।

होइसइं तुव भंदा भणइ, पर-आइत्त पढाण ॥

‘बुल-वनस्पतिहीन पर्वतको जूंगर कहते हैं।

पट्टांशुक तै^१ पहिरिया, रसियउ दिव्य-अहार ।

सुत, उपवसेहि^२ शोबिया, केम करेसि विहार ॥

फणिराजह^३ श्रीपुत्र मणि, मूल्येनउ बहुमूल्य ।

सो गृहणते प्राणहर, संयमभर तसु तुल्य ॥

बत्तीसेह^४ पल्लंग तै^५, क्षयन करै नित जाय ।

हूंगरि कासुग^६ करिसि किम, बलि किज्जउं तह काय ॥

भ्रमसि विहारे^७ भारिअउ, नंदन सो मुकुमार ।

वीरजिनेंद्रह^८ चरण पुनि, मुनि बाधनऊ फाल^९ ॥

मृगलांछन जिमि तारकह^{१०}, सकलह^{११} कर भर्तार ।

तिन बत्तीसह^{१२} दधुअरह^{१३}, एक देव आचार ॥

यदि तै^{१४} संयम लेसि सुत, मेलिय^{१५} सकल सनेह ।

ता गोभद्र अभागिहउ, हा भिग छूटे^{१६}उ गेह ॥

रहि रहि नंदन वयन सुनि, मा मा सै^{१७} संताप ।

गृह विन नित को पूरिह^{१८}, मुक्ताभरणह^{१९} वापि ॥

सडकै^{२०} संग संयम लियउ, नंदसेन भुनिराव ।

सो संयम प्रव्रजिय सुत, भोगह^{२१} कर्म प्रसाव ॥

कत्त ते^{२२} नारी दुःखिनी, जाह^{२३} न कंत न पुत्त ।

मम तै^{२४} नंदन जाइहहि, क्यो^{२५} आवे^{२६}ऊं निरुत्त^{२७} ॥

सहसा कारे^{२८}हिं गहियऊ, सुनिय कंडरीकेहि^{२९} ।

नंदन ! ताते नरक-दुख, पाइय अष्टव्रतेहि^{३०} ॥

सलह भनोरथ पूजिह^{३१}, सज्जन होइह^{३२} शोष ।

नंदन ! तूं होये^{३३}उ अमण, ऐह^{३४} मम कर्मह^{३५} दोष ॥

सांवर रेह^{३६} कल्पउ सैंवर, रातदिवस गुरुज्ञान ।

होइह^{३७} तू भद्रा^{३८} भनी, पर-आयत्त-परान ॥

^१ कायोत्सर्ग—सड़े बैठे श्रानावस्थ होना

^२ छलांग

^३ छोड़

^४ निरर्थक

^५ कंडरीकही कथा

हसत रोमंता पातुणउ, ताम हसंता होउ ।

सालिभइ संजमु लियइ, महु बुजिअइ पमोहु ॥

—सालिभइ-कक्का^१

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१-जीतेजी कीर्ति

किस्ती सा सलहिज्जइ आ सुणीइ अण्णणेहिं कण्णेहिं ।

पच्छा मुअण सुंदरि ! सा किस्ती होउ मा होउ ॥

अल-सहित जे नर हुआ, रवि पहिला उगति ।

जोगा जाते दीहडे, गिरि पत्थरा हुलंति ॥

कीरति हंदा कोटड़ा, पाठ्याही न पडंति ॥

—उपवेश-तरंगिणी^२ (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर^३ सूरि

काल—१३१४ ई० (?) । देश—गुजरात । कुल—जैन साधु ।

१-सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

अह सामल कोमल केशुपास किरि. भोरकसाउ ।

अद्व - चंद - समु भालु मयणु-पोसइ मउवाउ ॥

^१ पृष्ठ ६२-६७

^२ "उपवेश-तरंगिणी" (रत्न-मन्दिश भाग १४६० ई०)

धर्माभ्युदय-प्रेस, बनारस (२४१७ वीर संवत्)

^३ कविराज राजशेखर नहीं

हसत रौंभता पाहुनउ, तहाँ हसता होउ ।

शालिभद्र संयम लियै, मम बूझिहै प्रमोह ॥

—शालिभद्र-कनका (पृ० ६२-६७)

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१-जीते-जी कीर्ति

कीर्ति सा सलहिज्जै जा सुनीय आपनेहि कानेहि ।

पाछे मुये प'सुंदरि ! सा कीर्त्ती होहु न होहु ॥१२॥

यश-सहित जो नर हुआ रवि पहिला ऊनांत ।

युग्गां जाते दीहड़े^१ गिरि-पत्थरा दुलति ॥१३॥

कीरति हंदा कोटका पाइथा ही न पडति ॥

—उपदेशतरंगिणी (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर सूरि

कृति—नेमिनाथ-फाग^२ ।

१-सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

श्यामल कोमल केशपाश जनु मोरकलाप ।

अर्धचंद्रसम भाल मदनपोसी भउवाहूँ ॥

^१ दिवस

^२ "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. III

बंकुडिया लीय भुंहुंझियहं भरि भुवणु भमाउइ ।

लाडी सोयण लह कुडलइ सुरसगाह पाढइ ॥

किरि ससिबिब कपोल कन्नहिं डोल फुरता ।

नासावंसा गरुड-बंचु दाडिमफल दंता ॥

महर पवाल तिरह कंटु राजल सर रुडउ ।

जाणुकीणु रणरणइं जाणु कोइलटहकडलउ ॥

सरल तरस भुय वल्लरिय सिहण पीण घण तुंग ।

उदरदेसि लंकाउलिय सोहइ तिवल-तरंगु ॥

कोमल विमल नियंज बिब किरि गंगा-पुलिणा ।

करि-करऊरि हरिण जंघ पल्लव करचरणा ॥

मलपति चासति बेलहीय हंसला हरावइ ।

संभारागु अकालिवालु नहकिरणि करावइ ॥

सहजिहिं लडहीय रायमए सुलक्षण सुकुमाला ।

धणउं धणेरउं गहणगहए नवजुवण बाला ॥

मंभरभोली नेभि, जिण बीवाह सुणेई ।

नेहगहिल्ली गोरखी, हियकाई बिहसेई ॥

सावण सुकिल छट्टि दिणि बाबीसमउ जिणंदो ।

चल्लइ राजल परिणयण कामिणि नयणाणंदो ॥

—नेमिनाथ-फाग (पृ० ८३-८४)

२-शृंगार-सजाव

किम किम राजलदेवित्तणउ^१ सिणगारु भणे^२वउ ।

चंपइगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ ॥

सुंपु भराविउ जाइ कुसुमि कसतूरी सारी ।

सीमंवइ सिंदूररेह भोतीसरि सारी ॥

वांकडिया लिय भोँहडियहँ भर भुवन भ्रमाडह ।

लारी लोचन लह कुडले^१ सुस्वर्गहँ पातै ॥

जनु शशिबिंब कपोल कर्ण हिडोल फुरंता ।

नासावंशा गरुड-चंचु, दाडिमफल दंता ॥

अथर प्रवालहँ रेख, कंठ राजल सर दडकै^२ ।

जनु-वीणा रणरणी, जान कोइसटहकलक^३ ॥

सरल सरल भुजवल्लरीय, धन-पीन-तुंग ।

उदर-देवो^४ लंका सोहै निबली तरंग ॥

कोमल विमल नितंब बिंब जनु गंगाफुलिना ।

करि-कर उरयुग हरिन-जंघ पल्लव कर-भरणा ॥

मलपति^५ चालति बेजीइव हंसला हरावै ।

संभ्याराग धकास बाल नक्ककिरण करावै ॥

सहजै सुंदर-राजमति, सुलखन मुकुमारा ।

धनउँ धनेरउ गहगहे, नवधौवन वाला ॥

भंवलभोजी^६ नेमि जिन बीबाह सुभेइ ।

तेह गहिल्ली गोरडी हियरेई विहसेइ ॥

श्रावण शुक्ला छट्ट दिन, कीई सबउँ जिनेन्द्र ।

चलै राजल परिणयन, कामिनि नयनानंद ॥

—नेमिनाथफाग (पृ० ८३-८४)

२-शृंगार-सञ्जाव

किमि किमि राजलदेवि केर शृंगार भनेखड ।

चंपकगोरी अतीधौत अंग चंदन ले^१पेखड ॥

खोंप भरावेउ जाति-कुसुम कस्तूरी सारी ।

सीमंतै^२ सिद्धर-रेख मोतीसर सारी ॥

^१ कटाक्ष

^२ सुन्दर

^३ टहकना

^४ भस्त्र

^५ भोली-भासी

नवरंगी कुंकुमि तिलय किम रयणतिलउ तसु भाले ।

मोती कुण्डल कसि धिय बिभालिय कर जासे ॥

नरतिय कज्जलरेह नयणि भुंहकमलि तंनोलो ।

नागोदर कंठलउ कंठि अनुहार विरोलो ॥

मंरगद जादर कंचुयउ फुड फुल्लह माला ।

करे कंकण मणि-बलय बूड खसकरवह वाला ॥

रुणुभुणु रुणुभुणु हणुभुणुएँ कडि वावरियाली ।

रिमझिम रिमझिम रिमझिमएँ पयनेउर जुयली ॥

नहि आसत्तउ वलवलउ सेअंसुय किमिसि ।

अंसुडियाली रायमइ प्रिउ जोअइ मनरसि ॥

—वही (पृ० ८३-८४)

नवरंग कुंकुम तिलक किर्य रतन तिलक तसु भावे ।

मोली कुंडल कर्णें ठिय बिबालिय कर जाले ।।

भरतिय कज्जल-रेख नयने^१ मुखकमल तँदूलो ।

नागोदर कंठलउ कंठ अनुहार बिरोलो ॥

मरगत-जादर^२ कंचुकहुउ फुर फूलहैं माला ।

करही^३ कंकण-मणिवलय चूड छड़कावै बाला ॥

रुनभुल-रुनभुन-रुनभुनै कटि घाघरियाली ।

रिमझिम-रिमझिम-रिमझिमै पद नूपुर युगली ॥

नखे^४ अलक्तक बलवलउ श्वेतांशु-विमिश्रित ।

अंसडियाली राजमति प्रिय जोवै मन रसि^५ ॥

—वही^६ (पृ० ८३-८४)

हिन्दी काव्य-धारा

परिशिष्ट

- १ -

ग्रंथ, जिनसे सहायता ली गई

- २ -

कवियोंका कालक्रम, उनकी रचनाएँ

- ३ -

देहाती और तद्भव शब्द

- ४ -

सम-सामयिक राजवंश



नागार्जुन

परिशिष्ट १

निम्नलिखित ग्रंथों, संग्रहों और साहित्य-ग्रंथों (Journals) से सामग्री एकत्र की गई—

१. पुरातत्त्व निबंधावली—राहुल सांकृत्यायन । इंडियन प्रेस (प्रयाग) से प्रकाशित ।
२. सिद्धोंके दोहे—The Journal of Department of Letters, Calcutta University के Vol. XXVIII में ।
३. चर्यापद—J. D. L., Cal. के Vol. XXX में ।
४. स्वयंभू रामायण (हस्तलिखित)—भांडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना में सुरक्षित ।
५. गोरखवानी—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग) से प्रकाशित; १९६६ वि० सं० ।
६. सावयधम्म दोहा ।
७. महापुराण—पुष्पदंत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचंद्र दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-माला में सम्पादित, तीन जिल्द (१९३७, १९४०, १९४१ ई०) ।
८. जसहूरचरित्र—पुष्पदंत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार) में सम्पादित (१९३१ ई०) ।
९. नाथकुमारचरित्र—पुष्पदंत; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा देवेंद्र-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार) में सम्पादित । (१९३३) ।
१०. परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा—योगींदु; ए० एन्० उपाध्ये द्वारा श्रीरायचंद-जैन-शास्त्रमाला (बंबई) की १०वीं ग्रंथसंख्या (१९३० ई०) ।
११. पाहुड़दोहा—रामसिंह; करंजा-जैन-ग्रंथमाला में प्रकाशित ।
१२. भविसयत्तकहा—धनपाल; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदा द्वारा प्रकाशित (१९२३ ई०) ।
१३. प्रबंधचिन्तामणि—मेस्तुंगाचार्य; मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित और विश्वभारती, शांतिनिकेतन से प्रकाशित ।
१४. संदेशरासक—अब्दुर्रहमान; 'भारतीय विद्या' में मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित (मार्च १९४२ ई०) ।
१५. प्राकृतपौगल—चंद्रमोहन घोष द्वारा Bibliothica Indica में सम्पादित (१९०२ ई०) ।

१६. करकण्डचरित—कनकामरमुनि; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमालामें सम्पादित (१९३४ ई०) ।
१७. प्राचीनगुर्जरकाव्यसंग्रह—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदासे प्रकाशित (१९२७) ।
१८. अपभ्रंशकाव्यत्रय—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदासे प्रकाशित (१९२७ ई०) ।
१९. प्राकृतव्याकरण—हेमचंद्र सूरि; डाक्टर पी० एल्० वेंच द्वारा सम्पादित और मोतीलाल साघाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित (१९२८ ई०) ।
२०. छंदोऽनुशासन—हेमचंद्र सूरि; देवकरण-मूलचंद (बंबई) द्वारा प्रकाशित (१९१२ ई०) ।
२१. नेमिनाथचरित—हरिभद्र सूरि; डाक्टर हर्म्न् याकोबी द्वारा सम्पादित ।
२२. उपदेशतरंगिणी—रत्नमंदिरगणि; धर्माभ्युदय प्रेस, बनारससे प्रकाशित ।
२३. कुमारपालप्रतिबोध—सोमप्रभ सूरि; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदासे प्रकाशित (१९२० ई०) ।
२४. पृथ्वीराजरासो
२५. अनुवृत्तरत्नप्रदीप—लक्ष्मण; (अप्रकाशित) भारतीय विद्याभवन, बंबईमें सुरक्षित ।

परिशिष्ट २

कवि और उनकी कृतियाँ; उनके समसामयिक राजा आदि

आठवीं शतान्दी

कवि	कृतियाँ
सरहपा—७६० ई०	उपदेशगीति दोहाकोष तत्त्वोपदेशशिक्षर .. भावनाफल दृष्टिचर्या .. वसंत तिलक दोहाकोष महामुद्रोपदेश ..

कवि

कृतियाँ

शवरपा—८८० ई० धर्मपाल (७७०-८०६)

सरहपादगीतिका
चित्तगुह्यगंभीराथगीति
महामुद्रावज्रगीति
शून्यतादृष्टि
षडंगयोग
सहजसंवरस्वाधिष्ठान
सहजोपदेश स्वाधिष्ठान
हरिवंशपुराण
रामायण (पठरचरित)
स्वयंभूछंद
सहजगीति

स्वयंभूदेव—७६० ई० ध्रुव चारावर्ष (७८०-६४)

भूसुकपा—८०० ई० धर्मपाल-देवपाल
(शांतिदेव) (७८०-८०६-४६)

नवीं शताब्दी

लुईपा—८३० ई० धर्मपाल-देवपाल

अभिसमय-विभंग
तत्त्वस्वभावदोहाकोष
बुद्धोदयभगवदभिसमय-
गीतिका

विरूपा—८३० ई० देवपाल (८०६-४६)

अमृतसिद्धि-बोहाकोष
कर्मचंडालिका-
विरूप-गीतिका
विरूप वज्र-गीतिका
विरूपपदचतुरशीति
मार्गफलान्विताववादक
सुनिष्पन्नचतुष्टोपदेश
अक्षरद्विकोपदेश

होमिपा—८४० ई० देवपाल

कवि

दारिकपा—८४० ई० देवपाल

गुंडरीपा—८४० ई० देवपाल

कुक्कुरीपा—८४० ई० देवपाल

कमरिपा—८४० ई० देवपाल

कण्ठपा—८४० ई० देवपाल

गोरखनाथ—८४५ ई० देवपाल

टेंडणपा—८४५ ई० देवपाल-विग्रहपाल (८०६-४९-५४)

महीपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल (८५०-५४-

९०८)

भादेपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल

बामपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल

कृतियाँ

गीतिका

नाडीविद्वहारे योगचर्या

महागृह्यतत्त्वोपदेश

तथतादृष्टि

सप्तम सिद्धान्त

गीति

योगभावनोपदेश

स्रवपरिच्छेदन

असम्बन्धदृष्टि

असम्बन्धसर्गदृष्टि

गीतिका

गीतिक

महाकुंठन

वसंततिलक

असम्बन्धदृष्टि

वच्चगीति

दोहाकोष

गोरखवानी

वायुतत्त्वोपदेश

चतुर्थयोगभावना

वायुतत्त्व

दोहागीतिका

चर्यपिद

(गीति)

कालिभावनामार्ग

सुगतदृष्टिगीतिका

हुंकारभित्तिविदुभावनाक्रम

दसवीं शताब्दी

कवि

देवसेन—६६३ ई०
 तिलोपा—६६० ई० राज्यपाल-गोपाल द्वि० विग्रह-
 पाल द्वि० (६०८-४०-६०-८०)

पुष्पदन्त—६५६-७२ ई० राठौड़ कृष्ण-खोद्विग
 ती०-(६३६-६८-७२)

शांतिपा—१००० ई० विग्रहपाल-मन्नीपाल (६६०-
 ८८-१०३८)

योगीन्दु—१००० ई०

रामसिंह—१००० ई०

धनपाल—१००० ई०

कृतियाँ

सावित्रधम्मदोहा
 निवृत्तिभावनाक्रम
 कल्याणभावनाधिष्ठान
 दोहाकोष
 महामुद्रोपदेश

महापुराण
 (श्रादिपुराण
 उत्तरपुराण)
 मशोधरचरित
 नागकुमारचरित

सुखदुःखद्वयपरित्यागवृष्टि
 परमात्मप्रकाशदोहा
 योगसारदोहा
 पाहुण्डदोहा
 भविसयत्तकहा

ग्यारहवीं शताब्दी

अज्ञातकवि—१००० ई० भोज (१००६-४२)
 अन्दुरहमान—१०१० ई०
 बब्बर—१०५० ई० कर्ण कलचुरी (१०४०-७०)
 कनकामर—१०६० ई०
 जिनदत्तसूरि (१०७५-११५४)

फुटकर रचनाएँ
 संनेहरासय (सदेशरासक)
 फुटकर रचनाएँ
 करकंडचरित
 चाचरि
 उपदेशरासायन
 कासस्वरूपकुलक

बारहवीं शताब्दी

कवि

हेमचंद्र सूरि—११७६ ई० कर्ण, जयसिंह, कुमारपाल
आदि सोलंकी राजाओंके समकालीन

कृतिवाँ

प्राकृतव्याकरण
छंदोऽनुशासन
देशीनामभाला

हरिभद्र सूरि—११५६ ई० जयसिंह-कुमारपाल
(१०६३-११४२-७३)

अज्ञात कवि—वीसलदेव (११५३-६४)

ग्राम भट्ट—जयसिंह-कुमारपाल

विद्याधर—११८० ई० जयचंद (११७०-८४)

शालिभद्र सूरि—११८४ ई०

सोमप्रभ—११६५ ई०

जिनपथ सूरि—१२०० ई०

चिनयचंद्र सूरि—१२०० ई०

चंदवरदाई—१२०० ई०

नेमिणाहचरित

फुटकर (उपदेशतरंगिणीसे)

” ”

स्फुट कविताएँ

बाहुबलिरास

कुमारपालप्रतिबोध

थूलिभट्ट फाग

नेमिनाथ चतुष्पादिका

पृथिवीराज रासो

तेरहवीं शताब्दी

लवखण—१२५७ ई०

जज्जल—१२६० ई० हम्मीर (१२६२-६६)

कुछ और अज्ञात कवि...तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध...

हरिब्रह्म...तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध...

मियिला-नेपालके राजा हरिसिंहके मंत्री

चंडेवरके आश्रित

अंबदेव सूरि—१३१४ ई०

अज्ञात कवि—१३०० ई०

”

राजशेखर सूरि—१३१४(?) ई०

प्रणुवयरमण पईव

(अनुव्रतरत्नप्रदीप)

फुटकर (प्राकृतपंगलसे)

फुटकर रचनाएँ

फुटकर कविताएँ

समररास

शालिभद्रकवका

(बारहसड़ी)

फुटकर(उपदेशामृततरंगिणीसे)

नेमिनाथ फाग

परिशिष्ट ३

कुछ खास देहाती और तद्भव शब्द

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
रंडी	४	नियड़ि (निकट, नियर—भोज-	
चेल्लु (चेसा)	११	पुरी, काशिका, अक्वी और	
दीवे (दीवा)	११	अजभाषा आदिमें)	१८
अच्छहु (अच्छा)	६	खांदि (अच्छा, खांदि-बंगसा)	११
धंधा	११	ठानऊ (खींचो, ऊपरकी ओर	
अवर (और)	११	करो; ठान—बं०)	११
जइ भिड़ि (जब तक—मैथिली,		धाकिब (रहूंगा, बं०)	११
मगही और भोजपुरीमें		अच्छंत (रहते, अच्छंत—मै०)	११
‘भिड़ि’का प्रयोग होता है)	११	बलंद (बैल, बड़द—मै०)	११
अइस (ऐसा)	११	पागल	२०
बंगे (अच्छे, पंजाबीमें यह शब्द		भौंजलिल (मुरझाया, मौलायल,	
अभी भी जीवित है)	८	मौलल—मै० मग० भो०	११
बणारस (बनारस)	११	एकली (अकेली)	११
माल-माल (क्रय-विक्रय, सौदा		खाट } मै० मग० भो० अज० का०	११
या सामान सूचक ‘माल’		सेज }	
शब्दका सगा जैसा ही यहाँका		जेम (जैसा, गु०)	२६
भी ‘माल’ मालूम पड़ता है)	११	कुक्कु (घुसा, बज और बुंदेलीमें	
घरणी (गृहिणी)	१२	—देखा)	३०
लुक्को (छिपा)	११	धिर (रहा)	३२
बे (दो, गुजराती)	१४	तलाय (तालाब)	३६
थक्कु (रहूँ, थाक्—बंगला)	११	बट्टइ (है, बाटे-बाड़े, बाय—	
अण्ठीय (अपरिचित, अन्वस्थित		भोजपुरी काशिका)	११
—अन्यत्र स्थितिवाला		जेहा (जैसा)	११
अनठिया—मैथिली)	१६	छुड (यदि ?)	४२

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
णाह (नाई, न्याई)	४४	थाह (रहै, गुं—थाय)	८८, ९०
लहडु	४८	थक्क (था, रहा)	"
सक्कर		दोर (डोर, पुष्पदंत और एक	
खंड (खांड, लाँड़)		अज्ञात कविने 'दोर' का प्रयोग	
सौयवत्ति (सेवई)		किया है; पृ० २०२ और	
घीअरर (घेवर)		२८८ द्रष्टव्य)	१०८
सासन (सालन)		कवण (कौन)	११६
पप्पठ (पापड़)		चंगल (चंगा—पं०)	१२२
तिम्मण (तीमन, तेमन)		माय-वण (माँ-बाप)	१२८
लट्ठी (लाठी)	५४, ९८	अप्पण (अपना, मै—अपन,	
खाई (खाई, गड्ढा)		भो०—आपन, बं०—	
मोक्कल (मुक्त, सिंघी)	६२	आपनि)	१३२
पोट्टल (पोटर, पोटरी, पूंटली;		अहेरी (शिकारिन)	
मै० मग० भो० बं०)	६४	मूसा	
मेहली (महिला—मेहरी,		अमिअ	
सम्प्रति दासीके अर्थमें		याती	
प्रयुक्त; भो० का० अव०)	६६	मइलि (मैला, महल—मै० मग०	
अच्छहि (है, आछे—अच्छि;		भो०)	१३४
बं० भै०)		उजोली (हजोरी, अँजोरी)	
घाह (जलन, ताप; मै०)	६८	चंद, चंदा	
जावहिं (जभी तक, मै०)	"	बड़ (मूढ़, मुग्ध; मै०—बूढ़ि,	
केम (कैसा, गुं)	"	बुड़)	१३४
बारह, सोलह, बीस, चउबीस,		नाचडी (छोटी नाच; तुच्छ, क्षुद्र	
तीस, पंचास, सट्ठि, चउहत्तरि	८२	या लघु सूचक ह। और डी	
बे (दो, गुं)	८८	प्रत्यय राजस्थानी भाषामें	
बणि (दोनों, सिंघी—विन)	"	बहु-प्रयुक्त है। यथा गामड़ा,	
थक्कु (रहै, बं०—थाक्)	८८, ९०	खेतड़ी आदि)	१३६

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
चड़िया (चढ़कर)	१४०	तुहँ	
कोंचा-ताला (कुंजी-ताला; कुंचा-कुंची, कोंचा-कोची ताला-ताली)	१४२, १४८	छोककर (छोकरा)	१६०
कामलि, कामरि (कमल)	१४४	खेडा (गाँव, गु० राज०)	१६२
हउं (मैं, मैं० मग० भो०— हम)	१४६, १४७	खेकार (डकार; मैं० मग० भो० डेकार, बं० डेकुर)	१६४
मंह, मँयि (मैं)	१४८	केयार (छोटा खेत; सं० केदार, प्रा० केयार, हि० क्यारी, बहाली—प्राची० हि०, बं० केयारि)	
बापुड़ी (बापुरी—बेचारी)	१५०	चंगा (अच्छा; पंजाबीमें बहुत ही प्रयुक्त होता है, सि० चड़ो, बं० चांगा—रोगमुक्त, स्वस्थ, मैं० भो०में भी इसी अर्थका द्योतक—‘मन चंगा त कठौती गंगा’)	१७२, १६४, २६६
ताँति (ताँत; मैं० ताँति, भो० तँतिया, बं० ताँत)	„	खीह (दूध, संप्रति सिन्धीमें यह जीवित और सुप्रयुक्त शब्द है)	१६४, २२२
चंगेडा (मैं० मग० भो० का० अब० आदिमें सुप्रयुक्त चंगेरा; बाँसकी खपच्चियोंसे बना चौड़ा पात्र विशेष। बं०—चाङ्गारि)		यड (गाढ़, सि०में ठंडा)	१६६
सासु-नणंद (सास-ननद)		कणइल्ल (कर्णकील या कर्णफूल; मैं० भो० का० कनइल्ल— कनैल, करवीरका फूल। संभव है पहले इस फूलको कानोंमें लगाते रहे होंगे। वहाँ गाड़ी या हलमें जुते बेलोंके कंधेको बाहर न निकलने देनेके लिए	
लांगा (संगा, नंगा)	१५२		
वेंग (मेढक; बं० मैं० मग० भो० बेङ)	१६४		
हाँडी	„		
साँभ	„		
संभा	„		
हाँज, मो (मैं)	१६६		
मोकु (मुभको)			
माँभ			
बिहाणु	१८०		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
जुएके दोनों ओर जो कीलें लगाते हैं उन्हें भी कनइल वा कनैल कहा जाता है, क्योंकि वे दैलोंके कानोंके बिल-कुल पास रहती हैं। गाछीम ग्रामका वह पेड़ भी, जो कोने-में पड़ता हो कोनइला वा कनैला कहलाता है। पूर्वी युक्तप्रांत और बिहारमें 'कनैला' नामवाले दो-चार भाँव भी हैं। काशिका और अवधीमें उसी फूलको कनेल वा कनेर कहते हैं)	२००	पुरीमें एक घालु भी है जिसका अर्थ भाँपना होता है)	
अमूहें (हमको, हमें)	२०२	तुज्झ, तुह (तेरा, तुम्हारा)	२१८
वाणिज्जार (व्यापारी; सं०—वाणिज्यकार । 'वनजारा' शब्दका मूल यही मालूब पड़ता है)	२१४	महारी (मेरी; राज० म्हारी)	२२०
टोपी (टोपी; यही बड़ी रहने पर टोप। प्राचीन पंडितोंने अंतः-सारशून्य व्यक्तिकी आङ्ग-म्बरपूर्ण वेष-भूषाकेलिए 'घटाऽऽटोप'का प्रयोग किया है। ऐसे व्यक्तिका किसीपर रोब गठना तिरहुतमें 'टोप-टहंकार दिसलाना' कहलाता है। 'टोप' मैथिली और भोज-		रसोइ (रसोई)	२२४
		चेल्ला-चेल्ली (चेला-चेसी)	२४८
		पुत्थी (पोथी)	"
		बहुड़ि (फिर, लौटकर; अव० वृज० बहुरि)	२५२
		सवत्ति (सौत)	
		माइ (माँ)	२६८
		ठठ (ठाठ?)	२८०
		छेहलउ (अंतिम; गु० छेल्लो)	२८८
		धण (धनि ! धन्ये !)	२९८
		डंखर (गैर-आबाद जमीन जहाँ अबूल-कीकर, ढाक आदिकी छोटी-छोटी भाड़-भाड़ियों-का विस्तृत जंगल हो—बीच-बीचमें सूखे मैदान हों। डंख तीन पातवाले ढाक या ढाँक को भी कहते हैं। युक्तप्रांतके पच्छिमी भाग और पंजाबमें बहु-प्रयुक्त 'डोर-डंगर', जो 'माल-मवेशी'का स्रोतक है, ध्यान देने योग्य शब्द है। इसमेंका 'डंगर' तो अवश्य ही 'डंखर'का भाई-भतीजा	

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
होगा)	३१०	घूर्त, दुष्ट)	
बिसरि (भीतर)	३१४	बुहारी (बधू, गढवालीमें संग्रति	
हक्क (हाक—जोरसे पुकारने-		भी यह शब्द सुप्रयुक्त है)	३५६
की आवाज)		भल्सा (भला)	३६०
बप्पुड़ा (बेचारा, बापुरो;		भुमड़ा (भोंपड़ा)	३६२
'बप्पुड़ी'केलिए १५०वाँ पृष्ठ		गुठ (गाँव; सिंधीमें 'गोठ'का	
द्रष्टव्य)	३१८	यही अर्थ होता है)	
इकलि (अकेली)	॥	गाँव	३६४
पियरि, पीयर (पीली; मै० भो०		हट्टि, चौहट्टि (हट्टी, चौहट्टी;	
पीयर, पीयरि	३१८, ३२६	पं० गु० रा०में सुप्रयुक्त)	॥
गरास (कौर, ग्रास)	३२२	सामली (साँवली)	॥
दुब्बरी (दुबली; मै० भो०में		राउलि (राजकुल; पण्डितमी	
सुप्रयुक्त)		हि० गु० राज०में रावल)	॥
खणे खण (छने छत, खने खन)		देउलि (देवकुल, देवल; लगता	
हीन्ना (हृदय)	३२४	ऐसा है कि अत्यधिक प्रचलित	
थोरम (थोड़े)	३३२	होनेके कारण देउल संस्कृत	
बालू (बालू)	३४२	होकर 'देवल' बन गया)	॥
थाल (थाली)	॥	वप्पीहा (पपीहा)	३६६
एकत्सा (अकेला)	३४८	भल्ली, भल्ला (भाला)	३७२
हुहडु (उहंड आदमी; मै० भो०		फालिसिँ (फालसा)	३६२
का० अब० हुहु)	३५२	जादर (चादर; मणि-माणिक्य-	
बिटल (घूर्त, दुष्ट; भो०में बिट-		गुम्फत या जरीके बेल-बूटों-	
लाहा-बिटलाही आश्रोशा-		वाली, मोतीके फालरवाली	
त्मक गाली है। मै० 'बिहारी'		ओढ़नीकेलिए बारहवीं सदी-	
शब्द भी वैसा ही है। का०		में इसका प्रयोग होने लगा।	
अब०में भी बिटारना मिलता		यों 'चादर' फारसी शब्द है	४००-
है किंतु गंदा करनेके अर्थमें।			४८८
बं० बिटेल वा बिटले—		खुप (उच्चारण 'खुप—खोपा,	

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
जूड़ा; बं० अस० उड़ि० मै० मग० भो० अव० बज० आदि प्रायः सभी उत्तर भारतीय भाषाओंमें खोंपा या खोप सुप्रयुक्त है) ४२४, ४८०		कविने और किस शताब्दीमें किया, कह नहीं सकते। किंतु यह नवीं सदीसे पहलेका नहीं हो सकता) ४५४-६८	
संघ (सैथ, सीथ, सीमंत)		टोप्पर (नुकीली सी बड़ी टोपी; बं० टोपर)	४६२
खरी (खरी, खरा)	४३०	सेर	४६४
गमारि (गँवारि)		रंक	"
सुहाली (बिना चुपड़ा फूलका, पतली-छन्नी रोटी; अवधी; भोजपुरी और तिरहुतिया बोलियोंमें सुप्रयुक्त 'सोहारी' शब्द इसी सुहालीका उत्तरा- धिकारी है) ४३२		पातसाहि (पातसाह, बादशाह— फा०)	४६८
गिहू (गेंद, कंडुक)	४५४	सासार (भागदंशक, नेता;— जंग सेनापति—फा०)	"
कायर (कायर, कातर)	४५६	खान (खान—सरदारों—सामं- तोंकी फारसी उपाधि)	"
तुलक (तुरक, तुलक)	४५४	बहल्ल (बैल)	४७०
हिहू (यहाँ तेरहवीं सदीके अंतिम चरणमें मौजूद कवि जज्जलकी और चौदहवीं सदीके प्रथम चरणमें मौजूद जैन मुनि अंबदेव सूरिकी कविताओंमें 'हिहू' आया है। एकने रणबंशोरवाले हुम्मीर- देवकी प्रशंसामें और दूसरेने अलाउद्दीनकी प्रशंसामें कवि- ताएँ लिखी हैं। पहले-पहल 'हिहू' शब्दका इस्तेमाल किस		डूंगर (वृक्ष-वनस्पतिहीन टीला छोटा पर्वत; गुजरात और राजस्थानमें अत्यंत ही प्रच- लित शब्द)	४७४-७६
		कक्कर (कंकड़)	४७४
		खड्का	४७६
		सकित—पं०-पंजाबी; सि०-सिंधी; बं०-बंगला; भो०-भोजपुरी; मै०- मैथिली; म०-मगही; मरा०-मराठी; हि०-हिंदी; गु०-गुजराती; राज०- राजस्थानी; सं०-संस्कृत; अस०- असमिया; उड़ि०-उड़िया।	

परिशिष्ट
४. समस्तमयिक राज-वंश

संख्या	१ सिंध-अथवा गुर्जर सोलंकी	२ मालव	३ चौहान	४ राष्ट्रकूट वंश	५ हिंदी कवि	६ पालवंश	७ (गुर्जर) अथवा गहड़वाल (कन्नौज)	८ चंदेल (कालिंजर)	९ कलचुरी (विपुरी)
VIII	उमय्या खलीफा ७१२-४६ अव्वासी खलीफा ७५१-८७१		विग्रहराज (I) चंद्रराज (I) गोविंदराज दुर्लभराज (I)	दत्तिकुल ७५४ कृष्ण (I) ७५८-७८२ गोविंद (II) ७८० धृति (I) ७८०-८४४	सरहपा ७८० (शंकराचार्य) शबरपा ७८० स्वयंभू ७८० भूषुकुपा ८००	गोपाल ७८५ धर्मपाल ७८६	(देवसक्ति वत्सराज I) ७८६		
IX		उपेन्द्रराज (कृष्ण)	गोविंदराज (गुवक) (I)	गोविंद (III) ८०६-८३३ प्रमोदवर्ध (I) ८२१-७८	लूझपा ८३० कहूपा ८५०	देवपाल ८१५	नागभट्ट (II) ८१५ रामभट्ट		
	(मुल्तान) इस्माईली ८७१-१०००	वैरिसिंह (I) सीयक (I)	चंद्रराज गुवक (II)			विग्रहशूरपाल (I) ८५४ नारायणपाल ८५७	भोज (I) ८२६	नल्लूक (चंदवर्मा) वाक्पति जयसक्ति (जेज्जक)	
X		वाक्पतिराज (I) वैरिसिंह (II)	चंदनराज वाक्पति (विष्णु)	कृष्ण (II)			महेन्द्रपाल ८६३ भोज (II) महि (विनायक)पाल (I) ८१४	विजयसक्ति (विजज)	
		हर्ष (सीयक II) ८४८	सिंहराज	इन्द्र ८१५-८३० प्रमोदवर्ध (II) ८१७-८८८ गोविंद (IV) प्रमोदवर्ध (III) ८३५-८६६ कृष्ण (III) ८३६-८८८ कोटिय प्रमोदवर्ध (IV) ८६८-७८२ कर्क (II) ८७२-७८४ वक्षिण चालुक्य— तैलप (II) ८७३ सत्याश्रम ८८७ विश्रमादित्य (V) १००६	तेतोपा ८५० पुष्पदंत ८५६-७८२	गोपाल (II)	महेन्द्रपाल (II) ८४५ देवपाल ८४८ विनायकपाल (II) ८५३ महिपाल (II) ८५४ वत्सराज (II) ८५५ विजयपाल ८६०	यशोवर्मा (I) वर्ष ८५४-१००१	
	गुर्जर— मूलराज (I) ८६१	वाक्पति मुंज ८७४	विग्रहराज (II) ८७३			विग्रहपाल II ८६२			
	चामुंडराज ८६६	विश्वराज (नवसाहसिक) ८६५ भोज १०१०	दुर्लभराज (II) ८६६ गोविंदराज (II)		योगीन्द १००० वनपाल १०००	महिपाल (I) ८६२			
XI	नल्लूभराज १०१० दुर्लभराज १०१० भीमदेव (I) १०२२		वाक्पति (II)	जयसिंह (II) १०१६ सोमेश्वर (I) १०४८	प्रभुदत्तमान १०१० (रामानुजाचार्य...)	नवपाल १०४०	राज्यपाल १०१८ विशोक्त पाल १०२७ यशः १०३७	विद्याधर १०१६ विजयपाल देववर्मा १०५१	
	कर्णदेव १०६४	जयसिंह १०५५ उदयादित्य १०६०	वीरराय चामुंडराय दुर्लभराज (III) (वैरिसिंह)	सोमेश्वर (II) १०७५ विश्रमादित्य (VI) १०७५	वत्स १०५० कलकामर १०६०	विग्रहपाल (III) १०५५	गहड़वाल वंश—	कर्ण (सर्मा) १०८१ यशः कर्ण १०७७	
		लक्ष्म (जगद्) देव					चंद्रदेव १०८०		
XII	जयसिंह सिद्धराज १०६४	वर्णवर्मा १०६७	विग्रह (III) (वीरस) पृथ्वीराज (I) ११०५ अजयराज	सोमेश्वर (III) ११०५	जिनदत्त १०७५-११५४ देवचंद्र १०८८-११७६	महिपाल (II) १०८२ शूरपाल (II) १०८३ रामपाल १०८४	मदन चंद्र (पाल) ११०० गोविंदचंद्र १११४	कीर्तिसर्मा १०६८ सुलक्षण वर्मा जयवर्मा १११० पृथ्वी वर्मा मदन वर्मा ११२६	
	कुमारपाल ११४४	यशोवर्मा ११३४	शार्ङ्गराज ११३६	जगदेकमल्ल ११३८		कुमारपाल ११२६		जयकर्ण ११५१ नरसिंह ११५५	
		जयवर्मा	जगदेव विग्रह (IV) (वीरस) ११५३	तैलप (III) ११४६ सोमेश्वर (III) ११६२	(निर्वाक ११५०) हरिचंद्र ११५६	गोपाल ११३० मदनपाल ११३० गोविंदपाल ११५०	विजयचंद्र ११५५	यशोवर्मा	
	अजयपाल ११७३ (बाल)मूलराज (II) ११७६ (भोला)भीमदेव (II) ११७८	अजयवर्मा	अपर गांगेय पृथ्वीराज ११६७ पृथ्वीराज (II) सोमेश्वर (II) ११७० पृथ्वीराज (III) हरिचंद्र ११६४				जयचंद्र ११७०	परमदेव ११६७-१२०२	
		विष्णुवर्मा ११६८	बिल्ली मुल्तान सहायदीन गोरी ११६७ कुतुबुद्दीन ११७६ आराम १२१०		विद्याधर (११८०) शालिग्रह ११८४ सोमप्रभ ११८५		हरिचंद्र ११८६	जयसिंह ११७५ विजयसिंह ११८०	
XIII	(जयसिंह (I) १२०३)	मुभटवर्मा (गाहड़)			(मन्वाचार्ज १२६६-१२७८)			श्रीलोक्य वर्मा १२०५	
	विभवराज १२०६ (वीरमल्ल) १२०६		अल्लभ १२११ कुतुबुद्दीन १२०६ रजिमा १२०६ बहराम १२०६ महंज १२०६ शासिर महंज १२०६ गंगासुदीन वल्लभ १२०६ कैकभाद १२०७ बलासुदीन मिर्जा १२०८ अकाउदीन १२०८ सहायदीन उमर १२१६ कुतुबु १२१६ शासिर सुधरो १२२० गंगासुदीन सुगलक १२२० मुहम्मद सुगलक १२२५ श्रीराम सुगलक १२२६		लक्षण १२५७			वीर वर्मा १२६१	
	अजयदेव १२०५								
XIV	कर्णदेव (II) १२८७				अजय १२८० राजसेन (१२८६) सुधरो १२५५-१२६५			भोज वर्मा १२८८ हमीर वर्मा १२८८	

* सराठी कवि मुकुंद दास, नामदेव (११६२-७२), नामदेव (११६७-१२७८) इत्यादि समय में हुए, किन्तु जो मति चंदवरदाई के रातो की भाषा प्रादि की हुई, वही हम सराठी कवियों पर भी सीती।

१ सराठी कवि मुकुंद दास, नागदेव (११६२-७२), नागदेव (११६७-१२७८) इत्यादि समय में हुए, किन्तु जो मति चंदवरदाई के रासी की भाषा प्राप्ति की हुई, वही इन सराठी कवियों पर भी प्रतीति।

Handwritten text, possibly a signature or name, appearing in the lower right quadrant of the page.

D.G.A. 80.

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
NEW DELHI

Borrowers record

Call No.— 891.43109/San - 8818

Author— Sankrityayan, Rahul.

Title— Hindi kāvya-dhārā.

Borrower's Name	Date of Issue	Date of Return

P.T.O.